कुण्डलिनी विज्ञान
एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान
पुस्तक-4
प्रेमयोगी वज्र

कुण्डलिनी विज्ञान

एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान-4

लेखक- प्रेमयोगी वज्र

2023

पुस्तक परिचय

यह पुस्तक कुण्डलिनी विज्ञान शृंखला का चौथा भाग (पुस्तक-4) है। इसका पहला, दूसरा (पुस्तक-2), और तीसरा भाग (पुस्तक-4) भी समान प्लेटफोरमों पर उपलब्ध है। यह ब्लॉग-पोस्टों का संकलित रूप है। इन पोस्टों को प्रेमयोगी वज्र ने लिखा है, जो एक रहस्यवादी योगी हैं। वह प्रबुद्ध है और साथ ही उसकी कुंडलिनी भी जागृत है। ये सभी पोस्टें कुंडलिनी से संबंधित हैं। एक पोस्ट एक अध्याय से मेल खाती है। प्रेमयोगी वज्र 4 साल पहले से, तब से कुंडलिनी के बारे में लिख रहे हैं, जब उनकी कुंडलिनी एक साल के लंबे कुंडलिनी योग ध्यान के बाद जागृत हुई थी। पुस्तक को वर्तमान तिथि तक कुंडलिनी विचारों या पोस्टों के साथ अद्यतन या अपडेट किया गया है। वह यह देखकर चकित हो गया कि कहीं भी कुंडलिनी का उल्लेख या वर्णन पूरी तरह से नहीं किया गया है। यहां तक कि कुंडलिनी को ठीक से परिभाषित भी नहीं किया गया था। उन्होंने कुंडलिनी जागरण के कई अनुभवों को खोजा और पढ़ा, लेकिन उन्हें वास्तविक और पूर्ण रूप में कोई नहीं मिला। यद्यपि उन्होंने पतंजलि योग सूत्र में कुंडलिनी के समतुल्य समाधि का उल्लेख पाया है, लेकिन इसका रहस्यवादी और प्राचीन तरीके से वर्णन किया गया है, जिसे आम जनता के लिए समझा जाना मुश्किल है। इसलिए इन कमियों से प्रेरित होकर, उन्होंने कुण्डलिनी से सम्बंधित हर चीज को जमीनी स्तर पर, सत्य, अनुभवात्मक, वैज्ञानिक, मूल, व्यावहारिक और सहज ज्ञान युक्त रखने के लिए बहुत सरल या बचकाने तरीके से कुंडलिनी के बारे में समझने और लिखने का फैसला किया। इस अद्भुत पुस्तक की उत्पत्ति के परिणामस्वरूप रहस्यात्मक कुण्डलिनी की लिए वास्तविक, ईमानदार और मानवीय प्रयास हुआ। इसीलिए यह पुस्तक कुण्डलिनी साधकों के लिए वरदान के रूप में प्रतीत होती है। चूँकि चकाचौंध पैदा करने वाली स्क्रीनों पर एक साथ इतने सारे ब्लॉग पोस्टों को पढ़ना सहज नहीं है, इसलिए उन पोस्टों को एक किंडल ई-बुक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जो पढ़ने में आरामदायक और आनंददायक है। नतीजतन, यह पूरी तरह से आशा की जाती है कि पाठकों को यह पुस्तक आध्यात्मिक रूप से उत्थान करने वाली, सत्य की खोज करने वाली, और अत्यधिक आनंद देने वाली लगेगी।

लेखक परिचय

प्रेमयोगी वज्र का जन्म वर्ष **1975** में भारत के हिमाचल प्रान्त की एक सुन्दर व कटोरानुमा घाटी में बसे एक छोटे से गाँव में हुआ था। वह स्वाभाविक रूप से लेखन, दर्शन, आध्यात्मिकता, योग, लोक-व्यवहार, व्यावहारिक विज्ञान और पर्यटन के शौक़ीन हैं। उन्होंने पशुपालन व पशु चिकित्सा के क्षेत्र में भी प्रशंसनीय काम किया है। वह पोलीहाऊस खेती, जैविक खेती, वैज्ञानिक और पानी की बचत युक्त सिंचाई, वर्षाजल संग्रहण, किचन गार्डनिंग, गाय पालन, वर्मीकम्पोस्टिंग, वैबसाईट डिवेलपमेंट, स्वयंप्रकाशन, संगीत (विशेषतः बांसुरी वादन) और गायन के भी शौक़ीन हैं। लगभग इन सभी विषयों पर उन्होंने दस के करीब पुस्तकें भी लिखी हैं, जिनका वर्णन एमाजोन ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट **demystifyingkundalini.com** पर भी उपलब्ध है। वे थोड़े समय के लिए एक वैदिक पुजारी भी रहे थे, जब वे लोगों के घरों में अपने वैदिक पुरोहित दादा जी की सहायता से धार्मिक अनुष्ठान किया करते थे। उन्हें कुछ उन्नत आध्यात्मिक अनुभव (आत्मज्ञान और कुण्डलिनी जागरण) प्राप्त हुए हैं। उनके अनोखे अनुभवों सहित उनकी आत्मकथा विशेष रूप से “शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)” पुस्तक में साझा की गई है। यह पुस्तक उनके जीवन की सबसे प्रमुख और महत्त्वाकांक्षी पुस्तक है। इस पुस्तक में उनके जीवन के सबसे महत्त्वपूर्ण **25** सालों का जीवन दर्शन समाया हुआ है। इस पुस्तक के लिए उन्होंने बहुत मेहनत की है। एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में इस पुस्तक को पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट) पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इस पुस्तक को फाईव स्टार मिले थे, और इस पुस्तक को अच्छा (कूल) व गुणवत्तापूर्ण आंका गया था। इस पुस्तक का अंग्रेजी में मिलान **"Love story of a Yogi- what Patanjali says"** पुस्तक है। प्रेमयोगी वज्र एक रहस्यमयी व्यक्ति है। वह एक बहुरूपिए की तरह है, जिसका अपना कोई निर्धारित रूप नहीं होता। उसका वास्तविक रूप उसके मन में लग रही समाधि के आकार-प्रकार पर निर्भर करता है, बाहर से वह चाहे कैसा भी दिखे। वह आत्मज्ञानी (एनलाईटनड) भी है, और उसकी कुण्डलिनी भी जागृत हो चुकी है। उसे आत्मज्ञान की अनुभूति प्राकृतिक रूप से / प्रेमयोग से हुई थी, और कुण्डलिनी जागरण की अनुभूति कृत्रिम रूप से / कुण्डलिनी योग से हुई। प्राकृतिक समाधि के समय उसे सांकेतिक व समवाही तंत्रयोग की सहायता मिली, जबकि कृत्रिम समाधि के समय पूर्ण व विषमवाही तंत्रयोग की सहायता उसे उसके अपने प्रयासों के अधिकाँश योगदान से प्राप्त हुई।

अधिक जानकारी के लिए, कृपया निम्नांकित स्थान पर देखें-

https://demystifyingkundalini.com/

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)

इस तंत्र-सम्मत पुस्तक को किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

कुंडलिनी योग दर्शन को दर्शाती कार्टून फ़िल्म राया एंड द लास्ट ड्रेगन

सभी को श्री गुरु नानकदेव के प्रकाश पर्व पर हार्दिक शुभकामनाएं

दोस्तों, मैं पिछली पोस्टों में ड्रेगन के कुंडलिनी प्रभावों के बारे में बात कर रहा था। इसी कड़ी में मुझे एनीमेशन मूवी राया एंड द लास्ट ड्रेगन देखने का मौका मिला। इसमें मुझे एक सम्पूर्ण योगदर्शन नजर आया। अब यह पता नहीं कि क्या इस फ़िल्म को बनाते समय योगदर्शन की भी किसी न किसी रूप में मदद ली गई या मुझे ही इसमें नजर आया है। जहाँ तक मैंने गूगल पर सर्च किया तो पता चला कि दक्षिण पूर्वी एशियाई (थाईलैंड आदि देश) जनजीवन से इसके लिए प्रेरणा ली गई है, किसी योग वगैरह से नहीं। थाईलैंड में वैसे भी योग काफी लोकप्रिय हो गया है। इसमें एक ड्रेगन शेप की नदी या दुनिया होती है। उसमें एक हर्ट नामक कुमान्द्रा लैंड होती है। वहाँ सब मिलजुल कर रहते हैं। हर जगह ड्रेगन्स का बोलबाला होता है। ड्रेगन सबको ड्रन अर्थात बवंडर नामक पापी राक्षस से बचाती है। ड्रन लोगों की आत्मा को चूसकर उन्हें निर्जीव पत्थर बना देते हैं। ड्रेगन उन ड्रन राक्षसों से लड़ते हुए नष्ट हो जाती हैं। फिर पांच सौ साल बाद वे ड्रन फिर से हमला कर देते हैं। हर्ट लैंड के पास ड्रेगन का बनाया हुआ रत्न होता है, जो ड्रन से बचाता है। वह पत्थर बने आदमी को तो जिन्दा कर सकता है, पर पत्थर बनी ड्रेगनस को नहीं। दूरपार के कबीले उस रत्न की प्राप्ति के लिए हर्ट लैंड के कबीले से अलग होकर नदी के विभिन्न भागों में बस जाते हैं। उन कबीलों के नाम होते हैं, टेल, टेलन, स्पाइन और फैंग। टेलन ट्राइब ने तो ड्रन से बचने के लिए अपने घर नदी पे बनाए होते हैं। दरअसल पानी में ड्रेगन का असर नहीं होता है, जिससे ड्रन वहाँ नहीं पहुंच पाता। हर्ट कबीले का मुखिया बैंज चाहता है कि सभी कबीले इकट्ठे होकर समझौता कर के फिर से कुमान्द्रा बना ले, जिसमें सभी मिलजुल कर ड्रन से सुरक्षित रहें। इसलिए वह समारोह का आयोजन करता है जिसमें वह सभी कबीलों को बुलाता है। वहाँ फैंग कबीले का एक बच्चा बैंज की बेटी राया को धोखा देकर सभी कबीलों के लोगों को रत्न तक पहुंचा देती है। वे सभी रत्न के लिए आपस में लड़ने लगते हैं। इससे रत्न पांच टुकड़ों में टूट जाता है। हरेक कबीले के हाथ एक-एक टुकड़ा लगता है। रत्न के टूटने से ड्रन सब पर हमला कर देता है। सब जान बचाने को इधर-उधर भागते हैं। बैंज भी पुल पर खड़े होकर रत्न का टुकड़ा अपनी बेटी को देकर यह कहते हुए उसे नदी में धक्का देता है कि वह कुमान्द्रा बना ले और वह खुद ड्रन के हमले से पत्थर बन जाता है। छः सालों बाद राया नदी का किनारा ढूंढने किश्ती में जा रही होती है ताकि अंतिम ड्रेगन सिसू कहीं मिल जाए। उसे वह रेगिस्तान जैसे टेल कबीले के नजदीक अचानक मिलती है। सिसू उसे बताती है कि वह रत्न उसके भाई बहिनों ने बनाकर उसे सौम्पा था, उसपर विश्वास करके। वह पाती है कि जब वह एक टुकड़ा रखती है तो वह अपनी शक्तियों का उपयोग कर सकती है। हरेक टुकड़ा उसकी अलग किस्म की

शक्ति को क्रियाशील करता है। वह सिसू की मदद से वहाँ के मंदिर में रत्न का दूसरा टुकड़ा ढूंढ लेती है। इससे सिसू ड्रेगन को आदमी के रूप में आने की शक्ति मिल जाती है। फिर फैंग कबीले से बचते हुए वे स्पाइन कबीले में पहुंचते हैं। इस यात्रा में राया को पांच छः दोस्त भी मिल जाते हैं, जिनमें कोई तो बच्चे की तरह तो कोई बंदर की तरह और कोई मूर्ख जैसा होता है, हालांकि सभी ताकतवर होते हैं। शक्तिशाली फैंग कबीले की राजकुमारी नमारी से सिसू लड़ना नहीं चाहती, और उसे तोहफा देकर समझाना चाहती है। जब सिसू उसे रत्न के टुकड़े दिखा रही होती है, तब नमारी धोखे से उसपर तीरकमान साध लेती है। डर के मारे राया उसपर जैसे ही तलवार से हमला करने लगती है, वह वैसे ही तीर चला देती है, जिससे सिसू मरकर नदी में गिर जाती है। सारा पानी सूखने लगता है और ड्रन के हमले एकदम से बढ़ जाते हैं। राया के सभी दोस्त और नमारी भी अपने-अपने रत्न के टुकड़े से ड्रन को भगाने लगते हैं, पर कब तक। वे टुकड़े भाप में गायब हो रहे होते हैं। तभी राया को सिसू की बात याद आती है कि रत्न के टुकड़े जोड़ने के लिए विश्वास भी जरूरी है। इसलिए वह नमारी को रत्न का टुकड़ा थमाती है, और खुद पत्थर बन जाती है। राया को देखकर उसके दोस्त भी नमारी को टुकड़े सौम्प कर खुद पत्थर बन जाते हैं। अंत में नमारी भी अपना टुकड़ा उनमें जोड़कर खुद भी पत्थर बन जाती है। रत्न पूरा होने पर चारों ओर प्रकाश छा जाता है, राया के पिता बैंज समेत सभी पत्थर बने लोग जिन्दा हो जाते हैं। सभी पत्थर बनी ड्रेगन्स भी जिन्दा हो जाती हैं। कुमान्द्रा वापिस लौट आता है, और सभी लोग फिर से मिलजुल कर रहने लगते हैं।

राया एन्ड द लास्ट ड्रेगन का कुंडलिनी-आधारित स्पष्टीकरण

यह चाइनीस ड्रेगन कम और कुंडलिनी तंत्र वाला नाग ज्यादा है। यही सुषुम्ना नाड़ी है। मैं पिछली एक पोस्ट में बता रहा था कि दोनों एक ही हैं, और कुंडलिनी शक्ति को रूपांकित करते हैं। वह रीढ़ की हड्डी जैसे आकार का है, और पानी में मतलब स्पाइनल कॉर्ड के सेरेबरोस्पाइनल फ्लूड में रहता है। मेरुदण्ड में कुंडलिनी शक्ति के प्रवाह से ड्रन-रूपी या पापरूपी बुरे विचार दूर रहते हैं। कुमान्द्रा वह देह-देश है, जिसमें सभी किस्म के भाव अर्थात लोग मिलजुल कर रहते हैं। विभिन्न चक्र ही विभिन्न कबालई क्षेत्र हैं, और उन चक्रौं पर स्थित विभिन्न मानसिक भाव व विचार ही विभिन्न कबालई लोग हैं। कुमान्द्रा दरअसल कुंडलिनी योग की अवस्था है, जिसमें सभी चक्रौं पर कुंडलिनी शक्ति अर्थात ड्रेगन को एकसाथ घुमाया जाता है। हरेक चक्र के योगदान से इस कुंडलिनी शक्ति से एक कुंडलिनी चित्र अर्थात ध्यान चित्र चमकने लगता है। यह कभी किसी चक्र पर तो कभी किसी दूसरे चक्र पर प्रकट होता रहता है। यही वह रत्न है जो द्वैत रूपी ड्रन से बचाता है। आदमी ने उस कुंडलिनी चित्र को केवल अपने हृदय में धारण किया हुआ था। मतलब आदमी साधारण राजयोगी की तरह था, तांत्रिक कुंडलिनी योगी की तरह नहीं। इससे हर्ट लैंड के लोग मतलब हृदय की कोशिकाएं तो शक्ति से भरी थीं, पर अन्य चक्रौं से संबंधित

अंग शक्ति की कमी से जूझ रहे थे। इसलिए स्वाभाविक है कि वे हर्ट कबीले से शक्तिस्रोत रत्न को चुराने का प्रयास कर रहे थे। एकबार हर्टलैंड के मुखिया बैंज मतलब जीवात्मा ने सभी लोगों को दावत पे बुलाया मतलब सभी चक्रों का सच्चे मन से ध्यान किया। पर उन्होंने मिलजुल कर रहने की अपेक्षा छीनाझपटी की और रत्न को तोड़ दिया, मतलब कि आदमी ने निरंतर के तांत्रिक कुंडलिनी योग के अभ्यास से सभी चक्रों को एकसाथ कुंडलिनी शक्ति नहीं दी, सिर्फ एकबार ध्यान किया या सिर्फ साधारण अर्थात अल्पप्रभावी कुंडलिनी योग किया। इससे स्वाभाविक है कि शक्ति तो चक्रों के बीच में बंट गई, पर कुंडलिनी चित्र गायब हो गया, मतलब वह निराकार शक्ति के रूप में सभी पांचों मुख्य चक्रों पर स्थित हो गया अर्थात रत्न पांच टुकड़ों में टूट गया और एक टुकड़ा हरेक कबीले के पास चला गया। इस शक्ति से सभी चक्रों के लोग जिन्दा तो रह सके थे, पर अज्ञान रूपी ड्रन से पूरी तरह से सुरक्षित नहीं थे, क्योंकि रत्न रूपी सम्पूर्ण कुंडलिनी चित्र नहीं था। अज्ञान से तो ध्यान-चित्र रूपी रत्न ही बचाता है। ध्यान-चित्र अर्थात रत्न के छिन जाने से बैंज नामक आत्मा तो अज्ञान के अँधेरे में डूब गई मतलब वह मर गया, पर उसने बेटी राया मतलब बुद्धि को बचीखुची कुंडलिनी शक्ति का प्रकाश मतलब रत्न का टुकड़ा देकर कहा कि वह शरीर-रूपी दुनिया में पुनः कुमान्द्रा मतलब अद्वैतवाद अर्थात मेलजोल स्थापित करे। राया मतलब बुद्धि फिर पानी मतलब सेरेबरोस्पाइनल फ्लूड या मेरुदण्ड के ध्यान में छलांग लगा देती है, जहाँ कुंडलिनी शक्ति मतलब सिसू ड्रेगन के प्रभाव से वह ड्रन से बच जाती है। दरअसल चक्रों के ध्यान को ही ध्यान कहते हैं। चक्र पर ध्यान को आसान बनाने के लिए बाएं हाथ से चक्र को स्पर्ष कर के रखा जा सकता है, क्योंकि दायां हाथ तो प्राणायाम के लिए नाक को स्पर्ष किए होता है। इससे खुद ही कुंडलिनी चित्र का ध्यान हो जाता है। यही हठयोग की विशिष्टता है। राजयोग में ध्यान-चित्र का ध्यान जबरदस्ती और मस्तिष्क पर बोझ डालकर करना पड़ता है, जो कठिन लगता है। जैसे चक्र का ध्यान करने से खुद ही ध्यानचित्र का ध्यान होने लगता है, उसी तरह मेरुदण्ड में स्थित नागरूपी सुषुम्ना नाड़ी का ध्यान करने से भी कुंडलिनी चित्र का ध्यान खुद ही होने लगता है। स्पर्ष में बड़ी शक्ति है। सुषुम्ना का स्पर्ष पीठ की मालिश करवाने से होता है। ऐसे बहुत से आसन हैं, जिनसे सुषुम्ना पर दबाव का स्पर्ष महसूस होता है। जो कुर्सी पूरी पीठ को अच्छे से स्पर्ष करके भरपूर सहारा देती है, वह इसीलिए आनंददायी लगती है, क्योंकि उस पर सुषुम्ना क्रियाशील रहती है। जो मैं ओरोबोरस सांप वाली पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे एकदूसरे के सहयोग से पुरुष और स्त्री दोनों ही अपने शरीर के आगे वाले चैनल में स्थित चक्रों के रूप में अपने शरीर के स्त्री रूप वाले आधे भाग को क्रियाशील करते हैं, वह सब स्पर्श का ही कमाल है। राया को उस नदी अर्थात सुषुम्ना नाड़ी में ड्रेगन रूपी शक्ति का आभास होता है, इसलिए वह उसकी खोज में लग जाती है। उसे वह टेल आईलैंड में छुपी हुई मतलब उसे शक्ति मूलाधार चक्र में निद्रावस्था में मिल जाती है। उस ड्रेगन रूपी कुंडलिनी शक्ति की मदद से वह रत्न के टुकड़ों को मतलब कुंडलिनी चित्र को उपरोक्त टापुओं पर मतलब शक्ति के अड्डों पर

मतलब चक्रों पर ढूंढने लगती है। एक टुकड़ा तो उसके पास दिल या मन या आत्मा या सहस्रार रूपी बैंज का दिया हुआ है ही, सदप्रेरणा के रूप में। आत्मा दिल या मन में ही निवास करती है। दूसरा टुकड़ा उसे टेल आईलैंड के मंदिर मतलब मूलाधार चक्र पर मिल जाता है। इससे ड्रेगन मानव रूप में आ सकती है, मतलब वीर्यबल से कुंडलिनी शक्ति पूरी सुषुम्ना नाड़ी में फैल गई, जो एक फण उठाए नाग या मानव की आकृति की है। टेलन द्वीप के लोग पानी के ऊपर रहते हैं, मतलब फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र के बॉडी सेल्स तरल वीर्य से भरे प्रॉस्टेट के ऊपर स्थित होते हैं। फ्रंट स्वाधिष्ठान चक्र एक पुल जैसे नाड़ी कनेक्शन से रियर स्वाधिष्ठान चक्र से जुड़ा होता है। इसे ही टेलन द्वीप के लोगों का नदी के बीच में बने प्लेटफॉर्म आदि पर घर बना कर रहना बताया गया है। इसी नदी जल रूपी तरल वीर्य की शक्ति से इस द्वीप रूपी चक्र पर ड्रन रूपी अज्ञान या निकम्मेपन का प्रभाव नहीं पड़ता। पुल से गुजरात राज्य के मोरबी का पुल हादसा याद आ गया। हाल ही में एक लोकप्रिय हिंदु मंदिर से जुड़े उस झूलते पुल के टूटने से सौ से ज्यादा लोग नदी में डूब कर मर गए। उनमें ज्यादातर बच्चे थे। सबसे कम आयु का बच्चा दो साल का बताया जा रहा है। टीवी पत्रकार एक ऐसे छोटे बच्चे के जूते दिखा रहे थे, जो नदी में डूब गया था। जूते बिल्कुल नए थे, और उन पर हँसते हुए जोकर का चित्र था। बच्चा अपने नए जूते की खुशी में पुल पर आनंद में खोया हुआ कूद रहा होगा, और तभी उसे मौत ने अपने आगोश में ले लिया होगा। मौत इसी तरह दबे पाँव आती है। इसीलिए कहते हैं कि मौत को और ईश्वर को हमेशा याद रखना चाहिए। दिल को छूने वाला दृश्य है। जो ऐसे हादसों में बच जाते हैं, वे भी अधिकांशतः तथाकथित मानसिक रूप से अपंग से हो जाते हैं। मैं जब सीनियर सेकंडरी स्कूल में पढ़ता था, तब हमें अंग्रेजी विषय पढ़ाने एक नए अध्यापक आए। वे शांत, गंभीर, चुपचाप, आसक्ति-रहित, और अद्वैतशील जैसे रहते थे। कुछ इंटेलिजेंट बच्चों को तो उनके पढ़ाने का तरीका धीमा और पिछड़ा हुआ लगा पहले वाले अध्यापक की अपेक्षा, पर मुझे बहुत अच्छा लगा। सम्भवतः मैं उनके तथाकथित आध्यात्मिक गुणों से प्रभावित था। प्यार से देखते थे, पर हँसते नहीं थे। कई बार कुछ सोचते हुए कहा करते थे कि कभी किसी का बुरा नहीं करना चाहिए, इस जीवन में क्या रखा है आदि। बाद में सुनने में आया कि जब वे अपने पिछले स्कूल में स्कूल का कैश लेके जा रहे थे, तब कुछ बदमाशों ने उनसे पैसे छीनकर उन्हें स्कूटर समेत सड़क के पुल से नीचे धकेल दिया था। वहाँ वे बेहोश पड़े रहे जब उनकी पत्नि ने उन्हें ढूंढते हुए वहाँ से अस्पताल पहुंचाया। डरे हुए और मजबूर आदमी के तरक्की के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं, यहाँ तक कि उसकी पहले की की हुई तरक्की भी नष्ट होने लगती है। बेशक वह पिछली तरक्की के बल पर आध्यात्मिक तरक्की जरूर कर ले। पर पिछली तरक्की का बल भी कब तक रहेगा। हिन्दुओं को पहले इस्लामिक हमलावरों ने डराया, अब पाकिस्तान पोषित इस्लामिक आतंकवाद डरा रहा है। तथाकथित ख़ालिस्तानी आतंकवाद भी इनमें एक है। जिस धर्म के लोगों और गुरुओं ने मुग़ल हमलावरों से हिंदु धर्म की रक्षा के लिए हँसते-हँसते अपने प्राण न्योछावर कर दिए थे, आज उन्हींके कुछ मुट्ठी भर लोग तथाकथित

हिंदुविरोधी खालिस्तान आंदोलन का समर्थन कर रहे हैं, बाकि अधिकांश लोग भय आदि के कारण चुप रहते हैं, क्योंकि बहुत से बोलने वालों को या तो जबरन चुप करवा दिया गया या मरवा दिया गया। अगर विरोध में थोड़ा-थोड़ा सब स्वतंत्र रूप से बोलें, तो आतंकवादी किस किस को मारेंगे। सूत्रों के अनुसार कनाडा उनका मुख्य अड्डा बना हुआ है। अभी हाल ही में हिन्दूवादी शिवसेना के नेता सुधीर सूरी की तब गोली मारकर हत्या कर दी गई, जब वे देव मूर्तियों को कूड़े में फ़ेंके जाने का विरोध करने के लिए शांतिपूर्ण प्रदर्शन कर रहे थे। सूत्रों के अनुसार इसके तार भी पाक-समर्थित खालिस्तान से जुड़े बताए जा रहे हैं। तथाकथित हिंदु विचारधारा वाले राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेता गगनेजा हो या रवीन्द्र गोसाईं, इस अंतर्राष्ट्रीय साजिश के शिकार लोगों की सूचि लंबी है। गहराई से देखने पर तो यह लगता है कि हिंदु ही हिंदु से लड़ रहे हैं, उकसाने और साजिश रचने वाले तथाकथित बाहर वाले होते हैं। हाँ, अब पोस्ट के मूल विषय पर लौटते हैं। आपने भी देखा ही होगा कि कोई चाहे कैसा ही क्यों न हो, किसी न किसी बहाने सम्भोग की तरफ आकर्षित हो ही जाता है, ताकि अपनी ऊर्जा को बढ़ा सके, मतलब यहाँ निकम्मापन नहीं पनपता। तीसरा टुकड़ा उसे स्पाइन ट्राईब अर्थात मेरुदण्ड में मिला, सुषुम्ना में उठ रही संवेदना के रूप में। मेरुदण्ड स्थित कुंडलिनी शक्ति अर्थात सिसू ड्रेगन को कुंडलिनी चित्र चक्रौं से मिला होता है, जैसा कि शिवपुराण में आता है कि ऋषिपत्नियों (चक्रौं) ने अपने वीर्य तेज को हिमालय (मेरुदण्ड) को दिया। इसीको सिसू कहती है कि उसे रत्न के टुकड़े उसके भाई-बहिनों ने दिए, जो इन विभिन्न टापुओं पर रहते थे। हरेक चक्र से मिली कुंडलिनी चित्र रूपी चिंतन शक्ति से सिसू रूपी कुंडलिनी शक्ति मजबूती प्राप्त करती है, और अपने मस्तिष्क में अर्थात आदमी के मस्तिष्क में (क्योंकि फन उठाए नाग का मस्तिष्क ही आदमी का मस्तिष्क है) एक विशेष शक्ति और उससे एक नया सकारात्मक रूपांतरण महसूस करती है। इसको उपरोक्त मिथक कथा में ऐसे कहा है कि हरेक रत्न का टुकड़ा प्राप्त करने से वह एक विशेष नई शक्ति प्राप्त करती है। राया और सिसू फैंग कबीले से बचते हुए स्पाइन कबीले में पहुंचते हैं, मतलब अवेयरनेस या बुद्धि और कुंडलिनी शक्ति आगे के चक्रौं से ऊपर नहीं चढ़ती, अपितु पीछे स्थित रीढ़ की हड्डी से ऊपर चढ़ती है। यह इसलिए कहा गया है क्योंकि फैंग मतलब मुंह का नुकीला दाँत आगे के चक्रौं के रास्ते में ही आता है। इस यात्रा में उसे चार-पांच मददगार दोस्त मिल जाते हैं, मतलब पाँच प्राण और मांसपेशियों की ताकत जो कि कुंडलिनी शक्ति को घुमाने में मदद करते हैं। फैंग आईलैंड में वे पीछे से मतलब पीछे के विशुद्धि चक्र से प्रविष्ट होती हैं। वह इसलिए क्योंकि कुंडलिनी शक्ति को विशुद्धि चक्र से ऊपर चढ़ाना सबसे कठिन है, इसलिए वह आगे की तरफ फ़िसलती है। वहाँ राजकुमारी निमारी मतलब बीमारी मतलब कमजोरी या अंधभौतिकता उसे मार देती है, मतलब उसे वापिस हटने पर मजबूर करती है, और वह नदी में गिर जाती है, मतलब मेरुदण्ड के फ्लूड में बहती हुई वापिस नीचे चली जाती है। उससे बवंडर ताकतवर होकर लोगों को मारने लगते हैं, मतलब चक्रौं में फँसी भावनाओं को बाहर निकलने का मौका न देकर वहीं उन्हें पत्थर

अर्थात शून्य अर्थात बेजान बनाने लगते हैं। चक्र भी बवंडर की तरह गोलाकार होते हैं। सिसू नमारी से लड़ना नहीं चाहती मतलब जब कुंडलिनी शक्ति विशुद्धि चक्र को लांघ कर ऊपर चढ़ने लगती है, तब मन की लड़ाई-झगड़े वाली सोच नष्ट हो जाती है। मन का सतोगुण बढ़ा हुआ होता है। वह नमारी को तोहफा देना चाहती है मतलब उसे कुछ मिष्ठान्न आदि खिलाकर। वैसे भी मुंह में कुछ होने पर कुंडलिनी सर्कट कम्प्लीट हो जाता है, जिससे कुंडलिनी आसानी से घूमने लगती है। पर हुआ उल्टा। उस तोहफे से कुंडलिनी की मदद करने की बजाय वह दुनियादारी के दोषों जैसे गुस्से, लड़ाई व अति भौतिकता आदि को बढ़ाने लगी। इससे तो कुंडलिनी शक्ति नष्ट होगी ही। इसको ऐसे दिखाया गया है कि सिसू तीर लगने से मरकर नदी में गिर जाती है, मतलब शक्ति फिर सेरेबरोस्पाइनल द्रव से होती हुई मेरुदण्ड में वापिस नीचे चली जाती है। इससे फिर से ड्रन के हमले शुरु हो जाते हैं। इससे शक्ति की कमी से टुकड़ों में बंटे कुंडलिनीचित्र रूपी रत्न से वे बवंडर से बचने की कोशिश करते हैं, पर शक्ति के बिना कब तक कुंडलिनी चित्र बचा पाएगा। कुंडलिनी चित्र अर्थात ध्यान चित्र को शक्ति से ही जान और चमक मिलती है, और शक्ति को कुंडलिनी चित्र से। दोनों एकदूसरे के पूरक हैं। इससे वह मेडिटेशन चित्र भी धूमिल पड़ने लगता है। इससे राया मतलब बुद्धि को याद आता है कि आपसी सौहार्द और विश्वास से ही सीसू मतलब शक्ति ने वह कुंडलिनी रत्न प्राप्त किया था। इसलिए वह अपना रत्न भाग नमारी मतलब दुनियादारी या भौतिकता को दे देती है। सभी अंग और प्राण बुद्धि का ही अनुगमन करते हैं, इसलिए उसके सभी दोस्त मतलब प्राण भी जिन्होंने विभिन्न चक्रौं से कुंडलिनी भागों को कैपचर किया है, वे भी अपनेअपने रत्नभाग नमारी को दे देते हैं। नमारी भी अपना टुकड़ा उसमें जोड़ देती है, मतलब वह भी पूरी शक्ति का इस्तेमाल करते हुए दुनियादारी में अनासक्ति और अद्वैत के साथ व्यवहार करने लगती है। इससे वह रत्न पूरा जुड़ जाता है मतलब अद्वैत की शक्ति से कुंडलिनी चित्र आनंद और शांति के साथ पूरा चमकने लगता है। इससे चक्रौं में दबी हुई भावनाएँ फिर से प्रकट होकर आत्मा के आनंद में विलीन होने लगती हैं, मतलब बवंडर द्वारा पत्थर बनाए लोग फिर से जिन्दा होकर आनंद मनाने लगते हैं। सुषुम्ना की शक्ति भी उस चित्र की मदद से जागने लगती है। सुषुम्ना नाड़ी के साथ ही शरीर की अन्य सभी नाड़ियों में भी अवेयरनेस दौड़ने लगती है, मतलब उनमें दौड़ती हुई शक्ति की सरसराहट आनंद के साथ महसूस होने लगती है। इसको ऐसे कहा गया है कि फिर पत्थर बनी सभी ड्रेगन भी जिन्दा हो जाती हैं। वे ड्रेगन पूरे कुमान्द्रा में खुशहाली और समृद्धि वापिस ले आती है। क्योंकि शरीर भी एक विशाल देश की तरह ही है, जिसमें शक्ति ही सबकुछ करती है। हरेक नाड़ी में आनंदमय शक्ति के दौड़ने से पूरा शरीर खुशहाल, हट्टाकट्टा और तंदुरस्त तो बनेगा ही। इससे पहले रत्न के टुकड़े पत्थर बने लोगों को तो जिन्दा कर पा रहे थे पर पत्थर बनी ड्रेगनों को नहीं। इसका मतलब है कि धुंधले कुंडलिनी चित्र से चक्रौं में दबी भावनाएँ तो उभरने लगती हैं, पर उससे सरसराहट के साथ चलने वाली शक्ति महसूस नहीं होती। शक्तिशाली नाग के रूप में सरसराहट करने वाली कुण्डलिनी शक्ति मानसिक कुंडलिनी

छवि का ही अनुसरण करती है। इसके और आगे, तांत्रिक यौन योग इस शक्ति को और ज्यादा मजबूती प्रदान करता है। महाराज ओशो भी यही कहते हैं। मतलब कि शक्ति चक्रों पर विशेषकर मूलाधार चक्र में सोई हुई अवस्था में रहती है। इसका प्रमाण यह भी है कि यदि आप मन में नींद-नींद का उच्चारण करने लगो, तो कुंडलिनी शक्ति के साथ कुंडलिनी चित्र स्वाधिष्ठान चक्र और मूलाधार चक्र पर महसूस होने लगेगा, नाभि चक्र में भी अंदर की ओर सिकुड़न महसूस होगी। साथ में रिलेक्स फील भी होता है, असंयमित विचारों की बाढ़ शांत हो जाती है, मस्तिष्क में दबाव एकदम से कम होता हुआ महसूस होता है, और सिरदर्द से भी राहत मिलती है। यह तकनीक उनके लिए बहुत फायदेमंद है जिनको नींद कम आती हो या जो तनाव में रहते हैं।

निद्रा देवी ही नींद की अधिष्ठात्री है। "श्री निद्रा है" मंत्र मैंने डिज़ाइन किया है। श्री से शरीरविज्ञान दर्शन का अद्वैत अनुभव होता है, जिससे कुंडलिनी मस्तिष्क में कुछ दबाव बढ़ाती है, निद्रा से वह कुंडलिनी दबाव के साथ निचले चक्रों में उतर जाती है, है से आदमी सामान्य स्थिति में लौट आता है। अगर योग करते हुए मस्तिष्क में दबाव बढ़ने लगे, तब भी यह उपाय बहुत कारगर है। दरअसल योग के लिए नींद भी बहुत जरूरी है। जागृति नींद के सापेक्ष ही है, इसलिए नींद से ही मिल सकती है। जो जबरदस्ती ही हमेशा ही सतोगुण को बढ़ा के रखकर जागे रहने का प्रयास करता है, वह कई बार मुझे ढोंग लगता है, और उससे आध्यात्मिक जागृति प्राप्त होने में मुझे संदेह है। इसी तरह किताब में पढ़ते समय मुझे लगता था कि शाम्भवी मुद्रा पता नहीं कितनी बड़ी चमत्कारिक विद्या है, क्योंकि लिखा ही ऐसा होता था। लेखन इसलिए होता है ताकि कठिन चीज सरल बन सके, न कि उल्टा। सब कुछ सरल है यदि व्यावहारिक ढंग से समझा जाए। नाक पर या नासिकाग्र पर नजर रखना कुंडलिनी शक्ति को केंद्रीकृत कर के घुमाने के लिए एक आम व साधारण सी प्रेक्टिस है। एकसाथ दोनों आँखों से बराबर देखने से आज्ञा चक्र पर भी ध्यान चला जाता है, यह भी साधारण अभ्यास है। जीभ को तालू से ज्यादा से ज्यादा पीछे छुआ कर रखना भी एक साधारण योग टेक्टिक है। इन तीनों तकनीकों को एकसाथ मिलाने से शाम्भवी मुद्रा बन जाती है, जिससे तीनों के लाभ एकसाथ और प्रभावी रूप से मिलते हैं। इसीलिए जीवन संतुलित होना चाहिए ताकि उसमें पूरे शरीर का बराबर योगदान बना रहे, और शरीर कुमान्द्रा अर्थात संतुलित बना रहे। संतुलन ही योग है। इसी तरह रत्न के टुकड़े लोगों का ड्रन से स्थायी बचाव नहीं कर पा रहे थे। यह राजयोग वाला उपाय है, जिसमें केवल मन या दिल में कुंडलिनी चित्र का ध्यान किया जाता है, हठयोग के योगासन व प्राणायाम आदि के रूप में पूरी योगसाधना नहीं की जाती। इसलिए जबतक कुंडलिनी चित्र का ध्यान किया जाता है तब तक तो वह बना रहता है, पर जैसे ही ध्यान हटाया जाता है, वैसे ही वह एकदम से धूमिल पड़ जाता है। यही बैंज कबीले वाला स्थानीय उपाय है। इससे मन या हृदय में तो ड्रन से बचाव होता है, पर अन्य चक्रों पर लोगों के पत्थर बनने के रूप में भावनाएँ दबती रहती हैं।

इसलिए सम्पूर्ण, सार्वकालिक व सार्वभौमिक उपाय हठयोग के साथ यथोचित दुनियादारी ही है, राजयोग मतलब खाली बैठकर केवल ध्यान लगाना नहीं। ऐसा इसलिए क्योंकि हठयोग में पूरे शरीर का और बाहरी संसार का यथोचित इस्तेमाल होता है। संसार में भी पूरे शरीर का इस्तेमाल होता है, केवल मन व दिल का ही नहीं। हालांकि प्रारम्भिक तौर पर पूर्ण सात्विक राजयोग ही कुंडलिनी चित्र को तैयार करता है, और उसे संभाल कर रखता है। यह ऐसे ही है, जैसे बैंज कबीले के मुखिया ने रत्न को संभाल कर रखा हुआ था। कई लोग हठयोग के आसनों को देखकर बोलते हैं कि यह तो शारीरिक व्यायाम है, असली योग तो मन में ध्यान से होता है। उनका कहने का मतलब है कि मन रूपी चिड़िया बिना किसी आधार के खाली अंतरिक्ष में उड़ती रहती है। पर सच्चाई यह है कि मन रूपी चिड़िया शरीर रूपी पेड़ पर निवास करती है। पेड़ जितना ज्यादा स्वस्थ और फलवान होगा, चिड़िया उतनी ही ज्यादा खुश रहेगी।

कुंडलिनी-ध्यानचित्र का वाममार्गी तांत्रिक यौनयोग में महत्त्व

मित्रो, मैं इस पोस्ट में शिवपुराण में वर्णित राक्षस अंधकासुर, दैत्यगुरु शुक्राचार्य, देवासुर संग्राम और शिव के द्वारा देवताओं की सहायता का रहस्योदघाटन करूंगा।

शिवपुराणोक्त अन्धकासुर कथा

एक बार भगवान शिव पार्वती के साथ काशी से निकलकर कैलाश पहुंचते हैं, और वहाँ भ्रमण करने लगते हैं। एकदिन शिव ध्यान में होते हैं कि तभी देवी पार्वती पीछे से आकर उनके मस्तक पर हाथ रखती हैं, जिससे शिव के माथे की गर्मी से उनकी अंगुली से एक पसीने की बूंद जमीन पर गिर जाती है। उससे एक बालक का जन्म होता है, जो बहुत कुरूप, रोने वाला और अंधा होता है। इसलिए उसका नाम अंधकासुर रखा जाता है। उधर राक्षस हिरण्याक्ष पुत्र न होने से बहुत दुखी रहता है। वह शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तप करता है, और उनसे पुत्र-प्राप्ति का वर मांगता है। शिव अंधक को उसे सौंप देते हैं। वह शिवपुत्र अंधक की प्राप्ति से अति प्रसन्न और उत्साहित होकर स्वर्ग पर चढ़ाई कर देता है, जिससे देवता स्वर्ग से भागकर धरती पर छिप कर रहने लगते हैं। वह धरती को समुद्र में डुबोकर पाताल लोक में छुपा देता है। फिर भगवान विष्णु देवताओं की सहायता करने के लिए वाराह के रूप में अवतार लेकर हिरण्याक्ष को मार देते हैं और धरती को अपने दाँतों पर रखकर पाताल से ऊपर उठाकर पूर्ववत यथास्थान रख देते हैं। उधर बालक अंधक जब अपने भाई प्रह्लाद आदि अन्य राक्षस बालकों के साथ खेल रहा होता है, तो वे उसे यह कह कर चिढ़ाते हैं कि वह अंधा और कुरूप है इसलिए वह अपने पिता हिरण्याक्ष की जगह राजगद्दी नहीं संभाल सकता। इससे अन्धक दुखी होकर भगवान शिव को खुश करने के लिए घोर तप करने लगता है। वह धुएं वाली अग्नि को पीता है, अपने मांस को काटकाट कर हवनकुण्ड में हवन करता है। इससे वह हड्डी का कंकाल मात्र बच जाता है। शिवजी उससे प्रसन्न होकर उसके मांगे वर के अनुसार उसे बिल्कुल स्वस्थ व आँखों वाला कर देते हैं, और कहते हैं कि वह केवल तभी मरेगा जब किसी महान योगी की पतिव्रता स्त्री को अपनी स्त्री बनाने का प्रयास करेगा। वर से खुश और दंभित होकर अन्धक उग्र भोगविलास में डूब जाता है, अनेकों कामिनियों के साथ विभिन्न रतिवर्धक स्थानों में रमण करता है, और अपनी आयु का दुरुपयोग करता है। वह साधुओं और देवताओं पर भी बहुत अत्याचार करता है। वे सब इकट्ठे होकर भगवान शिव के पास जाते हैं। शिव उनकी मदद करने के लिए कैलाश पर पार्वती के साथ विहार करने लगते हैं। एकदिन अन्धक के सेवक की नजर देवी पार्वती पर पड़ती है, और वह यह बात

अन्धक को बताता है। अंधक पार्वती पर आसक्त होकर शिव को गंदा तपस्वी, जटाधारी आदि कह कर उनका अपमान करता है और कहता है कि उतनी सुंदर नारी उसी के योग्य है, न कि किसी तपस्वी के। फिर वह सेना के साथ शिव से युद्ध करने चला जाता है। उसे शिव का गण वीरक अकेले ही युद्ध में हरा कर भगा देता है, और उसे शिवगुफा के अंदर प्रविष्ट नहीं होने देता। फिर शिव पाशुपत मंत्र प्राप्त करने के लिए दूर तप करने चले जाते हैं। मौका देखकर अंधक फिर हमला करता है। पार्वती अकेली होती है गुफा में। उसे वीरक भी नहीं रोक पा रहा होता है। डर के मारे पार्वती सभी देवताओं को सहायता के लिए बुलाती है, जो फिर स्त्री रूप में अस्त्रशस्त्र लेकर पहुंच जाते हैं। स्त्री रूप इसलिए क्योंकि देवी के कक्ष में पुरुष रूप में जाना उन्हें अच्छा नहीं लगता। घोर युद्ध होता है। अंधक का सैनिक विघस सूर्य चन्द्रमा आदि देवताओं को निगल जाता है। चारों ओर अंधेरा छा जाता है। हालांकि वे किसी दिव्य मंत्र के जाप से उसके मुंह में घूँसे मारकर बाहर भी निकल आते हैं। तभी शिव भी वहाँ पहुँच जाते हैं। उससे उत्साहित गण राक्षसों को मारने लगते हैं। पर राक्षस गुरु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से सभी मृत राक्षसों को पुनर्जीवित कर देते हैं। शिव को यह बात शिवगण बता देते हैं कि शुक्राचार्य उनकी दी हुई विद्या का कैसे दुरूपयोग कर रहा है। इससे नाराज होकर शिव उसे पकड़ कर लाने के लिए नंदी बैल को भेजते हैं। नंदी राक्षसों को मारकर उसे पकड़कर ले आता है। शिव शुक्राचार्य को निगल जाते हैं। वह शिव के उदर में बाहर निकलने का छेद न पाकर चारों तरफ ऐसे घूमता है, जैसे वायु के वेग से घूम रहा हो। वह वहाँ से निकलने का वर्षों तक प्रयास करता है, पर निकल नहीं पाता। फिर शिव उसे शुक्र अर्थात वीर्य रूप में अपने लिंग से बाहर निकालते हैं। इसीलिए उनका नाम शुक्राचार्य पड़ा।

दरअसल संजीवनी विद्या उन्हें एक बहुत पुराने समय में शिव ने दी होती है। वह एक बहुत सुंदर स्थान पर शिव का लिंग स्थापित करते हैं। उस पर वे शिव की कठिन अराधना करते हैं। अग्निधूम को पीते हैं, और कठिन तप करते हैं। उससे शिव लिंग से प्रकट होकर उन्हें संजीवनी विद्या देते हैं, और वर देते हैं कि वे भविष्य में उनके उदर में प्रविष्ट होकर उनके वीर्य रूप में जन्म लेंगे। वे लिंग का नाम शुक्रेश और उनके द्वारा स्थापित कुएँ का नाम शुक्रकूप रख देते हैं। वे भक्तों द्वारा उस कूप में स्नान करने का अमित फल बताते हैं।

अंधकासुर कथा का कुंडलिनी-आधारित विश्लेषण

शुक्र मतलब ऊर्जा या तेज। शुक्र, ऊर्जा और तेज तीनों एकदूसरे के पर्याय हैं। शुक्राचार्य को निगल गए, मतलब योगी शिव ने खेचरी मुद्रा में जिह्वा तालु से लगाकर कुंडलिनी ऊर्जा को आगे के नाड़ी चैनल से नीचे उतारा, जिससे वीर्यशक्ति के रूपान्तरण से निर्मित कुंडलिनी ऊर्जा मूलाधार चक्र से पीठ की सुषुम्ना नाड़ी से होते हुए ऊपर चढ़ गई। वायु के वेग से वे इधरउधर भटकने लगे, मतलब साँसों की गति से कुंडलिनी ऊर्जा

माइक्रोकोस्मिक औरबिट लूप में गोल-गोल घूमने लगी। शुक्राचार्य को बहुत समय तक घुमाने के बाद योगी शिव ने उन्हें वीर्य मार्ग से बाहर निकाल दिया, मतलब बहुत समय तक शक्ति को चक्रों में घुमाते हुए व उससे चक्रों पर इष्ट देव या गुरु आदि के रूप में कुंडलिनी चित्र का ध्यान करने के बाद जब वह शक्ति क्षीण होने लगी मतलब शुक्राचार्य शिथिल पड़ने लगे, तब उसे वीर्यरूप में बाहर निकाल दिया। उन्हें योगी शिव ने पुत्र रूप में स्वीकार किया, मतलब कि जिसे ओशो महाराज कहते हैं, 'संभोग से समाधि', वह तरीका अपनाया। इस यौनतंत्र में सहस्रार चक्र के समाधि चित्र को स्खलन-संवेदना के ऊपर आरोपित किया जाता है। इससे वही बात हुई जैसी एक पिछली पोस्ट में लिखी गई है कि गंगा नदी के किनारे पर उगी सरकंडे की घास पर शिववीर्य से बालक कार्तिकेय का जन्म हुआ, मतलब शुक्राचार्य ने कार्तिकेय के रूप में शिवपुत्रत्व प्राप्त किया। उपरोक्त कथा के ही अनुसार सबसे प्रसिद्ध, प्रिय व शक्तिशाली लिंग शुक्रलिंग ही माना जाएगा, क्योंकि यह पूरी तरह से असली है, अन्य तो प्रतीतात्मक ज्यादा हैं, जैसे कोई पाषाणलिंग होता है, कोई पारदलिंग, तो कोई हिमलिंग आदि। शुक्रकूप आसपास में एक ठंडे जल का कुआँ है, जो संभोगतंत्र में सहयोगी है, क्योंकि जैसा एक पिछली पोस्ट में दिखाया गया है कि कैसे ठंडे जल से स्नान यौनऊर्जा को गतिशील व कार्यशील बनाने का काम करता है।

शुक्राचार्य जो राक्षसों को जिन्दा कर रहे थे, उसका यही मतलब है कि वीर्यशक्ति बाह्यगामी होने के कारण संसारमार्गी मानसिक दोषों, आसक्तिपूर्ण भावनाओं और विचारों को बढ़ावा दे रही थी। शिव ने नंदी को शुक्राचार्य को पकड़ कर लाने को कहा, इसका मतलब है कि नंदी अद्वैत भाव का परिचायक है क्योंकि वह एक ऐसा शिवगण है जिसमें बैल के रूप में पशु और गण के रूप में मनुष्य एक साथ विद्यमान है। वह एक यिन-यांग मिश्रण है। अद्वैत से कुंडलिनी शक्ति को मूलाधार से ऊपर चढ़ने में मदद मिलती है।

देवी पार्वती ने महादेव शिव की आँखें बंद कीं, इससे वे अंधे जैसे हो गए। इसको यह समझाने के लिए कहा गया है कि कोई भावी योगी अज्ञान वाली अवस्था में था, न तो उसे लौकिक व्यवहार का ज्ञान था, और न ही आध्यात्मिक ज्ञान। फिर वह इश्कविश्क़ के चक्कर में पड़ गया। उससे उसकी शक्ति तो घूमने लगी, पर वह बिना कुंडलिनी चित्र के थी। कुंडलिनी चित्र माने ध्यान चित्र आध्यात्मिक ज्ञान की उच्चावस्था में बनता है। आध्यात्मिक ज्ञान लौकिक ज्ञान व अनुभव के उत्कर्ष से प्राप्त होता है। ऐसा होने में जीवन का लम्बा समय बीत जाता है। ज्ञानविज्ञानरहित प्यार-मोहब्बत से क्या होता है कि आदमी यौन शक्ति को ढंग से रूपान्तरित और निर्देशित नहीं कर सकता, जिससे उसका क्षरण या दुरुपयोग होता है। वही दुरुपयोग अंधक नाम वाला पुत्र है। इसका सीधा सा अर्थ है कि अमुक भावी योगी ने शक्ति को घुमाया तो जरूर। ऐसा उक्त कथानक की इस बात से सिद्ध होता है कि पार्वती ने दोनों नेत्रों को एकसाथ बंद किया, मतलब यिन-यांग संतुलित हो गए। पर परिपक्वता की कमी से इस संतुलन से किंचित चमक रहे कुंडलिनी

चित्र को समझ नहीं पाया और उसे जानबूझकर व्यर्थ समझ कर त्याग दिया। चमक बुझने से स्वाभाविक है कि अंधेरा छा गया, जिसे आँखों को बंद करने के रूप में दिखाया गया है। क्योंकि शक्ति से मस्तिष्क में जो उच्च स्पष्टता के साथ छवि बनती है, उसे ही पुत्र कहा जाता है, जैसे कि इस ब्लॉग की एक पोस्ट में सिद्ध भी किया गया था। बिना किसी भौतिक सहवास के असली या भौतिक पुत्र तो पैदा हो ही नहीं सकता, वह भी मिट्टी-पत्थर से भरी जमीन के ऊपर या सरकंडों के ऊपर। क्योंकि इस पोस्ट के भावी योगी के मस्तिष्क में उस शक्ति से अंधेरा ही घनीभूत हुआ, इसलिए उसे पुत्र अंधक के रूप में दिखाया गया। चूंकि अँधेरे से भरा व्यक्ति किसी को प्रिय व कार्यक्षम नहीं लगता, इसलिए इसे ऐसा दिखाया गया है कि वह अंधकासुर सबको अप्रिय था और उसके बालमित्र उसे राजगद्दी के अयोग्य बताकर उसका मजाक उड़ाते थे। स्वाभाविक है कि भावी योगी दुनिया में सम्मान, सुखसमृद्धि और यहाँ तक कि जागृति के रूप में सम्पूर्णता को प्राप्त करने के लिए भरपूर प्रयास करता है, क्योंकि उसमें बहुत शक्ति होती है, केवल स्थिर ध्यानचित्र की ही कमी होती है। उसे दुनिया में ठोकरें खाने के बाद इस कमी का अप्रत्यक्ष अहसास हो ही जाता है, इसलिए वह कुंडलिनी ध्यानयोग के लिए एकांत में चला जाता है। इसे ही ऐसे दिखाया गया है कि अंधक फिर वन में जाकर शिव या ब्रह्मा का ध्यान करते हुए घोर तप करता है। अपने मांस को टुकड़ों में काटकाट कर वह उन्हें अग्नि में होम करता रहता है। साथ में अग्निधूम का पान करता है। इसका मतलब है कि भावी योगी कठिन हठयोग करता है, जिससे उसकी अतिरिक्त चर्बी तो घुलती ही है, साथ में मांसल शरीर भी योगाग्नि से जलकर दुबला हो जाता है। इस दहन से जो कार्बन डायक्साइड गैस निकलती है, उसे ही धुआँ कहा है। क्योंकि योग में अक्सर सांस को अंदर रोक कर रखा जाता है, इसलिए उसे ही धुएं को पीना कहा गया है। जब वह इतना कमजोर हो जाता है कि वह हड्डी का ढांचा जैसा दिखने लगता है, तब भगवान शिव उसे दर्शन दे देते हैं। इसका मतलब है कि जब हठयोगाभ्यास करते हुए काफी समय हो जाता है, जिससे योगी को अपने सहस्रार चक्र में बढ़ी हुई सात्विकता के कारण अपना शरीर अस्थिपंजर की तरह हल्का लगने लगता है, तब कुंडलिनी जागृत हो जाती है। मतलब अदृश्य या सुप्त कुंडलिनी शक्ति मानसिक शिवचित्र के रूप में जागृत हो जाती है। अब शिव अंधक को बिल्कुल स्वस्थ व सुंदर बना देते हैं। ठीक है, कुंडलिनी जागरण से ऐसा ही अकस्मात और सकारात्मक रूपान्तरण होता है। अब वह शिव से वर मांगता है कि वह कभी न मरे। शिव कहते हैं कि ऐसा सम्भव नहीं। विश्व की रक्षा के लिए भी यह जरूरी है। अमरता पाकर तो कोई भी अत्याचारी बनकर दुनिया को तबाह कर सकता है, क्योंकि उसे रोकने व डराने वाला कोई नहीं होगा। इसलिए ब्रह्मा उससे कोई न कोई मौत का कारण चुनने को कहते हैं, बेशक वह असम्भव सा ही क्यों न लगे। इस पर ब्रह्मा कहते हैं कि जब वह माँ के समान आदरणीय महिला को पत्नि बनाना चाहेगा, वह तब मरेगा। अब ये तंत्र की गूढ़ बातें हैं, जिनके यदि रहस्य से पर्दा उठाया जाए, तो आम जनमानस को अजीब लग सकता है। तिब्बतन यौनतंत्र में गुरु की यौनसाथी उनकी अनुमति से उनके शिष्यों को

तांत्रिक यौनकला प्रयोगात्मक रूप में सिखाती है। गुरुपत्नि को माँ के समान माना गया है। मतलब कि तांत्रिक यौनयोग सीखने के बाद अंधक अंधी दुनियादारी से उपरत होकर अपनी आत्मा या अपने आप में शांत हो जाएगा, मतलब वह एक प्रकार से मर जाएगा। बाद में हुआ भी वैसा ही, मरने के बाद उसे शिव ने अपना गण बना लिया, मतलब वह मुक्त हो गया। आम मृत्यु के बाद तो कोई मुक्त नहीं होता। इसका एक मतलब यह भी है कि जब विवाह या सम्भोग के अयोग्य सम्मानित नारी से प्यार होता है, तब उसका रूप बारबार मन में आने लगता है, जिससे वह समाधि का रूप ले लेता है, जैसा कि प्रेमयोगी वज्र के साथ भी हुआ था। ब्रह्मा के वर को पाकर अन्धक राजा बन गया, और बहुत अय्याश हो गया। सुंदर व सुडोल शरीर तो उसे मिला ही था, इसलिए वह अनगिनत कामिनियों के साथ विभिन्न मनोहर स्थानों में रमण करते हुए अपना बहुमूल्य समय नष्ट करने लगा। इस यौन शक्ति के बल से वह बहुत पाप भी करने लगा। देवताओं को स्वर्ग से भगा कर वहाँ खुद राज करने लगा। जब कोई बुरे काम करेगा तो शरीर रूपी स्वर्ग में स्थित देवता दुखी होकर भागेंगे ही, क्योंकि देवताओं का मुख्य उद्देश्य है शरीर से अच्छे काम करवाना। अब मैं इससे जुड़ी हाल की घटना बताता हूँ और फिर पोस्ट को खत्म करता हूँ क्योंकि नहीं तो यह बहुत लंबी होकर पढ़ने में मुश्किल हो जाएगी। अगले हफ्ते तक शेष कथा के रहस्य को उजागर करने की कोशिश करूंगा, क्योंकि अभी मैं लगभग इतना ही समझ सका हूँ। हो सकता है कि आप मेरे से पहले उजागर कर दें, यदि ऐसा है तो कमेंट बॉक्स में जरूर लिखना।

आफताब-श्रद्धा से जुड़ा बहुचर्चित लवजिहाद काण्ड

आजकल बहुचर्चित आफताब पूनावाला से संबंधित मर्डर मिस्ट्री उपरोक्त अंधक कथा से बहुत मेल खा रही है। सूत्रों के अनुसार वह मुस्लिम युवक श्रद्धा नामक हिंदु लड़की के साथ लिव इन रिलेशनशिप में था। वह डेटिंग ऐप के माध्यम से अपना घरपरिवार छोड़कर उसके साथ लम्बे अरसे से रह रही थी। कई मकान मालिकों को तो वह उसे अपनी पत्नि तक बता कर साथ रखता था, क्योंकि यहाँ के परिवेश में लिव इन रिलेशनशिप को अच्छा नहीं समझा जाता। चोरी छुपे उसके 20 अन्य हिंदु लड़कियों के साथ भी प्रेमसंबंध थे। श्रद्धा को शायद यह बात पता चली होगी और वह उसे ऐसा करने से रोककर उससे शादी करना चाहती होगी। इसको लेकर झगड़े भी हुए और मारपीट भी। अंततः उसने उसका गला दबाकर हत्या कर दी और बिना अफ़सोस के उसके पेंतीस टुकड़े करके उन्हें फ्रिज में पैक कर दिया। धीरेधीरे करके वह उन्हें निकट के जंगल में फ़ेंकता रहा। छः महीने बाद श्रद्धा के पिता द्वारा लिखी शिकायत के बाद पुलिस उसे पकड़ सकी। यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि आज की तथाकथित आधुनिक महिलाओं को प्रसन्न करने के लिए कैसे आफताब की तरह शातिर, बेईमान, नशेड़ी, धूम्रपानी, मांसभक्षी, हिंसक और धोखेबाज बनना पड़ता है, हालाँकि ऐसे अतिवाद को कोई सभ्य

व पढ़ालिखा समाज कभी बर्दाश्त नहीं कर सकता, जिसमें मानवता का हनन होता हो। दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि बहुत से हिन्दुओं द्वारा शिवपुराण का कहीं गलत अर्थ तो नहीं निकला जा रहा, या बिना जानेबूझे कहीं वैसी विकृत सोच अवचेतन मन में तो नहीं बैठी हुई है। पुराण से प्राप्त आम धारणा के अनुसार महादेव शिव बिना कुलपरम्परा वाले एक भूतिया किस्म के आदमी थे, जिनको पति रूप में पाने के लिए पार्वती कई जन्मों तक घरपरिवार को छोड़कर भटकती रही। पति-पत्नि के परस्पर प्रेम को परवान चढ़ाने के लिए कुछ हद तक ऐसा पागलपन ठीक भी है, पर वह भी कुछ जरूरी शर्तों के साथ ही पूरा सफल होता है, और वैसे भी अति तो कहीं भी अच्छी नहीं है, ख़ासकर उस कौम के व्यक्ति के साथ तो बिल्कुल भी संबंध अच्छा नहीं है, जिनके तथाकथित लवजिहाद से जुड़े जालिमपने और जाहिलियत के उदाहरण आए दिन मिलते रहते हैं। सब पता होते हुए भी बारम्बार गलती करना तो ऐसा लगता है कि या तो परिवार में बच्चों को सही व संस्कारपूर्ण शिक्षा नहीं दी जा रही या ऐसी लड़कियों के ऊपर जादूटोना कर दिया गया है, या यह हिन्दुओं के पवित्र और ज्ञानविज्ञान से भरे शास्त्रों और पुराणों को बदनाम करने की एक सोचीसमझी और बहुत बड़ी साजिश चल रही है। कई लोग सख्त कानून की कमी को भी मुख्य वजह बता रहे हैं। कुछ लोग विकृत दूरदर्शन, ऑनलाइन व बॉलीवुड कल्चर को भी बड़ी वजह मानते हैं। कई लोग लिव इन रिलेशनशिप और डेटिंग एप्स को दोष दे रहे हैं। इससे हिंदु पुरुषों को भी शिक्षा लेनी चाहिए और महिलाओं की अपेक्षाओं पर खरा उतरने की कोशिश करनी चाहिए। जिसके अंदर ध्यान-कुंडलिनी चित्र नहीं है, यदि वह भी यौनतंत्र का अभ्यास करे, तो उसका हाल भी अंधक जैसा हो सकता है, जैसा आपने ऊपर पढ़ा, फिर यदि जिसको यौनतंत्र का कखग भी पता नहीं, यदि वह यौनसंबंधों के मामले में मनमर्जी करे, तो उसका उससे भी कितना बुरा हाल हो सकता है, यह उपरोक्त हाल की घटना से प्रत्यक्ष देखने को मिल रहा है।

प्रेमरोग से बचने का बेजोड़ उपाय

दोस्तों, इस समस्या का हल भी है। सौभाग्य से आज "शरीरविज्ञान दर्शन~एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र(एक योगी की प्रेमकथा)" नामक पुस्तक ऑनलाइन और ऑफलाइन दोनों तरह से उपलब्ध है। यह ईबुक के रूप में भी और प्रिंट पुस्तक के रूप में भी उपलब्ध है। इसमें ऐसा लगता है कि शिवपुराण का विवेचन आधुनिक शैली में किया गया है, जो हर किसी को समझ आ जाए, और उसके बारे में गलतफहमी दूर हो जाए। यह सत्य जीवनी और सत्य घटनाओं पर आधारित है। इसमें आधारभूत यौनयोग पर सामाजिकता के साथ प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में स्त्री-पुरुष संबंधों का आधारभूत सिद्धांत भी छिपा हुआ है। यदि कोई प्रेमामृत का पान करना चाहता है, तो इस पुस्तक से बढ़िया कोई भी उपाय प्रतीत नहीं होता। इस पुस्तक में प्रेमयोगी वज्र ने अपने अद्वितीय आध्यात्मिक व

तांत्रिक अनुभवों के साथ अपनी सम्बन्धित जीवनी पर भी थोड़ा प्रकाश डाला है। इस उपरोक्त "शरीरविज्ञान दर्शन" पुस्तक को एमाजोन डॉट इन पर एक गुणवत्तापूर्ण व निष्पक्षतापूर्ण समीक्षा में पांच सितारा, सर्वश्रेष्ठ, सबके द्वारा अवश्य पढ़ी जाने योग्य व अति उत्तम (एक्सेलेंट} पुस्तक के रूप में समीक्षित किया गया है। गूगल प्ले बुक की समीक्षा में भी इसे फाईव स्टार व शांतिदायक (कूल) आंका गया है। कुछ गुणग्राही पाठक तो यहाँ तक कहते हैं कि अगर इस पुस्तक को पढ़ लिया तो मानो जैसे सबकुछ पढ़ लिया। आशा है कि पुस्तक पाठकों की अपेक्षाओं पर खरा उतरेगी।

कुंडलिनी योग को ही गंगा अवतरण की कथा के रूप में दिखाया गया है

अश्वमेध यज्ञ साक्षीपन साधना या विपासना का अलंकारिक शैली में लिखा रूप प्रतीत होता है

दोस्तों, हिन्दु दर्शन में गंगा के अवतरण की एक प्रसिद्ध कथा आती है। क्या हुआ कि राजा सगर के साठ हजार पुत्र थे। एक बार वे अश्वमेध यज्ञ करने लगे। यज्ञ के अंत में यज्ञ का घोड़ा छोड़ा गया। देवराज को डर लगा कि अगर राजा सगर का वह सौवां अश्वमेध यज्ञ सफल हो गया तो सगर को उसका इंद्र का पद मिल जाएगा। इसलिए उसने घोड़े को चुराकर पाताल लोक में कपिल मुनि के आश्रम के बाहर बाँध दिया। सगरपुत्रों ने समझा कि घोड़े को कपिल मुनि ने चुराया था। इसलिए वे उन्हें अपशब्द कहने लगे। इससे जब कपिल मुनि ने आँखें खोलीं तो वे उनसे निकले तेज से खुद ही भस्म हो गए। फिर इससे दुखी होकर राजा सगर कपिल मुनि से क्षमा मांगने लगे और अपने पुत्रों के उद्धार का उपाय पूछने लगे। फिर उन्होंने गंगा नदी से उनका उद्धार होने की बात कही। फिर इतना बड़ा काम कोई नहीं कर सका। सगर के बाद की कई पीढ़ियों के बाद जन्मे भागीरथ ने ब्रह्मा से वरदान में माँ गंगा को माँगा और शिव से उसे जटा में धारण करने की प्रार्थना की। उनकी इच्छा पूरी हुई और गंगा नदी ने उन भस्मित सगर पुत्रों की राख के ऊपर से गुजर कर उनका उद्धार किया।

गंगा नदी के जन्म की कथा का कुंडलिनीविज्ञान आधारित विश्लेषण

राजा सगर संसार-सागर का प्रतीक है। मतलब संसार में आसक्त आदमी। साठ हजार पुत्र हजारों इच्छाओं व भावनाओं के प्रतीक हैं। अश्वमेध यज्ञ का मतलब इन्द्रियों का दमन है। मेध का मतलब बलि या वध होता है। अश्व की बलि मतलब इन्द्रियों की बलि। अगर बाह्य इन्द्रिय रूपी अश्व की बलि अवचेतन मन रूपी हवनकुण्ड में दी जाए और उससे दबे हुए विचारों को उघाड़ने के रूप में अग्नि प्रज्वलित की जाए तो स्वाभाविक है कि उससे मुक्ति रूपी स्वर्ग मिलेगा। उस यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं क्योंकि पूरे शरीर को देवताओं ने ही बनाया है और वे ही उसे नियंत्रित करते हैं, जैसे कि आँख को सूर्य देव, भुजाओं को इंद्र आदि। इससे परमात्मा-निर्देशित देवताओं का उद्देश्य पूरा होता है, क्योंकि बारबार के जन्ममरण आदि के दुःख से जीव को मुक्ति दिलाकर उसे अपना सर्वोत्तम पद प्रदान करना ही जीवविकास के पीछे मुख्य वजह प्रतीत होती है। इस उद्देष्य की पूर्ति से देवताओं को शक्ति मिलती है। इसीलिए कहा गया है कि यज्ञ से देवता प्रसन्न होते हैं और वर्षा आदि उचित समय पर करवाकर धनधान्य में वृद्धि करते हैं। प्रत्यक्ष लाभ यह तो होता ही है कि

लोगों के बीच आपसी मनमुटाव नहीं रहता और एकदूसरे से प्रेम और सहयोग बना रहता है, जिससे सकारात्मक विकास होता है। एकबार ऐसा यज्ञ करने से काम नहीं चलता। यज्ञ पूरी उम्र भर लगातार करते रहना पड़ता है। यह अवचेतन मन बहुत गहरे और आकर्षक कुएँ की तरह है, जिससे बाहर निकला विचारों का कचरा फिर से उसमें गिरता रहता है, हालांकि फिर ऊपर ही रहता है, और बारम्बार के प्रयास से स्थायी रूप से बाहर निकल जाता है। हो सकता है कि किसी वार्षिक उत्सव की तरह साल में एक बार विचारों के कचरे को विस्तार से बाहर निकालने की जरूरत हो। उसे अश्वमेध यज्ञ कहते हों। इसीलिए सौ साल की पूरी उम्र में सौ यज्ञ हुए। सौवां यज्ञ न होने से जीवन के अंतिम वर्ष में पैदा हुए विचारों और भावों का कचरा अवचेतन मन में दबा रह जाता हो, जो आदमी को मुक्त न होने देता हो। हमारी दादी माँ हमें एक दंतकथा सुनाया करती थी। एक स्वर्ग को जाने वाली रस्सी थी। उस पर सावधानी से चलते हुए लोग स्वर्ग जाया करते थे। एक बार एक बुढ़िया एक योगी को उस पर जाते हुए देख रही थी। उसने योगी को आवाज लगाई कि उसे भी साथ ले चल। योगी को उस पर दया आ गई और उसका हाथ पकड़कर उसे भी रस्सी पर चलाने लगा। पर योगी ने एक शर्त रखी कि वह पीछे मुड़कर अपने भाई-बंधुओं को उससे बिछड़ने के दुःख में रोते-बिलखते नहीं देखेगी। अगर उसने पीछे देखा तो उसका संतुलन बिगड़ जाएगा और वह वापिस धरती पर गिर जाएगी। बुढ़िया ने उसकी शर्त मान ली। पर रास्ते में उससे रहा नहीं गया, और जैसे ही उसने नीचे को देखा, वह नीचे गिर गई, पर योगी बिना उसकी तरफ देखे आगे निकल लिए। ऐसी दंतकथाओं के बहुत गहरे और ज्ञानविज्ञान से भरे अर्थ होते हैं।

मन की सफाई तो अंततः विपासना से ही होती है, जो एक शांत किस्म का ध्यानयोग है

वैसे कुंडलिनी जागरण, आत्मज्ञान वगैरह-वगैरह से मुक्ति नहीं मिलती। इनसे तो विचारों या कर्मों के दबे कचरे की सफाई में मदद भर मिलती है, अगर कोई लेना चाहे तो। अगर कोई न लेना चाहे तो अलग बात है। इसीलिए आजकल कुंडलिनी जागरण जैसे मस्तिष्क झकझोरने वाले अनुभव का ज्यादा प्रचलन व महत्त्व नहीं रह गया है, अगर सच कहूँ तो। वैसे भी आज के व्यस्त, तकनीकी और अध्ययन से भरे युग में दिमाग़ पर पहले से ही बहुत दबाव है। वह और कितना दबाव झेलेगा जागृति के नाम पर। अधिकांश लोगों को एकांत व शांति तो नसीब होना बहुत मुश्किल है। अत्यधिक मस्तिष्क दबाव से कहीं पार्किंसन, अलजाइमर जैसे लाइलाज मस्तिष्क रोग हो गए तो। पर ये मेरे नहीं कुछ अन्य योगियों के विचार हैं। दरअसल ऐसा होता नहीं अगर अपनी सहनशक्ति की सीमा के अंदर रहकर और सही ढंग से ध्यानयोग या कुंडलिनी जागरण किया जाए। ध्यान से हमेशा लाभ ही मिलता है। यह पैराग्राफ कुछ अन्य लोगों के विचारों को परखने के लिए लिख रहा हूँ। सही अर्थों में आजकल तो शांत विपश्यना अर्थात साक्षीभाव साधना का युग है। वैसे

विपासना भी एक ध्यान ही है, शांत, सरल, स्वाभाविक व धीमा ध्यान। अगर भैंस खुद ठीक रस्ते पे जा रही है तो उसे डंडे क्यों मारने भाई। कचरा ही साफ करना है न, तो सीधे जाके कर लो, टेढ़ेमेढ़े रास्ते से क्यों भागना। बाहर स्थित विचारों का कचरा कभी कभार अगर दिख भी जाए तो भी वह शुद्ध ही होता है क्योंकि उससे लगाव या क्रेविंग पैदा नहीं होता। यह भी कह सकते हैं कि विपासना से आदमी शांत, तनावमुक्त और हल्का हो जाता है, जिससे खुद ही उसका मन कुंडलिनी ध्यान को करता है। उससे और कुंडलिनी जागरण से विपासना में और मदद मिलती है, बदले में विपासना से कुंडलिनी ध्यान और ज्यादा मजबूती प्राप्त करता है। इस तरह से विपासना और कुंडलिनी ध्यान साधना एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं।

ध्यानयोग या ध्यान यज्ञ ही असली यज्ञ है, और इन्द्रियों का दमन ही पशुबलि है

इन्द्रियों को शास्त्रों में घोड़े या पशु की उपमा दी जाती है। पशुपति अर्थात इन्द्रियों का पति भगवान शिव का ही एक नाम है। जैसे पशु का झुकाव आंतरिक आत्मा की बजाय बाहरी दुनिया की तरफ होता है, उसी तरह बाह्य इन्द्रियों का भी। आदमी की उम्र सौ साल होती है। उसके बाद मृत्यु मतलब स्वर्ग की प्राप्ति। स्वर्ग को जीते जी प्राप्त नहीं किया जा सकता। मुक्ति तो देवराज इंद्र के लिए भी स्वर्ग है। इसीलिए इस परम स्वर्ग की प्राप्ति को इंद्र अपना अपमान मानता है कि कोई कैसे उससे और उसके द्वारा नियंत्रित तीनों लोकों से ऊपर उठ सकता है। हालांकि देवताओं के साथ इंद्र भी आदमी की मुक्ति से बल प्राप्त करता है, पर यह अहंकार जो है न, वह अपना भला-बुरा कब देखने देता है। सौवें घोड़े को पाताल में बाँधने का अर्थ है कि इंद्र ने इन्द्रियों की शक्ति को मूलाधार के अंधकार भरे क्षेत्र में स्थापित कर दिया। शरीर इंद्र के द्वारा संचालित है। शरीर की अतिरिक्त शक्ति कुदरती तौर पर खुद ही मूलाधार को चली जाती है, इसीलिए इंद्र से इसका नाम जोड़ा गया है। इतना तो सबको पता ही है कि नाभि चक्र को चली जाती है, इसीलिए जब कोई काम और तनाव न हो तो बहुत भूख लगती है और खाना भी अच्छे से पचता है। उससे शरीर में और शक्ति बढ़ती है। वह वहाँ से स्वाधिष्ठान चक्र को उतरती है क्योंकि शक्ति की चाल की दिशा ऐसी ही है। वहाँ अगर उससे यौनता से संबंधित काम लिया गया तो वह पीठ से दुबारा ऊपर चढ़कर पूरे शरीर में आनंद के साथ फैल जाती है या बाहर निकल कर बर्बाद हो जाती है। अगर वह काम भी नहीं लिया गया तो वह मूलाधार को उतरकर वहीं पड़ी रहती है। अगर कभी थकान व तनाव देने वाला खूब काम किया जाए तो वह वहाँ से पीठ से होते हुए संबंधित थके हुए अंग तक पहुंच कर उसकी मुरम्मत करती है, नहीं तो वहीं सोई रहती है। मूलाधार में शक्ति का सोया हुआ होना इसलिए भी कहा गया होगा क्योंकि जब हम मन में नींद-नींद का लगातार उच्चारण करते हैं तो शक्ति आगे के चक्रों से नीचे जाते हुए महसूस होती है और वापिस ऊपर नहीं चढ़ती। अगर चढ़ती है, तो

एकदम से नीचे उतर जाती है। अगर शक्ति को नीचे आने में रुकावट लग रही हो, तो मस्तिष्क से गले तक तो आ ही जाती है। इसके साथ एकदम से शांति और राहत महसूस होती है, और ऐसा लगता है कि मस्तिष्क दाब और रक्तचाप एकदम से कम हुआ। हरेक चक्र में शक्ति काम करती है, पर मूलाधार में आमतौर पर नहीं, क्योंकि वह शक्ति का शयनकक्ष है। वहाँ शक्ति को जगा कर करना पड़ता है। हरेक चक्र के साथ विभिन्न अंग जुड़े हैं। वैसे तो मूलाधार के साथ भी गुदामार्ग जुड़ा है, पर वह स्वाधिष्ठान से भी जुड़ा है। मुझे लगता है कि मूलाधार वाले सभी काम स्वाधिष्ठान चक्र भी कर लेता है। जागृति का स्थान मस्तिष्क है, इसलिए स्वाभाविक है कि शक्ति मस्तिष्क से जितना ज्यादा दूर होगी, वह वहाँ उतनी ही ज्यादा सोई हुई होगी। शास्त्रों में नाभि चक्र को यज्ञ कुंड भी कहा जाता है जहाँ भोजन रूपी आहुति जलती रहती है। इसका यह मतलब नहीं कि बाहरी या भौतिक स्थूल यज्ञ की जरूरत नहीं। दरअसल बाहरी यज्ञ भीतरी कुंडलिनी यज्ञ को प्रेरित भी करता है। समारोह आदि में भौतिक हवन यज्ञ करते हुए मुझे कुंडलिनी की क्रियाशीलता महसूस होती है। हाँ इतना जरूर किया जा सकता है कि भौतिक यज्ञ के नाम पर भौतिक संसाधनों का बेवजह दुरुपयोग न हो।

शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है, पर अवचेतन मन का निवास मूलाधार और स्वाधिष्ठान पर होने के कारण वह सहस्रार से नीचे जाते हुए दिखाई गई है

मूलाधार में कपिल मुनि का आश्रम मतलब वहाँ मूलाधर चक्र का पवित्र अधिष्ठाता देवता है। उसे अपशब्द कहना मतलब मूलाधार को अपवित्र मानना। सगर का साठ हजार पुत्र उसे ढूंढने भेजना मतलब आदमी द्वारा अपनी खोई हुई शक्ति अर्थात इन्द्रिय शक्ति अर्थात कुंडलिनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए हजारों इच्छाओं व भावनाओं को खुले छोड़ देना मतलब संसार में हर तरफ अपना डंका बजाने की कोशिश करना। शास्त्र कहते हैं कि जैसे जंगल में भटकने वाले को जल्दी रत्न मिल जाता है, उसी तरह दुनिया में भटकने वाले को जल्दी ही मूलाधार और उसमें सोई शक्ति मिल जाती है। यह बहुत बड़ी शिक्षा है, जिसके अनुसार दुनिया में भटकते हुए थकने के बाद आदमी बाह्य इन्द्रियों से ऊबकर अवचेतन मन में डूबने लगता है। पर यह तभी होता है अगर आदमी अद्वैत व अनासक्ति के साथ दुनिया में जीवनयापन कर रहा हो, नहीं तो दुनिया के लोग उसका अवचेतन मन में भी पीछा नहीं छोड़ते और उसे वहाँ से भी बाहर खींच लाते हैं और उसे ध्यानसाधना नहीं करने देते। इससे साफ है कि आम आदमी को आध्यात्मिक तरक्की के लिए अद्वैत और अनासक्ति का भाव बना के रखना बहुत ज्यादा जरूरी है। जैसे इस कथा में पाताल समुद्र से नीचे है और समुद्र से होकर ही वहाँ तक रास्ता जाता है, उसी तरह मूलाधार चक्र भी सभी दुनियावी (शास्त्रों में संसार को भी समुद्र कहा गया है) चक्रों के नीचे है, और पाताल की तरह ही सुषुप्त लोक जैसा है। तभी तो अवचेतन कह रहे इसको। वहाँ मुनि

कपिल को देखना मतलब सांख्ययोग व जैन धर्म के मूल प्रवर्तक को ध्यान रूप में देखना। जैनी मुनि भी दिगंबर अर्थात नग्न अवस्था में रहते हैं। मुनि को अपशब्द कहते हुए उन पर चोरी का इल्जाम लगाना मतलब उनको पता चलना कि इस ध्यान चित्र ने ही शक्ति को नीचे खींच कर अपने पास कैद किया है। किसी चीज का अपमान करके आदमी उससे भरपूर फायदा नहीं उठा सकता।अगर मूलाधार को छि-छि करते रहोगे, तो उस पर कुंडलिनी छवि का ध्यान करके उसे जगाओगे कैसे। उस छवि पर ही अगर ऐसा इल्जाम लगाओगे कि इसने मेरी सारी शक्ति छीन ली है, तो उसे और शक्ति कैसे दोगे। अतिरिक्त या अन्यूजड शक्ति तो उसमें जाएगी ही, अनजाने में और वहाँ सुषुप्त पड़ी रहेगी। वह शक्ति वहाँ तभी अवचेतन मन को उघाड़ पाएगी, यदि उसे ऐसा करने का मौका दोगे और उसके साथ सहयोग करोगे। तभी तो आपने देखा होगा कि सेक्सी किस्म के लोग बहुत गहराई से देखने और सोचने वाले होते हैं। यह इसलिए क्योंकि उनके मन में ज्यादा कचरा नहीं होता। वे अपनी मूलाधार स्थित यौन शक्ति से मन के कचरे को लगातार साफ करते रहते हैं, और दूसरी तरफ साफसुथरे होने का और यौनता से दूरी रखने का दिखावा करने वाले अंदर से अवचेतन मन के कचरे से भरे होते हैं। सेक्सी आदमी स्पष्टवादी और तेज दिमाग लिए होते हैं। उनका ध्यान शरीर के दूसरे क्षेत्रों की बजाय मूलाधार क्षेत्र में ज्यादा टिका होता है। हालांकि चेहरा और मूलाधार आपस में जुड़े होते हैं। मुनि की दृष्टि रूपी क्रोधाग्नि से उन साठ हजार पुत्रों का भस्म होना मतलब मन के सभी विचारों और भावनाओं का मूलाधार में शक्ति के साथ सो जाना। मतलब कुंडलिनी शक्ति अवचेतन मन को साथ लेकर सुषुप्तावस्था में चली गई। सगर वंश में कई पीढ़ियों के बाद भागीरथ नामक एक महापुरुष हुआ जो गंगा को लाने में स्मर्थ हुआ जिसने सभी सगरपुत्रों को जीवित करके मुक्त कर दिया मतलब व्यक्ति कई जन्मों के बाद इस काबिल हुआ कि सुषुम्ना को जागृत करके कुंडलिनी जागरण को प्राप्त कर सका जिससे अवचेतन मन (पाताल लोक समतुल्य) में दबे हुए विचार और भावनाएं आनंद, अद्वैत व आनंद के साथ अभिव्यक्त होते गए और ब्रह्म में विलीन होते गए। भागीरथ ने घोर तपस्या की मतलब कुंडलिनी योग किया। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर वर दिया मतलब कुंडलिनी सहस्रार में क्रियाशील हो गई। सहस्रार चक्र भी कमल की तरह है और ब्रह्मा भी कमल पर बैठते हैं। कैलाश पर रहने वाले शिव ने गंगा को अपनी जटाओं में धारण किया मतलब सुषुम्ना नाड़ी में बहती हुई चेतना रेखा सहस्रार में समाहित हो जाती है। सहस्रार चक्र बालों से भरे हुए सिर के अंदर ही होता है। कई जगह सहस्रार को कैलाश पर्वत की उपमा दी जाती है। वह गंगा स्वर्ग लोक से आई मतलब सुषुम्ना में बहती हुई शक्ति से सहस्रार चक्र दिव्यता अर्थात दिव्य लोक के साथ जुड़ जाता है जिसे कुंडलिनी जागरण के दौरान का अनुभव कहते हैं। दरअसल अवचेतन मन का स्थान भी मस्तिष्क ही है, पर क्योंकि वह मुलाधार से ऊपर आती सुषुम्ना-शक्ति से जागता है, इसलिए कहा जाता है कि वह मूलाधार चक्र में शक्ति के साथ सुषुप्तावस्था में फंसा हुआ था। इसी तरह अगर अवचेतन मन को ध्यान लगाकर उघाड़ने लगो तो मूलाधार और सुषुम्ना क्रियाशील होने लगते हैं। मतलब ये तीनों

आपस में जुड़े हैं। इसीलिए इस मिथकीय कहानी में कहा गया है कि गंगा मतलब सुषुम्ना शक्ति स्वर्ग मतलब जागृति के सर्वव्यापी व सर्वानन्दमयी अनुभव से कैलाश मतलब मस्तिष्क को आई, वहाँ से नीचे हिमालय मतलब रीढ़ की हड्डी से उतरते हुए महासागर अर्थात दुनिया अर्थात विभिन्न चक्रों से गुजरते हुए पाताल लोक मतलब मूलाधार चक्र में पहुंची। होता उल्टा है दरअसल, मतलब शक्ति नीचे से ऊपर चढ़ती है। फिर कहते हैं कि भागीरथ गंगा के साथ-साथ चलता रहा, और जहाँ भी उसका मार्ग अवरुद्ध हो रहा था, वहाँ-वहाँ वह उस अवरोध को हटा रहा था। यह ऐसे ही है जैसे आदमी बारीबारी से चक्रों पर ध्यान लगाते हुए शक्ति के अवरोधों को दूर करता है। चक्र-ब्लॉक ही वे अवरोधन हैं। तथाकथित अंतर्राष्ट्रीय भगोड़े इस्लामिक विद्वान और आतंकवाद के आरोपों से घिरे जाकिर नईक जैसे लोगों को यह ब्लॉग जरूर फॉलो करना चाहिए, क्योंकि वह हिंदु शास्त्रों के मिथकीय पक्ष को तो उजागर करके दुष्प्रचार से उन्हें बदनाम करने की कोशिश करते हैं, पर उनके वैज्ञानिक पक्ष से अपरिचित हैं।

कुंडलिनी योग ही सभी धर्मों की रीढ़ है, इसपर आधारित इनका वैज्ञानिक विश्लेषण इनके बीच बढ़ रहे अविश्वास पर रोक लगा सकता है

आक्रमणकारियों से शास्त्रों की रक्षा करने में ब्राह्मणों की मुख्य भूमिका थी

कई बार कट्टर किस्म के लोग छोटीछोटी विरोधभरी बातों का बड़ा बवाल बना देते हैं। अभी हाल ही में दिल्ली के जवाहर लाल यूनिवर्सिटी (जेएनयू) की दीवारों पर लिखे ब्राह्मण विरोधी लेख इसका ताज़ा उदाहरण है। यह सबको पता है कि यह तथाकथित पिछड़े वर्णों ने नहीं लिखा होगा। हिंदु समुदाय के बीच दरार पैदा करने के लिए यह तथाकथित निहित स्वार्थ वाले बाहरी लोगों की साजिश लगती है। ऐसा सैंकड़ों सालों से होता चला आ रहा है। दरअसल यह सामाजिक कर्मविभाजन था, जिसे वर्ण व्यवस्था कहते थे। इसमें सभी बराबर होते थे, केवल यही विशेष बात होती थी कि वंश परम्परा से चले आए काम को करना ही अच्छा समझा जाता था, जैसे व्यापारी का बेटा भी अपने पिता के व्यापार को संभालता है। जबरदस्ती कोई नहीं थी, क्योंकि शूद्र वर्ण के बाल्मीकि ने रामायण लिखी है, विश्वामित्र क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गए थे। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। हालांकि ज्यादातर लोग अपने ही वर्ण का काम सँभालने में ज्यादा गौरव, सम्मान और गुणवत्तापूर्णता महसूस करते थे। जैसे वर्णमाला के वर्ण अपना अलग-अलग विशिष्ट रूप-आकार लिए होते हैं, वैसे ही समाज के लोग भी अलग-अलग रूपाकार के कर्म करते हैं। अगर कर्म के अनुसार ही किसी का स्वभाव बन जाता हो, तो यह अलग बात है, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि सबको पंक्ति में खड़ा किया गया और शरीर के रंगरूप के अनुसार विभिन्न किस्म के समूह बनाए गए। वर्ण या वर्णभेद से मतलब रंग या रंगभेद बिल्कुल नहीं है, क्योंकि हरेक वर्ण के लोगों में हरेक किस्म के त्वचा-रंग के लोग मिलेंगे। इसी तरह यह परम्परा विदेशी कास्ट या जाति परम्परा की तरह भी नहीं है। यह नाम भी इसको गलतफहमी से दिया गया लगता है। रही बात ब्राह्मणों की तो यह बता दूँ कि सबसे कठिन जीवन उन्हीं का होता था। उनको विलासिता भरे जीवन से अपने को कोसों दूर रखना पड़ता था। फिर धनसम्पत्ति किस काम की अगर उसे भोग ही न सको। अधिकांशतः उनकी कमाई संपत्ति औरों के या परमार्थ के काम ही आती थी। दुनिया में ठगों की कमी न आज है, न पुराने समय में थी। पहली बात तो उनके पास सम्पत्ति होती ही नहीं थी। भिक्षाजीवी की तरह वे दक्षिणा में मिले मामुली से मेहनताने से अपना और अपने परिवार का गुजारा मुश्किल से चलाते थे। फिर बोलते कि राजा उन्हें बहुत सारी धनसंपत्ति दान में दिया करते थे। राजा भी कितनों को देंगे। कर वसूलने वाले इतनी आसानी से दान दिया करते तो आज कोई गरीब न होता। कुछेक ब्राह्मणों को अगर

मुहमाँगा दिया गया होगा तो उसको हमेशा गिनते हुए सब पर तो लागू नहीं करना चाहिए। मुफ्त में तो राजा भी नहीं देते थे। जब उन्हें ब्राह्मण से कोई बड़ा ज्ञान प्राप्त होता था, तभी वे अपने आध्यात्मिक कल्याण के लिए दान देते थे। कहावत भी है कि फ्री लंच का अस्तित्व ही नहीं है। मैं ऐसा इसलिए लिख रहा हूँ, क्योंकि मुझे पता है। मेरे दादा खुद एक आदर्श हिंदु पुरोहित थे, जो लोगों के घरों में पूजापाठ किया करते थे। मैंने उनके साथ काम करते हुए खुद महसूस किया है कि आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करना और उसे दुनिया में बाँटना कितना मुश्किल और आभारहीन माने थैंकलेस काम है। ये काम ही ऐसा है, इसमें लोगों की गल्ती नहीं है। ये बातें अधिकांश लोगों को अब पुनः समझ में आने लग गई हैं। इसीका परिणाम है कि ब्राह्मणों के खिलाफ उक्त भड़काऊ लेखन के विरोध में सोशल मीडिया में "हैशटैग ब्राह्मण लाइफ मैटर्स" ट्रैण्ड किया। इसी तरह "हैशटैग मैं भी ब्राह्मण हूँ" भी ट्विटर पर काफी ट्रैण्ड रहा, जब क्रिकेटर सुरेश रैना के अपने आप को ब्राह्मण कहने का बहुत से वामपंथी किस्म के लोगों ने विरोध किया था। हम ये नहीं कह रहे कि सभी ब्राह्मण आदर्श हैं। पर इससे ब्राह्मणवाद को गलत नहीं ठहरा सकते। ब्राह्मणवाद ज्ञानवाद, बुद्धिवाद या अध्यात्मवाद का पर्याय है। अगर कहीं पर चिकित्सक निपुण नहीं हैं, तो उससे चिकित्सा विज्ञान झूठा नहीं हो जाता। आज जो हम इस ब्लॉग पर आध्यात्मिक ज्ञान से भरी जिन रहस्यवादी कथाओं के विश्लेषण का आनंद लेते हैं, वे अधिकांशतः ब्राह्मणों ने ही बनाई हैं। इन्हें आजतक सुरक्षित भी इन्होंने ही रखा है। अगर ब्राह्मण हमलावरों के आगे झुक जाते तो न तो हिंदु धर्म का नामोनिशान रहता और न ही इस धर्म के रहस्यमयी ग्रंथों का। क्षत्रिय भी किसके लिए लड़ते, अगर ब्राह्मण ही डर के मारे धर्म बदल देते। किसी पर मनगढंत इल्जाम लगाना आसान है, पर अपने अहंकार को नीचे रखकर सच्ची प्रशंसा करना मुश्किल। फिर कहते हैं कि ब्राह्मण विदेशों से यहाँ आकर बसे। एक तो इसके स्पष्ट प्रमाण नहीं हैं, हमला करके आने के तो बिल्कुल भी नहीं, और अगर मान लो कि वे आए ही थे, तो यहाँ प्रेम से घुलमिलकर यहाँ की सरजमीं के सबसे बड़े रखवाले और हितैषी सिद्ध हुए। इसमें बुरा क्या है। हाँ, यह जरूर है कि जिस कुंडलिनी योग के आधार पर बने शास्त्रों और उनकी परम्पराओं का वे निर्वहन करते हैं, उसे वे समझें, प्रोत्साहित करें और हठधर्मिता छोड़कर उसके खिलाफ जाने से बचें।

विश्व के सभी धर्म और सम्प्रदाय कुंडलिनी योग पर ही आधारित हैं

शिवपुराण में भगवान शिव कहते हैं कि वे विभिन्न युगों में विभिन्न योगियों का अवतार लेकर उन-उन युगों के वेदव्यासों की वेद-पुराणों की रचना में सहायता करते हैं। वे लगभग 5-6 पृष्ठ के दो अध्यायों में यही वर्णन करते हैं कि किस युग में कौन वेद व्यास हुए, उन्होंने किस योगी के रूप में अवतार लेकर उनकी सहायता की और उनके कौन-कौन से शिष्य हुए। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ध्यान योग माने कुंडलिनी योग ही सनातन धर्म की रीढ़ है। मुझे तो अन्य सारे धर्म सबसे प्राचीन सनातन धर्म की नकल करते हुए

जैसे ही लगते हैं। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि सभी धर्म योग पर ही आधारित हैं, और योग को सरल, लोकप्रिय व व्यावहारिक बनाने का काम करते हैं। जब सबसे योग ही हासिल होता है, तो क्यों न सीधे योग ही किया जाए। अन्य धर्म भी यदि साथ में चलते रहे, तो भी कोई बुराई नहीं है, बल्कि योग के लिए फायदेमंद ही है।

ध्यान ही सबकुछ है

साथ में महादेव शिव कहते हैं कि ध्यान के बिना कुछ भी संभव नहीं है। वे कहते हैं कि केवल ध्यान से ही मोक्ष मिल सकता है, यदि ध्यान न किया तो सारे शास्त्र और वेदपुराण निष्फल हैं।

नए धर्म व नए योग स्टाइल बदलते दौर के साथ अध्यात्म को ढालने के प्रयास से पैदा होते रहते हैं

जमाने के अनुसार सुधार धर्म में भी होते रहने चाहिए। मतलब सुधार का मौका मिलता रहना चाहिए, यह जनता पर निर्भर करता है कि सुधार को स्वीकार करती है या नहीं। हालांकि इसके साथ षड्यंत्र से भी बचना जरूरी होगा, क्योंकि कई लोग दुष्प्रचार आदि तिकड़में लगाकर किसी घटिया सी रचना को भी बहुत मशहूर कर देते हैं। इसके लिए कोई निष्पक्ष संस्था होनी चाहिए जो रचनाओं की सही समीक्षा करके जनता को अवगत करवाती रहे। कट्टर बनकर यदि सुधार का मौका ही नहीं दोगे, तो धर्म जमाने के साथ कंधा से कंधा मिला कर कैसे चल पाएगा। सुधार का मतलब यह नहीं है कि पुरानी रचनाओं को नष्ट किया जाए। सम्भवतः इसी डर से सुधार नहीं होने देते कि इससे पुरानी रचना नष्ट हो जाएगी। पर यह सोच मिथ्या और भ्रमपूर्ण है। नए सुधारों से दरअसल पुरानी रचनाओं को बल मिलता है क्योंकि इनसे वे बाप का दर्जा हासिल करती हैं। आइंस्टीन के गुरुत्वाकर्षण के नए सिद्धांत से न्यूटन का पुराना सिद्धांत नष्ट तो नहीं हुआ। गुरुत्वाकर्षण तो वही है, बस उसको समझने के दो अलगलग तरीके हैं। इसी तरह ध्यान व अद्वैत को अध्यात्म की मूल विषयवस्तु मान लो। इसको प्राप्त कराने के लिए ही विभिन्न पुराण, मंत्र व पूजा पद्धतियाँ बनी हैं। हो सकता है कि इनमें सुधार कर के जमाने के अनुसार नई रचनाएं बन जाएं, जो इनसे भी ज्यादा प्रभावशाली हों, और ज्यादा लोगों के द्वारा स्वीकार्य हों। शरीरविज्ञान दर्शन भी एक ऐसा ही छोटा सा प्रयास है, हालांकि उसमें भी विकास की गुंजाईश है। मेरा व्यक्तिगत अनुभवरूपी शोध इसके साथ जुड़ा है। मतलब यह ऐसा दर्शन नहीं कि मन में आया और बना दिया। जब मुझे इसकी मदद से जागृति का अनुभव हुआ, तभी इस पर प्रमाणिकता की मुहर लगी। यह अलग बात है कि साथ में उस सनातन धर्म वाली सांस्कृतिक जीवनचर्या का भी योगदान रहा होगा, जिसमें मैं बचपन से पला-बढ़ा हूँ। पर इतना जरूर लगता है कि कम से कम पचास प्रतिशत

योगदान शरीरविज्ञान दर्शन का रहा ही होगा। अब आम जीवन में इतना शुद्ध शोध तो कहाँ हो सकता है कि अन्य सभी सहकारी कारणों को ठुकरा कर केवल एक ही कारण के असर को परखा जाए। दरअसल एक मेरे जैसे आम आदमी के पास इतना समय नहीं होता कि ऐसे सुधारों और विकास के लिए विस्तृत शोध किया जाए। जैसे ज्ञानविज्ञान के अन्य क्षेत्रों में विशेषज्ञ व अनुभवशाली शोध-वैज्ञानिकों की सेवा ली जाती है, वैसी ही अध्यात्म के क्षेत्र में भी ली जा सकती है। इसमें बुरा क्या है। पर समस्या यह है कि समर्पित शोधार्थी से ज्यादा पार्ट टाइम या हॉबी शोधार्थी ज्यादा अच्छा काम कर सकते हैं। मतलब कि अध्यात्म रोजाना के व्यवहार से ज्यादा जुड़ा होता है। एकाकीपन के शोध से व्यावहारिक नतीजे नहीं निकलते। यह भी समस्या है कि शोध के लिए जागृत व्यक्ति कहाँ से लाए। परीक्षा लेने वाले भी जागृत ही चाहिए। जागृत व्यक्ति को ही असली लक्ष्य का पता होता है। जिसको लक्ष्य की ही पहचान नहीं है, वह उसके लिए शोध कैसे करेगा। आज तक कोई मशीन नहीं बनी जो किसी की जागृति का पता लगा सके। अध्ययन के बल पर कुछ टोटके तो कोई भी ईजाद कर सकता है, पर ज्यादा असली व प्रामाणिक तो जागृत व्यक्ति का शोध ही माना जाएगा।

पुराण व अन्य धर्म संबंधित लौकिक साहित्य शहद के साथ मिश्रित की हुई कड़वी दवाई की तरह काम करते हैं

पिछली पोस्ट में मैं बता रहा था कि कैसे राजा भागीरथ गंगा नदी के प्रवाह में आई रुकावटों को हटा रहा था। हमारे दादा उस बात को शास्त्रों का हवाला देते हुए ऐसे कहा करते थे कि भागीरथ हाथ में कुदाली को लेकर गंगा के आगे-आगे चलता रहा और उसके जलप्रवाह के लिए जमीन खोद कर रास्ता बनाता रहा, जैसे कोई किसान सिंचाई की कूहल के लिए रास्ता मतलब चैनल बनाता है। मत भूलो, शरीर में शक्ति संचालन मार्ग को भी अंग्रेजी में चैनल ही कहते हैं। शब्दावली में भी कितनी समानता है। वे खुद एक छोटे से किसान भी थे। वैसे तो आलोचक विज्ञानवादी को यह बात अजीब लग सकती है, पर इसमें एक गहरा मनोवैज्ञानिक सबक छिपा हुआ है। यह बात मनोरंजक और हौसला बढ़ाने वाली है। साथ में यह अध्यात्मवैज्ञानिक रूप से बिल्कुल सत्य भी है, जैसा कि पिछली पोस्ट में दिखाया गया है। बेशक यह बात हमें स्थूल रूप में समझ नहीं आती थी, पर हमारे अवचेतन मन पर एक गहरा प्रभाव छोड़ती थी। उसी का परिणाम है कि कालांतर में हमारे को खुद ही यह रहस्य अनुभव रूप में समझ आया। पौराणिक ऋषि बहुत बड़े व्यावहारिक मनोवैज्ञानिक होते थे। वे जानते थे कि अनपढ़ और बाह्यमुखी जनता को सीधे तौर पर गहन आध्यात्मिक तकनीकें नहीं समझाई जा सकतीं, इसीलिए वे उन तकनीकों को व्यावहारिक, रहस्यात्मक और मनोरंजक तरीके से प्रकट करते थे, ताकि वे अवचेतन मन पर गहरा असर डालती रहें, जिससे आदमी धीरेधीरे उनकी तरफ बढ़ता रहे। सहज पके सो मीठा होय। एकदम से पकाया हुआ फल मीठा नहीं होता। ऐसी

मिथकीय कथाओं पर लोगों की अटूट आस्था का ही परिणाम है कि वे आज तक समाज में प्रचलित हैं। किसीसे अगर पूछो कि उसे इन कथाओं से क्या लाभ मिला, तो वह पुख्ता तौर पर कुछ नहीं बता पाएगा, पर उन्हें पूजनीय व अवश्य पढ़ने योग्य जरूर कहेगा। कई कथाएं ऋषियों ने जानबूझ कर ऐसी बनाई हैं कि उनका रहस्योद्घाटन नहीं किया जा सकता। अगर सभी कुछ का पता चल गया तो विश्वास करने के लिए बचेगा क्या। ऋषि विश्वास और सस्पेंस की शक्ति को पहचानते थे। होता क्या है कि जब कुछ कथाओं के रहस्य से परदा उठता है, तो अन्य कथाओं की सत्यता पर भी विश्वास हो जाता है। वैसे गैरजरूरी कथाओं को उजागर करना ही नामुमकिन लगता है। जो कथा-रहस्य जितना ज्यादा जरूरी है, उसे उजागर करना उतना ही आसान है। वैसे धर्म के बारे ज्यादा कहने का मुझे बिल्कुल शौक नहीं है, पर कई बारे सीमित रूप में कहना पड़ता है, क्यकि अध्यात्म को धर्म के साथ बहुत पक्के से जोड़ा गया है, और कई बारे इनको अलग करना मुश्किल हो जाता है।आज जब विभिन्न धर्मों के बीच इतना अविश्वास बढ़ गया है, तो यह जरूरी हो गया है कि उनका आध्यात्मिक व वैज्ञानिक रूप में वर्णन करके विरोधियों की शंका दूर कर दी जाए।

कुंडलिनी ऊर्जा इड़ा और पिंगला नाड़ियों से पकड़ में आने के बाद ही सुषुम्ना में आसानी से प्रविष्ट हो पाती है

मित्रों, मैं पिछले से पिछली पोस्ट में बता रहा था कि गंगा नदी का अवतरण कैसे हुआ। राजा सगर के साठ हजार पुत्र हजारों वासनाओं के प्रतीक हैं। सगर का मतलब संसार सागर मतलब शरीर में डूबा हुआ आदमी। हरेक जीवात्मा अपने शरीर रूपी संसार का राजा ही है। सारा संसार इस शरीर में ही है। सागर शब्द से ही सगर शब्द बना है। कहते हैं कि राजा सगर की पत्नि के गर्भ से एक घड़े जैसी आकृति पैदा हुई थी। उसमें चींटियों की तरह साठ हजार बच्चे थे। वे बाहर निकलकर बढ़ते गए और कालांतर में साठ हजार पूर्ण मनुष्य बन गए। मस्तिष्क भी तो घड़े जैसा ही है, जिसमें बहुत सूक्ष्म वासनाएं हजारों की संख्या में रहती हैं। इन्द्रियों के माध्यम से वे बाहर निकलकर चित्रविचित्र अनेकों रचनाओं व भावनाओं का निर्माण करती हैं, मतलब पूर्ण विकसित मनुष्य की तरह हो जाती हैं। मनुष्य क्या है, भावनामय रूप की एक विशेष अवस्था ही तो है। अनगिनत अवस्थाएं मतलब अनगिनत मनुष्य। महारानी गांधारी से भी इसी तरह सौ कौरव पुत्रों का जन्म हुआ था। हो सकता है कि इसके पीछे भी ऐसा ही कोई रहस्य छुपा हो। प्राइमरी स्कूल की शुरुआती कक्षाओं के दिनों की बात है। एक हिंदी कविता थी, 'कौरव सौ थे पांडव पांच, सगे भाइयों की संतान; पांडव वीर धरम के रक्षक, कौरव को था धन अभिमान'। मैं कक्षा के सभी बच्चों को समझाने की कोशिश करता कि किसी के सौ पुत्र होना असम्भव है, इसलिए 'सौ' की बजाय यह शब्द 'सो' है, मतलब 'जो थे सो थे', पर सभी बच्चे कहते कि गुरुजी ने 'सौ' ही कहा है। मैं उन्हें कहता कि उनसे सुनने में गल्ती हुई है। जब मैंने अपने तरीके से अध्यापक के बोलने पर कविता पढ़ी, तब उन्होंने मुझे सही किया। मुझे आश्चर्य हुआ पर उन्होंने उसकी वैज्ञानिक वजह नहीं बताई, और न ही मैंने पूछने की हिम्मत की। इतना गहरा विश्वास होता था ऐसी कथाओं पर, हालांकि ऐसा नहीं था कि कोई उसकी देखादेखी असल में भी सौ पुत्र पैदा करने की कोशिश करने लग जाता। हालांकि ऐसी कथाओं का जनसंख्या बढ़ाने में योगदान हो भी सकता है। ऐसी कथाओं में मानसिक छवियों को पुत्र रूप में दर्शाने का प्रचलन रहा है शास्त्रों में। यह अध्यात्मविज्ञान की दृष्टि से सही भी है क्योंकि जिस वीर्य से पुत्र की प्राप्ति होती है वही एक ऊर्जावान या जागृत विचार भी उत्पन्न कर सकता है। हो सकता है कि यदि हम उनके रहस्य समझ जाते, तो वे हमारे मन में वह मनोवैज्ञानिक सस्पेंस बना के न रखतीं, जो आदमी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता रहता है।

प्रभावी व स्पष्ट नाक की तरह नासिका-दृष्टि का आध्यात्मिकता से भरा मनोवैज्ञानिक लाभ

दूसरा हम यह मुद्दा उठा रहे थे कि मूलाधार की शक्ति कैसे अवचेतन मन के कचरे को जलाती रहती है। नाक पर ध्यान बनाते ही किसी भी तनाव व थकान वाले स्थान पर एकदम से शांति मिलती है और अद्वैत के जैसा आनंद अनुभव होता है। मन में साक्षीभाव के साथ दृश्य उभरने लगते हैं, जिससे ऐसा लगता है कि मन का कचरा साफ हो रहा है। सांसों में सुधार होने लगता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि इससे ऊर्जा चैनल केंद्रीय रेखा में सक्रिय हो जाता है, जिसमें स्वाधिष्ठान व मूलाधार से शक्ति पीठ के रास्ते से ऊपर चढ़कर गोल लूप में प्रवाहित होने लगती है। एकदिन मैं एक निमंत्रण पर निकट की पाठशाला में वार्षिक पारितोषिक वितरण समारोह देखने गया। वहाँ बच्चे बहुत अच्छा रंगारंग कार्यक्रम प्रस्तुत कर रहे थे। उस दौरान यह सब मनोवैज्ञानिक लाभ मुझे बीचबीच में अपनी नाक के ऊपर नीचे की तरफ तिरछी नजर बना कर महसूस हुआ। साथ में नाक के अंदर स्पर्ष करती हवा पर भी ध्यान लगा रहा था। नाई से ताज़ा-ताज़ा शेव करवाई थी और फेस स्क्रब करवाया था, जिससे मूँछ बड़ी और स्पष्ट महसूस हो रही थी। सम्भवतः वह भी नाक की तरफ ध्यान खींच रही थी। हो सकता है कि मूंछ का प्रचलन इसी आध्यात्मिक लाभ के दृष्टिगत बना हो। लगता है कि बड़ी नाक वाले आदमी की आकर्षकता और सेक्सी लुक के पीछे यही बड़ी नाक और उससे उत्पन्न उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक लाभ है। वैसे भी नाक की तरफ ध्यान देता आदमी सुंदर, अंतरमुखी, आध्यात्मिक और अपने आप में संतुष्ट लगता है। सम्भवतः इसीलिए नाक के ऊपर बहुत सी कहावतें बनी हैं, जैसे कि नाक पे दिया जलाना, अपने नाक की परवाह कर, अपनी नाक को ऊँचा रखो, अपनी नाक को बचा, नाक न कटने दे, अपनी नाक मेरे काम में न घुसा आदि-आदि। मुझे यह भी लगता है कि दूरदर्शन को दीवार पर आँखों की सीध में या उससे भी थोड़ा नीचे फिक्स करवाने से जो उसे देखने का ज्यादा मजा आता है, वह इसीलिए क्योंकि उसको देखते समय नाक पर भी नजर बनी रहती है, इससे ज्यादा ऊँचाई पर ऐसा कम होता या नहीं होता और साथ में गर्दन में भी दर्द आती है। कुछ एकसपर्ट तो यहाँ तक कहते हैं कि दूरदर्शन का ऊपरी किनारा आँखों की सीध में होना चाहिए, जैसे कम्प्यूटर मॉनिटर का होता है। साथ में मुझे नींद का मानसिक उच्चारण करने से भी शांति जैसी मिलती थी। नींद के मन में उच्चारण से सांस विशेषकर बाहर निकलती सांस ज्यादा चलती है, इससे सिद्ध होता है कि ऊर्जा एक्सहेलेशन माने निःश्वास से आगे के चैनल से नीचे उतरती है। प्राणायाम करते समय नाक को पकड़ते हुए उसी हाथ की एक अंगुली की टिप से आज्ञा चक्र बिंदु पर संवेदनात्मक दबाव बना कर रखने से भी मुझे शक्ति केंद्रीभूत माने सेन्ट्रलाईज़ड होते हुए महसूस होती है। मुझे तो आज्ञा चक्र और स्वाधिष्ठान चक्र को एकसाथ अंगुली से दबा कर रखने से अपना शरीर एकदम से शक्ति से रिचार्ज होता हुआ महसूस होता है। लगती यह तांत्रिक तकनीक अजीब है, पर

बड़े काम की है। साँस अपनी मर्जी से चलने-रुकने दो, शक्ति को अपनी मर्जी से इड़ा या पिंगला या जहाँ मर्जी दौड़ने दो। अंततः वह खुद ही केंद्रीय सुषुम्ना चैनल में आ जाएगी, क्योंकि उसके दो कॉर्नर पॉइंट ऊँगली से जो दबाए हुए हैं, जिनसे पैदा हुई दाब की आनंदमयी सी संवेदना शक्ति को खुद ही सुषुम्ना में धकेल कर गोलगोल घुमाने लगती है। इससे शरीर के उस हिस्से तक पर्याप्त शक्ति आसानी से पहुंच जाती है, जहाँ उसकी जरूरत हो। जैसे थके हुए दिल तक, बेशक यह उपले शरीर के बाएं हिस्से में है। इसी तरह थकी हुई टांगों में। दरअसल ऊर्जा नाड़ी के उन दो कॉर्नर पॉइंट के बीच में चलती है, बीच रास्ते में वह कोई भी रास्ता अख्तियार कर सकती है। पसंदीदा रास्ता वही होता है, जिसमें कम अवरोध होता है। स्वाभाविक है कि शक्ति की कमी वाला रास्ता ही कम प्रतिरोध वाला होगा, क्योंकि वह शक्ति को अपनी ओर ज्यादा आकर्षित करेगा, और अपनी शक्ति को पूरा करने के बाद आगे भी जाने देगा। कई बार योगासन करते समय जब सांस रोकने से मस्तिष्क में दबाव ज्यादा बढ़ा लगता है, तब आज्ञा चक्र वाला बिंदु नहीं दबाता, सिर्फ नाक पर हल्का सा अवलोकन बना रहता है। उससे मस्तिष्क का दबाव एकदम से कम होकर निचले चक्रौं की तरफ चला जाता है। दरअसल सुषुम्ना सीधे वश में नहीं आती। उसे इड़ा और पिंगला से काबू करके वहां से सुषुम्ना में धकेलना पड़ता है। इसीलिए आपने देखा होगा कि कई लोग माथे पर ऊर्ध्वत्रिपुण्ड लगाते हैं। इसमें दोनों किनारे वाली रेखाएं क्रमशः इड़ा और पिंगला को दर्शाती हैं, और बीच वाली रेखा सुषुम्ना को। यह ऐसे ही है जैसे बच्चा सीधा पढ़ने नहीं बैठता, पर थोड़ा खेल लेने के बाद पढ़ाई शुरु करता है। हालांकि सुषुम्ना में शक्ति ज्यादा समय नहीं रहती, कुछ क्षणों के लिए ही टिकती है। वैसे तो इड़ा और पिंगला में भी थोड़े समय ही महसूस होती है, पर सुषुम्ना से तो ज्यादा समय ही रहती है। ऐसे ही जैसे बच्चा पढ़ाई कम समय के लिए करता है, और खेलकूद ज्यादा समय के लिए। और तो और, एकदिन मैं दूरदर्शन पर किसी हिंदु संगठन के कुछ युवाओं को देख रहा था। उनके माथे पर लम्बे-लम्बे तिलक लगे हुए थे। किसी की पतली लकीर तो किसी की चौड़ी। एक सबसे चौड़ी, लंबी और चमकीली तिलक की लकीर से मेरी शक्ति बड़े अच्छे से सुषुम्ना में घूम रही थी, और मैं बड़ा सुकून महसूस कर रहा था। मैं बारबार उस तिलक को देखकर लाभ उठा रहा था। बेशक वह इतना बड़ा तिलक ऑड जैसा और हास्यास्पद सा लग रहा था। उसकी आँखों और चालढाल में भी व्यावहारिक अध्यात्म व अद्वैत नजर आ रहा था। दूसरे तिलकों से भी शक्ति मिल रही थी, पर उतनी नहीं। उनके चेहरों पर अध्यात्म का तेज भी उतना ज्यादा नहीं था। असली जीवन में तो तिलक लगाने वाले को भी अप्रत्यक्ष रूप से कुंडलिनी लाभ मिलता है, जब दूसरे लोग उसके तिलक की तरफ देखते हैं। इसका मतलब है कि सत्संग की शक्ति दूरदर्शन के माध्यम से भी मिल सकती है। गजब का आध्यात्मिक विज्ञान है यारो।

कुण्डलिनी ध्यान योग में विपासना अर्थात साक्षीभाव साधना का अत्यधिक महत्त्व है

विपासना साधना के लिए अति उपयोगी प्राणायाम कपालभाति

पिछली से पिछली पोस्ट में ही मैं विपासना के बारे में भी बता रहा था। मेरे अनुभव के अनुसार कपालभाति प्राणायाम भी विपासना में बहुत मदद करता है। सिर्फ सांस को बाहर ही धकेलना है। अंदर जैसी जाती हो, जाने दो। अपने को थकान न होने दो। तनावरहित बने रहो। जो रंगबिरंगे विचार उमड़ रहे हों, उन्हें उमड़ने दो। जो पुरानी यादें आ रही हों, उन्हें आने दो। वे खुद शून्य आत्मा में विलीन होती जाएंगी। दरअसल ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि मस्तिष्क में बिना किसी भौतिक वस्तुओं की सहायता के उनके प्रकट होने से आदमी को यह पता चल जाता है कि वे असत्य व आकाश की तरह सूक्ष्म हैं, पर भौतिक संसार के सम्पर्क में आने से भ्रम से सत्य व स्थूल जान पड़ते हैं। विपासना का सिद्धांत भी यही है। इसीलिए शास्त्रों में बारबार यही कहा गया है कि संसार असत्य है। सम्भवतः यह विपासना के लिए लिखा गया है, क्योंकि जब विपासना से संसार असत्य जान पड़ता है, तब संसार को असत्य जान लेने से विपासना खुद ही हो जाएगी। कपालभाति प्राणायाम से इसलिए विपश्यना ज्यादा होती है, क्योंकि व्यस्त दैनिक व्यवहार में भी हम ऐसे ही तेजी से और झटकों से सांस लेते हैं। जैसे ही कोई विचार आता है, ऐसा लगता है कि सांस के लिए भूख बढ़ गई, और अंदर जाने वाली सांस भी गहरी, मीठी, स्वाद व तृप्त करने वाली लगती है। अगर विचार को बलपूर्वक न दबाओ, तो इससे आगे से आगे जुड़ने से विचारों की श्रृंखला बन जाती है, और लगभग सारा ही मन घड़े से बाहर आ जाता है, जिसे पिछली पोस्ट की कथा में कहा गया है कि एक घड़े से सैंकड़ो या हजारों पुत्रों ने जन्म लिया। जो विचार-चित्र पहले से ही हल्का जमा हो, वह कम उभरता है। मतलब साफ है कि आसक्ति भरे व्यवहार से ही मन में कचरा जमा होता है। उसको विपासना से बारबार बाहर निकालना मतलब कचरा साफ करना। जैसे कढ़ाई में पक्के जमे मैल को बारबार धोकर बाहर निकलना पड़ता है, वैसे ही आसक्ति वाले विचार को बारबार निकालना पड़ता है।

आदमी को घूमकक्कड़ की तरह रहना चाहिए, क्योंकि विपश्यना साधना नए-नए स्थानों व व्यक्तियों के सम्पर्क में आने से मजबूत होती है

पिछली पोस्ट में कहे रंगारंग कार्यक्रम को देखते हुए मेरे मन में नए-पुराने विचार साक्षीभाव व आनंद के साथ उमड़ रहे थे, और आत्मा में विलीन हो रहे थे। मतलब विपश्यना साधना खुद ही हो रही थी। दरअसल वह क्षेत्र मेरे लिए खुद ही विपश्यना क्षेत्र

बना था। ऐसा होता है जब किसी स्थान के साथ एक पुराना व अज्ञात सा संबंध जुड़ता है, जो अपने गृहक्षेत्र से मिलता जुलता तो है, पर वहाँ के लोग नए आदमी को अजनबी व बाहरी सा समझ कर उसके प्रति तटस्थ से रहते हैं। विरोध तो नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें भी नए व्यक्ति से अपनापन सा लगता है। इससे आदमी की शक्ति खुद ही दुappearing व रिश्तों के फालतू झमेलों से बची रहकर विपश्यना में खर्च होती रहती है। हमारे गाँव के जो देवता हैं, वे हमारे पुराने राजा हुआ करते थे। वे एकप्रकार से हमारे पूर्वज भी थे। उनके साथ हमारे पूर्वज पुरानी रियासत से नई रियासत को आए थे। नई रियासत में उन्होंने अपना घर उस जगह पर बनवाया, जहाँ से उन्हें अपनी पुरानी रियासत वाली पहाड़ी सीधे और हर समय नजर आती थी। अपने घर के ज्यादातर द्वार और खिड़कियां भी उन्होंने उसी पहाड़ी की दिशा में बनवाए थे। उनकी मृत्यु के बाद जब वहाँ उनका मंदिर बनवाया गया, तब भी उसका द्वार उसी दिशा में रखा गया। इसी तरह मेरी दादी माँ बताया करती थीं कि एक वैरागी साधु बाबा उनके गाँव में रहते थे, जो उन्हें बेटी की तरह प्यार देते थे। दादी का गाँव एक ऊँचे पहाड़ के शिखर के पास ही था। वह पहाड़ बहुत ऊँचा था, और आसपास के पहाड़ उसके सामने कहीं नहीं ठहरते थे। उस पहाड़ के शिखर पर आने का उनका मुख्य मकसद था, नीचाई पर बसे उनके अपने पुराने गांव का लगातार नजर में बने रहना, ताकि अच्छे से साधना हो पाती, और पुराने घर की याद विपासना के साथ बनी रहती अर्थात वह याद उनकी साधना में विघ्न न डालकर लाभ ही पहुंचाती। वास्तव में, दुर्भाग्य से, धीरे-धीरे उनके परिवार के सभी सदस्य विभिन्न आपदाओं से कालकवलित हो गए थे। इस वजह से ढेर सारी दौलत भी मौत की भेंट चढ़ गई थी। इससे वे संसार के मोह से बिल्कुल विरक्त हो गए थे। व्यक्तिगत संबंध के मामले में भी यही आध्यात्मिक मनोविज्ञान काम करता है। किसी व्यक्ति के प्रति आकर्षण हो पर यदि वह बाहरी व विदेशी समझ कर प्यार करने वाले को ठुकरा दे तो विपश्यना खुद ही होती रहती है। मुझे बताते हुए कोई संकोच नहीं कि इस दूसरे किस्म की व्यक्तिगत संबंध की विपशयन से मेरी नींद में जागृति में बहुत बड़ा हाथ था।

हिंदु शास्त्रीय कथाएं एकसाथ दो अर्थ लिए होती हैं, भौतिक रूप में प्रकृति संरक्षक व आध्यात्मिक रूप में मनोवैज्ञानिक

हम इस पर भी बात रहे रहे थे कि इन कथाओं को पढ़ने का पूरा मजा तब आता है जब इनके पहेली जैसे रूप के साथ असली मनोवैज्ञानिक अर्थ भी समझ में आता है। कोई यह कह सकता है कि इन कथाओं से अंधविश्वास बढ़ता है। पर इनको मानने वालों ने इनके असली या भौतिक रूप पर ज्यादा अमल नहीं किया, इन पर अटूट श्रद्धा करके इनकी दिव्यता और पारलौकिकता को बनाए रखा। इनको पवित्र व पारलौकिक कथाओं की तरह समझा, लौकिक और भौतिक नहीं। वैसे ये कथाएं ज्यादा अमानवीय भी नहीं हैं। गंगा नदी को पूजने को ही कहा है, उसे गंदा करने को तो नहीं। इससे प्रकृति के प्रति प्रेम

जागता है। वैसे भी नाड़ी विशेषकर सुषुम्ना नाड़ी नदी की तरह बहती है। नदी के ध्यान से संभव है कि नाड़ी की तरफ खुद ही ध्यान चला जाए। मतलब जो भी कथाएं हैं, दोनों प्रकार से फायदा ही करती हैं, भौतिक रूप से प्रकृति का संरक्षण करती हैं, और आध्यात्मिक रूपक के रूप में आध्यात्मिक उत्थान करती हैं। कुछ गिनेचुने मामले में मानवता के अहित में प्रतीत भी हो सकती हैं, जैसे कि मनु स्मृति के कुछ वाक्यों पर आरोप लगाया जाता है। पर आरोप के जवाब में ज्यादातर उनका आध्यात्मिक या पारलौकिक अर्थ ही लगाया जाता है, भौतिक नहीं। हमने तो अपने जीवन में उनके अनुसार चलते हुए कोई देखा नहीं, सिर्फ उन पर आरोप ही लगते देखे हैं। बहुत सम्भव है कि वे वाक्य मूल ग्रंथ में नहीं थे और बाद में उनको साजिश के तहत जोड़ दिया गया हो। इसके विपरीत कुछ अन्य धर्मों में मुझे अधिकांश लोग वैसी रहस्यात्मक कथाओं पर हूबहू चलते दिखाई देते हैं, उनके विकृत जैसे भौतिक रूप में। यहाँ तक कि वे उन कथाओं के आध्यात्मिक विश्लेषण व रहस्योद्घाटन की इजाजत भी नहीं देते, और जबरदस्ती ऐसा करने वालों को जरा भी नहीं बख्शते। जेहाद, काफीरों की अकारण हत्या, जबरन धर्मान्तरण जैसे उदाहरण आज सबके सामने हैं। हमने एक पोस्ट लिखी थी, जिसमें होली स्पिरिट व कुंडलिनी के बीच में समानता को प्रदर्शित किया गया था। दो-चार लोग किसी भी वैज्ञानिक तर्क को नकारते हुए उस पोस्ट को नकारने लगे। एक जेंटलमेन तो उसे शैतान व डेमन या शत्रु की कारगुजारी बताने लगे। वे इस बात को नहीं समझ रहे थे कि वह विभिन्न धर्मों के बीच मैत्री व समानता पैदा करने का प्रयास था। वे इस वैबसाईट में दर्शाए तंत्र को ओकल्ट या भूतिया प्रेक्टिस समझ रहे थे। हमें किसी भी विषय में पूर्वाग्रह न रखकर ओपन माइंडड होना चाहिए। हिंदु दर्शन में अन्य की अपेक्षा विज्ञानवादी सोच व तर्कशीलता को ज्यादा महत्त्व दिया गया है, और जबरदस्ती अंधविश्वास को बनाए रखने को कम, जहाँ तक मैं समझता हूँ। वैसे कुछ न कुछ कमियाँ तो हर जगह ही पाई जाती हैं। साथ में वे महोदय मुझे कहते हैं कि मैं किसी धर्म वगैरह से अपनी पहचान बना कर रखता हूँ। मैं जब हिंदु हूँ तो अपने हिंदु धर्म से पहचान बना कर क्यों नहीं रखूंगा। सभी धर्मों में अपनी विशिष्टताएं हैं। विभिन्न धर्मों से दुनिया विविध रंगों से भरी व सुंदर लगती है, हालांकि उनमें अवश्यँभावी रूप से अनुस्यूत मानव धर्म सबके लिए एकसमान ही है। पर फिर भी मैं अपने स्वतंत्र विचार रखता हूँ, और जो मुझे गलत या अंधविश्वास लगता है, उसे मैं नहीं भी मानता। मेरी लगभग हरेक पोस्ट में किसी न किसी हिंदु मान्यता का वैज्ञानिक व मानवीय स्पष्टीकरण होता है। मेरे धर्म की उदार और सर्वधर्मसमभाव वाली सोच का भला इससे बड़ा सीधा प्रमाण क्या होगा। एकबार हिंदी भाषा पढ़ाने वाले एक विद्वान व दार्शनिक अध्यापक से व्हट्सएप्प पर मेरी मुलाक़ात हुई थी। मैंने उन्हें बताया कि कैसे पाश्चात्य लोग योग में यहाँ के स्थानीय हिंदु लोगों से ज्यादा रुचि ले रहे हैं। तो उन्होंने लिखा कि उनमें संस्कार नहीं होते। संस्कार मतलब पीढ़ियों से चली आ रही सांस्कृतिक परम्परा। अब मुझे उनकी वह बात समझ आ रही है कि कैसे

संस्कारों की कमी से आदमी एकदम से उस परम्परा के खिलाफ जा सकता है, जिसको वह जीजान से मान रहा हो। संस्कार आदमी को परम्परा से जोड़ कर रखते हैं।

कुण्डलिनी योग ही भगवान विष्णु के वराह अवतार के रूपक के रूप में वर्णित किया गया है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में नाक व इड़ापिंगला से जुड़े कुछ आध्यात्मिक रहस्य साझा कर रहा था। इसी से जुड़ी एक पौराणिक कथा का स्मरण हो आया तो सोचा कि इस पोस्ट में उसका योग आधारित रहस्योद्घाटन करने की कोशिश करते हैं। कहते हैं कि पुराने युग में राक्षस हिरण्याक्ष धरती को चुरा के ले गया था और उसे समुद्र के अंदर गहराई में छिपा दिया था। इससे सभी देवता परेशान होकर ब्रह्मा को साथ लेकर भगवान विष्णु के पास गए और उनसे सहायता का वचन प्राप्त किया। तभी ब्रह्मा की नाक से एक छोटा सा सूअर निकला। दरअसल भगवान विष्णु ने ही उस वराह का रूप धारण किया हुआ था। वह देखते ही देखते बड़ा होकर समुद्र में घुस गया। वहाँ उसने गहराई में छुपे दैत्य हिरण्याक्ष को देख लिया और उससे युद्ध करने लगा। देखते ही देखते उसने हिरण्याक्ष को मार दिया और वेदों समेत धरती को अपने मुंह के दोनों किनारों वाली लंबी और पैनी दो दाढ़ें आगे करके उन पर गोल धरती को बराबर संतुलित करके टिका दिया। फिर वे समुद्र के ऊपर आए और उन्होंने धरती को यथास्थान स्थापित कर दिया। फिर भी वराह भगवान शांत नहीं हो रहे थे। उनको भगवान शिव ने एक अवतार लेकर शांत किया।

वराह अवतार कथा का योग आधारित रहस्यात्मक विश्लेषण

नासिका पर और विशेषकर नासिका से अंदरबाहर आतीजाती साँस पर ध्यान देने से शक्ति केंद्रीय रेखा में सुषुम्ना नाड़ी की सीध में आ जाती है। कहते हैं कि नासिका से बाहर जाती साँस से होकर ही वराह बाहर निकला। बाहर जाती साँस पर ध्यान देने से शक्ति आगे वाले चैनल से नीचे उतरती है, और सभी चक्रों को भेदते हुए मूलाधार में पहुंच जाती है। यही वराह का समुद्र के नीचे पाताल लोक में पहुंचना है। अगर उसे पाताल लोक की बजाय समुद्र ही मानें तो भी संसार सागर का सबसे निचला पायदान मूलाधार ही है, क्योंकि विभिन्न चक्रों में ही सारा संसार बसा हुआ है। सम्भवतः इसलिए भी समुद्र कहा गया हो क्योंकि वीर्यरूपी जल के भंडार मूलाधार क्षेत्र के अंतर्गत ही आते हैं, जिसमें सारा संसार के रूप में दबा सा पड़ा होता है। हिरण्याक्ष का मतलब द्वैतभाव रूपी अज्ञान। हिरण्य मतलब सोना, अक्ष मतलब आंख। जिसकी नजर में सुवर्ण अर्थात समृद्धि के प्रति आदरभाव है, और उसके पीछे द्वैत भाव से अंधा सा होकर पड़ा हुआ है, वही हिरण्याक्ष है। उससे कुण्डलिनी शक्ति मूलाधार के अँधेरे में छुप अर्थात सो जाती है। मतलब जो मन के विचारों की शक्ति है, वह अवचेतन विचारों के रूप में अव्यक्त होकर मूलाधार में दब जैसी जाती है। यही तो कुंडलिनी है। उस मानसिक संसार के साथ वेद भी मूलाधार में दब जाते हैं, क्योंकि शुद्ध व सत्त्वगुणी आचार-विचार ही तो वेदों के रूप में हैं। शक्ति मूलाधार

पर पहुँचने के बाद पीठ से होते हुए वापिस ऊपर मुड़ने लगती है। शक्ति इड़ा और पिंगला, ज्यादातर इड़ा नाड़ी से ऊपर चढ़ने की कोशिश करती है, क्योंकि इसमें अवरोध कम होता है। कई बार शक्ति इड़ा और पिंगला में कुछ क्षणों के लिए प्रत्येक में बारीबारी से झूलने लगती है। ऐसे में आज्ञा चक्र पर भी ध्यान बनाकर रखने से शक्ति बीचबीच में कुछ क्षणों के लिए सुषुम्ना में भी ठहरती रहती है। इड़ा और पिंगला ही वराह के मुंह के दोनों किनारों वाले दो नुकीले दाँत हैं। सुषुम्ना नाड़ी या आज्ञा चक्र ही उन दोनों दांतों के ऊपर संतुलित करके रखी हुई गोल पृथ्वी है। चक्र भी गोल ही होता है। सुषुम्ना को पृथ्वी इसलिए कहा गया है क्योंकि दुनिया के सारे अनुभव मस्तिष्क में ही होते हैं, बाहर कहीं नहीं, और सुषुम्ना नाड़ी से होकर ही मस्तिष्क को शक्ति संप्रेषित होती है। वराह कुण्डलिनी-पुरुष अर्थात ध्यान-छवि है। यह भगवान विष्णु का ध्यान ही है। उसको भी विष्णु की तरह ही शंख, चक्र, गदा, पद्म के साथ चतुर्भुज रूप में दिखाया गया है। इसीलिए कहा है कि भगवान विष्णु ने वराह रूप में अवतार लिया। रूपक के लिए वराह को इसलिए भी चुना गया है क्योंकि सूअर ही जमीन को खोदकर गहराई में भोजन के रूप में छिपी अपनी शक्ति की तलाश करता रहता है। सूअर को पृथ्वी इसीलिए प्यारी होती है। इसीलिए उसे लाने वह समुद्र में भी घुस जाता है। मूलाधार में सोई हुई या दबी हुई धरती अर्थात मन रूपी शक्ति को पाने के लिए वह इड़ा और पिंगला रूपी दांतों के साथ उस शक्ति को वहाँ पर टटोलता और खोदता है। फिर उसको सुषुम्ना रूपी संतुलन देकर जल के बाहर ले आता है, और उसे अपने पूर्ववत असली स्थान पर स्थापित कर देता है। जल से बाहर ले आता है माने नाड़ी के शिखर पर उससे बाहर सहस्रार में पहुंचा देता है, क्योंकि नाड़ी भी जल की तरह ही बहती है। उसका असली स्थान मस्तिष्क का सहस्रार ही है, क्योंकि वही सभी अनुभवों का केंद्र है। सुषुम्ना नाड़ी भी सीधी मूलाधार से सहस्रार को जाती है। इससे अवचेतन मन में दबे हुए विचार फिर से अनुभव में आने लगते हैं, और आनंदमयी शून्य-आत्मा में विलीन होने लगते हैं। मतलब अवचेतन विचारों के रूप में सोई हुई शक्ति जागने लगती है। यह विपासना ही तो है। विपासना मस्तिष्क के किसी भी हिस्से में हो सकती है, सहस्रार को छोड़कर, क्योंकि इसके लिए कम शक्ति चाहिए होती है। होती सहस्रार में ही है, पर कम ऊर्जा के कारण बाहर जान पड़ती है। जिस विचार में जितनी कम शक्ति होती है, वह सहस्रार से उतना ही दूर प्रतीत होता है। वैसे भी आत्मा का स्थान सहस्रार में ही बताया गया है। सहस्रार में केवल कुण्डलिनी चित्र का ही ध्यान किया जाता है, जोकि किसी मूर्ति या गुरु या पारलौकिक देह आदि के रूप में होता है। यह चित्र लगभग असली भौतिक रूप की तरह महसूस होता है अभ्यास से, इसीलिए इसके लिए विपासना की अपेक्षा काफी ज्यादा शक्ति लगती है। यदि कोई किसी आम लौकिक आदमी या औरत के रूप की छवि को सहस्रार में जागृत करने लगे, तब तो वह रात को ही नींद में चलता हुआ उसके पास पहुंच जाएगा। तब ध्यान कैसे होगा। फिर सभी देवता और ऋषिगण प्रसन्न होकर वराह भगवान की हाथ जोड़कर स्तुति करते हैं। वैसे भी इन सभी का उद्देष्य जीवमात्र को जन्ममरण रूपी दुःख से दूर करना ही है, जो

सहस्रार चक्र में ही संभव है, इसीलिए खुश होते हैं। शिवजी के द्वारा वराह को शांत करने या मारने का मतलब है कि योगी कुण्डलिनी का भी मोह छोड़कर शिव के जैसा अद्वैतवान तांत्रिक बन गया। वैसे भी सिद्धांत यही है कि ज्ञान अर्थात कुण्डलिनी जागरण होने के बाद या वैसे भी अद्वैतमय तंत्र ही सर्वोच्च समझ अर्थात सुप्रीम अंडरस्टेंडिंग है, जिसे ओशो महाराज भी अपनी एक पुस्तक 'tantra- a supreme understanding' के रूप में दुनिया के सामने स्पष्ट करते हैं।

कुण्डलिनी योग विज्ञान ही क्वांटम यांत्रिकी, अंतरिक्ष विज्ञान, खगोल-भौतिकी और ब्रह्माण्ड विज्ञान का शिखरबिंदु है

कुण्डलिनी जागरण ही सिद्ध करता है कि अभावात्मक शून्य का अस्तित्व ही नहीं है

दोस्तों, मैं हाल ही में अपने जागृति के अनुभवों को विज्ञानवादियों को प्रेषित करने बारे विचार कर रहा था, ताकि ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के रहस्य को सुलझाया जा सके, जिस पर वे बुरी तरह से अटके हुए हैं। पर मुझे उनकी साइटों पर न तो कमेंट बॉक्स मिला और न ही उनकी तरफ से इस तरह की कोई अपील ही गूगल पर मिली। एक-दो का एड्रेस मिलने पर उनसे जीमेल पर कंटेक्ट किया भी पर कोई जवाब नहीं मिला। आपको ऐसा कोई मंच पता हो तो कृपया जरूर शेयर करना।

अध्यात्म विज्ञान और अंतरिक्ष विज्ञान आपस में जुड़े हुए हैं, और एकदूसरे के बिना अधूरे हैं। इसीलिए ***सनातन वैदिक दर्शन*** के साथ ***ज्योतिष*** विज्ञान भी सम्मिलित किया गया था, और इसे एक विशिष्ट सम्मानजनक स्थान प्राप्त था।

शून्यवाद ही सभी समस्याओं की जड़ है

शून्यवाद सबसे बड़ा द्वैतकारी अज्ञान है। विज्ञान अगर शून्यवाद का सहारा न लेता तो आज प्रकृति और **मानवता** का विनाश न हो रहा होता। इससे आज चारों तरफ **युद्ध**, प्राकृतिक आपदा आदि के रूप में हायतौबा न मच रही होती। फिर विज्ञान और अद्वैतरूपी अध्यात्म एकसाथ आगे बढ़ रहे होते और मानवमात्र का सम्पूर्ण व सर्वांगीण विकास सुनिश्चित हो रहा होता। **प्राचीन भारत** से बुद्ध धर्म इसी वजह से लगभग बाहर कर दिया गया था, क्योंकि उसने शून्यवाद का सहारा लिया। हालांकि बुद्धिस्ट बहुत तर्क देते हैं कि उनका उपास्य शून्य नहीं पर चेतन ब्रह्म है, यह सत्य भी है, पर बौद्ध धर्म के बाहरी आचारविचार से तो वह शून्य ही प्रतीत होता है। आम जनमानस तो ऊपर से ही देखते हैं, गहरी बात नहीं समझ पाते।
लगता है कि दुनिया की सबसे अधिक शून्य-विरोधी संस्कृति **हिंदु सनातन संस्कृति** ही है। इसमें मिट्टी-पत्थर आदि जड़ वस्तुओं के साथसाथ अंधेरा काला आसमान भी **पूजा** जाता है। उदाहरण के लिए **शनि देव** और **काली माता**।

जागृति के अनुभव के आधार पर ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति और उसकी आधारभूत संरचना

जिसे हम शून्य या अंधकारनुमा या आनंदहीन **आकाश** समझते हैं, और अपनी आत्मा के रूप में महसूस भी करते हैं, वह जागृति के समय वैसा महसूस नहीं होता, अर्थात वह अशून्य या प्रकाश या **आनंदमय** जैसा आकाश महसूस होता है। अशून्य इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि वह भरे-पूरे भौतिक संसार के जैसा ही लगता है। प्रत्यक्ष भौतिक संसार व उससे बने मानसिक चित्र या विचार उसमें तरंगों की तरह महसूस होते हैं। वैसे ही जैसे **सागर में तरंगें** होती हैं। विभिन्न **धर्मशास्त्रों** में भी ऐसा ही वर्णन किया गया है। तो क्या विज्ञान इस बात को अनदेखा कर रहा है।

अपने मूल रूप में अंतरिक्ष ही आत्मा है

सारा संसार आभासी व अवास्तविक है

मूल मत ओरिजिनल माने वास्तविक अर्थात **निर्विकार** रूप में। **आइंस्टिन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत** से यह काफी पहले ही जाहिर हो गया था, पर इस आध्यात्मिक रूप में किसी ने समझा नहीं था। आइंस्टिन बहुत महान व्यक्ति थे पर ऐसा लगता है कि उनका सामना किसी असली जागृत व्यक्ति से नहीं हुआ था। हाहा। आइंस्टिन ने सिद्ध किया कि **स्पेसटाईम** किसी त्रिआयामी चादर की तरह मुड़ सकता है, उसमें गड्ढे पड़ सकते हैं। वैसे जो पहले ही खाली गड्ढे की तरह है, उसमें एक और खाली गड्ढा कैसे बन सकता है। मतलब साफ है कि अंतरिक्ष वैसा शून्य नहीं है, जैसा आम आदमी समझते हैं। वह एकसाथ शून्य भी है और नहीं भी, वह **भावरूप शून्य** है, वह आत्मा है, वह परमात्मा है। यह ऐसे ही है, जैसे तलाब के पानी में किश्ती से गड्ढा बनता है। तरंग भी तो इसी तरह गड्ढा बनाते हुए चलती है। मतलब अंतरिक्ष में तरंग बन सकती है। फिर वह शून्य कैसे हुआ। कई लोग यह भी कह सकते हैं कि वह ऐसा शून्य है, जिसमें झूठमूठ वाली माने वर्चुअल तरंग बन सकती है। ऋषिमुनि भी आत्मा का ऐसा ही अनुभव बताते हैं। मतलब वह ऐसी तरंग नहीं होती जो आत्मा को असल में विकृत कर सके। यहाँ तक कि पानी भी तरंग से थोड़ी देर के लिए ही विकृत लगता है, तरंग गुजर जाने के बाद उसकी सतह भी बिल्कुल सीधी और पहले जैसी हो जाती है। हवा के साथ भी ऐसा ही होता है। फिर अंतरिक्ष या आकाश तो उनसे भी सूक्ष्म है, वह कैसे **विकृत** हो सकता है। वह तो थोड़ी देर के लिए भी विकृत नहीं हो सकता, क्योंकि विकृत होकर जाएगा कहाँ। क्योंकि हर जगह आकाश है। पानी और हवा तो खाली स्थान को खिसक जाते हैं, पर अंतरिक्ष कहाँ को खिसकेगा। इसका मतलब है कि अंतरिक्ष की तरंग पानी और हवा की तरंग से भी ज्यादा आभासी है। मतलब तरंग कहीं नहीं चलती, सिर्फ प्रतीत होती है। है न आश्चर्यजनक तथ्य।

गजब का शून्य है भाई। सम्भवतः यही परमात्मा की वह जादूगरी या माया है जो न होते हुए भी सबकुछ दिखा देती है।
शास्त्रीय प्रमाण के रूप में, **महाभारत** जितने आकार वाले प्रसिद्ध **योगवासिष्ठ** उपनामित **महारामायण** ग्रंथ में बारम्बार और हर जगह **भावपूर्ण शून्य आकाश या अंतरिक्ष** को ही परमात्मा कहा गया है। उसमें हर जगह संसार को **असत्य** व आभासी कहा गया है।

शून्य में अगर सारी दुनिया विद्यमान है तो वह शून्य दुनिया के जैसे गुणों वाला होना चाहिए

अब हम उपरोक्त वैज्ञानिक विश्लेषण को थोड़ा तर्क की धार देते हैं। अंतरिक्ष रूपी शून्य में वह सभी क्रियाकलाप होते हैं, जो भौतिक संसार में होते हैं, जैसा कि हमने ऊपर कहा। इसका मतलब है कि शून्य का स्वभाव दुनिया के जैसा होना चाहिए। यह तभी संभव है अगर उस शून्य में **सत्त्व गुण, रजो गुण और तमोगुण,** प्रकृति के ये तीनों गुण एकसाथ विद्यमान हों, क्योंकि भौतिक संसार इन्हीं तीनों गुणों से बना है, जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है। इसीलिए उस शून्य आत्मा को **त्रिगुणातीत** मतलब तीनों गुणों से परे कहा गया है, क्योंकि तीनों गुण एकसमान मात्रा में होने से एकदूसरे के प्रभाव को कैंसल कर देते हैं, हालांकि रहते तीनों गुण हैं। इसीलिए अध्यात्म शास्त्रों में परमात्मा को **अनिर्वचनीय** भी कहते हैं, मतलब उसमें तीनों गुण हैं भी, नहीं भी हैं, ये दोनों बातें भी हैं और दोनों भी नहीं हैं। शून्य में ये गुण एक दूसरे से कम ज्यादा नहीं हो सकते, क्योंकि समय के साथ भौतिक वस्तु के परिवर्तन से गुण कम या ज्यादा होते रहते हैं। पर शून्य परिवर्तित नहीं हो सकता। इसका मतलब है कि शून्य आत्मा एक ही समय में सत्त्व रूपी प्रकाश, रज रूपी क्रियाशीलता (आभासी तरंग के रूप में, यद्यपि यह नहीं भी है) और तम रूपी अंधकार एकसाथ विद्यमान हैं। यह सब शास्त्रों के इस कथन को सिद्ध करता है कि वास्तविक व सर्वव्यापी अंतरिक्ष जो **परम-आत्मा** है, वह सभी सांसारिक जीवों की तुलना में कहीं बेहतर तरीके से **चेतन** है, और वह प्राप्त किया जा सकता है।

शून्य अंतरिक्ष भी भौतिक पदार्थों की तरह व्यवहार करता है

हालांकि सिर्फ यह अंतर है कि जिसे शून्य अंतरिक्ष आभासिक या **वर्चुअल** रूप में करता है, उसे भौतिक पदार्थ सत्य रूप में करता है। इसलिए शास्त्रों में कहा है कि परमात्मा सबसे बड़ा **नटखट**, नाटककार और जादूगर है। उदाहरण के लिए समुद्र के पानी से पानी छोटे-छोटे टुकड़ों में बाहर उछलकर वास्तविक बुँदे बनाता है। पर शून्य अंतरिक्ष रूपी सागर में पहली बात, शून्य टुकड़ा बन कर नहीं उछल सकता, दूसरा ऐसी किसी खाली जगह का अस्तित्व ही नहीं है, जो शून्य आकाश के रूप में न हो। इसलिए एक ही रास्ता

बचता है कि झूठमूठ की अर्थात दिखावे की अर्थात वर्चुअल बुँदे बनाई जाए। उन्हें ही विज्ञान के अनुसार हम **मूल कण** अर्थात **एलिमेंट्री पार्टिकल्स** कहते हैं, जो लगातार शून्य अंतरिक्ष में पॉप होते रहते हैं अर्थात प्रकट होते रहते हैं और उसीमें विलीन भी होते रहते हैं। बिल्कुल वैसे ही जैसे समुद्र से जल की बुँदे बाहर निकलती रहती हैं, और उसीमें विलीन होती रहती हैं। फिर आत्मजागृति का यह अनुभव विज्ञानसम्मत व सही क्यों न मान लिया जाए कि सारी सृष्टि आत्मा के अंदर आभासी तरंग है। दिक्क़त यही है कि उस अनुभव को किसी और को नहीं दिखाया जा सकता और कोई मशीन भी उसे वेरिफ़ाई नहीं कर सकती। इसे खुद अनुभव करना पड़ता है।

विज्ञान-युग का योग-युग में रूपान्तरण

धर्मग्रंथों में यह प्रचुरता से लिखा गया है कि शून्य से जगत की उत्पत्ति नहीं हो सकती। बहुत पहले से ऋषियों को **आत्मानुभव** से ज्ञात था कि **स्वयंप्रकाश** आकाशरूप आत्मा से ही इस जगत की उत्पत्ति हुई है, किसी अँधेरेनुमा शून्य अंतरिक्ष से नहीं। इसके लिए बहुत से विज्ञाननुमा तर्क दिए जाते थे, जिससे भी यही सिद्ध होता था। **आत्मजागृत** अर्थात **कुण्डलिनी-जागृत** व्यक्ति भी ऐसा ही अनुभव बताते हैं। वह आत्मा भौतिक इन्द्रियों की पकड़ में नहीं आ सकता, केवल अपने स्वयं के असली स्वरूप के रूप में अनुभव होता है। इसलिए एक बात तो साफ है कि विज्ञान से बेशक उसका अंदाजा लग जाए, पर दिखेगा वह केवल योग से ही। विज्ञान उसका अंदाजा लगाकर शांत हो जाएगा, और फिर उसको अनुभव करने के लिए योग की तरफ बढ़ेगा। सारे वैज्ञानिक योगी बन जाएंगे, और विज्ञान-युग योग-युग में रूपान्तरित हो जाएगा।

बाहर के और भीतर के ब्रह्माण्ड में कोई अंतर नहीं है

अगर मन का ब्रह्माण्ड आत्मा के अंदर अनुभव होता है, तो बाहर का भौतिक ब्रह्माण्ड भी, क्योंकि उसे हम मानसिक ब्रह्माण्ड से ही अंदाजन जान सकते हैं, सीधे व असली रूप में कभी नहीं। पर इतना तय है कि बाहरी ब्रह्माण्ड का असली रूप भी मनोरूप ब्रह्माण्ड की तरह ही है। बस इतना सा अंतर है कि बाहरी ब्रह्माण्ड को भीतरी ब्रह्माण्ड से ज्यादा स्थिरता मिली हुई है, इसीलिए हजारों सालों तक सभी को वह लगभग एक जैसा ही दिखता है, पर मानसिक ब्रह्माण्ड विचारों और अनुभवों के साथ प्रतिपल बदलता रहता है।

विज्ञान के कई गहन रहस्य कुण्डलिनी जागरण से सुलझ सकते हैं

उदाहरण के लिए ब्रह्माण्ड के सबसे गहरे मूल में क्या है, ***क्वांटम एन्टेन्गलमेंट*** का सिद्धांत क्या है, विद्युत्चुंबकीय तरंग क्या है व कैसे चलती है, ***वेक्यूम एनर्जी,*** क्वांटम फलकचुएशन, ***डार्क एनर्जी,*** महाविस्फोट, ब्रह्माण्ड का विस्तार, ब्लैक होल, ***मल्टीवर्स, पैरालेल यूनिवर्स,*** एंटी यूनिवर्स, फोर्थ डाईमेंशन, ***स्पेसटाईम ट्रेवल,*** टेलीपोर्टेशन, एलियन हंटिंग आदि, और अन्य भी बहुत कुछ। कालेब शार्फ, एक अंतरिक्ष विज्ञानी कहते हैं कि पूरा ब्रह्माण्ड ही एक देत्याकार **एलियन** हो सकता है। ***आइंस्टिन*** की नजर में समय एक भ्रम है। ऐसी सभी सोचें और थ्योरियाँ ज्ञानी ऋषियों और दार्शनिकों के चिंतन से मेल खाती हैं। इसलिए विज्ञानवादियों को एकांगी भौतिक सोच छोड़कर योग और अध्यात्म को भी अपने अध्ययन में सम्मिलित करना चाहिए, तभी दुनिया के सारे रहस्यों से पर्दा उठ सकता है। कई क्वांटम थ्योरियाँ योग विज्ञान से समझ में आ सकती हैं, जैसे कि **वेव पार्टिकल ड्यूल नेचर ऑफ़ मैटर, स्टैंडिंग वेव**, डबल स्लिट एकस्पेरीमेंट, डी ब्रॉगली सिद्धांत, ***केसीमिर इफेक्ट,*** आदि बहुत सी। जिस ***थ्योरी ऑफ़ एव्रीथिंग*** के लिए वैज्ञानिक लम्बे समय से प्रयास कर रहे हैं, वह लगता है कि योग विज्ञान से मिल सकती है। कुछ वैज्ञानिक सत्य की तरफ बढ़ भी रहे हैं, जैसे कि **स्टीफेन हॉकिंग** की **स्ट्रिंग थ्योरी**, ***रोबर्ट लैंजा*** की ***बायोसेंटरिज्म थ्योरी,*** हरेक वस्तु के रूप में एलियन के छुपे होने की थ्योरी, एडम फ्रैंक की धरती को एक जीवित प्राणी समझने वाली थ्योरी, धरती को अपराधियों के लिए जेल और चन्द्रमा को जेल निगरानी केंद्र मानने वाली थ्योरी आदि,और अन्य भी कई सारी। हालांकि यह सब वैज्ञानिक अंदाजे ही हैं, जैसे मैंने ऊपर कहा। इनको सिद्ध करने के लिए उन लोगों को साथ में लेने की जरूरत है, जिन्होंने योग से कुण्डलिनी जागरण को प्रत्यक्ष रूप में अनुभव किया है। आजकल ऐसी अबूझ किस्म की विज्ञान पहेलियों पर हर जगह चर्चा का माहौल गरमाया हुआ है। लोहा गर्म है, और वैज्ञानिकों को हथोड़ा चलाने में संकोच नहीं करना चाहिए। अगर आप भी इन पहेलियों को सुलझाने में योगदान देना चाहते हैं, तो कमेंट बॉक्स में जरूर लिखें।

कुण्डलिनी योगी एक सच्चे क्वांटम वैज्ञानिक जैसा होता है, जो सूक्ष्म भौतिक दुनिया का मास्टर होता है

कुण्डलिनी योग ही आदमी की सीखने की और आगे बढ़ने की जिज्ञासा को पूरा कर सकता है

दोस्तों मैं पिछली पोस्ट में **आत्मा की अंतरिक्ष-रूपता** के बारे में बता रहा था। व्यवहार में देखने में आता है कि हरेक चीज नीचे से नीचे टूटती रहती है। अंत में सबसे छोटी चीज भी बनेगी जो नहीं टूटेगी। वह आकाश ही है। फिर सृष्टि के आरम्भ में पुनः जब इससे चीज बननी शुरु होएगी और पहली चीज बनेगी वह आकाश में **आभासी तरंग** ही होगी क्योंकि **आकाश** के इलावा कुछ भी नहीं था। इसके लिए एक ही तरीका है कि **रनिंग या स्टेंडिंग वेव** बना कर तरंग या कण जैसा दिखा दिया जाए। वैसे भी तरंग को कण के रूप में दिखा सकते हैं, कण को तरंग के रूप में नहीं। इससे भी सिद्ध होता है कि जगत का तरंग रूप ही सत्य है, कण या भौतिक रूप कल्पित व अवास्तविक है, जैसा शास्त्रों में हर जगह कहा गया है। मैं पिछली पोस्ट में भी बता रहा था कि जब मीडियम और पार्टिकल एक ही चीज हो और कण मीडियम के इलावा अन्य कुछ न हो तो पार्टिकल को भी वेव ही बोलेगे। हवा के अंदर पानी का कण बन सकता है, पर पानी के अंदर पानी का कण कैसे बन सकता है। एक ही तरीका है कि आभासी रनिंग या स्टेंडिंग वेव बना कर कण जैसा दिखा दिया जाए। इसलिए शास्त्रों में उस **चिदाकाश** अर्थात **चेतन आकाश** को **नेति-नेति** कह कर पुकारा गया है। नेति शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है, न और इति। न का मतलब नहीं, और इति का मतलब यह है। इसलिए नेति का मतलब हुआ, यह नहीं, मतलब यह **परमात्मा** नहीं है। जो भी दिखेगा, वह नेति ही माना जाएगा। सभी **मूलकणों** को भी नेति ही माना जाएगा, जब तक जो भी मिलते जाएंगे। अंत में जो अदृष्य जैसा काला आसमान बचेगा, वह भी नेति ही होगा। वह इसलिए क्योंकि उसे भी हम अन्य रूप में देख पा रहे हैं या जान पा रहे हैं। यदि काला या अचेतन आसमान अपने आप के रूप में अनुभव हो तो यह आत्मा नहीं है, क्योंकि अँधेरे आसमान में प्रकाशमान जगतरूपी तरंगें पैदा नहीं हो सकतीं। तरंग और तरंग का आधार एकदूसरे से अलग नहीं हो सकते जैसे तरंग सागर से अलग नहीं। इसलिए वही अपनी आत्मा का असली अनुभव हैं, जिसमें जगतरूपी विचार, दृश्य आदि तरंग की तरह अपृथक दिखें। किसी भी तरह का कोई भी विचार या भाव नेति ही माना जाएगा। अंत में ऐसा तत्त्व बचेगा, जिसकी तरफ हम इशारा नहीं कर पाएंगे, मतलब वह हमारा अपना आत्मरूप होएगा। क्योंकि हम उसे इति अर्थात यह कहकर सम्बोधित नहीं कर पाएंगे, इसलिए वह नेति भी नहीं हो सकता। नेति वही हो सकता है, जिसे हम इति कह पाते हैं। यह **कुण्डलिनी जागरण** के दौरान अनुभव होता है। अर्थात एक मानसिक अनुभूति में स्थित प्रकाश और चेतना उसके अनंत

सागर के भीतर एक छोटी सी लहर है, असंबद्ध आधार माध्यम के अंदर एक कण के रूप में नहीं, भौतिक प्रयोगों और जागृति के अनुभवों के अनुसार। दोनों इसको पूरी तरह से साबित करने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर चलते हैं। हालांकि अधिक दार्शनिकों और बुद्धिजीवियों के लिए जागृति का आंतरिक अनुभव ही काफी है। इससे बड़ा क्या प्रमाण होगा परमात्मा के बारे में। इसीलिए कहते हैं कि मौन ही ब्रह्म है। अधिकांश वैज्ञानिक व आधुनिकतावादी जो सोचते हैं कि फलां कण मिलेगा या फलां बल का पता चलेगा या फलां थ्योरी सिद्ध होएगी तो सम्भवतः ब्रह्माण्ड के सभी रहस्यों से पर्दा उठ जाएगा। पर ऐसा सच नहीं है। जो भी मिलेगा वह इति ही होगा, इसलिए नेति के दायरे में आएगा। कुछ न कुछ हमेशा बचा रहेगा ढूंढने को। मतलब सृष्टि के मूल का पता नहीं चलेगा। परम मूल मतलब परम आत्मा का पता तभी चलेगा जब कोई इति अर्थात अपने से अलग चीज न मिलकर अपना आत्म रूप महसूस होएगा। यह कुण्डलिनी योग से ही संभव है। इससे सिद्ध होता है कि कुण्डलिनी योग से ही सृष्टि के सभी **रहस्यों** से पर्दा उठ सकता है और वही आदमी की सीखने की और आगे बढ़ने की जिज्ञासा को पूरा कर सकता है। वही एक लम्बे अरसे की मानसिक प्यास बुझा सकता है।

जितने जीव उतने यूनिवर्स मतलब मल्टीवर्स

ब्रह्माण्ड तो चिदाकाश के अंदर विकाररहित तरंग की तरह है। यह बिल्कुल शुद्ध है **ब्रह्म** की तरह। जल और जलतरंग के बीच क्या अंतर हो सकता है। पर आदमी अपनी भावनाओं, मान्यताओं, व विचारों के साथ इसे रंग देता है। इसलिए यह ब्रह्माण्ड हरेक आदमी या जीव के लिए अलग है। इसीलिए कहते हैं कि सृष्टि बाहर कहीं नहीं, यह सिर्फ आदमी के मन की उपज है। यह बात पूरे **योगवासिष्ठ** ग्रंथ में अनेकों कहानियों और उदाहरणों से स्पष्ट की गई है। इसे ही हम मल्टीवर्स भी कह सकते हैं। कुण्डलिनी योग से जब मन की सोच व भावनाएँ शुद्ध होने से मन की चंचलता का शोर शांत हो जाता है, मतलब उनके प्रति आसक्ति नष्ट हो जाती है, तभी असली माने ओरिजिनल ब्रह्मरूपी ब्रह्माण्ड का अनुभव होता है, जिससे आदमी **आत्मसंतुष्ट** सा रहने लगता है । कुण्डलिनी ही अद्वैत है। **अद्वैत** ही जगत की सभी चीजों को एक जैसा व आत्म-आकाश में तरंग की तरह देखना है। क्वांटम वैज्ञानिक भी सूक्ष्म पदार्थों को इसी तरह अंतरिक्ष से अभिन्न, तरंगरूप व एकरूप देखता है। इलेक्ट्रोन तरंग और फोटोन तरंग अर्थात प्रकाश तरंग एक जैसी ही हैं। कण रूप में ही दोनों अलग-अलग दिखते हैं। मतलब कि तरंग-दृष्टि ही सत्य व अद्वैतपूर्ण है, जबकि कण-दृष्टि ही असत्य व द्वैतपूर्ण है। स्थूल जगत में भी सत्य दृष्टि यही तरंगदृष्टि है, क्योंकि सूक्ष्म पदार्थ ही आपस में जुड़कर स्थूल जगत का निर्माण करते हैं। कण वाली **द्वैतपूर्ण** दृष्टि मिथ्या, भ्रम से भरी, दुनिया में भटकाने वाली व दुःख देने वाली है, और यह आसक्ति के साथ दुनिया को देखने से पैदा होती है। **यह ऐसे ही है जैसे अगर डबल स्लिट एक्सपेरिमेंट** में **मूलकणों** को देखने की कोशिश करें, तो वे कण की तरह

व्यवहार करते हैं, अन्यथा अपने असली तरंग के रूप में होते हैं। डबल मजा लेना हो तो डबल स्लिट के पास खड़े होकर कभी उसे तिरछी नजर से तनिक देख लो और कभी शर्मा कर मुंह फेर लो। हहा।

एक ही स्थान पर अनगिनत ब्रह्मान्डों मतलब पैरालेल यूनिवर्स का अस्तित्व

अनगिनत आयामों का अस्तित्व

क्योंकि भौतिक संसार अंतरिक्ष के अंदर एक आभासी तरंग है, इसलिए एक ही स्थान पर अनगिनत किस्म की आभासी तरंगें बन सकती हैं। हो सकता है कि एक किस्म की तरंग दूसरे किस्म की तरंग से बिल्कुल भी प्रतिक्रिया न करे। फिर तो एक ही स्थान पर एकसाथ अनगिनत स्वतंत्र ब्रह्माण्ड स्थित हो सकते हैं। इससे हो सकता है कि जहाँ मैं इस समय बैठा हूँ, बिल्कुल वहीं पर मतलब मेरे द्वारा घेरे हुए स्थान में ही ब्रह्माण्ड की सभी चीजें और ब्रह्माण्ड के सभी क्रियाकलाप मौजूद हों, क्योंकि किसी आयाम के ब्रह्माण्ड में कुछ होगा, तो किसी में कुछ, इस तरह अनगिनत ब्रह्मान्डों में सबकुछ कवर हो जाएगा। ऐसा भी हो सकता है कि इसी स्थान पर भरेपूरे अनगिनत ब्रह्माण्ड मौजूद हों, क्योंकि छोटा-बड़ा भी सापेक्ष ही होता है, वास्तविक नहीं। इसका मतलब है कि इस तरह से **असंख्य आयामों का अस्तित्व** है। उन्हें हम कभी जान ही नहीं सकते, क्योंकि जिस आभासी तरंग के आयाम में हमारा ब्रह्माण्ड स्थित है, वह दूसरे किस्म की आभासी तरंगों से निर्मित आयामों से बिल्कुल भी प्रभावित नहीं होगा। हो सकता है कि जो **ग्रेट अट्रेक्टर** माने **महान आकर्षक** बल ब्रह्माण्ड को गुब्बारे की तरह फुला रहा है, वह अज्ञात आयामों वाले अनगिनत व भारीभरकम ब्रह्मान्डों के रूप में हों। हम उसे अंतरिक्ष की इन्हेरेंट माने स्वाभाविक **गुरुत्वाकर्षण शक्ति** मान रहे हों, जबकि वह अदृष्य ब्रह्मान्डों से निर्मित हो रही हो।

पदार्थ के ड्यूल नेचर होने का व्यक्तिगत अनुभव रूपी वैज्ञानिक प्रयोग

एकबार मेरे हाथ पर **आसमानी बिजली** गिरने की एक चिंगारी टकराई थी। मुझे ऐसे महसूस हुआ कि किसी ने जोर से एक पत्थर मेरे हाथ की पिछली सतह पर मारा हो। यहाँ तक कि मैं इधरउधर देखने लगा कि किसने पत्थर मारा था। वह बिजली का चक्र लगभग दस मीटर दूर एक लोहे की चद्दर पर गिरा था जिसके आसपास बच्चे भी खेल रहे थे पर वे सौभाग्यवश सुरक्षित बच गए। अद्भुत बात कि उस लोहे की चद्दर पर खरोच तक नहीं आई थी, वह बिल्कुल पहले की तरह थी। कोई चीज वगैरह टकराने की भी कोई आवाज

नहीं हुई। इसका मतलब है कि पदार्थ के **मूल कण इलेक्ट्रोन** ने मेरे हाथ पर कण की तरह व्यवहार किया, जबकि उसीने लोहे की चद्दर के ऊपर तरंग के रूप में व्यवहार किया। **फोटोइलेक्ट्रीक इफेक्ट व डबल स्लिट एक्सपेरिमेंट** तो बेजान पदार्थों वाला प्रयोग था, पर यह प्रयोग मैंने अपने जिन्दा शरीर के ऊपर महसूस किया। आपने भी देखा होगा कि कैसे आसमानी बिजली गिरने से पूरी इमारत धराशायी हो जाती है, या उसके छत पर बड़ा सा छेद हो जाता है, ऊँचे पेड़ की काफी लकड़ी बीच में से छिल जाती है, या पूरा पेड़ बीच में से टूट कर दो हिस्सों में बंट जाता है। इसे **संस्कृत** में **वज्रपात** कहते हैं, मतलब एक लोहे के जैसे गोले का आसमान से गिरना, जैसे कोई **बम** गिरता है। इसका मतलब है कि पुराने समय के लोगों को **इलेक्ट्रोन-तरंग** के **कण-प्रभाव** का ज्ञान था। **हिमाचल प्रदेश** के **कुल्लू** में एक **बिजली महादेव मंदिर** है। इसमें स्थित पत्थर के **शिवलिंग** पर हर साल एकबार **बिजली** गिरती है, जिससे यह दो टुकड़ों में बंट जाता है। फिर उन दोनों टुकड़ों को मंदिर के पुजारियों के द्वारा मक्खन से जोड़ दिया जाता है। यह भी तो इलेक्ट्रोन का कण-रूप ही है। मूलकण इतना **सूक्ष्म** होता है कि **लार्ज हैडरोन कोलायडर** में उसका अंदाजा अप्रत्यक्ष रूप से उसके टकराने से हुए प्रभाव को मापकर लगाया जाता है, वैसे ही जैसे मेरे हाथ पर उसने टकराने की **संवेदना** पैदा की, प्रत्यक्ष रूप से तो उसे कभी नहीं जाना जा सकता, देखा जाना तो दूर की बात है।

कुण्डलिनी योग से ही सृष्टि के मूलकण, मूल तरंग व प्लेन्क लेंथ जैसे क्वांटम तत्त्व बनते हैं

मन के अंदर और बाहर दोनों एकदूसरे के सापेक्ष और मिथ्या हैं

मन के बाहर किसी भी चीज या जगत का अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता

दोस्तों मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे जगत सत्य नहीं, बल्कि **आत्माकाश** के अंदर एक **आभासी तरंग** है। इसी तरह, स्थूल जगत का भी कोई अस्तित्व नहीं है, इसकी रचना भी मन ने की है। यह कोई आज की खोज नहीं है, जैसा कि कई जगह दिखावा हो रहा है। यह **ऋषिमुनियों** और अन्य अनेकों जागृत व्यक्तियों ने हजारों साल पहले अनुभव कर लिया था, जो उन्होंने आगे आने वाली हमारी जैसी पीढ़ियों के फायदे के लिए **अध्यात्म शास्त्रों** में लिखकर छोड़ा। विशेषकर **योगवासिष्ठ** ग्रंथ में इन तथ्यों का बड़ा सुंदर और वैज्ञानिक जैसा वर्णन है। कभी उसका इतना आकर्षण होता था कि उसको शांति से पढ़ने के लिए या उसे पढ़कर कई लोग घरबार छोड़कर ज्ञानप्राप्ति के लिए निर्जन आश्रम में चले जाते थे। यह पाठक को **क्वांटम** या **पारलौकिक** जैसे आयाम में स्थापित कर देता है। इसमें **पूनरुक्तियां** बहुत ज्यादा हैं, इसलिए बारबार एक ही चीज को विभिन्न आकर्षक तरीकों से दोहराकर यह **माइंडवाश** जैसा कर देता है। कट्टर भौतिकवादी कह सकते हैं कि जागृति से अनुभव हुए आत्माकाश के अंदर मानसिक सूक्ष्म जगत के बारे में तो यह बात सही है, पर बाहर के स्थूल भौतिक जगत के बारे में यह कैसे मान लें। पर वे उसी पल यह बात भूल जाते हैं कि मन के इलावा स्थूल जगत जैसी चीज का कोई अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि मन के इलावा आदमी कुछ नहीं जान सकता। सिर्फ उस जगत की एक कल्पना कर सकते हैं, पर वह काल्पनिक जगत भी तो सूक्ष्म ही है। फिर कुछ तर्क जिज्ञासु लोग यह कल्पना कर सकते हैं कि **चेतन आकाश** को ही मूल क्यों समझा जाए, **जड़ आकाश** को क्यों नहीं, क्योंकि दुःख अभाव आदि जड़ आकाश के टुकड़े हैं।

अचेतन आकाश भी चेतन आत्माकाश में जगत की तरह आभासी व मिथ्या है

इसका जवाब जागृत लोग इस तरह से देते हैं कि **चिदाकाश-लहर** की तरह ही अचेतन आकाश का अस्तित्व भी नहीं है। वह भ्रम से अपनी आत्मा के रूप में महसूस होता है। वह भ्रम जगत के प्रति **आसक्ति** से बढ़ता है, और **अनासक्ति** से घटता है। जैसे चेतन आकाश में जगत आभासी है, उसी तरह अचेतन आकाश भी। इसीलिए **सांख्य दर्शन** अचेतन आकाश

को भी चेतन आकाश की तरह शाश्वत मानता है। हालांकि सर्वोच्च स्कूल ऑफ़ थॉट **वेदांत दर्शन** स्पष्ट करता है कि अचेतन आकाश चेतन आत्माकाश में वास्तविक नहीं आभासी है।

पूर्णता की अनुभूति भाव रूपी चेतन आकाश के अनुभव से ही होती है, अभाव रूपी अचेतन आकाश के अनुभव से नहीं

जरा गहराई से सोचें तो यह अनुभवसिद्ध भी है। किसीको अचेतन आत्माकाश के अनुभव से यह महसूस नहीं होता कि उसे सबकुछ महसूस हो गया या वह पूर्ण हो गया, उसे कुछ जानने, करने और भोगने के लिए कुछ शेष बचा ही नहीं। पर ऐसा चेतन आत्माकाश के अनुभव से महसूस होता है। इससे मतलब स्पष्ट हो जाता है कि असल में चेतनाकाश ही सत्य और अनंत है, आम अनुभव में आने वाला भौतिक जगत तो उसमें मामुली सी, व मिथ्या अर्थात आभासी तरंग की तरह है।

सृष्टि ब्रह्म की तरह अनिर्वचनीय व अनुभवरूप है

जगत कल्पनिक है, मतलब स्थूल भौतिक जगत काल्पनिक है, क्योंकि उस तक हमारी पहुंच ही नहीं है। मानसिक सूक्ष्म जगत काल्पनिक नहीं क्योंकि यह तो अनुभव होता है। हालांकि सूक्ष्म भी स्थूल के सापेक्ष ही है। जब स्थूल ही नहीं तो सूक्ष्म कैसे हो सकता है। मतलब कि स्थूल-सूक्ष्म आदि सभी विरोधी व द्वैतपूर्ण भाव काल्पनिक हैं। इसलिए जगत सिर्फ अनुभव रूप है, **अनिर्वचनीय** है। इसे ही गूंगे का गुड़ कहते हैं। हर कोई **ब्रह्म** में ही स्थित है, केवल स्तर का फर्क है। जागृत व्यक्ति ज्यादा स्तर पर, अन्य विभिन्न प्रकार के निचले स्तरों पर। पूर्ण कोई नहीं।

एक दार्शनिक थोट एक्सीपेरिमेंट

विज्ञान जो अपने को कट्टर प्रयोगात्मक, वास्तविक व वस्तुपरक मानता है, वह भी आजकल बहुत से दार्शनिक विचार-प्रयोग प्रस्तुत कर रहा है, जिन्हें भौतिक प्रयोगों से बिल्कुल भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। फिर हम थोट एक्सपेरिमेंट करने से क्यों हिचकिचाएं, क्योंकि कुण्डलिनी का क्षेत्र **भौतिक विज्ञान** से ज्यादा दार्शनिक व अनुभवात्मक है। वह **विचार-प्रयोग** है, सृष्टि के सूक्ष्मतम **मूलकण** को कुण्डलिनी योग का अभ्यास मानना। वैसे शास्त्रों से यह बात प्रमाण-सिद्ध है। **वेद-शास्त्रों** को भी भौतिक प्रत्यक्ष प्रमाण की तरह प्रत्यक्ष प्रमाण माना गया है, कई मामलों में तो भौतिक से भी ज्यादा, जैसे ईश्वर व जागृति के मामलों में।

इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही सूक्ष्मतम तरंग के क्रेस्ट या शिखा और ट्रफ या गर्त हैं

मूलकणरूपी **स्टैंडिंग वेव** वह हो सकती है, जब **स्वाधिष्ठान** चक्र और **आज्ञा चक्र** के जोड़े को या **मूलाधार** और **सहस्रार** बिंदु के जोड़े को एकसाथ अंगुली से दबाकर उनके बीच कभी **इड़ा** से शक्ति की तरंग दौड़ती है, कभी **पिंगला** से, और बीचबीच में **सुषुम्ना** से। मूलाधार **यिन** या **पाताल** या **प्रकृति** है,और आज्ञा या सहस्रार **यांग** या **स्वर्ग** या **पुरुष** है। बीच वाली सुषुम्ना नाड़ी ही मूल कण या दुनिया का असली रूप है, क्योंकि उससे ही कुण्डलिनी अर्थात मन अर्थात दुनिया का प्रदुर्भाव होता है।

अस्थायी मूलकण अल्प योगाभ्यास के रूप में है जबकि स्थायी मूलकण सम्पूर्ण योगाभ्यास के रूप में

जैसे आदमी में मूलाधार और सहस्रार के बीच में **शक्ति** का प्रवाह लगातार जारी रहता है, उसी तरह मूलकण में प्रकृति और पुरुष के बीच। इसीलिए तो तरंग लगातार चलती रहती है, कभी स्थिर नहीं होती। यह स्थिर या असली कण के जैसा है। आभासी कण उस प्रारम्भिक योगाभ्यास की तरह है, जिसमें इड़ा और पिंगला में शक्ति का प्रवाह थोड़ी-थोड़ी देर के लिए होता है, और कम प्रभावशाली होता है। इसीलिए ये अस्थायी कण थोड़े ही समय के लिए प्रकट होते रहते हैं, और आकाश में लीन होते रहते हैं।

पार्टिकल मूलाधार से सहस्रार की ओर चल रही तरंग के रूप में है, जबकि एंटीपार्टिकल सहस्रार से मूलाधार को वापिस लौट रही तरंग के रूप में है

सृष्टि के अंत में सभी कणों के एंटीपार्टिकल पैदा हो जाएंगे जो एकदूसरे को नष्ट करके प्रलय ले आएंगे

मूलाधार यहाँ प्रकृति का प्रतीक है, और सहस्रार पुरुष का। उपरोक्त अस्थायी आभासी कण **प्लस और माइनस** रूप के दो विपरीत कणों के रूप में पैदा होते रहते हैं। इसका मतलब है कि कभी न कभी स्थायी मूलकणरूपी तरंग भी खत्म होगी ही, बेशक सृष्टि के अंत में। फिर विपरीत मूलकण रूपी तरंग सहस्रार से मूलाधार मतलब पुरुष से प्रकृति की तरफ उल्टी दिशा में चलेगी। ऐसे में हरेक प्लस मूलकण के ठीक उलट माइनस मूलकण बनेंगे। इससे **मूलकण और प्रतिमूलकण** एकदूसरे से जुड़कर एकदूसरे को निगल जाएंगे, और सृष्टि का अंत हो जाएगा। इसीको **प्रलय** कहते हैं। फिर लम्बे समय तक कोई तरंग नहीं उठेगी। इसे ही **नारायण का योगनिद्रा** में जाना कहा गया है। मतलब निद्रा में तो है,

पर भी अपने पूर्ण आत्मजागृत स्वरूप में स्थित है। विज्ञान कहता है कि पार्टिकल के बनते ही एंटीपार्टिकल भी बन जाता है, पर वह कहीं गायब हो जाता है। हो सकता है कि सृष्टि के अंत में वे एंटीपार्टिकल दुबारा वापस आ जाते हों।

इस समय एंटीपार्टिकल गुरुत्वाकर्षण के रूप में हैं

मैं यह इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि कई वैज्ञानिक किस्म के लोग भी ऐसा ही कह रहे हैं। ग्रेविटी अंतरिक्ष में गड्ढे की तरह है। तरंग का आधा भाग भी गड्ढे की तरह होता है। दोनों किसी बल के कारण मिल नहीं पाते। इसलिए कण से निर्मित ग्रेविटी कण को अपनी तरफ खिंचती तो है, पर पूरी तरह उससे मिल नहीं पाती। जब तरंग का ऊपर का आधा भाग ही दिखता है, तो वह कण की तरह ही दिखता है। जब ग्रेविटी का गड्ढा भी उसके साथ देखा जाता है, तो वह कण तरंग रूप में आ जाता है। इसका मतलब है कि प्रलय के समय **गुरुत्वाकर्षण** ही सारी सृष्टि को निगल जाएगा।

क्वांटम ग्रेविटी का अस्तित्व है

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि **इलेक्ट्रोन, क्वार्क** आदि मूलकणों की भी ग्रेविटी है। यह सूक्ष्म कण द्वारा निर्मित अंतरिक्ष के आभासी सूक्ष्म गड्ढे के जैसे एंटीपार्टिकल के रूप में है। इसे विज्ञान ढूंढ नहीं पा रहा है, पर क्वांटम ग्रेविटी के अस्तित्व को नकार भी नहीं पा रहा है।

मूल तरंग का पहला नोड प्रकृति है, और दूसरा नोड पुरुष है

ये चित्रोक्त बिंदू स्टैंडिंग वेव के दो नोड हैं। एक कोने पर ब्लू डॉट **नेगेटिव** या **नॉर्थ पोल** नोड है और दूसरे कोने पर रेड डॉट **पॉजिटिव या साउथ पोल नोड** है। दोनों तरफ को झूलती तरंग ही सृष्टि बनाने के लिए इच्छा या सोचविचार है। केंद्रीय रेखा ही **ध्यान** रूपी या भाव रूप **सुषुम्ना** है, जो सृष्टि बनाने का पक्का निश्चय है। इसीलिए कहते हैं कि **ब्रह्मा** ने ध्यान रूपी **तप** से सृष्टि को रचा। मतलब प्रकृति एक नोड है और पुरुष दूसरा नोड। वैसे भी सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति-पुरुष संयोग से मानी गई है। प्रकृति अंधेरा आसमान है, और पुरुष स्वयंप्रकाश आकाश है। दोनों शाश्वत हैं। प्रकृति नेगेटिव नोड है, और पुरुष पॉजिटिव नोड है। इन दोनों के बीच बनने वाली स्थिर तरंग ही सबसे छोटा मूलकण है। इस तरह के कण आकाश में पॉप आउट होते रहते हैं और उसीमें मर्ज होते रहते हैं। इनको किसी चीज से जब स्थिरता मिलती है तो ये आगे से आगे जुड़कर अनगिनत कण बनाते हैं। इससे सृष्टि का विस्तार होता है। इसका मतलब कि सृष्टि का प्रत्येक कण योग कर रहा है। **पूरी सृष्टि योगमयी** है।

मूलकण एक कुण्डलिनी योगी है, जो कुण्डलिनी ध्यान कर रहा है

सूक्ष्मतम तरंग की नोड से नोड के बीच की न्यूनतम दूरी प्लैंक लेंथ बनती है

वैज्ञानिकों को क्वार्क से छोटा कोई कण नहीं मिला है। यह भी हो सकता है कि क्वार्क से छोटी तरंगें भी हैं, जैसा कि **स्ट्रिंग थ्योरी** कहती है, पर वे क्वार्क के स्तर तक बढ़ कर ही अपने को कण रूप में दिखा पाती हैं। केवल कण के स्तर पर ही तरंगें पकड़ में आती हैं। हो सकता है कि सबसे छोटी तरंग प्लेंक लेंथ के बराबर है, जो सबसे छोटी लम्बाई संभव है। उस प्लैंक तरंग का एक नोड प्रकृति है, और दूसरा पुरुष। वैसे प्रकृति और पुरुष एक ही हैं, केवल आभासी अंतर है। इस तरह प्लैंक लेंथ भी वास्तविक नहीं आभासिक है। आकाश में तरंग भी तो आभासी ही हो सकती है, असली नहीं। प्रकृति मतलब मूलाधार से एक शक्ति की तरंग पुरुष मतलब सहस्रार की तरफ उठती है, मतलब देव ब्रह्मा योगरूपी तप के लिए ध्यान लगाते हैं। वह तरंग इड़ा और पिंगला के रूप में बाईं और दाईं तरफ बारी-बारी से झूलने लगती है, मतलब ब्रह्मा ध्यान में डूबने की कोशिश करते हैं। ध्यान थोड़ा स्थिर होने पर शक्ति की तरंग बीच वाली आभासी जैसी सुषुम्ना नाड़ी में बहने लगती है। इसीलिए कण भी आभासी या एज्यूम्ड ही है, असली तो तरंग ही है। इससे कुण्डलिनी चित्र मन में स्थिर हो जाता है, मतलब पहला और सबसे छोटा मूलकण बनता है। फिर तो आगे से आगे सृष्टि बढ़ती ही जाती है। आज भी तो सारी सृष्टि बाहर के खुले व खाली अंतरिक्ष की तरफ भाग रही है, मतलब वही मूल स्वभाव बरकरार है कि प्रकृति से पुरुष की तरफ जाने की होड़ लगी है। सृष्टि की हरेक वस्तु और जीव का एक ही मूल स्वभाव है, अचेतनता से चेतनता की ओर भागना।
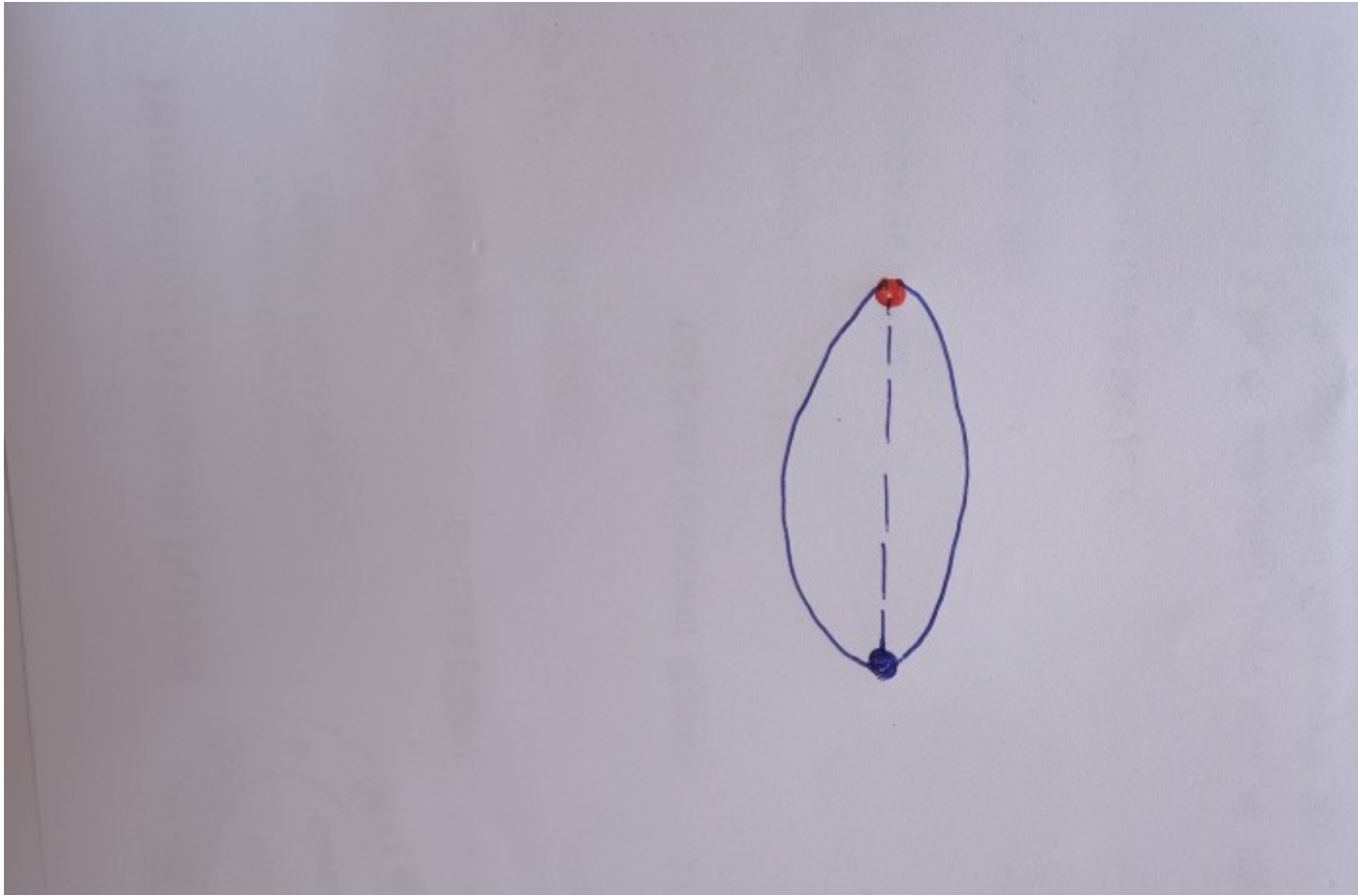
मूलकण

कुण्डलिनी योग भी एक लहर ही है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में एक **विचार-प्रयोग** के माध्यम से बता रहा था कि सृष्टि के अंत में कैसे **गुरुत्वाकर्षण** सभी चीजों को निगल जाएगा। कई वैज्ञानिक भी ऐसा ही अंदाजा जता रहे हैं, जिसे **बिग क्रन्च** नाम दिया गया है।
साथ में मूलकण के तरंग स्वभाव के बारे में भी बात चली थी। हवा, पानी आदि भौतिक तरंगों के मामले में देखने में आता है कि क्रेस्ट और ट्रफ एकसाथ नहीं बन सकते। जब क्रेस्ट बनाने के लिए जल सतह से ऊपर की तरफ उठेगा, तो उसी समय उसी जगह पर वह ट्रफ के रूप में सतह के नीचे नहीं डूब सकता। पर आकाश की तरंग के मामले में ऐसा हो सकता है, क्योंकि यह आभासी है, और इसके लिए किसी भौतिक वस्तु या माध्यम की जरूरत नहीं है। इसीलिए एकसाथ **त्रिआयामी क्रेस्ट और ट्रफ** बनने से मूलतरंग मूलकण की तरह भी दिखती है, और उसके जैसा व्यवहार भी करती है, जैसा कि पिछली पोस्ट में चित्रोक्त किया गया है। मूलकण रूपी तरंग ऐसे ही क्रेस्ट और ट्रफ बनाते हुए आगे से आगे बढ़ती रहती है, क्योंकि **प्रकृति और पुरुष** हर जगह विद्यमान हैं, और प्रकृति से पुरुष की तरफ दौड़ हर जगह चली रहती है। इसीलिए मूलकण कई जगह एकसाथ दिखाई देते हैं।

पिछले क्रेस्ट से अगला ट्रफ बनता है, और पिछले ट्रफ से अगला क्रेस्ट, क्योंकि प्रकृति को **सीमेट्री** प्यारी है। इस तरह अनगिनत तरंगों के रूप में अंतरिक्ष में अनगिनत सूक्ष्म लूप बन जाते हैं। मतलब पूरा आकाश लूपों में बंटा हुआ सा लगता है। **क्वांटम लूप थ्योरी** भी यही कहती है कि अंतरिक्ष सपाट न होकर सूक्ष्मतम टुकड़ों में बंटा है। उससे छोटे टुकड़े नहीं हो सकते। पर अगर सिद्धांत से देखा जाए तो हरेक चीज टूटते हुए सबसे छोटी जरूर बनेगी। वह विशेषता से रहित शून्य आसमान ही है। जिसे अंतरिक्ष का क्वांटम लूप कहा गया है, वह दरअसल शून्य अंतरिक्ष का अपना स्वाभाविक रूप नहीं है, बल्कि **अंतरिक्ष** में आभासी मूलकण है। इससे इन सभी बातों का उत्तर मिल जाता है कि तरंग कण के जैसे क्यों व्यवहार करती है, **स्टैंडिंग वेव** और **प्रॉपेगेटिंग वेव** कैसे बनती है आदि। कोई भी लहर वास्तव में ध्यानरूप ही है, जैसा पिछली पोस्ट में बताया गया है। **इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना** नाड़ियाँ लहर के रूप में ही चलती हैं। लहर में कोई चीज आगे नहीं बढ़ती, लहर बनाने वाली चीज केवल अपने स्थान पर आगे-पीछे या ऊपर-नीचे कांप कर अपनी पूर्ववत जगह पर आ जाती है। केवल लहर आगे बढ़ती है। वैसे भी **शून्य** जैसे अंतरिक्ष में कोई चीज है ही नहीं प्रकट होने को। इसलिए एकमात्र लहर का ही विकल्प बचता है। वहाँ तो अपनी जगह पर कांपने के लिए भी कोई चीज नहीं है। इसलिए झूठमूठ में ही कंपन दिखाया जाता है। यह नहीं पता कि कैसे। प्रकाश जिसको ईश्वररूप या दैवरूप माना जाता है, लहर के रूप में ही चलता है। इसी तरह अग्नि भी।

नाड़ी की गति भी लहर के रूप में ही होती है

नाड़ी में संवेदना लहर के रूप में आगे बढ़ती है। इसमें **सोडियम-पोटाशियम पम्प** काम करता है। सोडियम और पोटाशियम आयन अपनी ही जगह पर नाड़ी की दीवार से अंदर-बाहर आते-जाते रहते हैं, और संवेदना की लहर आगे बढ़ती रहती है।

लहर सूचना को आगे ले जाती है

तालाब में कहीं पर कंकड़ मारने से उसके पानी पर लहर पैदा होकर चारों तरफ फैल जाती है। उससे जलीय जंतु संभावित खतरे से सतर्क हो जाते हैं। जमीन पर चलने से उस पर एक लहर पैदा हो जाती है, जिसे सांप आदि जंतु पकड़कर सतर्क हो जाते हैं या भाग जाते हैं। वायु से आवाज के रूप में सूचना संप्रेषण के बारे में तो सभी जानते हैं। मूलाधार से संवेदना की लहर सहस्रार तक जाती है, जिससे सहस्रार सतर्क अर्थात क्रियाशील हो जाता है। सतर्क कालरूपी शत्रु से होता है, जो हर समय मौत के रूप में आदमी के सामने मुंह बाँए खड़ा रहता है। इसलिए **सहस्रार अद्वैत** के साथ सांसारिक अनुभूतियों के रूप में जागृति या **आध्यात्मिक जीवनयापन** के लिए प्रयास करता है। वैसे दुनियादारी में सफलता भी सहस्रार से ही मिलती है, क्योंकि वही अनुभूति का केंद्र है।

जीवात्मा विद्युतचुंबकीय तरंगों की सहायता से अपने अंदर आभासी संसार को महसूस करता है

नाड़ी में **चार्जड पार्टिकलस** की गति से आसपास के आकाश में विद्युत्चुंबकीय तरंग बनती है। उस तरंग से सहस्रार के **आत्म-आकाश** में आभासी तरंगें बनती महसूस होती हैं। इसीलिए कहते हैं कि आत्मा का स्थान सहस्रार है। यह आश्चर्य की बात है कि अनगिनत स्थानों पर विद्युत्चुंबकीय तरंगों से आकाश में अनगिनत आभासी कलाकृतियाँ बनती रहती हैं, पर वे केवल जीवों के मस्तिष्क के सहस्रार में ही आत्मा को महसूस होती हैं। अगर उसकी बनावट व उसकी कार्यप्रणाली की सही जानकारी मिल जाए तो हो सकता है कि **कृत्रिम जीव** व **कृत्रिम मस्तिष्क** का निर्माण भी **विज्ञान** कर पाए।

कुण्डलिनी योग से ही ब्रह्माण्ड एक देवता या विशालकाय एलियन बनता है

शून्य में विद्युत्चुंबकीय तरंग

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि **विद्युत्चुंबकीय क्षेत्र** या तरंग से मानसिक दुनिया बनती है। तो फिर यह क्यों न मान लिया जाए कि बाहर का भौतिक संसार भी इन्हीं तरंगों से बनता है। यही अंतर है कि **मानसिक संसार** में ये तरंगें अस्थिर होती हैं, और आँखों आदि इन्द्रियों के माध्यम से बाहर से लाई जा रही सूचनाओं के अनुसार लगातार बदलती रहती हैं, पर बाहर के स्थूल जगत में ये किसी बल से स्थिरता पाकर **स्थायी मूलकणों** की तरह व्यवहार करने लगती हैं, जिनसे दुनिया आगे से आगे बढ़ती जाती है। दिमाग़ में तो विद्युत्चुंबकीय तरंग मूलाधार से आ रही ऊर्जा से बनती है, पर बाहर शून्य अंतरिक्ष में यह ऊर्जा कहाँ से आती है, यह खोज का विषय है।

फील्ड से कण और कण से फील्ड का उदय

क्वांटम फील्ड थ्योरी सबसे आधुनिक और स्वीकृत है। इसके अनुसार हरेक कण और बल की एक सर्वव्यापी फील्ड मौजूद होती है। फील्ड मतलब प्रभाव क्षेत्र, कण की फील्ड मतलब कण का प्रभाव क्षेत्र। अंतरिक्ष शून्य नहीं बल्कि इन फील्डों से भरा होता है। फील्ड मतलब पोटेंशल, तरंग व कण बनाने की योग्यता। यह फील्ड एक सबसे हल्के स्तर की लहर होती है। मुझे लगता है यह ऐसे है कि जब एक कंकड़ एक जल-सरोवर में गिराया जाता है तो एक मुख्य लहर के साथ छोटी लहरों के झुंड के रूप में विक्षोभ पैदा होता है। मुख्य बड़ी तरंग कण के समान है और छोटी तरंगें उसके क्षेत्र या फील्ड के समान हैं। जिस क्षेत्र तक इन सूक्ष्म तरंगों का अनुभव होता है, वह कण के रूप में स्थित उस मुख्य तरंग का फील्ड का दायरा होता है। जब **इलेक्ट्रोन की फील्ड** में किसी पॉइंट को एनर्जी मिलती है तो वहां फील्डरूपी छोटी लहर का एम्प्लीचूड या आयाम बढ़ जाता है, और वहाँ एक कण का उदगम होता है। वह इलेक्ट्रोन है। ये आधारभूत फील्ड सबसे छोटे कण **क्वार्क** से भी सूक्ष्म होती हैं। इसी तरह इलेक्ट्रोन के चारों तरफ भी एक फील्ड बनती है। मतलब इलेक्ट्रोन रूपी बड़ी लहर के चारों तरफ भी एक सूक्ष्म लहरों का क्षेत्र बन जाता है। वह **प्रोटोन** से भी इसी **इलेक्ट्रोमेग्नेटीक फील्ड** से ही दूर से आकर्षित होकर उससे जुड़ जाता है। इस आकर्षण की फील्ड तरंगों से भी विशेष सूक्ष्म कण सम्भवतः फोटोन पैदा होता है, जो इस आकर्षण को क़ायम करता है। इस तरह फील्ड से कण और कण से फील्ड पैदा होकर बाहर की स्थूल संसार रचना को आगे से आगे बढ़ाते रहते हैं।

अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त से अव्यक्त का उदय

मन भी तो क्वांटम फील्ड की तरह होता है। इसमें हरेक किस्म का संकल्प अदृष्य रूप अर्थात अदृष्य लहर के रूप में रहता है। इसे सांख्य दर्शन के अनुसार अव्यक्त कहते हैं। जब इसे मूलाधार से एनर्जी मिलती है, तब इस **मानसिक क्वांटम फील्ड** की लहरें बड़ी होने लगती हैं, जो स्थूलकण रूपी चित्रविचित्र संसार पैदा करती हैं। उससे और फील्ड पैदा होती है, जिससे और विचार पैदा होते हैं। इस तरह यह सिलसिला चलता रहता है और आदमी के विचार रुकने में ही नहीं आते। अव्यक्त से व्यक्त और व्यक्त से अव्यक्त पैदा होकर भीतरी मानसिक संसार रचना को आगे से आगे बढ़ाते रहते हैं।

क्वांटम भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक मनोविज्ञान के बीच समानता

प्रकृति या **अव्यक्त** ही वह हल्के स्तर की आधारभूत लहर है। अव्यक्त व्यक्त से ही बना है, अव्यक्त मतलब हल्के स्तर का व्यक्त। हालांकि उसके मूल में भी निश्चेष्ट या **अवर्णनीय पुरुष** ही है। अंत के पैराग्राफ में बताऊंगा कि निश्चेष्ट या गतिहीन पुरुष क्यों कुछ काम नहीं कर पाता। क्यों उसे मूक दर्शक की तरह माना जाता है, जो अपनी उपस्थिति मात्र से प्रकृति की मदद तो करता है, पर खुद कुछ नहीं करता। सारा काम प्रकृति ही करती है। पुरुष अर्थात शुद्ध आत्मा एक **चुंबक** की तरह है जिसकी तरफ खिंच कर ही प्रकृति से सब काम अनायास ही खुद ही होते रहते हैं। इसीलिए कहते हैं कि जो भगवान के सहारे है, उसका जीवन खुद ही अच्छे से कट जाता है। पर **भगवान** असली और अच्छी तरह से समझा हुआ होना चाहिए, जो **कुण्डलिनी योग** से ही संभव है। जैसे हमारा हरेक कर्म और विचार संस्कार रूप से पहले से ही सूक्ष्म रूप में हमारी अव्यक्त प्रकृति के रूप में मौजूद होता है, जिसे **सूक्ष्म शरीर** कहते हैं, उसी तरह हरेक क्वांटम कण भी अपनी क्वांटम फील्ड के रूप में पहले से ही मौजूद होता है। **व्यष्टि मूलाधार** मतलब शारीरिक मूलाधार से मिल रही शक्ति से व्यष्टि अव्यक्त मतलब शरीरबद्ध अव्यक्त या व्यष्टि फील्ड में क्षोभ पैदा होता है, जिससे विभिन्न लहरों के रूप में विचारों मतलब व्यष्टि मूलकणों का उदय होता है। इसी तरह **समष्टि मूलाधार** अर्थात ब्रह्माण्डव्याप्त मूलाधार अर्थात मूल प्रकृति से उत्पन्न शक्ति से समष्टि क्वांटम फील्ड में क्षोभ पैदा होता है, जिससे समष्टि मूलकण पैदा होते हैं। पर समष्टि जगत में ये शक्ति कहाँ से आती है? **दार्शनिक** तौर पर तो मूल प्रकृति को समष्टि मूलाधार मान सकते हैं, क्योंकि दोनों में मूल शब्द जुड़ा है, और दोनों ही सब सांसारिक रचनाओं के मूल आधार या नींव के पहले पत्थर हैं हैं, पर इसे वैज्ञानिक रूप से कैसे सिद्ध करेंगे? व्यष्टि के मूलाधार की तरह समष्टि मूलाधार में भी कोई **सम्भोग** क्रिया और उससे उत्पन्न सम्भोग-शक्ति होनी चाहिए। तो उसे पुरुष और प्रकृति के बीच सम्भोग क्यों न माना जाए, जिसका इशारा शास्त्रों में किया गया है।

संतानोत्पत्ति की प्रक्रिया तांत्रिक कुण्डलिनी योग का भौतिक मार्ग ही है

दरअसल जीवों का जो अव्यक्तरूप सूक्ष्म शरीर है, वह मरने के बाद और भी सूक्ष्म हो जाता है, क्योंकि उस समय उसे स्थूल शरीर से बिल्कुल भी ऊर्जा नहीं मिल रही होती है। वह एक घने अँधेरे **आत्माकाश** की तरह हो जाता है, जिसका अंधेरा उसमें छिपे हुए अव्यक्त जगत के अनुसार होता है। वह अव्यक्त जगत भी व्यक्त जगत के अनुसार ही होता है। इसीलिए सब जीवों के सूक्ष्म शरीर उनके स्थूल स्वभाव के अनुसार अलग-अलग होते हैं। इस तरह से बहुत से जीवों के अव्यक्त आत्माकाश जब समष्टि **अव्यक्ताकाश मतलब मूल प्रकृति** के साथ कंधे से कंधा मिलाकर एक निश्चित सीमा से ज्यादा अव्यक्त भाव अर्थात अंधकारमय आकाश बना देते हैं, तब वहाँ से एक शक्ति की लहर पुरुष की तरफ छलांग लगाती है। इसी से क्वांटम फील्ड में लहरों का एम्प्लीच्युड आदि बढ़ने से मूलकणों का उदय और सृष्टि का विस्तार शुरु होता है। यह ऐसे ही है जैसे कभी कोई आदमी अपनी सहन-सीमा से ज्यादा ही **गम या अवसाद के अँधेरे में** डूबने लग जाए, तो वह सम्भोग की सहायता से अपने मूलाधार के अँधेरे में डूबे अपने अव्यक्त मानसिक जगत को ऊपर चढ़ती हुई शक्ति के साथ **सहस्रार** की तरफ भेजने की कोशिश करता है, ताकि उसके विचारों का मानसिक संसार पुनः प्रकाशित होने लगे। शक्ति तो खुद एक वाहक या बल है, जो अव्यक्त जगत को व्यक्त बनाने में मदद करती है। शास्त्रों में भी यही कहा है कि जब जीवों के कर्म, फल देने को उन्मुख हो जाते हैं, अर्थात जब जीव अंधकार से ऊबने जैसे लगते हैं, तब वे **प्रलय** के बाद पुनः **सृष्टि** को प्रारम्भ करने की प्रेरणा देते हैं। यह सामूहिक अर्थात समष्टि सृष्टि और प्रलय है। व्यक्तिगत सृष्टि और प्रलय तो हरेक जीव के जन्म और मरण के साथ चली ही रहती है। सहज व प्राकृतिक मृत्यु के बाद कुछ समय तो जीव चैन की बंसी बजाता हुआ अव्यक्त में आराम करता है, फिर जल्दी ही उससे **ऊब** जाता है। इसलिए उस अव्यक्तरूप जीव को व्यक्त करने के लिए शक्ति पुरुष की तरफ बढ़ने की कोशिश करना चाहती है। देखा जाए तो शक्ति जाती कहीं नहीं है, क्योंकि पुरुष, प्रकृति और शक्ति तीनों व्यष्टि मूल प्रकृति में साथ-साथ ही रहते हैं। ऐसे ही जैसे अव्यक्त, व्यक्त और उनको बनाने वाली शक्ति मस्तिष्क में ही रहते हैं, पर अव्यक्त जगत मूलाधार से ऊपर चढ़ता हुआ महसूस होता है, क्योंकि पुरुष या मस्तिष्क की शक्ति को प्रेरित करने वाला विशेष **सेकसुअल बल** मूलाधार से ऊपर चढ़ता है। उसके लिए सम्भोग के माध्यम से एक आदमी और एक औरत का आपसी मिलन जरूरी होता है। संयोगवश उस मृत जीव की जीवात्मा किसी सम्भोगरत आदमी और औरत के जोड़े के मिश्रित मूलाधार में स्थित अव्यक्त जगत से मेल खाती है। दोनों का मिश्रित अव्यक्त जगत संभोग-शक्ति के माध्यम से ऊपर उठते हुए दोनों के हरेक चक्रौं में दबी हुई भावनाओं व छिपे हुए विचारों को अपने साथ ले जाकर सहस्रार में आनंद के साथ व्यक्त हो जाता है, और एकदूसरे के सहस्रार चक्रौं में आपस में मिश्रित ही बना रहता है। आदमी के सहस्रार से वह मिश्रित जगत आगे के चैनल से शक्ति के साथ नीचे उतरकर **वीर्य** में रूपांतरित होकर औरत के **गर्भ** में प्रविष्ट होकर एक बालक का निर्माण करता है। इसीलिए बालक में माता और पिता दोनों के गुण

मिश्रित होते हैं। इसीलिए **मांबाप** के व्यवहार का बच्चों पर गहरा असर पड़ता है, क्योंकि तीनों की एनर्जी आपस में जुड़ी होती है। **इसीलिए व्यवहार में देखा जाता है कि सम्भोग सुख के साथ प्रेम से रमण करने के आदी दम्पत्ति की संतानें बहुत तरक्की करती हैं, भौतिक रूप से भी और आध्यात्मिक रूप से भी। इसके विपरीत आपस में अजनबी जैसे रहने वाले दंपत्तियों के बच्चे अक्सर कुंठित से रहते है**ं। यह अलग बात है कि कई अच्छी किस्मत वाले लोग इधरउधर से गुजारा कर लेते हैं। हाहा। अनुभवी **तंत्रयोगी** सम्भोग की, जगत को व्यक्त करने वाली कुण्डलिनी शक्ति को अपने सहस्रार में केवल एक ही **ध्यानचित्र** पर **फोकस** करते हैं, और उसे वीर्य रूपी **बीज** में नीचे न उतारकर लम्बे समय तक वहीं रोककर रखते हैं, जिससे वह मानसिक चित्र जागृत हो जाता है। इसे ही **तांत्रिक कुण्डलिनी जागरण** कहते हैं।

पूरा ब्रह्माण्ड ही एक एलियन

इन उपरोक्त तथ्यों का मतलब है कि ब्रह्माण्ड भी एक **विशालकाय जीव** या मनुष्य की तरह व्यवहार करता है। इससे वैदिक उक्ति, **"यत्पिंडे तत् ब्रह्मान्डे"** यहाँ भी वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो जाती है। इसका मतलब है कि जो कुछ भी छोटी चीज जैसे शरीर में है, वही ब्रह्माण्ड में भी है, अन्य कुछ नहीं। **पिंड** यहाँ **शरीर** को ही कहा है, अन्य किसी चीज को नहीं, क्योंकि किसीकी मृत्यु के बाद जब उसे **श्राद्ध** आदि के द्वारा खाने-पीने की चीजें दी जाती हैं, उसे **पिंडदान** कहते हैं। क्योंकि अगर हरेक छोटी चीज के बारे में कहना होता तो अंडे, खंडे आदि दूसरे शब्द ज्यादा बेहतर होते, पिंडे नहीं। दूसरा, **पंजाबी भाषा** में वह स्थान जहाँ लोग सामूहिक रूप से एकसाथ रहते हैं, जिसे गाँव कहते हैं, वह पिंड कहलाता है। मूल प्रकृति ब्रह्माण्ड का मूलाधार है, और चेतन पुरुष या परमात्मा इसका सहस्रार या उसमें कुण्डलिनी जागरण है। चित्रविचित्र संसारों की रचना के रूप में ही इसका जीवनयापन या **कर्मयोग** या इसका कुण्डलिनी जागरण की तरफ बढ़ना है। ऐसा यह **अद्वैत** के साथ करता है। शास्त्रों में ऐसा ही लिखा है कि **ब्रह्मा** खुद कहते हैं कि वे अद्वैतभाव के साथ सृष्टि की रचना करते हैं, जिससे वे **जन्ममरण के बंधन** में नहीं पड़ते। इसलिए यही इसका कुण्डलिनी योग है। अद्वैत और कुण्डलिनी योग आपस में जुड़े हुए हैं। सृष्टि का संपूर्ण निर्माण ही इसका कुण्डलिनी जागरण है। जैसे कुण्डलिनी जागरण के बाद आदमी को लगता है कि उसने सबकुछ कर लिया, इसी तरह सबकुछ कर लेने के बाद ब्रह्मा को कुण्डलिनी जागरण होता है, यह इसका मतलब है। इसके बाद सृष्टि निर्माण से उपरत होकर इसका **संन्यास** लेना ही सृष्टि विस्तार का धीमा पड़ना और रुक जाना है। देहांत के बाद इसका **परम तत्त्व** में मिल जाना ही प्रलय है। शास्त्रों में इसीलिए देव ब्रह्मा की कल्पना की गई है, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही जिसका शरीर है। आजकल **विज्ञान** भी इस अवधारणा पर विश्वास करने लग गया है। इसीलिए एक **वैज्ञानिक थ्योरी** यह भी सामने आ रही है कि हो सकता है कि पूरा ब्रह्माण्ड ही एक विशालकाय एलियन हो।

जिसे हम अंधेरनुमा शून्य या अव्यक्त कहते हैं, वह भी खाली नहीं बल्कि सीमित उतार-चढ़ाव वाली जगतरूपी तरंगों से भरा होता है

अगर चैतन्यमय आत्माकाश या परमात्मा में कोई बहुत ज्यादा स्थित हो जाए या लगातार आत्माकाश में ही स्थित रहने लगे तो वह कुछ काम भी नहीं कर सकता। वह **पराश्रित** व नादान सा रहता है संन्यासी की तरह। इसका मतलब है कि उस समय उसमें व्यक्त दुनिया अव्यक्त आकाश के रूप में नहीं रहती। मतलब वह शुद्ध आत्माकाश बन जाता है। मतलब उसके आत्माकाश में क्वांटम फील्ड नाम की बिल्कुल भी **वाइब्रेशनस** नहीं रहतीं। वह पूर्ण चिदाकाश बन जाता है। इसी वजह से स्थूल ब्रह्माण्ड में भी उस जगह आकाश खाली होता है, जहाँ वाइब्रेशन नहीं होतीं। अन्य स्थान **ग्रहों-सितारों** से भरे होते हैं। **वर्चुअल पार्टिकल** तो बनते रहते हैं थोड़ी-बहुत वाइब्रेशन से। मतलब थोड़ा-बहुत काम-वाम तो वे संन्यासी भी कर लेते हैं, पर कोई निर्णायक कार्य-अभियान या व्यापार-धंधा नहीं चला पाते। हाँ, एक बीच वाला हरफनमौला तरीका भी है कि तांत्रिक योग से आत्माकाश में लगातार **कंपन** बनाते भी रहो और मिटाते भी रहो, और सबकुछ करते हुए भी उससे अछूते बने रहो।

कुण्डलिनी योग विज्ञान ब्लैक होल में भी झाँक सकता है

शिव की तरह शक्ति भी शाश्वत है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि शक्ति कहाँ से आती है। **शाक्त** कहते हैं कि शिव की तरह शक्ति भी शाश्वत है। यह मानना ही पड़ेगा, क्योंकि अगर शक्ति नाशवान है, तब वह सृष्टि के प्रारम्भिक **शून्य आकाश** में कहाँ से आती है। अगर शिव को ही एकमात्र अविनाशी और मूल तत्त्व माना जाए तो एक नया स्पष्टीकरण है। **सूक्ष्मशरीर** रूपी **क्वांटम फ्लकचूएशनस** आत्मा में रिकॉर्ड हो जाती हैं। उन क्वांटम फ्लकचूएशनस के अनुसार ही आत्मा में अंधेरा होता है। मतलब क्वांटम फ्लकचूएशनस की किस्म और मात्रा के अनुसार ही आत्मा का अंधेरा भिन्नता रखता है। यह नियम **व्यष्टि और समष्टि,** दोनों ही मामलों में लागू होता है। इसे ही कारण शरीर कहते हैं। आत्मा का वही अंधेरा फिर सृष्टि के प्रारम्भ में अपने अनुसार पुनः क्वांटम फ्लकचूएशन पैदा करता है। मतलब **कारण शरीर** या कारण ब्रह्माण्ड सूक्ष्मशरीर या **सूक्ष्म ब्रह्माण्ड** के रूप में आ जाता है। उससे फिर स्थूल शरीर या स्थूल ब्रह्माण्ड बन ही जाता है। पर प्रश्न फिर भी बचा ही रहता है। फौरी तौर पर तो यही उत्तर बनता है कि अँधेरे अंतरिक्ष के रूप में शक्ति अर्थात कारण शरीर तो रहता है, पर अनुभव के रूप में उसका अपना अस्तित्व नहीं होता, अनुभव के रूप में वह परमात्मा शिवरूप ही होता है। या कह लो कि शक्ति शून्य शिव से एकाकार हो जाती है।

सृष्टि के प्रारम्भ में शक्ति शिव से अलग होकर सृष्टि की रचना प्रारम्भ करती है

जैसे सरोवर का जल हमेशा हिलता रहता है वैसे ही **अंतरिक्ष** में हमेशा **सूक्ष्म तरंगें** उठती रहती हैं। दोनों में कभी हवा आदि से लहरें ज्यादा बढ़ जाती हैं। यही **एनर्जी से कण** का उदय है। अंतरिक्ष में ये तरंगें आकाशीय पिंडों के आपस में टकराने से बनती हैं। यह तो वैज्ञानिक भी बोलते हैं कि जब अंतरिक्ष में ज्यादा उथलपुथल मचती है, तो नए **ग्रहों व सितारों** आदि का ज्यादा निर्माण होता है। पर शुरुआत के शून्य अंतरिक्ष में यह उथलपुथल कैसे मचती है, यह खोज का विषय है।

ब्लैक होल में ब्रह्माण्ड के जन्म और मृत्यु का राज छिपा हो सकता है

तारा जब मरता है तो वह **सिंगुलेरिटी** तक कंम्प्रेस होकर ब्लैक होल बन जाता है। वह सिंगुलेरिटी **अव्यक्त आकाश** में विलीन हो जाती है, क्योंकि किसी चीज के छोटा होने की अंतिम सीमा शून्य आकाश में जाकर ही खत्म होती है। मतलब वह पहले स्बसे छोटा **मूलकण** बनता है। उसकी ग्रेविटी बहुत ज्यादा होती है। मतलब वह **क्वांटम ग्रेविटी** है। इसमें एक मूलकण से सृष्टि बनने का राज अर्थात **बिग बैंग** का राज छिपा हुआ है। जब एक मूलकण के अंदर पूरा तारा समा सकता है तो उससे पूरे तारे का उदय भी तो हो सकता है। वह पुनः-रचना **व्हाइट होल** के माध्यम से हो सकती है। तभी कहते हैं कि ब्लेक होल सृष्टि रचना की फैक्ट्री हो सकता है। हो सकता है कि सृष्टि के अंत में ग्रेविटी हावी होकर पूरे ब्रह्माण्ड या पूरी **सृष्टि** को ही ब्लैक होल बना कर खत्म कर दे। फिर पूरा अंतरिक्ष ही ब्लैक होल अर्थात अव्यक्त आकाश अर्थात अंधकारपूर्ण आकाश अर्थात **मूल प्रकृति** बन जाएगा। हालांकि उसमें पूरी सृष्टि **उच्च दबाव** में समाई होगी। अब ये नहीं पता कि वह किस रूप में उसमें होगी। जब उस परम ब्लैक होल का अंधकाररूप दबाव एक निश्चित मात्रा या समय सीमा को लांघेगा, तब **प्रलय** का अंत हो जाएगा और उसमें दबे अव्यक्त पदार्थ प्रकाशमान तरंगों के रूप में बाहर अर्थात परम व्यक्त अर्थात **परम पुरुष** की ओर प्रस्फुटित होने लगेंगे। इसे ही **प्रकृति और पुरुष** अर्थात **यिन और यांग** के बीच आकर्षण और **सम्भोग** कहा जाता है। इससे शिशु रूप में नई सृष्टि का पुनर्जन्म और विकास होगा। सम्भवतः इसीलिए शास्त्रों में अनेक स्थानों पर मन के विचारों मुख्यतः **कुण्डलिनी छवि** को भी पुत्र कह कर सम्बोधित किया जाता है। उदाहरण के लिए देव **कार्तिकेय, सगर-पुत्र** आदि। स्वाभाविक है कि सृष्टि पहले की तरह ही बनेगी क्योंकि पिछली सृष्टि के दबे पदार्थ ही उसे बना रहे हैं। नई सृष्टि बनने की प्रक्रिया और क्रम भी पुरानी की तरह ही होगा क्योंकि अक्सर देखा जाता है कि जिस क्रम में कोई चीज टूट कर नष्ट होती है, वह लगभग उसी क्रम और प्रक्रिया में आगे से आगे जुड़ते हुए पुनः निर्मित होती है। यह भी हो सकता है कि **बिग क्रन्च** होने की बजाय बिग बैंग ही चलता रहे, जिससे अंत में सभी मूलकण भी एकदूसरे से दूर छिटक कर आकाश में विलीन हो जाएं। पर बनेगा तो तब भी ब्लैक होल जैसा ही। उसमें भी सब कुछ यहाँ तक कि **प्रकाश** भी टूट कर मूल अंतरिक्ष के अँधेरे में गायब हो जाएगा।

आदमी का सूक्ष्म शरीर भी एक ब्लैक होल ही है

आदमी भी तो ऐसे ही मरता है। सारे जीवन भर मानसिक ब्रह्माण्ड का निर्माण करता है। अंत में सब कुछ अँधेरनुमा ब्लैकहोल जैसे अव्यक्त में समा जाता है। आदमी के नए जन्म पर उसके नए **मानसिक ब्रह्माण्ड** का निर्माण इसी मानसिक या **सूक्ष्म ब्लैकहोल** से होता है। मतलब जैसी सूचना उस अँधेरे में दर्ज होती है, नया ब्रह्माण्ड भी वैसा ही बनता है। तभी तो कहते हैं कि आदमी का नया जन्म उसके पुराने जन्मों के अनुसार ही होता है।

ब्लैक होल में प्रकाश तो अनगिनत सितारों जितना समाया हो सकता है, पर वह दबा हुआ या अव्यक्त होता है। यह **मृत्यु** के बाद **जीवात्मा** के सूक्ष्म शरीर अर्थात **प्रेतात्मा** की तरह है। उसमें अनेक जन्मों के जगत का प्रकाश समाहित होता है, पर वह दबा हुआ सा अर्थात अनभिव्यक्त सा होता है। ऐसा लगता है कि वह प्रकाश बाहर उमड़ने को बेताब है।

हरेक जीव एक ब्रह्माण्ड और ब्लैक होल के रूप में जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता रहता है

ब्लैक होल का अनुभवात्मक विवरण

मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि जीवात्मा का **पुनर्जन्म** एक मां के गर्भ में होता है। यह अनेक सम्भावनाओं में से एक है। जीवात्मा **सूर्य-आदि मार्गों** से भी जा सकती है, **चंद्रादि मार्ग** से भी, **स्वर्ग** भी जा सकती है और **नर्क** भी, किसी भी ग्रह या **लोक-परलोक** को जा सकती है, **मुक्त** भी हो सकती है, और **बद्ध** भी रह सकती है। इसका असली अनुभव तो ज्ञानी **ऋषियों** ने ही किया था, जिसका वर्णन उन्होंने **वेद-शास्त्रों** में किया है। हम तो उन्हींके अनुभवों की वैज्ञानिक विवेचना करने की कोशिश करते हैं। मेरा अनुभव तो यही है कि मैंने एकबार अपने मृत परिचित की जीवात्मा को अनुभव किया था। वह ब्लैक होल की तरह थी, मतलब उसमें उस आदमी का पूरा व्यक्तित्व समाया हुआ था, जो उसकी जीवित अवस्था से भी ज्यादा अनुभव हो रहा था, उसके पिछले सभी जन्मों के प्रभाव के साथ, पर फिर भी सबकुछ अंधेरनुमा ही था, हालांकि अंतहीन खुले आसमान की तरह। वैसे ही, जैसे ब्लैक होल में पूरा विश्व समाया होता है। ऐसा लग रहा था जैसे उनका जीवित अवस्था का प्रकाशमान जगत अर्थात उनका **जीवनयात्रा** की शुरुआत से लेकर अब तक का पूरा पिछला व्यक्तित्व किसी दबाव से दबा था, इससे वह अवस्था **कज्जली** या चमकीली काली थी, मतलब चेतना व **सेल्फ अवेयरनेस** अर्थात **आत्मजागरूकता** से भरा अंधेरा था वह, जड़ता या मूढ़ता से भरा नहीं, और शान्तियुक्त आनंद भी था उसमें, हालांकि प्रकाश की कमी से आनंद अधूरा था। ऐसा ही जैसे किसी को सुखचैन तो दो पर अँधेरी कोठरी में बंद रखो। शायद यह एक जानवर जैसा बंधन है जो एक अंधेरे कमरे में बंधा हुआ है, लेकिन अच्छी तरह से खिलाया और पानी पिलाया जाता है, इसलिए **भगवान** को **पशुपति नाथ** या जानवरों का स्वामी कहा जाता है। ऐसा लग रहा था कि वह दबा हुआ **बैकग्राउंड प्रकाश** पूरे जोर व विस्फोट से बाहर को फैलना चाहता हो अभिव्यक्ति के रूप में। सम्भवतः ब्लैक होल भी ऐसा ही होता है। **इवेंट होरीजन** के साथ देखने पर तो वह वैसा ही लगता है। इवेंट होरीज़ोन को आप आदमी के स्थूल शरीर जैसा या अभिव्यक्त रूप जैसा कह लो, और ब्लैक होल को इसके सूक्ष्म शरीर या दबे रूप जैसा। इवेंट होरीज़ोन में पूरा दृश्य जगत प्रकाशमान और स्थूल होता है, जबकि ब्लैक होल के अंदर वह सूक्ष्मता और अँधेरे में चला जाता है, रहता वहाँ भी पूरा ही है। विचित्र

अवस्था होती है सूक्ष्म शरीर की। फिर वो जीवात्मा कई दिन बाद दिव्य जैसी अवस्था में टहलते हुए महसूस हुई। सम्भवतः वह स्वर्ग या मुक्ति की तरफ जा रही थी। मैंने इसका सविस्तार वर्णन एक पुरानी पोस्ट में किया है। मैं इस अनुभव के दौरान तांत्रिक कुण्डलिनी योग का गहन अभ्यास कर रहा था। सम्भवतः इसी ने मुझे उस दिव्य अनुभव के योग्य बनाया था। वह शुभचिंतक प्रेतात्मा थी। इसी तरह एकबार मुझे योगाभ्यास के बीच में ही कुछ अशुभ प्रेतात्माओं के सूक्ष्म शरीरों का अनुभव भी हुआ था। वे हिंसक व गुस्सैल व रक्तपिपासु जैसे लग रहे थे। दरअसल सूक्ष्म शरीर अपनी आत्मा के अंदर या आत्मा के रूप में महसूस होते हैं। वह एक अहसास होता है, जिसके लिए विचारों का घोड़ा दौड़ाने की जरूरत नहीं होती। आपको चीनी की मिठास क्या विचार बताते हैं। नहीं, वह एक अपना अंदरूनी अहसास होता है। उसके साथ पीछे से अच्छे विचार आए, वह अलग बात है। उसी तरह उन **दुष्ट प्रेतों** के अहसास के साथ कुछ हड्डीनुमा, लाल आँखों वाले व बड़े नुकीले दांतों व गुस्से वाले चित्र तो मन में बने, पर वे तो अहसास का पीछा करने वाले विचार होते हैं, अहसास नहीं। सूक्ष्म शरीर तो एक अहसास ही होता है, बिना किसी भौतिक रूपरंग का। **मस्तिष्क एक थिएटर मेन** की तरह होता है, जो अहसास या मूड के अनुसार चित्र बना लेता है। मैंने गुरु स्मरण से उस घटिया अहसास को शांत किया। वह अहसास 10-20 सेकंड जितना ही रहा होगा। उसके एक-दो दिन बाद एक बुरी घटना टलने की खुशखबरी मिली। इसी तरह मैंने बताया था कि किस तरह जीव का जन्म होता है। यह भी मैं शास्त्रों में लिखी बातों को वैज्ञानिक अमलीजामा पहना रहा था, कुछ अपना हल्का अनुभव भी है, हालांकि वह गहरा या निर्णायक अनुभव नहीं है। एक **उपनिषद** में तो एक जगह यहाँ तक कहा गया है कि जीवात्मा बादलों तक पहुंच कर बारिश के जल में घुलकर जमीन पर आ जाती है, फिर जड़ों से होकर अन्न के पौधे में घुस जाती है। जब कोई आदमी उस अन्न के दाने को खाता है, तो उसके शरीर से होकर उसके वीर्य में पहुंच जाती है। उससे उसकी पत्नि के गर्भ में प्रविष्ट होकर जन्म ले लेती है।

जो भौतिक विज्ञान की पहुंच से परे हो, वहाँ आध्यात्मिक योग-विज्ञान से ही पहुंचा जा सकता है

भौतिक वैज्ञानिक ब्लैक होल के अँधेरे में झाँकने में अस्मर्थ हैं। पर योग विज्ञान इशारा कर रहा है कि उसमें सभी पदार्थ अदृष्य आत्मा अर्थात अदृष्य आसमान के रूप में विद्यमान रहते हैं, जिन्हें आसमान रूप आत्मा के द्वारा सीधा अनुभव तो किया जा सकता है पर भौतिक इन्द्रियों के द्वारा नहीं। जीव का सूक्ष्म शरीर भी वैसा ही होता है।

ब्लैक होल ब्रह्माण्ड-शरीर अर्थात ब्रह्मा का सूक्ष्म शरीर व कारण शरीर है

उपरोक्त तथ्यों से तो यही सिद्ध होता है। देहरहित सूक्ष्मशरीर व कारण शरीर के बीच मुझे कोई ज्यादा अंतर नहीं लगता। दोनों में ही क्वांटम फ्लकचूएशनस आत्मा में **रिकॉर्ड** हो जाती हैं। यही मामुली सा अंतर है कि सूक्ष्मशरीर थोड़े समय के लिए रहता है, क्योंकि उसको स्थूल रूप में प्रकट करने के लिए भौतिक सृष्टि का वजूद होता है, जबकि कारण शरीर लम्बे समय तक बना रहता है, क्योंकि उस समय सृष्टि की प्रलयावस्था होती है, और कहीं कुछ भी भौतिक रूप में नहीं होता। इसके अलावा, कारण शरीर पूरी तरह से शांत दिखाई देता है क्योंकि इसमें किसी भी क्वांटम लहर की उतार-चढ़ाव को आकर्षक **भूतिया अभिव्यक्ति** के रूप में लंबे समय तक अनुभव नहीं किया जाता है, जैसा कि कभी-कभी सूक्ष्म शरीर के मामले में होता है। इसका मतलब है कि आम जीव की तरह **ब्रह्मा** नाम के जीव का अस्तित्व भी है, जैसा शास्त्रों में कहा गया है। ब्रह्माण्ड ही उसका शरीर है। यह अलग बात है कि वह इससे बद्ध नहीं होता। प्रलय के समय ब्रह्मा की आत्मा में ब्रह्माण्ड रिकॉर्ड हो जाता है। सृष्टि के समय वह फिर अपने पुराने स्थूल रूप में प्रकट हो जाता है। पर शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्मा प्रलय के समय अपनी मृत्यु के साथ मुक्त हो जाता है। फिर नई सृष्टि के लिए वो रेकॉर्डिंग कहाँ रहती है। मतलब साफ है कि वह **जीवनमुक्त** हो जाता है, **विदेहमुक्त** नहीं। मतलब उसका शरीर और जन्म-मृत्यु का चक्र बना रहता है, पर मुक्ति के अहसास के साथ। पर जीवनमुक्त तो वह पहले भी था। ऐसा शायद यह दर्शाने के लिए लिखा गया है कि जीव और ब्रह्मा की गति एक जैसी है। ब्रह्मा और जीव में कोई अंतर नहीं। जीवनमुक्त के बारे में जो कुछ भी सोच लो, वह सही ही होता है, क्योंकि वह किसी से प्रभावित ही नहीं होता। यह ऐसे ही है जैसे कुछ अंतरिक्ष वैज्ञानिक अंदेशा जता रहे हैं कि हमें एलियन इसलिए नहीं दिखते क्योंकि वे भौतिक पदार्थों के रूप में ढल गए हैं, और ऐसे बन गए हैं कि वे हर जगह हैं भी और नहीं भी। पूरा ब्रह्माण्ड भी ऐसा ही एक **विशालकाय एलियन** हो सकता है। सम्भवतः इस बात को जानकर ही सभी चीजों को **देवता** मानने की और उनको विभिन्न रूपों में पूजने की परम्परा शुरु हुई थी। ऐसे जीवनमुक्त लोग ही तो होते हैं। फिर शास्त्र कहते हैं कि कोई भी जीव तरक्की करते हुए ब्रह्मा बन सकता है। इसका मतलब मुझे यही लगता है कि ब्रह्मा की तरह पूर्ण जीवनमुक्त बन सकता है, न कि असली ब्रह्मा।

शिव अगर सरोवर है तो शक्ति उसमें हलचल पैदा करने वाला हवा का झोँका है

मान लेते हैं कि सरोवर में जल की हलचल की तरह अंतरिक्ष में क्वांटम फ्लकचूएशनस हमेशा विद्यमान रहती हैं, जिसे हम अव्यक्त कहते हैं। यह भी मान लेते हैं कि **महाप्रलय** के समय अंतरिक्ष एक पूर्ण शांत जल-सरोवर की तरह हो जाता है, जिसमें

बिल्कुल भी हलचल नहीं रहती, मतलब क्वांटम फ्लकचूएशनस भी थम जाती हैं। इसे **परम अव्यक्त** भी कह सकते हैं और परम व्यक्त या **परमात्मा** भी। जैसे हवा के झोंके से जल की सतह पर बार-बार उसी किस्म की तरंगों के पैटर्न उसी क्रम में बनते रहते हैं, उसी तरह अंतरिक्ष में भी उसी किस्म की सृष्टि उसी निश्चित क्रम में बारबार बनती रहती है। पर फिर भी अंत में प्रश्न यही बचता है कि प्रलय के अंत में जब सब कुछ शून्य होता है, तब वह **ऊर्जा** या शक्ति कहाँ से आती है, जो उस हलचल को बढ़ा देती है। शून्य में वो हवा का झोंका कहाँ से आता है, जो शुरुआती हलचल को पैदा करता है। बाद में तो यह भी मान सकते हैं कि हलचल से हलचल खुद ही आगे से आगे बढ़ती रहती है। अंतरिक्ष में चलने वाला वह हवा का झोंका ही वह शक्ति है, जिसे शाक्त **सम्प्रदाय** वाले लोग शिव की तरह शाश्वत और अविनाशी मानते हैं। शिव अगर निश्चल अंतरिक्ष है, तो शक्ति उसमें हलचल पैदा करने वाला हवा का झोंका है।

कुण्डलिनी योग ड्यूल नेचर ऑफ़ मैटर से कण प्रकृति को कुंठित करके तरंग प्रकृति को बढ़ाता है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि **ब्लैक होल** ब्रह्माण्ड का **सूक्ष्म शरीर** होता है। **गेलेक्सी** को आप उसका स्थूल शरीर मान लो, और उसके केंद्र में स्थित ब्लैक होल उसका सूक्ष्म शरीर है। हरेक जीव एक आसमान है, और उसमें एक अलग **ब्रह्माण्ड** है। सब स्वतंत्र हैं और एकदूसरे को नष्ट नहीं कर सकते। हो सकता है कि इसी तरह एक ही आसमान में अनगिनत स्वतंत्र ब्रह्माण्ड भी हों।

आदमी कभी नहीं मरता

ये मैं ही नहीं कह रहा हूँ बल्कि वैज्ञानिक भी इस बात की आशंका जता रहे हैं कि आदमी दरअसल मरता नहीं है, पर मरने के बाद ब्लैक होल में चला जाता है और वहाँ से होकर किसी दूसरे ब्रह्माण्ड में पहुंच जाता है। यह वही बात है जो **शास्त्र** कहते हैं कि आदमी मरने के बाद सूक्ष्म शरीर बन जाता है और नया **जन्म** ले लेता है। नया जन्म नया ब्रह्माण्ड ही है, क्योंकि जितने जीव उतने ब्रह्माण्ड। हरेक जीव एक **अनंत अंतरिक्ष** है, और उसमें विचारों व अनुभवों का समूह ही भरापूरा ब्रह्माण्ड है। रोचक बात यह है कि स्थूल ब्रह्माण्ड की तरह सूक्ष्म मानसिक ब्रह्माण्ड भी अनंत अंतरिक्ष में ही बनता है, **जीव** के शरीर या मस्तिष्क में नहीं, जैसा कि अक्सर माना जाता है। **मस्तिष्क** तो केवल अंतरिक्ष में उन आभासी तरंगों को पैदा करने वाली **मशीन** भर है, जिन्हें वह अंतरिक्ष अपने अंदर महसूस कर सकता है। **योगवासिष्ठ** जैसे शास्त्रों में इसे ऐसे समझाया गया है कि आसमान में लटकते घड़े के अंदर कैद आसमान ही जीव है। वह भ्रम से ही अलग प्रतीत होता है, असलियत में वह एक ही अनंत आसमान से अभिन्न है। घड़े के अंदर के आसमान में **आभासी तरंगें** बनती रहती हैं, जिनसे जीव **मोहित** हुआ रहता है। मैं पिछली पोस्ट के संदर्भ में बता दूँ कि अनंत आकाश के छोटे से हिस्से में आसक्ति के साथ तरंगों को **आत्म-आकाश** से अलग अनुभव करने से पूरे चमकीले आत्म-आकाश को अपने में अंधेरा महसूस होता है। दरअसल यह **भ्रम** होता है। इससे **मृत्यु** के बाद भी उन तरंगों से बनी **क्वांटम फ्लकचूएशन्स** पर **आसक्ति** बनी रहती है, जिससे वह भ्रमजनित **अंधेरा** बना रहता है, जैसा सम्भवतः मैंने सूक्ष्मशरीर में अनुभव किया था। यह ऐसे ही है, जैसे **क्वांटम फिसिक्स** में मूल तत्त्वों को कण रूप में देखने पर वे अपने तरंग जैसे अनंत रूप को त्याग कर सीमित कणों के रूप में व्यवहार करते हैं। मतलब अनंत ऊर्जा एक **कण** के रूप में सीमित हो जाती है। इसको ऐसे समझ लो कि अनंत अंतरिक्ष की लाइट ऑफ़ हो जाती है, और केवल कणों के रूप में ही सीमित प्रकाश बचा रहता है। अँधेरे आसमान में चमकते हुए कण। जब हम उन्हें अपने असली '**अनंत आसमान की तरंग**' के रूप में देखते हैं, तब वे

वैसे ही अंतरिक्ष की तरंग के रूप में व्यवहार करते हैं। मतलब वो तरंग इसीलिए प्रकाशमान है, क्योंकि वह जिस अंतरिक्ष में बनी है, वो खुद प्रकाशमान है। मतलब तरंग के साथ पूरे अनंत अंतरिक्ष की लाइट ऑन रहती है। जल में बनी तरंग तभी रंगीन हो सकती है, अगर वह जल भी रंगीन हो। अगर जल काला हो, तो उससे बनने वाली तरंग रंगीन हो ही नहीं सकती। जबकि तरंग को कण के रूप में मतलब जल से अलग स्वतंत्र रूप में तभी महसूस कर सकते हैं, अगर आधारभूत जल का रंग खत्म कर दिया जाए, पर तरंग का रंग रहने दिया जाए। पर ऐसा संभव नहीं है। इसलिए आधाररूपी तरंग-माध्यम का रंग आभासी रूप में अर्थात झूठमूठ में अर्थात भ्रम पैदा करके गायब करना पड़ता है, **जादूगर** की भ्रम पैदा करने वाली ट्रिक की तरह। इसलिए पदार्थ का असली रूप तरंग होते हुए भी वे **आसक्ति** और **द्वैत** से उत्पन्न भ्रम से कणरूप जान पड़ते हैं। सिंपल सी बात है। मतलब कि **आध्यात्मिक अज्ञान क्वांटम फिसिक्स के अज्ञान पर आधारित** प्रतीत होता है।

कुण्डलिनी योग से एक ही अनंत अंतरिक्ष सभी ब्लैक होलों, ब्रह्माण्डों, और जीवों के रूप में दिखाई देता है

एक जीव मरने के बाद कहाँ गया कुछ पता नहीं चलता। इसी तरह एक **गलेक्सी** ब्लेक होल से निकलकर कौन से ब्रह्माण्ड में गई पता नहीं चलता। जैसे एक ही अनंत अंतरिक्ष में अनगिनत जीवों के रूप में अनगिनत **सूक्ष्म ब्रह्माण्ड** हैं, उसी तरह एक ही अनंत अंतरिक्ष में अनगिनत **स्थूल ब्रह्माण्ड** भी तो हो सकते हैं। अनंत अंतरिक्ष की जितनी मर्जी कॉपीयां निकाल लो। हरेक कॉपी मूल की तरह सम्पूर्ण होती है, डुप्लीकेट नहीं, क्योंकि एक से ज्यादा अनंत अंतरिक्ष संभव ही नहीं। इसी तरह एकमात्र अनुभवरूप अनंत अंतरिक्ष के इलावा किसी की **स्वतंत्र सत्ता** या अस्तित्व ही नहीं है। **लहर**, **कण** आदि जो कुछ भी अनंत आकाश में **आभासी** रूप में महसूस होता है, वह अपने आधार **अनंत-आकाश** के साथ ही सत्तावान महसूस होता है, स्वतंत्र रूप से नहीं। या ऐसा कह लो कि अनंत अंतरिक्ष को वह अपनी आभासी लहरों के रूप में अपने में ही महसूस होता है। अगर उन आभासी कलाकृतियों का अपना स्वतंत्र अस्तित्व होता, तब तो हरेक **जड़ वस्तु** जैसे कि कुर्सी, पत्थर, चित्र, मूर्ति आदि जीवित होती, जैसा कि कई **एनिमेशन फिल्मों** में दिखाया जाता है। जगत, विचार आदि तो उस आकाश-आत्मा में आभासी तरंगें हैं, जो दरअसल हैं ही नहीं। इसलिए एक ही चारा बचता है कि एक ही अनंत अंतरिक्ष को ही सभी जीवों और ब्रह्माण्डों के रूप में दिखाया जाए। यह शास्त्रों में एक **श्लोक** के द्वारा समझाया गया है, **"ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदम पूर्णात पूर्णमुदुच्यते, पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते"**। इसका मतलब है कि 'वह' मतलब ॐ नाम वाला परम तत्त्व पूर्ण है, मतलब अनंत अंतरिक्षरूप है, 'यह' मतलब जीव भी अनंत अंतरिक्ष है, 'उस' अनंत अंतरिक्ष से 'इस' अनंत अंतरिक्ष के निकल जाने के बाद भी 'वह' अनंत अंतरिक्ष ही बचा रहता है, उसमें कोई कमी नहीं आती। शून्यरूप अनंत अंतरिक्ष से कोई कुछ निकाल ही कैसे सकता है। क्योंकि सभी अनंत अंतरिक्ष एक ही हैं, इसलिए सभी जीव भी एक ही हैं। जैसे भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थित जीवों के मानसिक ब्रह्माण्ड '**एक अंतरिक्ष रूप**' ही हैं, उसी तरह भिन्नभिन्न स्थानों पर स्थित स्थूल ब्रह्माण्ड एक ही अंतरिक्ष में दिखते हुए भी, अलग-अलग स्वतंत्र सत्ता रखते हुए भी, अलग-अलग स्थानीय रूप रखते हुए भी, अलग-अलग अनंत अंतरिक्ष की सत्ता साथ में समेटे हुए हैं। इससे **मल्टीवर्स** की बात खुद ही सिद्ध हो जाती है। जैसे जीवों के रूप में सूक्ष्म ब्रह्माण्ड अनगिनत हैं, वैसे ही स्थूल ब्रह्माण्ड भी अनगिनत हैं। हालांकि सबके साथ अपना अनंत अंतरिक्ष है, इसलिए सब एक अनंत अंतरिक्ष रूप ही हैं, और कभी उसमें जाके मिल जाएंगे। वैसे तो हमेशा मिले हुए ही हैं पर **वर्चुअली** मिलते दिखेंगे। इस तरह से जैसे जीव के रूप में सूक्ष्म ब्रह्माण्ड की **मुक्ति** होती है, उसी तरह स्थूल ब्रह्माण्ड के रूप में भी जरूर होती होगी। यह अलग बात है कि स्थूल ब्रह्माण्ड का **अभिमानी आत्मा** अर्थात ब्रह्मा पहले से

ही **अनासक्त, अद्वैतपूर्ण** और **जीवनमुक्त** है, जैसा शास्त्रों में कहा गया है। शास्त्र खुद मल्टीवर्स को मानते हैं। वे कहते हैं कि अनगिनत जीवों की तरह **ब्रह्मा** भी अनगिनत हैं। सम्भवतः उनका कहना है कि हरेक जीव विकास के उत्तरोत्तर क्रम को लाँघते हुए **जीवनयात्रा** के अंतिम पड़ाव के निकट ब्रह्मा भी जरूर बनता है। इसी संदर्भ में गीता में आता है कि **आत्मा** न तो कभी पैदा होती है, और न नष्ट होती है। मतलब कि आदमी कभी नहीं मरता। यही तो उपरोक्त वैज्ञानिक तथ्यों से भी सिद्ध हो रहा है कि अनंत व शून्य आकाश को न तो बनाया जा सकता है, और न ही नष्ट किया जा सकता है। हाँ यह जरूर है कि जीव-आत्मा रूपी **भ्रमित अनंताकाश** कुण्डलिनी योग से अपने अज्ञानरूपी आभासी भ्रम को दूर करके **ओरिजनल अनंताकाश** अर्थात **परमात्मा** के साथ एकाकार हो सकता है। एकाकार पहले से ही है, बस **आभासी भ्रम** का बादल हटाना है।

कुण्डलिनी जागरण बनाम सूक्ष्मशरीर-समाधि

दोस्तो, मैं पिछली कुछ पोस्टों में **ब्लैकहोल** व **सूक्ष्मशरीर** जैसे अनुभव के बारे में बात कर रहा था। थोड़ा उसका और गहराई से **अध्यात्मवैज्ञानिक** विश्लेषण करते हैं। मुझे लगता है कि जो चीज अनंत व शून्य अंतरिक्षरूपी आत्मा से अलग भौतिक रूप में है, चाहे कितने ही छोटे कण के रूप में है, उसे हम आत्मरूप से अनुभव नहीं कर सकते। आत्मा से आत्मा ही जुड़ सकती है, अन्य कुछ नहीं। वैसे तो आत्मा की आभासी लहर भी जुड़ सकती है, कण तो बिल्कुल नहीं। वैसे तो लहर भी नहीं जुड़ती, केवल जुड़ी हुई दिखती है। वह असली नहीँ बल्कि आभासी होती है, जैसे बंद आँखों को खोलते हुए पलकों के बालों से **आसमान में बुलबुले** जैसे दिखाई देते हैं। दरअसल आसमान में कोई बुलबुले नहीँ होते। यह उदाहरण मैंने **योगवासिष्ठ ग्रंथ** से लिया है। कण द्वैत का प्रतीक है। वह आत्म-आकाश से अलग है, **आकाश-पुष्प** या **आकाश-उद्यान** की तरह, जैसा शास्त्र कहते हैं। आकाश में बिना किसी आधार के यकायक फूल नहीँ खिल सकता। अगर हम योग समाधि से **कुण्डलिनी छवि** को आत्मरूप में महसूस करें तो वह अपनी आत्मा से अभिन्न उसमें तरंग रूप से अनुभव होगी, किसी पृथक भौतिक वस्तु या **कण** के रूप में नहीं। जो मुझे सूक्ष्म शरीर आत्मरूप में अनुभव हुआ वह **तरंगरूप** नहीं था। मतलब वह वैसा नहीं था जैसी सभी भौतिक चीजें मन के विचारों के रूप में लहरदार होती हैं। मतलब उनकी सत्ता या चमक घटती-बढ़ती रहती है। वह सूक्ष्मशरीर तो एकसमान **कज्जली चमक** वाला अंधेरा था। फिर उसके बारे में मुझे पूरा ब्यौरा कैसे महसूस हो रहा था, उससे भी ज्यादा जितना भौतिक रूपों से मिलता है। इसका मतलब है कि उसमें सूक्ष्म तरंगें थीं, जिनका अहसास नहीं हो रहा था, पर उनमें दर्ज सभी सूचनाओं का पूरा अहसास हो रहा था। ये तरंगें **क्वांटम फ्लैकचूएशन** या हलचल के रूप में हो सकती हैं, जिन्हें शरीर के बिना ऊर्जा नहीं मिल रही थीं, जिससे वे स्थूल तरंगों के रूप में व्यक्त नहीं हो पा रही थीं। वे सूक्ष्म तरंगें भी स्थूल तरंगों की तरह ही थीं। इसे हम ऐसे समझ सकते हैं कि जैसे यदि पानी के तलाब में एक पत्थर फ़ेंकने की ऊर्जा से थोड़ी देर के लिए स्थूल तरंगें बनती हैं, तब पत्थर से मिली ऊर्जा खत्म होने के बाद भी बड़ी देर तक उसी पैटर्न की सूक्ष्म तरंगें बनती रहती हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि तरंगें **पेंडुलम** की तरह व्यवहार करती हैं, मतलब अपनी ही अंतरंग ऊर्जा से उठती गिरती रहती हैं। फिर तो मरने के बाद आदमी के सूक्ष्मशरीर के कंपन लगातार घटते रहने चाहिए और अंततः वह कंपनरहित **चिदाकाश** अर्थात **परमात्मा** बन जाना चाहिए अर्थात आदमी खुद ही **मुक्त** हो जाना चाहिए। कई जगह **शास्त्र** भी इस ओर इशारा करते हैं कि ऐसा होता है, हालांकि ऐसा स्पष्ट नहीं कहा है, पर जिसको ज्ञान न हो या जिसने **आसक्ति** और **द्वैत** से भरा जीवन जिया हो, वह उस **अँधेरे** से घबराकर या उससे ऊब कर जल्दी ही अपने लिए नया शरीर चुन लेता है, और शरीर उसे अपने **कंपन** के अनुसार ही अच्छा या बुरा मिलता है। इसका यह मतलब भी है कि इसी तरह ब्लैकहोल की सूक्ष्म तरंगें भी समय के साथ शांत

हो जाती हैं, और वह **निश्चल समुद्र** जैसे अनंत व शून्य **अंतरिक्ष** से पूरी तरह एक हो जाता है। हालांकि इसमें करोड़ों साल लग सकते हैं, क्योंकि वह पानी का नहीं बल्कि शून्य अंतरिक्ष का कंपन है। पर शास्त्र यह भी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि **मोक्ष** अपनेआप नहीं मिलता। करोड़ों-अरबों वर्षों तक जारी रहने वाले **प्रलयकाल** में भी **कारण शरीर** से आत्मा का बंधन बना रहता है। मुझे तो लगता है कि दोनों ही बातें सही हैं, समय और परिस्थिति के अनुसार, हालांकि दूसरी बात ज्यादातर मामलों में फिट बैठती होगी।
कुण्डलिनी चित्र का हम बारबार **ध्यान** करते हैं, इससे वह **समाधि** अर्थात **कुण्डलिनी जागरण** के रूप में आत्मा से एकाकार हो जाता है। मतलब किसी भी चीज के बारे में ध्यान करके उसको जगा कर हम उसके बारे में पूरी तरह से सबकुछ जान जाते हैं, जैसा कि शास्त्र कहते हैं। योगवासिष्ठ में कहा गया है कि वायु से **योगसमाधि** से जुड़ने पर वायु की सभी शक्तियाँ मिलती हैं, जैसे आसमान में उड़ना, अदृष्य होना आदि। इसी तरह अन्य पदार्थों जैसे अग्नि, जल आदि से जुड़ने से उन-उन पदार्थों का संपूर्ण व प्रत्यक्ष ज्ञान होने से उनकी सभी शक्तियां मिलती हैं। सम्भवतः इन्हें **पंचभूत समाधि** भी कहते हैं। अब इनका **वैज्ञानिक विश्लेषण** तो मैं इस समय नहीँ कर सकता। पर किसी के या अपने ही सूक्ष्म शरीर को जगाने के लिए हम किसका ध्यान करेंगे। सूक्ष्मशरीर का ही करेंगे। यह नहीं पता कैसे। सम्भवतः ऐसे ही जैसे **भूत** का किया जाता है। **गीता** में कहा गया है कि देव को पूजने वाले **देवता** बनते हैं, और भूत को पूजने वाले भूत। तो स्वाभाविक है कि सूक्ष्म शरीर का ध्यान करने वाला सूक्ष्मशरीर ही बनेगा। क्योंकि सूक्ष्मशरीर में अँधेरे का राज है, इसलिए अंधेरा व शक्ति पैदा करने वाले **मांसमदिरा** व **संभोग** जैसे **पंचमकारों** के साथ **तांत्रिक कुण्डलिनी योग** से भूत या सूक्ष्मशरीर का आत्मरूप में अनुभव होता है, ऐसा मुझे लगता है। **प्रेतात्माएं** लोगों से सम्पर्क करके मदद लेना और देना चाहती हैं, पर इसके लिए आदमी में प्रेतात्मा की उच्च दबाव वाली **ऊर्जा** का आवेश झेलने की शक्ति होना जरूरी है, जो केवल समर्पित तांत्रिक कुण्डलिनी योग से ही संभव प्रतीत होता है। कुण्डलिनी चित्र यदि उस विशेष भूत या सूक्ष्मशरीर से संबंधित हो तो ध्यान ज्यादा जल्दी सफल और प्रभावशाली हो जाता है। पर ऐसा कैसे होता है, उसके लिए थोड़ा गहराई से विश्लेषण करना होगा।
मुझे एक नई **अंतर्दृष्टि** मिली है। उपरोक्त समाधि का अनुभव कुण्डलिनी जागरण की तरह नहीं था। मतलब उस अनुभव में मैं परमात्मा से एकाकार नहीं हुआ, बल्कि एक अन्य जीवात्मा से एकाकार हुआ। अगर मैं परमात्मा से एकाकार हुआ होता, तो कुण्डलिनी जागरण की तरह **अनंत प्रकाश, आकाश व आनंद** से कुछ क्षणों के लिए सम्पन्न हो जाता। साथ में मन-मस्तिष्क में सुहाने विचार, सागर में तरंगों की तरह उमड़ते, जैसा कि मैंने पिछली एक पोस्ट में लिखा है कि मस्तिष्क एक **थिएटर मेन** की तरफ काम करता है, जो मूड के अनुसार दृश्य प्रस्तुत कर देता है। हालांकि कुछ क्षणों के सूक्ष्मशरीर के अनुभव के बाद **मस्तिष्क** उससे संबंधित विचार बनाने लगा, जैसे उनकी **मृत्यु** से दुखी लोग आदि। हालांकि ये अनुभव सागर में तरंग की तरह महसूस नहीँ हो रहे थे, क्योंकि मुझे

उस **परमात्म-सागर** का अनुभव नहीँ हो रहा था, जिसमें सभी कुछ तरंगों के रूप में है। विचारों के उठने के साथ ही शुद्ध अनुभव खत्म होने लगता है। विचार एक **शोर** जैसा या **भ्रम** जैसा पैदा करते हैं। योगी को ऐसे दिव्य अनुभव इसीलिए ज्यादा होते हैं, क्योंकि वे ज्यादा देर तक **निर्विचार** बने रह सकते हैं। होते सभी को हैं, पर वे विचारों के शोर के कारण इतने कम समय के लिए रहते हैं कि पहचान में ही नहीँ आते। जैसा **ओशो महाराज** कहते हैं कि **सम्भोग** के दौरान **वीर्यपात** के अनुभव के कुछ क्षणों के दौरान सभी को समाधि का अनुभव होता है, पर वह इतने कम समय के लिए रहता है कि उसका पता ही नहीं चलता। इसलिए वे **ध्यानयोग** के माध्यम से उस समय को बढ़ाने को कहते हैं। कहते हैं कि **जानवरों** को निकट भविष्य का अंदाजा लग जाता है, क्योंकि वे आदमी से ज्यादा निर्विचार होते हैं, हालांकि अलग अर्थात अज्ञान वाले तरीके से। मेरे इस उपरोक्त अनुभव को एकाकार भी नहीँ कह सकते, क्योंकि **एकाकार** तो परमात्मा के साथ ही हुआ जा सकता है। इसे ऐसे कह सकते हैं कि मैं कुछ क्षणों के लिए अपने आत्मरूप को छोड़कर सूक्ष्मशरीर बन गया। यह ऐसे था कि एक ही सूक्ष्मशरीर था, पर उसे एकसाथ अनुभव करने वाली दो आत्माएं थीं। असली या **होस्ट आत्मा** उन दिवंगत परिचित की थी। नकली या **अतिथि या घुसपैठिया आत्मा** मेरी थी। सूक्ष्मशरीर से ऐसे ही सम्पर्क किया जा सकता है। भला अँधेरे व शून्य आसमान को जानने का और क्या तरीका हो सकता है। उनकी समस्या या उनका प्रश्न जानने के लिए मैं उनके सूक्ष्मशरीर से जुड़ गया। उनकी बात कानों से नहीँ सुनाई दे रही थी, पर सीधी आत्मा में महसूस हो रही थी। न उनका शरीर, न मुख और न ही शब्द। फिर भी उनके बारे में सबकुछ जान पा रहा था और उनकी हरेक बात सुन पा रहा था। मैंने उनके सूक्ष्मशरीर में रहकर उन्हींको जवाब भी दिया, जिसे उन्होंने ध्यान से सुना, पर वैसे ही आत्म-भाषा में। फिर सम्भवतः जब मैं अपना जागृति से संबंधित अनुभव याद करने के लिए अपने सूक्ष्मशरीर में आने लगा, तब मेरे मस्तिष्क में विचारों का शोर बढ़ने लगा, जिससे सम्पर्क टूट गया। पर मुख्य बात मैंने बता दी थी। शायद **मकानमालिक** ने घुसपैठिये को किक मारके भगा दिया था। हाहाहा। हो सकता है बहुत से कारण रहे हो पर सबसे मुख्य वजह यह डर लगता है कि कहीं मैं उनके सूक्ष्मशरीर में हमेशा के लिए कैद न हो जाऊं, और मेरे सूक्ष्मशरीर को खाली जानकर उनकी आत्मा उसपर कब्जा न कर लें। भाई पहले अपना घर बचाना था, न कि किसी की मदद करनी थी। वैसे भी अधिकांश मामलों में कोई दूसरे के सूक्ष्मशरीर में ज्यादा देर नहीँ ठहर सकता, जैसे कोई अतिथि बनकर किसीके घर पर कब्जा नहीँ कर सकता। सम्भवतः **परकायाप्रवेश सिद्धि** इसीका उत्कृष्ट रूप हो, जिसमें सूक्ष्मशरीर के मालिक आत्मा को भगाकर अतिथि आत्मा स्थायी तौर पर बस जाती है। कहते हैं कि **आदि शंकराचार्य** इसमें पारंगत थे। शास्त्रों में एक कथा आती है, जिसमें राजकुमार **पुरु** ने अपने वृद्ध पिता और **राजा ययाति** को अपनी जवानी दान दे दी थी। यह तभी हो सकता है, जब उन्होंने अपने सूक्ष्मशरीर एकदूसरे के साथ बदल दिए हों। मैंने बचपन में एक तथाकथित सत्य घटना का वर्णन पढ़ा-सुना था, जिसके अनुसार एक अंग्रेज अधिकारी

कहता है कि उसने एक वृद्ध योगी बाबा को झाड़ियों के बीच में से एक नौजवान की लाश घसीटते देखा। कुछ देर के बाद वह नौजवान जिन्दा होकर किश्ती में सवार होकर नदी पार कर रहा था। मतलब साफ है कि योगी ने अपने शरीर सूक्ष्म को अपने बूढ़े शरीर से बाहर निकालकर नौजवान के मृत शरीर में प्रविष्ट करा दिया था ताकि वह लम्बे समय तक और योग कर पाता। अब पता नहीँ यह सच है कि ढोंग है कि जब किसी के शरीर में बाहरी प्रेतात्मा का कब्जा हो जाता है, जिससे उस आदमी का मन व शरीर उसके कब्जे में आ जाता है। इसे तंत्र-मंत्र आदि से ठीक करवा दिया जाता है। कुछ तो बात जरूर है, जिसे **आध्यात्मिक विज्ञान** ही ज्यादा अच्छे से समझ सकता है, भौतिक विज्ञान नहीं।

कुंडलिनी जागरण ब्लैक होल विज़ुअलाइज़ेशन से अलग है

दोस्तों, पिछली पोस्ट लंबी हो रही थी इसलिए विषय को वहीं रोकना पड़ा था। अब इस पोस्ट में उसे जारी रखते हैं। जब सभी लोगों के अनुभव एक ही **अनंत अंतरिक्ष** के अंदर हो रहे हैं, तब कोई भी आदमी किसी भी दूसरे आदमी के अनुभव से जुड़ सकता है। मेरे बोलने का मतलब है कि मैं भी हरेक जीव की तरह अनंत अंतरिक्ष रूप हूँ। मैं **प्रेमयोगी वज्र** नाम के आदमी के मस्तिष्क में बने **सूक्ष्म शरीर** से जुड़ा हुआ हूँ। फिर मैं अपने दोस्तों, रामू और श्यामू के मस्तिष्क में बने सूक्ष्म शरीर के साथ क्यों नहीं जुड़ सकता। जैसा मेरा अपना असली रूप अनंत अंतरिक्ष है, उसी तरह रामू और शामू का असली रूप भी वही अनंत अंतरिक्ष है। एक ही अनंत अंतरिक्ष तीन अलग-अलग सूक्ष्म शरीरों के साथ जुड़ा है। उससे मेरा अनंत अंतरिक्ष रूप अलग अनुभव वाला हो गया, उनका अलग अनुभव वाला हो गया। मतलब एक ही अनंत अंतरिक्ष हम तीनों लोगों के रूप में अलग-अलग प्रतीत होने लगा, हालांकि है एक ही। सम्भवतः मैं अपने पूर्वोक्त परिचित के सूक्ष्मशरीर से कुछ क्षणों के लिए जुड़ गया था। यह कोई चमत्कार नहीं बल्कि आध्यात्मिक मनोविज्ञान है। एक बद्ध आदमी जिस समय जैसा अनुभव कर रहा होता है, उस समय वह वैसा ही बना होता है। इसलिए उस सूक्ष्म शरीर को अनुभव करते समय मैं वही सूक्ष्मशरीर बन गया था। इसके विपरीत कुण्डलिनी जागरण के अनुभव के दौरान आदमी पूर्ण **मुक्त** अवस्था में होता है। उस समय वह अपने असली अनंत **चेतन-अंतरिक्ष** में स्थित होता है। उस समय उसके सभी अनुभव, चाहे वे स्थूल शरीर से संबंधित हो या सूक्ष्मशरीर से, अपने में **तरंग** रूप में अर्थात मिथ्या होते हैं। वे उसे महसूस होते हुए भी महसूस नहीं होते। जागृति का कुछ क्षणों का अनुभव खत्म होते ही जैसे उस **चिन्मय अनंत आकाश** की चेतना की रौशनी बुझ जाती है, और वह फिर से पहले की तरह **अंधेर अनंत आकाश** ही महसूस होता है। उस अँधेरे के रूप में उस आदमी का सूक्ष्म शरीर दर्ज होता है। तो यह क्यों न समझा जाए कि सूक्ष्म शरीर किसी भी **क्वांटम हलचल** के रूप में नहीं अपितु **आत्म-आकाश** की रौशनी को ढकने वाले अँधेरे के रूप में रहता है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि जिस परिचित के सूक्ष्म शरीर को मैंने अनुभव किया, उनकी **मृत्यु** हो चुकी थी इसलिए उनके पास अपना शरीर नहीं था। **जीवात्मा** शरीर के बाहर किसी भी हलचल से जुड़कर उसे महसूस नहीं कर सकती। अगर ऐसा होता तब तो शरीर के बाहर अनगिनत तरंगों के रूप में अनगिनत हलचलें होती रहती हैं। फिर तो हरेक **विद्युत्चुंबकीय तरंग** जिन्दा होती। यहाँ तक कि मिट्टी, पत्थर, कुर्सी आदि सभी कुछ जिन्दा और जीवात्मा से युक्त होता, पर ऐसा नहीं है। इसका मतलब है कि **जीवनयात्रा** की शुरुवात से लेकर आदमी के जीवन का अनेक जन्मों का पूरा ब्यौरा उसके अनंत आत्म-आकाश में अनुभव होने वाले **अँधेरे की विशेष किस्म व मात्रा** के रूप में

दर्ज रहता है। उसे ही सूक्ष्मशरीर कहते हैं। अब इसको **ब्लैक होल** पर लेते हैं। ऐसा समझ लो कि आदमी की मृत्यु की तरह **तारा** पूरी तरह से नष्ट हो जाता है। मतलब वह भौतिक रूप में कुछ भी नहीं बचा रहता। यह मैं ही नहीं बोल रहा हूँ। **आइंस्टीन** ने भी जटिल गणितीय गणना से सिद्ध करके बताया है कि ब्लैकहोल **सिंगुलेरिटी** तक कंम्प्रेस हो जाता है। यह अलग बात है कि ज्यादातर वैज्ञानिक सबसे छोटे अकेले कण को सिंगुलेरिटी समझ रहे हैं, पर मैं एक कदम नीचे शून्य आकाश तक जा रहा हूँ। बेशक वह सबसे बड़ा लगता है, पर सबसे छोटा भी वही है। मतलब कि ब्लैकहोल सूक्ष्म शरीर की तरह एक अँधेरे से भरा आसमान बन जाता है। बेशक उसे अनुभव करने वाला कोई नहीँ होता, क्योंकि जब तारे की जिन्दा अवस्था में उसमें जीवात्मा की तरह कोई विशेष आत्मा नहीँ बंधी थी, तब उसकी मृत्यु के बाद उससे कैसे बंध सकती है। आत्मा के बंधन की मशीन केवल **हाड़मान्स का बना शरीर** ही है। जब कोई अनुभव करने वाला ही नहीँ, तब अँधेरे आसमान का क्या औचित्य है। हम ऐसा भी नहीँ कह सकते। अगर ऐसा है तब मिट्टी, पत्थर जैसी वस्तुओं के रूप में अनगिनत तरंगों का भी क्या औचित्य है, जब वे स्वयं अनुभवरूप नहीँ हैं, मतलब स्वयं को अनुभव नहीँ कर सकतीं। जिस तरह **चिदाकाश** अपने में स्थित इन वस्तुओं को अनुभव नहीँ कर सकता, उसी तरह इनके नष्ट होने से बने अपने आभासी अँधेरे को भी अनुभव नहीँ कर सकता। वह आभासी अंधेरा ही **डार्क मैटर** और **डार्क ऐनर्जी** है। आदमी के मरने के बाद बहुत से लोग दुःख के कारण उसकी तरफ खिंचे चले जाते हैं। सम्भवतः शुरु की प्रेतात्मा डार्क मैटर ही होती है। ब्लैक होल भी शुरु में डार्क मैटर ही होता है, इसीलिए अपने मजबूत **गुरुत्वाकर्षण** से सभी को अपनी तरफ खींचता है। कुछ समय बाद **प्रेतात्मा** को सभी भूल जाते हैं, और उससे नफ़रत सी करते हुए सभी अपने-अपने कामों में पहले की तरह लग जाते हैं। मतलब प्रेतात्मा सभी को अपने से दूर धकेलती है। सम्भवतः उस समय प्रेतात्मा डार्क एनर्जी बनी होती है, क्योंकि उसमें भी दूर सबको धकेलने का बल होता है। सम्भवतः इसी तरह समय के साथ ब्लैक होल का डार्क मैटर भी अनंत आकाश में समाकर डार्क एनर्जी बन जाता है। यह तो विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया है कि ब्लैकहोल भी लगातार सूक्ष्म रेडिएशन छोड़ते रहते हैं जिसे **हाक्किंस रेडिएशन** कहते हैं, और इस तरह से बहुत लम्बे समय बाद खत्म हो जाते हैं। डार्क एनर्जी के रूप में फिर यह अन्य पिंडों को खींचने का नहीँ बल्कि धकेलने का काम करता है। दिवंगत आदमी के अँधेरे अनंत अंतरिक्ष रूपी सूक्ष्मशरीर में दर्ज सूचना क्या पता कौन से **ब्रह्माण्ड** में जन्मे आदमी के अंदर अभिव्यक्त होए, कोई कह नहीँ सकता। अनंत अंतरिक्ष के किसी भी कोने में उस आदमी का पुनर्जन्म हो सकता है। इसी तरह नष्ट हुए तारे के अँधेरे अनंत अंतरिक्ष रूपी ब्लैकहोल नामक सूक्ष्मशरीर में दर्ज सूचना क्या पता किस ब्रह्माण्ड में जाकर नए तारे के जन्म के रूप में अभिव्यक्त हो जाए, कुछ कह नहीं सकते। इसी सिद्धांत के अंदर **व्हाइट होल** और **टेलीपोर्टेशन** छुपा हुआ है। इससे **विज्ञान** का वह सिद्धांत भी क़ायम रहता है कि **क्वांटम इनफार्मेशन** कभी नष्ट नहीँ होती। तारे से इनफार्मेशन डार्क मैटर में चली गई, डार्क मैटर से डार्क एनर्जी में चली गई, और डार्क

एनर्जी से फिर तारे में आ गई। इस तरह यह चक्र आदमी के **जन्ममरण** की तरह चलता रहता है। कई लोग कहेंगे कि प्रेतात्मा ब्लैक होल की तरह घेरा बना कर तो नहीँ रहती। हाहा। भाई यह **अध्यात्म विज्ञान** है। इसमें **भौतिक विज्ञान** की तरह एक जमा एक दो नहीँ कर सकते। समानता दिखा सकते हैं। आदमी के मरने के बाद कुछ समय उसकी आत्मा ब्लैक होल की तरह **लोकेलाइज** रहती है। उसे भटकी हुई आत्मा कहते हैं। कई लोगों को इसका अहसास होता है। फिर वह डार्क एनर्जी की तरह अनंत अंतरिक्ष में समा जाती है। विभिन्न **धर्मों** में विभिन्न **आध्यात्मिक कृत्य** इसीलिए किए जाते हैं, ताकि जल्दी से जल्दी उसकी गति लग सके और वह अनंत अंतरिक्ष में समा कर नया जन्म ले सके।
उपरोक्त वैज्ञानिक विवरण से यह बात स्पष्ट होती है कि पुराने लोगों को **वर्महोल**, व्हाइट होल और टेलीपोर्टेशन आदि का पता था, हालांकि अपने तरीके से। उन्हें पता था कि स्थूल शरीर के साथ यह संभव नहीं है, पर सूक्ष्मशरीर के साथ संभव है। इसलिए वे अच्छे **कर्मों** से अपने सूक्ष्मशरीर को ज्यादा से ज्यादा अच्छा बनाते थे, ताकि वह उन्हें अच्छे **ग्रह**, सितारे या ब्रह्माण्ड में ले जा सके, क्योंकि उन्हें यह भी पता था कि क्वांटम इनफार्मेशन कभी नष्ट नहीं होती।

कुण्डलिनी शक्ति अशुभ व भूतिया घटनाओं से रक्षा करती है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि पुराने लोगों को **वर्महोल, व्हाइट होल और टेलीपोर्टेशन** आदि का पता था, हालांकि अपने तरीके से। उन्हें पता था कि स्थूल शरीर के साथ यह संभव नहीं है, पर **सूक्ष्मशरीर** के साथ संभव है। इसलिए वे अच्छे कर्मों से अपने सूक्ष्मशरीर को ज्यादा से ज्यादा अच्छा बनाते थे, ताकि वह उन्हें अच्छे **ग्रह, सितारे या ब्रह्माण्ड** में ले जा सके, क्योंकि उन्हें यह भी पता था कि **क्वांटम इनफार्मेशन** कभी नष्ट नहीं होती। इसी वजह से हम देखते हैं कि आजकल के बच्चे जन्म से ही **हाइटेक** होते हैं। वे **स्मार्टफोन** के बिना खाना भी नहीं खाते। दरअसल उनके हाल ही के पिछले जन्म की हाइटेक सूचना उनके सूक्ष्मशरीर में दर्ज हुई होती है। रही बात शरीर के साथ व्हाइट होल से गुजरना या टेलीपोर्टेशन करना, मुझे तो यह संभव लगता नहीँ है। चलो मान लेते हैं कि किसी चमत्कारिक शक्ति से यह संभव हो गया। फिर भी जाएंगे कहाँ क्योंकि अभी तक कोई भी पूरी तरह से **हेबिटेबल** अर्थात जीवन के अनुकूल ग्रह नहीँ मिला है। कोई **मंगल** पर जाने की योजना बना रहा है, कोई **चाँद** पर। वहाँ बाद में जाएं, पहले ऊँचे **हिमालय** में जाकर देख लो। तापमान की एक डिग्री की कमी भी कम्पकम्पी दे सकती है और जीवन को जोखिम में डाल सकती है। दूसरे ग्रह पर बाद में जाना, क्योंकि वहाँ तो ऐसी अनगिनत समस्याएं होंगी, वे भी विकराल रूप में। धरती पर ही ऐसे बहुत से स्थान हैं, जिन्हें विज्ञान हेबिटेबल नहीँ बना पा रहा है, अन्य ग्रहों की तो दूर की बात है। उमंग और जोश बनाए रखने में कोई बुराई नहीं है।

वैज्ञानिक अंदेशा जता रहे हैं कि **ब्लैक होल** में छुपे पदार्थ किसी अन्य आयाम में छिपे ब्रह्माण्ड में जा सकते हैं। अंतरिक्ष के अनगिनत आयाम मतलब अनगिनत कॉपीयां हो सकती हैं, जैसा अभी हाल की एक पिछली पोस्ट में बताया गया है। अब पता नहीं कौन सी कॉपी में जाकर वे पुनः भौतिक रूप में जन्म ले लेते हैं। यह ऐसे ही है जैसे आदमी मरने के बाद पता नहीं कौन सी कॉपी में चला जाता है। हम जीव दूसरी कॉपी मतलब दूसरे जीव में स्थित ब्रह्माण्ड को बिल्कुल भी अनुभव नहीं कर सकते। हालांकि हम दूसरे जीव के शरीर को तो अनुभव कर ही सकते हैं। इसी तरह हम बाहरी अर्थात स्थूल रूप में तो दूसरे ब्रह्माण्ड को जान ही सकते हैं। पर दूसरे ब्रह्माण्ड हमारी पहुंच से परे हैं। यह ऐसे ही है जैसे नार्थ पोल पर बैठा व्यक्ति साऊथ पोल पर बैठे व्यक्ति को नहीं देख सकता।

अब तो यह प्रमाण भी मिला है कि ब्लैक होल में सभी पदार्थ बहुत ज्यादा विस्फोटक दबाव में दबे होते हैं। वे सम्भवतः विस्फोट के साथ बाहर निकलना चाहते हों, क्योंकि कोई भी वस्तु हो या व्यक्ति, दबाव में रहना पसंद नहीं करते। हवा, पानी आदि चीजें उच्च दबाव के क्षेत्र से निम्न दाब क्षेत्र की तरफ भागते हैं। काम के बेवजह दबाव की वजह से हर साल हजारों-लाखों कर्मचारी अपनी कम्पनियाँ बदलते हैं, अन्यथा बीमार पड़ जाते हैं।

पर ब्लैक होल के वे दबे पदार्थ ब्लैकहोल के **गुरुत्व** बल को भगाकर बाहर नहीं भाग पाते। यह ऐसे ही है जैसा मैं हाल की एक पिछली पोस्ट में सूक्ष्मशरीर रूपी **प्रेतात्मा** के बारे में बता रहा था। हालांकि कुछेक मामलों में ब्लैक होलों को थोड़े-बहुत पदार्थ उगलते हुए देखा गया है। इसी तरह प्रेतात्मा भी विरले मामलों में डरावने रूप बनाकर लोगों को डरा सकते हैं। इन्हें **भटकी हुई आत्माएं** कहते हैं। ये उनके साथ ज्यादा होता है, जो **अकाल मृत्यु** से मरते हैं। अकालमृत्यु मतलब पूरी दुनियावी **मायामोह** में डूबे आदमी की अचानक मृत्यु। दुनिया के प्रति **आसक्ति और द्वैत** भाव वाले आदमी के साथ भी ऐसा हो सकता है। इसमें आदमी को अपने **मानसिक ब्रह्माण्ड** को हल्का और छोटा करने का मौका ही नहीं मिलता। इससे उनका सूक्ष्म शरीर अचानक से बहुत ज्यादा दबाव के साथ बन जाता है। उसी दबाव के कारण वे आभासी जैसे डरावने रूप बनाते रहते हैं। यह पता नहीं कि कैसे। कईयों में अच्छे संकल्पों का दबाव ज्यादा होता है, इसलिए उन्हें **स्वर्ग** का अनुभव होता है। कईयों में बुरे संकल्पों का दबाव ज्यादा होता है इसलिए वही संकल्प **नर्क** के अनुभव के रूप में बाहर को स्फुटित होते रहते हैं। वैसे तो प्रेतात्मा अँधेरे के रूप में रहती है। उसमें कोई संकल्प-विकल्प नहीँ होते। पर संकल्प-विकल्प उसमें **आत्मा के अँधेरे** के रूप में छिपे होते हैं। आदमी जब ऐसी आत्मा के सम्पर्क में आता है, तो वे छुपे हुए संकल्प उसके मन में जिन्दा होने लगते हैं। वे इतना ज्यादा शक्तिशाली हो सकते हैं कि वे उसे असली भौतिक रूप में भी दिख सकते हैं। इसे ही **भूत** दिखना कहते हैं। भूत का मतलब ही भूतकाल है। मतलब यह पुराने समय में हुआ है, अभी नहीँ है। इसीलिए **भूतिया फिल्मों** में आदमी की भूत बनी जीवात्मा की जीवित समय की मार्मिक घटना भूत बनकर डराते हुई दिखाई जाती है। यदि किसी का ऐसे काल्पनिक भूत से सामना हो जाए तो कहते हैं कि उससे बात नहीँ करनी चाहिए। क्योंकि क्या पता **करतबी दिमाग़** झूठमूठ में ही क्या डरावना नजारा दिखा दे, जिससे **हर्टफेल** ही हो जाए। दिमाग़ के करतब का एक अन्य उदाहरण है, मरते हुए आदमी को ले जाने काले **यमराज का काले भैंसे पर** बैठकर आना। यह **शास्त्रों** में भी लिखा है और यह एक वैश्विक अनुभव भी है, मतलब किसी देश या **धर्म** तक सीमित नहीँ है। दरअसल उस समय ऐसी मानसिक अवस्था होती है कि दिमाग़ वैसा काल्पनिक दृश्य रच लेता है जो असली जैसा लगता है। भौतिक रूप से कहीं कोई भैंसा-वैँसा नहीं आता। एकबार मुझे एक जीवंत सपने में एक काला भैंसा पहाड़ी की चोटी की तरफ घने अँधेरे जंगल से होकर ले गया। वह अंधेरा **दिव्य व आनंदमय** था, किसी महान आदमी या **संत** के सूक्ष्मशरीर की तरह। वह भैंसा मुझे बीच रास्ते में छोड़कर भाग गया। फिर मैं ऊपर चढ़ते हुए उस अकेली व मध्यम ऊँचाई की पहाड़ी की चोटी पर पहुंच गया। **अलौकिक दृश्य** था। दो या तीन मंजिला दिव्य कुटिया थी। दिव्य व **चाँद या मौमबत्ती** जैसी रौशनी थी, फिर भी चकाचक। जब मैं दूसरी मंजिल के खुले आँगन या टेरेस में बाहर निकला, तो वहाँ एक **दिव्य साधु**बाबा थे। मेरी लिखी पुस्तक उनके हाथ में थी और खुशी से मुस्कुराते हुए कह रहे थे कि उन्हें डाक आदि से मिली और वे मेरा ही इंतजार कर रहे थे। उन्होंने मेरा प्रेमभाव से भरा दिव्य सम्मान किया। जल्दी ही स्वप्न टूटा

और मैं उस दिव्य अहसास से बाहर हो गया। इसका वर्णन मैंने इस वैबसाईट के अबाउट पेज पर भी किया है।
भटकी आत्मा के संबंध में मैं एक घटना सुनाता हूँ। मैं एक सुंदर पहाड़ी पर बने ढाबे में कभीकभार लंच करने जाया करता था। उसमें वेज-ननवेज हर किस्म का खाना बनता था। सुनने में आया कि एकबार रात को कुछ बदमाश ग्राहकों ने शराब के नशे में बिल को लेकर कहासुनी के बाद ढाबामालिक के बाप के ऊपर जबरदस्ती गाड़ी चढ़ा दी और फरार हो गए। अचानक, एकदम और दर्दनाक **मृत्यु** हुई थी, इसलिए वह **अकालमृत्यु** हुई। उसके बाद जब भी मैं उस ढाबे में जाता था, मुझे वहां अजीब सी एनर्जी महसूस होती थी। साथ में हर बार मेरे संबंधियों के साथ कोई न कोई अशुभ वाकया होता-होता टल जाता था। सम्भवतः मुझे कुण्डलिनी बचा लेती थी, पर कुण्डलिनी योग न करने के कारण कमजोर मन वाले संबंधी पर वह असर डालती थी। सम्भवतः कुण्डलिनी का कुछ असर उन तक भी पहुंच जाता था। उसके बाद मैंने वहाँ जाना बिल्कुल बंद कर दिया। साधारण **धार्मिक कृत्य** तो सभी कराते हैं, पर विशेष मृत्यु के बाद वे विशेष व शक्तिशाली होने चाहिए, ताकि दिवंगत आत्मा को शांति मिले। इसी तरह मैं एक बार परिचित के घर में सोया था। रात को मैंने देखा कि छत से जलती हुई लकड़ियाँ मेरे ऊपर गिर रही हैं। मैं चिल्लाया भी। फिर मैंने **गुरु** और कुण्डलिनी का ध्यान किया। इससे वह **भूतिया दृश्य** हट गया और मुझे नींद आ गई। वहाँ पर ऐसी भूतिया घटनाओं और अकालमृत्यु का पुराना इतिहास रहा था। संक्षेप में प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा सुनी घटनाएं कहूँ तो एक व्यक्ति को रात को पानी पर तैरती ज्योतियां दिखती थीं, जो जलती और बुझती थीं। उस पानी में एक नजदीकी प्रेतग्रस्त परिवार ने प्रेत को गिट्टीयों में बांधकर दबा रखा था। शायद पत्थरों के छोटे टुकड़ों या ऐसे **यन्त्रों** को गिट्टी कहा गया है। एक मित्र को आधी रात को सुनसान सड़क के पास खेलते बच्चे दिखे जो छोटे-बड़े हो रहे थे। एक मित्र को प्रेतबाधा से ग्रस्त मकान में रात को दरवाजा खटखटाने की आवाज आती, दरवाजा खोलने पर लगता कि कुछ अंदर भागता हुआ किसी छेद वगैरह से कुछ वस्तुओं की आवाज के साथ बाहर निकल गया, पर दिखता कुछ नहीँ था। मेरे पूर्व के एक सज्जन व भोले पड़ोसी को एक **तांत्रिक** ने यह कह कर रात को अकेले **श्मशान या कब्रगाह** में जाने को इसलिए कह दिया कि उससे उसका खतरे में पड़ा व्यापार सुरक्षित बचेगा। सुबह वह वहाँ मृत मिला। रिपोर्ट से पता चला कि उसका **हर्ट फेल** हुआ। पर मेरे दादा इतने बहादुर होते थे कि अक्सर कहते थे कि श्मशान में अकेले आराम से सो सकते हैं। बस ऊपर से ओढ़ने के लिए एक चादर चाहिए। उनके अंदर बहुत **कुण्डलिनी** बल था। **हनुमान चालीसा** को भूत भगाने में सर्वोत्तम माना जाता है। मुझे भी लगता है कि हनुमान चालीसा एकदम से कुण्डलिनी शक्ति और **कुण्डलिनी चित्र** को मजबूती के साथ क्रियाशील कर देता है। हाँ, वही **भगवान हनुमान** इस चालीसा के माध्यम से शक्ति देते हैं, जिसे **बाघेश्वर धाम सरकार वाले पंडित धीरेन्द्र** शास्त्री ने सिद्ध किया हुआ है, और जिससे वे बहुत से **चमत्कार** दिखाते हैं। मुझे सबसे रोमांचकारी, नकली या ढोंगी गुरुओं से बचाने वाली और **पारिवारिक प्रेम** को उजागर करने वाली यह

बात लगी कि उनके **दादा ही उनके धर्मगुरु** हैं। बहुत से तथाकथित **जादूगर, सैकुलर और विधर्मी** लोग उनका पर्दाफाश करने सामने आए, पर सफल न हो सके। आजकल यह एक **गर्म चर्चा** का विषय बना हुआ है।
फिर कहते हैं कि **ब्लैक होल** चमकते सितारों को अपनी तरफ खींच कर निगल लेते हैं। मतलब वे मृत्युरूप होते हैं। सूक्ष्मशरीर भी तो मृत्युरूप ही होता है। जीवन उसके चारों तरफ घूमता है। वह जीवन के केंद्र में होता है, और बढ़ती आयु के साथ जीवन को अपनी ओर ज्यादा से ज्यादा खींचता जाता है। अंत में जीवन उसमें गिरकर खत्म हो जाता है। आदमी का सूक्ष्मशरीर उसके जीवन की हरेक गतिविधि पर अपना नियंत्रण रखता है। कहते हैं कि वे **संस्कार** सूक्ष्मशरीर अर्थात **सबकोन्सियस माइंड** अर्थात **अवचेतन मन** में ही रहते हैं, जो आदमी के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। उसी तरह ब्लैक होल भी अपने से जुड़े सभी ग्रहों, सितारों और अन्य **आकाशीय पिंडों** को अपने नियंत्रण में रखकर उन्हें अपने चारों तरफ घुमाता रहता है। इसी तरह डार्क एनर्जी और **डार्क मेटर** भी पूरे ब्रह्माण्ड का संतुलन बना कर रखते हैं। फिर कहते हैं कि एक ब्लैक होल अपने पितृ तारे को तो निगलता ही हैं, पर दूसरे अन्य अनगिनत तारों को भी निगलते हैं। महान आत्मा जैसे कि किसी महान **नेता, खिलाड़ी** या अन्य किसी महान **कलाकार** का सूक्ष्म शरीर भी तो उनके अनगिनत फॉलोवर को अपनी तरफ खींचता है। उनकी मृत्यु से उनके पिछलग्गू कई दिन मातम व मायूसी के माहौल में रहते हैं, कई **आत्महत्या** कर लेते हैं, और कई दंगे फैलाकर **जिनोसाइड** अर्थात **सामूहिक नरसंहार** को अंजाम देते हैं। बेशक वे सभी एक बड़े ब्लैकहोल में समा जाते हैं, पर उनकी पृथक सत्ता भी रहती ही है।

कुण्डलिनीयोगानुसार क्वांटम एन्टेंगलड पार्टिकल्स डार्क मैटर से आपस में ऐसे ही जुड़े होते हैं जैसे दो प्रेमी सूक्ष्मशरीर से आपस में जुड़े होते हैं

दोस्तों, **सूक्ष्मशरीर** से सम्पर्क अक्सर होता रहता है। जिससे प्रेमपूर्ण संबंध हो, उसके सूक्ष्मशरीर से सम्पर्क जुड़ा होता है। इसी तरह जिसके सूक्ष्मशरीर से सम्पर्क जुड़ा होता है, उससे प्यार भी होता है। खाली स्थूलशरीर से प्यार नहीं हो सकता। **सऊलमेट** को ही देख लो। उनको ऐसा लगता है कि वे एकदूसरे की **मिरर इमेज़** हैं। बेशक उनकी शक्ल आपस में न मिलती हो, पर उनके मन आपस में बहुत ज्यादा मेल खाते हैं। उनमें एक लड़का होता है, और एक लड़की। बेशक **यौन आकर्षण** भी उन्हें एकदूसरे के नजदीक लाते हैं, पर इससे एकदूसरे से नजदीकी से रूबरू ही हो सकते हैं, इससे **प्यार** पैदा नहीँ किया जा सकता। तभी तो आपने देखा होगा कि आदमी सेक्स से संतुष्ट ही नहीं होता। यदि **सम्भोग** में प्यार पैदा करने की शक्ति होती तो आदमी का कभी **तलाक** न हुआ करता, आदमी एक से ज्यादा शादियां न करता, और न ही एक से ज्यादा महिलाओं से यौनसंबंध बनाता। मुझे लगता है कि सेकसुअल सम्पर्क एक निरीक्षण अभियान है, जिससे आदमी नजदीक जाकर यह पता लगाता है कि उसे अमुक से प्यार है कि नहीँ। यह अलग बात है कि कई लोग इस सर्वे में इतना गहरा घुस जाते हैं कि बाहर ही नहीं निकल पाते और मजबूरी में वहीं रहकर समझौता कर लेते हैं। कइयों को लगता होगा कि मैं विरोधी बातें करता हूँ। मैं ओपन माइंड रहना पसंद करता हूँ, किसी भी विशेष सोच से चिपके रहना नहीं। कई जगह मैंने कहा है कि संभोग में प्यार को पैदा करने की शक्ति है। यह भी सही है, पर शर्त लागू होती है। इसके लिए काफी समय, प्रयास व संसाधनों की आवश्यकता होती है। जब बना बनाया खाना मिलने की उम्मीद हो, तो खुद क्यों बनाना भाई।

गहरे स्त्रीपुरुष प्यार में सूक्ष्मशरीर बेशक आपस में जुड़े हों, पर वे एकदूसरे से बदले नहीँ जा सकते। गहरे प्यार में एकदूसरे से टेलीपेथीक सम्पर्क बन जाता है, एकदूसरे की सोच और जीवन एकदूसरे को प्रभावित करने लगते हैं। अगर एक पार्टनर कुछ सोचे तो दूसरे के साथ वैसा ही होने लगता है, बेशक वह कितना ही दूर क्यों न हो। मतलब साफ है कि वे एकदूसरे के सूक्ष्मशरीर से प्रभावित होते हैं। पर पता नहीँ क्यों तीसरे सूक्ष्मशरीर के अखाड़े में प्रवेश करने से सभी परेशान होने लगते हैं। हाहा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि सूक्ष्मशरीर **अनंत आकाश** की तरह **सर्वव्यापी** है। एकबार मेरे **विश्वविद्यालय** के मित्र के पिता का देहावसान हुआ था। उनसे मैं कई बार प्रेमपूर्ण माहौल में मिला भी था। वह मुझसे सैंकड़ों किलोमीटर दूर थे। मुझे कुछ पता नहीँ था। उसी रात मुझे नींद में अपने पिता की मृत्यु की जीवंत तस्वीर दिखी थी। मैं उसकी वजह नहीँ समझ पा रहा था। अगले दिन जब मुझे खबर मिली तब बात समझ में आई। उस दौरान मैं गहन **तांत्रिक**

कुण्डलिनी योग अभ्यास करता था, संभवतः उससे ही इतना जीवंत महसूस हुआ हो। लगता है कि **क्वांटम एन्टेंगलमेंट** भी यही है। दोनों एन्टेंगलड क्वांटम पार्टिकल्स आपस में सूक्ष्मशरीर जैसी चीज से जुड़े हो सकते हैं। यह तो जाहिर ही है कि दृश्य **ब्रह्माण्ड** के आधार में **डार्क मैटर** और **डार्क एनर्जी** से भरा **अनंत अंतरिक्ष** होता है। यह भी पता है कि वही दृश्य जगत के रूप में उभरता है, उसी के नियंत्रण में रहता है, और नष्ट होने पर वही बनकर उसी में समा जाता है। इसका मतलब है कि डार्क मेटर और दृश्य जगत केवल आपस में बारबार रूप बदलता रहता है, कभी न तो कुछ नया बनता है, और न ही बना हुआ नष्ट होता है। यह दुनिया पहले भी हनेशा थी, आज भी है, और आगे भी हमेशा रहेगी। इसमें रोल प्ले करने वाले नए-नए **कलाकार** आते रहेंगे, और मुक्तिरूपी परमानेंट नेपथ्य में जाते रहेंगे। एन्टेंगलड क्वांटम पार्टिकल्स का सूक्ष्मशरीर एक ही होता है। वह सूक्ष्म शरीर उन पार्टिकल्स का डार्क मेटर है, जिससे वे बने हैं। इसीलिए जब एक पार्टिकल से छेड़छाड़ होती है, तो वह दूसरे को भी उसी समय प्रभावित करती है, बेशक वे दोनों एकदूसरे से कितनी ही दूरी पर क्यों न हो, बेशक एक कण **गेलेक्सी** के एक छोर पर हो और दूसरा दूसरे छोर पर। इसका मतलब है कि हरेक **फंडामेन्टल पार्टिकल** का अपना अलग डार्क मेटर है, जो अनंत अंतरिक्ष में फैला होकर अनंत अंतरिक्षरूप ही है। इसी तरह जैसे हरेक जीव एक अलग अनंत अंतरिक्षरूप है, अपनी किस्म का। जैसे आदमी का हरेक क्रियाकलाप उसके सूक्ष्मशरीर में दर्ज हो जाता है, और उसीके अनुसार वह उसीके जैसा बारबार बनाता रहता है, उसी तरह हरेक **मूलकण** का हरेक क्रियाकलाप उसके डार्क मेटर में दर्ज होता रहता है। **प्रलय** के बाद जब पुनः **सृष्टि** प्रारम्भ होने का समय आता है, तब उस डार्क मेटर से पुनः वह मूलकण बन जाता है, और उसमें दर्ज सूचनाओं के अनुसार आगे से आगे सृष्टि निर्माण करने लगता है। इसी तरह से सभी मूलकणों के सहयोग से सृष्टि पुनः निर्मित हो जाती है। शास्त्रों में इसे ऐसे कहा है कि पहले **ब्रह्मा** की उत्पत्ति हुई, उनसे **प्रजापतियों** की उत्पत्ति हुई आदि-आदि। मतलब शास्त्रों में भी मूलकणों को मनुष्यों का रूप दिया गया है, क्योंकि दोनों के स्वभाव एकजैसे हैं। लगता है कि **भौतिक विज्ञान** सूक्ष्मशरीर को अलग तरीके से समझ रहा है। इसके अनुसार एन्टेंगलड क्वांटम पार्टिकल्स की **तरंग** आपस में जुड़ी होती है। वह अनंत अंतरिक्ष की दूरी तक भी आपस में जुड़ी ही रहती है।
फिर कहते हैं कि दो मूलकणों को एन्टेगल किया जा सकता है, अगर उन्हें एकदूसरे के काफी नजदीक कर दिया जाए। सम्भवतः इससे उनके डार्क मेटर आपस में एकदूसरे तक पहुंच बना लेते हैं। यह ऐसे ही है, जैसे दो नजदीकी प्रेमियों के सूक्ष्मशरीर एकदूसरे तक पहुंच बना लेते हैं, जैसा ऊपर बताया गया है।

उपरोक्त विवरण से कुछ वैज्ञानिकों और **शास्त्रों** का यह दावा भी सिद्ध हो जाता है कि **भूत, भविष्य और वर्तमान** सब आपस में जुड़े हैं, मतलब **समय** का अस्तित्व नहीं है।

जो आज हो रहा है, और जो आगे होगा, वैसा ही पहले भी हुआ था, कुछ अलग नहीं। सबकुछ पूर्वनिर्धारित है। हालांकि आदमी के **कर्म** और प्रयास का महत्त्व भी है।

कुंडलिनी योग डीएनए को सूक्ष्म शरीर और डार्क एनर्जी या डार्क मैटर के रूप में दिखाता है

सूक्ष्म शरीर पांच ज्ञानेन्द्रियों, पांच कर्मेंद्रियों, पांच प्राण, एक मन और एक बुद्धि के योग से बना है।

यह सूक्ष्मशरीर ही **परलोकगमन** करता है, हाड़मांस से बना **स्थूलशरीर** नहीं। कोई बोल सकता है कि जब स्थूल शरीर नष्ट हो गया, तब ये इन्द्रियां, प्राण आदि कैसे रह सकते हैं, क्योंकि ये सभी स्थूलशरीर के आश्रित ही तो हैं। यही तो ट्रिक है। इसे आप **लेखन** की वर्णन करने की **कला** भी कह सकते हैं। लेखक अगर चाहता तो सीधा लिख सकता था कि शरीर और उसके सारे क्रियाकलाप उसके सूक्ष्मशरीर में दर्ज हो जाते हैं। पर यह वर्णन आकर्षक और समझने में सरल न होता। क्योंकि शरीर और उसके सभी क्रियाकलाप उसके मन, बुद्धि, कर्मेंद्रियों, ज्ञानेन्द्रियों, और पांचों प्राणों के आश्रित रहते हैं, इसलिए कहा गया कि सूक्ष्मशरीर इन पांचों किस्म की चीजों से मिलकर बना है। मुझे तो ऐसा अनुभव नहीं हुआ था। मुझे तो ये चीजें सूक्ष्मशरीर में अलगअलग महसूस नहीं हुई, बल्कि एक ही अविभाजित **अंधेरा** महसूस हुआ, जिसमें इन सभी चीजों की छाप महसूस हो रही थी। मतलब साफ है कि सूक्ष्मशरीर अनुभवरूप अपनी **आत्मा** के माध्यम से ही चिंतन करता है, आत्मा से ही निश्चय करता है, आत्मा से ही काम करता है, आत्मा के माध्यम से ही सभी इन्द्रियों के अनुभव लेता है, और आत्मा से ही दैनिक जीवन के सभी शारीरिक क्रियाकलाप करता है। मतलब सूक्ष्मशरीर में **जीव** के पिछले सभी जीवन पूरी तरह से दर्ज रहते हैं, जिनको वह लगातार आत्मरूप से अपने में अनुभव करता रहता है। ये अनुभव स्थूल शरीर की तरंगों की तरह बदलते नहीं। एक प्रकार से ये पिछले सभी जन्मों का मिलाजुला औसत रूप होता है। कई लोग सोचते होंगे कि सूक्ष्मशरीर एक बिना शरीर का **मन** होता होगा, जिसमें खाली **अंतरिक्ष** में विचारों की तरंगें उठती रहती होंगी, पर फिर स्थूल और सूक्ष्म शरीर में क्या अंतर रहा। वैसे भी बिना स्थूल शरीर के आधार के स्थूल मन का अस्तित्व संभव नहीं है। उदाहरण के लिए आप अपनी अंगूठी में जड़े हुए **हीरे** को सूक्ष्मशरीर मान लो। इसमें इसके जन्म से लेकर सभी सूचनाएं दर्ज हैं। कभी यह शुद्ध ऊर्जा था। **सृष्टि निर्माण** के साथ यह धरती पर वृक्ष बन गया। फिर **भूकंप** आदि से वृक्ष धरती के अंदर सैंकड़ो किलोमीटर नीचे दब कर कोयला बना। फिर पत्थर का कोयला बना। लाखों वर्षो तक यह भारी तापमान और दबाव झेलता रहा। इसमें अनगिनत परिवर्तन हुए। इसने अनगिनत क्रियाएं कीं। इसने अनगिनत वर्ष बिताए। फिर वह खोद कर निकाला गया। फिर तराशा गया। फिर आपने इसे खरीदा और अपनी अंगूठी में लगाया। ये सभी सूचनाएं इस हीरे में दर्ज हैं। हालांकि हीरे को देखकर हमें इन सूचनाओं का स्थूलरूप में पता नहीं चलता, पर वे सूचनाएं सूक्ष्मरूप में हमें जरूर अनुभव होती हैं, तभी हमें हीरा बहुत सुंदर, आकर्षक और कीमती लगता है। ऐसे ही किसीके सूक्ष्म शरीर

के अनुभव से उसका पूरा पिछला ब्यौरा स्थूल रूप में मालूम नहीं होता, पर सूक्ष्मरूप में अनुभव होता है, उसके औसत स्वभाव को अनुभव करके। **गीता** में **योगेश्वर श्रीकृष्ण** कहते हैं कि वे **अर्जुन** के पिछले सभी जन्मों को जानते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उन्हें अपने मन में **दूरदर्शन** की तरह सभी दृष्य महसूस हो रहे थे, बल्कि यह मतलब है कि उन सबका निचोड़ सूक्ष्मशरीर के रूप में महसूस हो रहा था। **शास्त्रों** की शैली ही ऐसी है कि वे अक्सर तथ्यों का पूर्ण विश्लेषण न करके उन्हें **चमत्कारिक** रूप में रहने देते हैं, ताकि पाठक हतप्रभ हो जाए।

ये अनुभव स्थूलशरीर से लिए अनुभवों से सूक्ष्म होते हैं, हालांकि हमें ऐसा लगता है, सूक्ष्मशरीर के लिए तो वह स्थूल अनुभव की तरह ही शक्तिशाली लगते होंगे, क्योंकि उस अवस्था में जीवित अवस्था के उन विचारों के शोर का व्यवधान नहीं होता, जो अनुभवों को कुंठित करते हैं। साथ में, पिछले सारे जन्मों का अनुभव भी आत्मा में हर समय सूक्ष्म रूप में बना रहता है, जबकि स्थूलशरीर में स्थूल विचारों के शोर में दबा रहता है। हाँ, वह नए अनुभव नहीँ ले सकता, क्योंकि उसके लिए स्थूलशरीर जरूरी होता है। इसलिए उसका आगे का विकास भी नहीँ होता। आगे के विकास के लिए ही उसे स्थूलशरीर के रूप में **पुनर्जन्म** लेना पड़ता है। मुझे तो सूक्ष्मशरीर **डीएनए** की तरह जीव की सारी सूचनाएं दर्ज करने वाला लगता है। इसी तरह मुझे **डार्क एनर्जी** या **डार्क मैटर** भी स्थूल **ब्रह्माण्ड** का **शाश्वत डीएनए** लगता है।

डार्क एनर्जी और सूक्ष्मशरीर की समतुल्यता तभी सिद्ध हो सकती है, अगर उसे हम विभागों में न बांटकर एकमात्र अंधेरभरे आसमान की तरह मानें जिसमें इनके स्थूल रूप की सभी सूचनाएं सूक्ष्म अर्थात आत्म-अनुभवरूप में दर्ज होती हैं। कृपया इसे पूर्ण आत्मानुभव अर्थात **आत्मज्ञान** न समझ लिया जाए। यह आत्म-अनुभव की सर्वोच्च अवस्था है, जो एक ही किस्म का होता है, और जिसमें कोई सूचना दर्ज नहीँ होती मतलब शुद्ध आत्म-रूप होता है, जबकि सूक्ष्मशरीर वाला आत्म-अनुभव बहुत हल्के दर्जे का होता है, और उसमें दर्ज गुप्त सूचनाओं के अनुसार असंख्य प्रकार का होता है। यह "**यत्पिंडे तत् ब्रह्मान्डे**" के अनुसार ही होगा।

कुण्डलिनी योग आनंदमय कोष के साथ शरीर के सभी कोषों को एकसाथ खोलता है

शास्त्रों के अनुसार हमारी स्थूल देह का नाम **अन्नमय कोष** है, जो कि **मृत्यु** के साथ ही समाप्त हो जाता है। शरीर में स्थित पांच वायु और पांच **कर्मेन्द्रियों** के समूह को **प्राणमय कोष** कहते हैं। मन सहित पांचों **ज्ञानेनिद्रियों** के समूह को **मनोमय कोष** कहा गया है। बुद्धितत्व युक्त पांचौं ज्ञानेंद्रियों के समूह को **विज्ञानमय कोष** कहते हैं। सबसे भीतरी और सूक्ष्म कोष **आनंदमय कोष** है, वह **सत्वगुणी अविद्या** से संचालित है। परन्तु **आत्मा** इन सब से अछूती है। इसका थोड़ा विश्लेषण करते हैं। स्थूल शरीर मतलब अन्नमय कोष तो सबके प्रत्यक्ष है ही। कर्मेन्द्रियों को प्राणमय कोष में इसलिए लिया गया है, क्योंकि प्राणों का सबसे पहले स्पष्ट प्रभाव कर्म-इन्द्रियों पर ही नजर आता है। **कुण्डलिनी योग** के दौरान जब प्राण को विशेष **चक्र** पर केंद्रित करते हैं, तो वहाँ सिकुड़न जैसी हलचल होती है, और उससे जुड़ी कर्मेन्द्रियों को शक्ति मिलती है। तभी तो **व्यायाम**, **खेल**, दौड़ व भारी काम से सांस तेज चलती है, जिससे कर्मेन्द्रियों को प्राणों का संचार बढ़ता है। मानसिक काम से वैसी साँस नहीँ फूलती, इसलिए इसे मनोमय कोष में रखा गया है। **दूरदर्शन** देखते और सुनते समय साँस नहीँ फूलती। किसी भोजन को सूंघते और चखते हुए या उसको स्पर्श करते हुए भी साँस नहीँ फूलती। इसीलिए त्वचा, आँख, कान, नाक और जिव्हा पांचौं को ज्ञानेंद्रियों में रखा गया है। मतलब ये कर्मप्रधान की अपेक्षा ज्ञानप्रधान हैं। कर्म तो इनसे भी होता है। जननेन्द्रिय को भी कर्मेन्द्रिय में रखा गया है, क्योंकि इसके प्रयोग से भी साँस फूलती है। गुदा इन्द्रिय को भी कर्मप्रधान कर्मेन्द्रियों के साथ रखा गया है। पांचौं ज्ञानेंन्द्रियों को मन के साथ इसलिए मनोमय कोष में रखा जाता है, क्योंकि इनसे संवेदनाओं के अनुभव से मन क्रियाशील हो जाता है। सुंदर दृश्य देखने से या सुंदर **संगीत** सुनने से मन में सुंदर विचार आते हैं। विचारों को साधारण ज्ञान कह सकते हैं। विशेष ज्ञान **बुद्धि** के सहयोग से ही पैदा होता है। जैसे **कार के शोरूम** में बहुत से साधारण विचार आते हैं। आदमी जब बुद्धि से कार खरीदने का निर्णय लेता है, तो उसकी खरीद से जुड़े विचार ज्यादा ताकतवर, प्रभावशाली, व्यावहारिक और कर्मप्रेरक होते हैं। 'वि' मतलब विशेष, इसलिए विज्ञान मतलब विशेष ज्ञान। इससे आनंद पैदा होता है। कार का मालिक बन कर किसको आनंद नहीं होता। वह आनंदमय कोष से महसूस होता है। दरअसल आनंद बिना लहरों की शुद्ध आत्मा में महसूस होता है। विज्ञान और कर्म की ताकतवर व्यक्त लहरों से सूक्ष्मशरीर में ताकतवर छाप पड़ती है। उस छाप को ही सत्त्वगुणी अविद्या कहा गया है। मतलब कार खरीदने की क्रिया को आप सत्त्वगुणप्रधान कह लो, क्योंकि यह काम आराम से, आनंद से, तसल्ली से, **इंसानियत** से और **शिष्टाचार** से होता है। इसलिए इससे जो छाप **सूक्ष्मशरीर** अर्थात अविद्या अर्थात विशेष अँधेरे पर पड़ती है, वह भी वैसी ही होती है। सीमित समय के लिए ही इस छाप

का प्रभाव शेष अनंत सूक्ष्मशरीर के मुकाबले ज्यादा होती है, क्योंकि यह छाप ताज़ा होती है, बाद में तो यह सूक्ष्मशरीर में मौजूद अनगिनत छापों में घुलमिलकर उनकी तरह साधारण बन जाती है। इसीलिए **भौतिकता** से मिला आनंद हमेशा के लिए नहीँ रहता। दूसरे उदाहरण के लिए आप कल्पना करो कि आप परिवार व किसी अच्छे रिश्तेदार के साथ सुंदर कार से पहुंच कर किसी सुंदर **रिसोर्ट** में बैठे हैं। बाहर **लॉन** में आरामदायक कुर्सी पर धूप सेंक रहे हैँ। सामने कांच के गोल टेबल पर पीने के लिए शुद्ध जल है। और भी खाने-पीने के लिए आर्डर पर एकदम मिल जाता है। नजदीक में आपका परिवार आनंद से टहल रहा है। बच्चे सामने पार्क में खेल रहे हैं। सामने ही स्विमिंग पूल है। आप लंबी और धीमी सांस लेते हुए सुस्ता रहे हैं। आपको अपनी आत्मा के अँधेरे में बहुत बढ़िया आनंद महसूस होगा। है तो वह आम अँधेरे की तरह ही जिसे अविद्या कहा गया है, पर वह अन्य सामान्य अंधेरों के विपरीत आनंद से भरा होगा। यह इसलिए क्योंकि यह अंधेरा स्वयं की **सत्ता** और **अस्तित्व** से भरा होगा। यह **सत्त्वगुणी अंधेरा** है। मतलब सत्ता बढ़ाने वाली सारी सुविधाएं आपको सामने उपलब्ध हैं, पर आप अविद्या में आनंद का मजा ले रहे हैं। आदमी की सुखसुविधा भोगने की भी सीमा है। उससे थकने के बाद सत्त्वगुणी अविद्या से ही आनंद मिलता है। दरअसल आनंद का स्रोत सत्त्वगुणी अविद्या ही है, सीधे तौर पर सुखसुविधा नहीँ। अविद्या मतलब विद्या या ज्ञान का निषेध है। इसलिए यह अज्ञान का अंधेरा ही है। आपको सत्त्वगुणी अविद्या का एक और उदाहरण देता हूँ। मानलो आप ऐसी जगह पर हैं, जहाँ से एक तरफ मैदानी क्षेत्र शुरु होता है। आपके सामने दूसरी तरफ पर्वतमाला दिख रही है। आपको उस मिश्रित जैसे मैदानी भाग में शुद्ध मैदानी भाग से भी ज्यादा आनंद आएगा, क्योंकि सामने का दुर्गम व कठिनाइयों से भरा पर्वत आप की सत्ता को सापेक्ष रूप से वास्तविक सत्ता से भी ज्यादा बढ़ा हुआ महसूस कराएगा। ऐसी ही एक जगह है आनंदपुर। सम्भवतः इसी विशेष आनंद के कारण इसका यह नाम पड़ा है। यहाँ पर **सिख धर्म** का प्रसिद्ध **गुरुद्वारा आनंदपुर साहब** स्थित है। सत्त्वगुणी अविद्या के विपरीत जो अंधेरा **गुस्से, डर, अभाव, चिंता** आदि के साथ पैदा होता है, उसमें आनंद नहीँ होता। इनमें अविद्या का अंधेरा **स्व-अस्तित्व** के विरुद्ध होता है। एक ही अंधेरा अलगअलग परिस्थितियों में अलगअलग ढंग से महसूस होता है। यह रोचक **मनोविज्ञान** है।आनंदमय कोष से भी एक कदम ज्यादा गहराई में पूर्ण शुद्ध आत्मा है। इसके साथ आनंद जैसा कोई शब्द नहीं जुड़ा है, क्योंकि यह **अनिर्वचनीय** है, आनंद से भी ऊपर। अधिकांश लोग आनंदमय कोष के **ब्लिस या आनंद** को शुद्ध आत्मा जानकर उससे मोहित हुए रहते हैं, और **आत्मजागृति** के लिए विशेष प्रयास नहीँ करते। शुद्ध आत्मा में स्थूल जगत की कोई छाप नहीं होती। इसलिए यह अपने मूलरूप में पूर्ण प्रकाशमान होता है। दरअसल **प्रकाश** शब्द भी लौकिक है, आत्मा इससे भी परे होता है। इसीलिए आत्मा को सबसे अप्रभावित अर्थात अछूता कहा गया है।

सभी कोष बारीबारी से और क्रमवार ही अच्छे खुलते हैं, जैसे किसी महल के सुरक्षा घेरे लांघे जाते हैं। **बचपन** में खाने-पीने से अन्नमय कोष विकसित होकर खुल जाता है।

खेलकूद, व्यायाम और विभिन्न कामों को सीखने से प्राणमय कोष विकसित होकर खुल जाता है। फिर **माध्यमिक विद्यालय** स्तर की ऊँची कक्षाओं में पहुंच कर वह जटिल व विशेष विषय वाली शिक्षा को ग्रहण करते हुए मनोमय कोष को खोलता है। महाविद्यालय या **विश्वविद्यालय** स्तर पर **तकनीकी** और व्यावहारिक शिक्षा लेकर वह विज्ञानमय कोष को खोलता है। फिर **नौकरी या व्यापार** करते हुए वह धन कमाने लगता है, और विज्ञानमय कोष की सहायता से आनंदमय कोष को खोलता है। उसको भी पूरा विकसित करके वह **तांत्रिक** कुण्डलिनी योग की तरफ खुद ही आकर्षित होकर उससे आत्मा तक पहुंचने का प्रयास करता है।

कुण्डलिनी योग से वैसे सभी कोष एकसाथ भी खुल सकते हैं। योगासन व प्राणायाम से भूख लगती है, और शरीर स्वस्थ रहता है। इससे अन्नमय कोष खुला रहता है। **प्राणायाम** से प्राणमय कोष खुला रहता है। प्राणमय कोष खुलने से मनोमय कोष खुलता है। फिर चक्रों पर कुण्डलिनी ध्यान से विज्ञानमय कोष खुल जाता है। विज्ञानमय कोष खुलने से आनंदमय कोष खुद ही खुल जाता है। अंत में कुण्डलिनी जागृत होने से आदमी आत्मा तक भी पहुंच जाता है।

आनंदमय कोष को लाँघने का आसान तरीका बताता हूँ। आराम से धूप में कुर्सी पर बैठें। पूरे शरीर को देखते हुए उसका ध्यान करें। इससे अन्नमय कोष खुलेगा। **निद्रा देवी** का ध्यान करके और **नींद शब्द** का मानसिक उच्चारण करते हुए मस्तिष्क को ढीला व तनावरहित कर दें। **गहरी साँस** आएगी। उस पर ध्यान दें। धीमी और गहरी सांसें चलने लगेंगी। उससे प्राणमय कोष खुलेगा। उससे मन में पुरानी यादों के साथ अन्य विचार जागेंगे। इससे मनोमय कोष खुलेगा। फिर बुद्धि से निश्चय करके उन पर **साक्षीभाव** रखते हुए शरीर पर, सांसों पर और निद्रा पर ध्यान जारी रखेंगे। इससे विज्ञानमय कोष जागेगा। थोड़ी देर में विचार आत्मा में विलीन हो जाएंगे। इससे मन में **विचारशून्यता** का अंधेरा जैसा महसूस होगा। इसे सत्त्वगुणी अविद्या कहेंगे। यह इसलिए क्योंकि यह जानबूझकर पवित्र **सत्त्वगुण** से पैदा की गई। यह रजोगुणी अविद्या की तरह लड़ाई-झगड़े या जीवन के रोजाना के संघर्ष से पैदा नहीं हुई। न ही यह नशे, आमिष आदि से पैदा **तमोगुण** से पैदा हुई। सत्त्वगुणी अँधेरे से आनंद महसूस होने से आनंदमय कोष भी खुल जाएगा। लगभग एक घंटे में यह पूरी साधना हो जाएगी। आनंदमय कोष के खुले होने पर यदि आदमी लगभग एक-दो घंटे तक तांत्रिक कुण्डलिनीयोग का अभ्यास भी करता रहे, तो कुण्डलिनी **जागरण** के रूप में आत्मा की तरफ भी बढ़ता रहेगा।

मृत्यु अटल सत्य है। पर मरना किसीके लिए **कला** है, तो किसी के लिए **किस्मत** है। कोई सतोगुणी अविद्या के माध्यम से **सुख** और आनंद से मरता है, तो किसी को मजबूरन रजोगुणी और तमोगुणी अविद्या के पाले पड़कर बहुत **दुःख** और कष्ट के साथ मरना पड़ता है।

कुण्डलिनीयोग एक अध्यात्मवैज्ञानिक मशीन के रूप में

मनोमय शरीर भी आदमी खुद ही होता है। वह कोई और नहीं होता। वह बहुत विस्तृत होता। जब उसे अपने आप के रूप में अनुभव किया जाता है, तब वह क्षीण होने लगता है, और कुण्डलिनी छवि का रूप लेने लगता है। खालीपन, हल्कापन और आनंद सा भी महसूस होता है। इसी तरह, दरअसल **ज्ञान** आत्मा का होता है। पर **विज्ञान** मतलब विशेष ज्ञान तब होता है, जब आत्मा के साथ मन मतलब मनोमय शरीर भी जुड़ जाता है। **मन आत्मा का ही विशेष रूप है।** इसलिए मन का ज्ञान जब आत्मा के विशेष ज्ञान के रूप में किया जाता है, तब यही **विज्ञानमय कोष** है। मन का साधारण व पराई वस्तु के रूप में ज्ञान तो मनोमय कोष है। पर जब उसे ही अपना रूप समझा जाता है, तब यही विज्ञानमय कोष है। यह भी शरीर से जुड़ा हमारा ही भाग या कोष है, पर लगता है जैसे बाहर अनंत दिशाओं और दूरियों में फैला है। **दरअसल आदमी एक उड़ती हुई पतंग की तरह है। मन उड़ने वाला रंगीन कागज है, इसके शरीर से जुड़े होने की भावना डोर है, और शरीर उस डोर को पकड़ने वाला है। जब तक डोर है, तभी तक पतंग सलामत है, नहीँ तो भटक कर नष्ट हो जाएगी।** एक जगह मैंने बस के डेशबोर्ड पर लिखा हुआ पढ़ा था कि मन एक पैराशूट की तरह है, यह तभी अच्छे से काम करता है, जब यह खुला हुआ होता है। शायद इसका भी यही अर्थ है। शास्त्रों में इसे ऐसे कहा है कि मन को दृष्य रूप न समझकर द्रष्टा रूप समझना है। **साक्षीभाव** भी यही है, बल्कि इसका ही हल्का और आसान तरीका है। जब आत्मा मन को चुपचाप साक्षी बनकर देखता है, तब भी मन की **ध्यान छवि** अभिव्यक्त होने लगती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि मन आत्मा का ही विशेष रूप है, मतलब मन विज्ञान रूप है। मन तभी तक है, जब तक इसे बाहरी या पराया समझा जाए। जब इसे अपना आत्मरूप समझा जाता है, तब यह हल्का पड़ने लगता है। घर की मुर्गी दाल बराबर। महत्त्वबुद्धि बाहरी या पराई चीज के लिए होती है, अपनी चीज या अपने लिए नहीं। इसमें मन नष्ट नहीँ होता, बल्कि महत्त्वहीन सा होकर धीमा पड़ जाता है। इससे आनंद पैदा होता है। पहले की भटकी हुई अवस्था में मन ने जो अतिरिक्त शक्ति ली हुई थी, वह कुण्डलिनी छवि को मिल जाती है। इससे आनंद में और इजाफा होता है, क्योंकि कुण्डलिनी छवि लम्बे समय तक बने रहकर बिना आदमी के दार्शनिक प्रयास के खुद ही भटकते मन की अतिरिक्त चर्बी उतारकर चूसती रहती है, जिससे आनंद लम्बे समय तक, और पहुंचे हुए कुण्डलिनी योगियों में तो स्थायी ही बना रहता है। मन की हल्की वृत्ति **सत्त्वगुणरूप** है। इसलिए मन के क्षीण होने से जो मनमिश्रित अंधेरा जैसा पैदा होता है, उसे **सतोगुणी अविद्या** कहते हैं, जैसा पिछली पोस्ट में बताया गया था। इसी से इसमें आनंद होता है। यही **आनंदमय कोष** है। इसके विपरीत मन का बिल्कुल नष्ट होना **तमोगुणरूप** है, और मन का पूरे वेग में होने से उसका

वास्तविक जैसा लगना **रजोगुणरूप** है। इनके साथ जुड़ा अविद्यारूपी अंधेरा क्रमशः **तमोगुणी अविद्या** और **रजोगुणी अविद्या** है। पहली अवस्था में **दुःख** और दूसरी अवस्था में **सुख** होता है, आनंद नहीँ। सुख और दुःख एकदूसरे से जिन्दा रहते हैं। आनंद सुख व दुःख से परे है, और हमेशा एक जैसा बना रहता है। आनंद को सुख और दुःख का मिश्रित रूप भी कह सकते हैं, क्योंकि इसमें मन और अंधेरा दोनों बराबर संतुलन में एकसाथ रहते हैं। रजोगुण में मन बहुत भड़कीला होता है, जिसके साथ अंधेरा बिल्कुल नहीँ रहता, इसलिए यह सुख है। जब मन थककर बैठ जाता है, तब पूरी तरह से बेजान सा हो जाता है, जिससे मस्तिष्क में घुप्प अंधेरा छा जाता है। यह दुःख है। यही घोर तमोगुण भी है। सुख और दुःख का चक्र चलता रहता है, जिससे आत्मा की सफाई नहीं होती। मुझे अपनी प्रारम्भिक पुस्तक के समय इसका इतना गहरा विश्लेषण पता नहीं था, हालांकि ऐसा व्यावहारिक अनुभव जरूर था। उसमें मैंने इसे ऐसे लिखा है कि **अनासक्ति** से ही आनंद पैदा होता है। बात सही भी है। अनासक्ति से मन धीमे और **संतुलित** चलता है। वैसे **आसक्ति** औरों के प्रति ही होती है, अपने प्रति नहीँ। इसलिए मन को आत्मा समझने से अनासक्ति खुद पैदा होती है। मैंने अनासक्ति सिद्धांत के बहुत से उदाहरण दिए थे। जैसे कि आनंद **मदिरा** से नहीं बल्कि उससे मन के धीमा होने से होता है, जो अनासक्ति व सत्त्वगुण का लक्षण है। इसी तरह आनंद **मांसभक्षण** से नहीं बल्कि उससे उत्पन्न जीवन के प्रति नश्वर बुद्धि से पैदा **वैराग्य** से उत्पन्न अनासक्ति से पैदा होता है। ऐसे बहुत से उदाहरण दिए थे।

कुण्डलिनी योग से यही प्रभाव पैदा होता है। अनासक्ति अर्थात **अद्वैत** और कुण्डलिनी साथसाथ रहते हैं। इसलिए कुण्डलीनियोग से **कुण्डलिनी छवि** के मन में रहने पर आनंद पैदा होता है। अतः कुण्डलीनियोग एक अध्यात्मवैज्ञानिक मशीन या **तकनीक या ट्रिक** की तरह है, जो अनासक्ति के **दार्शनिक** झमेले से बचाते हुए स्वचालित रूप से अनासक्ति का प्रभाव पैदा करता है। इसका उदाहरण मैं अपने से देता हूँ। मैंने बहुत पैसा खर्च करके कुछ विकासात्मक काम किए थे। पर कुछ अटल कारणों से उनमें से कुछ चीजें छूट गईं और कुछ में घाटा हुआ। मुझे पछतावा भी हुआ और नहीं भी, क्योंकि चलना ही जीवन है। जब आदमी बाहर नजर घुमाए रखता है तब वह अपनी चीज से संतुष्ट नहीँ होता। उससे उसका अपना आनंद भी गायब हो जाता है। मैं डिस्टर्ब सा रहने लगा। मैंने कहीं से कुण्डलिनी योग सीखा और सोचा कि सब ठीक हो जाएगा। योग से मेरा खोया हुआ आनंद लौट आया, वह भी सूद समेत। मैंने आध्यात्मिक उन्नति भी बहुत की। उस समय तो इसके आधारभूत मनोवैज्ञानिक सिद्धांत का पता नहीं था, पर आज इसका पता चला है। **कुण्डलिनी एक चमत्कारिक मानसिक ध्यान छवि** है, जो एक स्वचालित यंत्र की तरह हर प्रकार से लाभ करती है। हुआ क्या कि कुण्डलिनी ने मेरे भटके हुए मन की शक्ति हर ली। इससे कुण्डलिनी की सहायता से अनायास ही मेरा मनोमय कोष विज्ञानमय कोष में बदल गया। विज्ञानमय कोष आनंदमय कोष में तब्दील हो गया। उक्त विकासात्मक दुनियादारी से मेरे प्रारम्भिक तीनों कोष बहुत विकसित हो गए थे। वैसे तो अद्वैत की

सहायता से विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष को भी मैं इनके साथ विकसित कर रहा था, पर अंतिम दो कोशों को **रॉकेट गति** कुण्डलिनी योग से ही मिली जिससे **कुण्डलिनी जागरण** की तथाकथित मामुली सी झलक भी मिली थी।

कुण्डलिनी योग से मनोमय कोष रूपी पतंग प्राणमय कोष और अन्नमय कोष रूपी माँझे और चकरी से जुड़कर विज्ञानमय कोष रूपी उड़ान भरकर आनंदमय कोष रूपी मजा देती है

होता क्या है कि जब **योग** करते समय **अन्नमय शरीर** और **प्राणमय शरीर** के क्रियाशील होते ही मनोमय शरीर क्रियाशील होता रहता है, तब यह विश्वास पक्का होता रहता है कि **मनोमय शरीर** बेशक बाहरी और अनंत अंतरिक्ष में फैला महसूस होए, पर वह हमारे शरीर से जुड़ा हमारा ही स्वरूप है। हालांकि दुनियादारी के सभी कामों, खेलों, व व्यायामों के दौरान भी अन्नमय कोष, प्राणमय कोष और मनोमय कोष एकसाथ सक्रिय हो जाते है, पर वे इतनी तेजी से सक्रिय होते हैं कि उनकी आपस में **एकत्व भावना** करने का मौका ही नहीं मिलता। साथ में आदमी का ध्यान काम की पेचीदगी, उससे जुड़ी तकनीक, उससे जुड़े फल पर और अन्य लौकिक दुनियादारी पर भी रहता है, जिससे भी एकत्व की भावना की तरफ **ध्यान** नहीं जाता। वैसे भी एकत्व की भावना द्वैत से भरी दुनियादारी की विरोधी है। दो विरोधी चीजें साथ नहीं रह सकतीं। जल और अग्नि साथ नहीं रह सकते। मनोमय शरीर के प्रति इसी आत्मभावना से **विज्ञानमय शरीर** भी क्रियाशील हो जाता है। दुनियादारी का हर किस्म का ज्ञान साधारण ज्ञान की श्रेणी में आता है। किसी को डॉक्टरी का ज्ञान है, किसी को दर्जी का, किसी को नाई का, किसी को अध्यापन का, किसी को उपदेश देने का, किसी को **यज्ञ या कर्मकांड** करने या अन्य धार्मिक परम्परा निभाने का है। सब साधारण ज्ञान में आते हैं क्योंकि सभी **रोजीरोटी** के लिए और लौकिक व्यवहार के लिए हैं। विशेष ज्ञान या विज्ञान इन सबसे हटकर व अकेला है, जो न तो **जीविकोपार्जन** के लिए है, और न ही लौकिक व्यवहार की सिद्धि के लिए है, बल्कि केवल **आत्मा** की पूर्ण व प्रत्यक्ष अनुभूति के लिए है। विज्ञानमय शरीर का मतलब ही विशेष ज्ञान वाला शरीर है। इसमें स्थित होने पर साधक को ऐसा महसूस होता है कि वह **स्थूल शरीर, प्राण, और मन का मिलाजुला रूप माने संघातमात्र** है। जैसा मैंने पिछली पोस्ट में भी पतंग के उदाहरण से स्पष्ट किया था। अगर भटकते मन को अपना आत्मरूप न भी समझ सको तो यह तो समझ ही सकते हैं कि वह शरीर से साँस के माध्यम से ऐसे ही जुड़ा है जैसे एक पतंग मांझे के माध्यम से गट्टू या चकरी से जुड़ी होती है। पतंग उड़ाने का बहुत मजा आएगा। कभी बादलों के ऊपर, कभी दूर देश, कभी दूर ग्रह या तारे पर, कभी दूसरे ब्रह्माण्ड में, कभी परलोक में, तो कभी बिल्कुल पास में या चकरी में लिपटी हुई, कभी आँखों से ओझल होगी और सिर्फ चकरी और धागा ही नजर आएगा, फिर एकदम कहीं प्रकट हो जाएगी, कभी तूफ़ान में जैसी फँसी हुई बेढंगी उड़ेगी और बेढंगी दिखेगी, इस तरह **अनंत आकाश** में वह हर जगह उड़ेगी, पर हमेशा जुड़ी

रहेगी शरीर के चक्रों के साथ। शायद चकरी से ही **चक्र** नाम पड़ा हो। हाहा। अब **मनोवैज्ञानिक** भी कह रहे हैं कि सूक्ष्मशरीर स्थूलशरीर के साथ एक **चांदी के धागे** से जुड़ा होता है। यह धागा नाभि से जुड़ा होता है। जैसे मांझा चकरी से बँधा होता है, वैसे ही योगा सांस नाभि से ही चलती है। सीधी सी बात है, अनुभव रूपी पतंग हमेशा अपने से अर्थात आत्मा से अर्थात अपने शरीर से जुड़ी हुई है। सम्भवतः इसीलिए **नाभि चक्र** को आदमी के शरीर का केंद्र बिंदु कहते हैं। नाभि पर एक अंदर की तरफ भिंचाव सा महसूस भी होता है, जब सूक्ष्म शरीर के साथ स्थूल शरीर का ध्यान भी किया जाता है। सम्भवतः नाभि चक्र से ही पतंग की चकरी का नाम पड़ा हो। उससे भौतिक दुनिया का प्रकाश आत्मा को मिलेगा ही, क्योंकि आत्मभावना जुड़ी है सबके साथ। फिर पूर्वोक्तानुसार **आनंद** भी पैदा होगा ही और कुण्डलिनी भी अभिव्यक्त होगी ही, क्योंकि कुण्डलिनी चित्र ही ऐसी भौतिक वस्तु है, जो ध्यान के माध्यम से आत्मा से सबसे ज्यादा जुड़ी होती है। मतलब कुण्डलिनी आत्मा से भौतिक दुनिया के जुड़ाव की प्रतिनिधि है। विशेष ज्ञान या विज्ञान के विपरीत साधारण ज्ञान दुनियादारी के मामले में होता है। ज्ञान जल्दी ही अज्ञान में परिवर्तित हो जाता है अगर उसे विज्ञान का साथ प्राप्त न हो। यह साइंस वाला विज्ञान नहीं है। प्राणमय शरीर का मतलब साँस पर ही ध्यान नहीं है, पर साँस से उत्पन्न शरीर की गति और शरीर के अन्य हिलने-डुलने पर ध्यान भी है। इस मामले में पैदल चलना एक सर्वोत्तम **अध्यात्मवैज्ञानिक** व्यायाम लगता है। इसमें पूरे शरीर पर, उसकी गति पर, उसकी संवेदनाओं पर और सांसों पर अच्छे से ध्यान जाता है। साथ में मन में भी सात्विकता के साथ विचारों की क्रियाशीलता भी काफी अच्छी होती है।

कुण्डलिनीयोगानुसार शरीर कभी भी नहीँ मरता, कभी यह दिखता है, कभी नहीं दिखता, रहता हमेशा है, अनुभव के रूप में

सभी मित्रों को होली की शुभकामनाएं

मित्रों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे मन की गतिशीलता पतंग की उड़ान की तरह है। ऐसा लगता है कि प्राणायाम पतंग की डोरी को नियंत्रित गति देने की तरह है, जिससे पतंगरूपी मन अच्छे से और आत्मविकासरूपी आनंद पैदा करते हुए उड़ सके। मुझे तो यहाँ तक लगता है कि जो आनंद यौनक्रीड़ा के दौरान आता है, उसमें भी अनाच्छादित अर्थात नग्न शरीर के सम्पूर्ण उद्घाटन का काफी योगदान है। उसमें तो अन्नमय शरीर और प्राणमय शरीर दोनों एकसाथ उच्चतम अभिव्यक्ति के करीब होते हैं। कई लोग बोलते हैं कि असली प्यार मन से होता है, शरीर से नहीं। ये क्या बात हुई। सीधे कोई कैसे बाहरी तहखानों को लांघे बिना ही सबसे अंदरूनी तहखाने में पहुंच सकता है। जब लड़की के शरीर से हल्की यौन छेड़छाड़ होती है, बेशक अप्रत्यक्ष या मानसिक रूप में ही, तब लड़की का अन्नमय कोष सक्रिय हो जाता है। **होली पर इसका अच्छा मौका मिलता है, उसे गवाएं नहीँ।** हाहा। उसे पहली बार अपने शरीर की सबसे गहरी पहचान महसूस होती है। वह शरीर से ज्यादा ही सक्रिय व क्रियाशील होने लगती है। उसके मुख पर लाली और मुस्कान छा जाती है। इससे उसका प्राणमय कोष भी सक्रिय हो जाता है। प्राणों से उपलब्ध शक्ति को पाकर उसका मन रंगीनियों में बहुत दौड़ता है। वह हसीन सपने देखती है। सपनों में विभिन्न लोकों और परलोकों का भ्रमण करती है। इससे उसका मनोमय शरीर भी सक्रिय हो जाता है। क्योंकि यौन आकर्षण के कारण उसका ध्यान हर समय अपने शरीर और प्राणों पर भी बना रहता है, इसलिए उसका विज्ञानमय कोष भी खुद ही सक्रिय बना रहता है। उससे स्वाभाविक है, आनंदमय शरीर भी सक्रिय ही रहेगा। यह सब चेन रिएक्शन की तरह ही है। यही तो प्रेमानन्द है। यह आनंदमय कोष लम्बे समय तक सक्रिय बना रहता है। उसके पूरा खुल जाने के बाद तो आत्मा ही बचता है पाने को। वह भी विवाह के बाद तांत्रिक कुण्डलिनीयोग आधारित सम्भोगयोग से मिल ही जाता है। ऐसा नहीं कि यह स्त्री के साथ ही होता है। पुरुष के साथ भी ऐसा ही होता है। मुझे तो लगता है कि स्त्री की लावण्यमयी भावभंगिमा को देखकर जो पुरुष का तन और मन उससे देहसंबंध बनाने को उछालें मारने लगता है, वही उसके प्राणों का क्रियाशील होना है। यह अलग बात है कि कोई उस प्राणशक्ति का सदुपयोग करता है, तो कोई दुरुपयोग। कोई उसे आध्यात्मिक विकास में लगाता है, कोई भौतिक विकास में, और कोई संतुलित रुप से दोनों में।

थोड़ा मन की पतंग को उड़ने दें, एकदम न उतारें। हल्की सी तिरछी सी यह भावना रखें कि यह जुड़ी है। फिर थोड़ी देर बाद पतंग खुद आराम से लैंड करेगी। कोई झटका नहीँ लगेगा। मजा भी आएगा। लैंड होके उसे वापस भी जाने दें इच्छानुसार। खुद वापिस आएगी। अगर पतंग तूफानी जोर से ऊपर जा रही हो, और आप उसे जबरदस्ती नीचे खींचोगे, तो या तो पतंग फट सकती है, या धागा टूट सकता है। दोनों कमजोर तो पड़ेंगे ही, और उन पर दबाव भी बनेगा। ऐसा ही मन के साथ भी जबरदस्ती कर के होता है।

जिस समय दिमाग में थकान, दबाव या सिरदर्द जैसी हो रही हो, उस समय कपालभाति जैसी साँस खुद चलती है। उससे बाहर निकलती साँस पर ध्यान जाता है, जिससे कुण्डलिनी नीचे उतरती है। मतलब बाहर निकलती साँस धागे को नीचे खींचने मतलब खींच की तरह है, जिससे उड़ती हुई मनरूपी पतंग नीचे आती है, और दिमागी थकान रूपी तेज तूफ़ान से फटने से बचती है ।

विचारों के प्रकाश में ही नहीं, उनके अभाव के अंधकार में भी अनुभव शरीर से ही जुड़ा होता है, क्योंकि कुछ न कुछ मस्तिष्क की हलचल उसमें भी रहती ही है। यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी आत्मा का जो विशेष रूप में अनुभव होता है, वह भी शरीर से ही जुड़ा होता है, क्योंकि वह शरीर से ही निर्मित हुआ है। इसका मतलब है कि शरीर कभी भी नहीँ मरता। कभी यह दिखता है, कभी नहीं दिखता, रहता हमेशा है, अनुभव के रूप में।

कुण्डलिनीयोग में कपालभाति प्राणायाम की अहम भूमिका है

बाएं और दाएं नथुने से बारीबारी साँस ली जाती है, और छोड़ी जाती है, ताकि **इड़ा और पिंगला**, दोनों साइड की नाड़ियों में **कुण्डलिनी शक्ति** झूलती रहे, और धीरे-धीरे बीच वाली **सुषुम्ना** नाड़ी में ऊपर चढ़ती रहे। पतंग भी इसी तरह उड़ती है। डोरी को ढील देने पर कभी वह बहती हवा के थपेड़े से दाईं तरफ के आकाश में फैल जाती है, और फिर खींच देने पर सीधी ऊपर चढ़ती है। कभी विपरीत दिशा में हवा बहने से वह बाईं तरफ के आकाश में पसर जाती है, और फिर खींच देने पर सीधी ऊपर उठती है। दोनों साइड को झूलने से वह बहुत ऊँचाई में पहुंच जाने पर भी आदमी के सिर के ऊपर सीधी बनी होती है। यह सीधाई ही सुषुम्ना नाड़ी के समकक्ष है। कुण्डलिनी योग के समय भी, जब शरीर के बाएं हिस्से में प्राण की कमी होती है, और शरीर को ढीला छोड़ा जाता है, तो कुण्डलिनी शरीर के बाएं हिस्से मतलब इड़ा नाड़ी में बहने लगती है। इसी तरह जब शरीर के दाएं भाग में प्राणों की कमी हो जाती है, तो कुण्डलिनी दाएं भाग अर्थात पिंगला नाड़ी में बहती महसूस होती है। ऐसा लगता है कि जैसे आनंदमयी जैसी हलचल हो रही है, कोई करेंट वाली पतली तार जैसी नाड़ी मुझे तो महसूस होती नहीं। हो सकता है कि यह अव्यवहारिक किताबी बातें हों या उच्च स्तर के अभ्यास में महसूस होती हो। मुझे तो साधारण अनुभव से ही काफ़ी शक्ति महसूस होती है। आकाश में भी उस हिस्से की तरफ हवा चलती है, जिस हिस्से में वायु का दबाव कम हो जाता है, मतलब प्राण कम हो जाता है, क्योंकि वायु ही प्राण है। इससे स्वाभाविक है कि प्राण या हवा के बहाव के साथ कुण्डलिनी या मन या पतंग उसी तरफ चली जाती है। फिर जब वहाँ हवा या **प्राण** ज्यादा बढ़ जाता है, तो वह थोड़ा उल्टी दिशा की तरफ वापिस भागता है, जिसके साथ पतंग या कुण्डलिनी भी उसके साथ बह जाती है, और मान लो सीधी सिर के ऊपर या सुषुम्ना में आ जाती है। क्षणभर वहाँ रुक के वायु या प्राण दाएं आसमान में या पिंगला में पहुंच जाता है, जिसके साथ पतंग या कुण्डलिनी भी होती है। वहाँ से फिर बाईं ओर का सफर शुरु होता है। कुण्डलिनीरूपी मन या पतंग का इस तरह का **पेंडुलम** के जैसा दोलन चलता रहता है, और वह सुषुम्ना में या आसमान में ऊपर उठती रहती है।
जब पतंग बहुत ऊपर उठ जाती है, तब डोर पर खींच लगाकर उसे नीचे उतारते हैं। इसी तरह जब कुण्डलिनी काफी ऊँचाई तक उठकर दिमाग़ में दबाव, थकान, और सिरदर्द पैदा करती है, तब निःश्वास झटके के साथ चलने लगते हैं। ऐसा **कपालभाती** प्राणायाम में होता है, जहाँ बाहर जाती सांस झटके और दबाव से चलती है, पर अंदर जाती साँस इतनी शांति से व धीरे चलती है कि उसका पता ही नहीँ चलता। इससे निःश्वास पर ज्यादा अवेयरनेस रहती है। साथ में, इसमें शरीर की मांसपेशियां भी नीचे की तरफ धक्का लगाती हैं। इन दोनों बातों से कुण्डलिनी शक्ति फ्रंट चैनल से नीचे उतरती है, जिससे

मस्तिष्क का दबाव कम होने से आदमी पुनः तरोताज़ा होकर फिर से दिमागी काम के लिए तैयार हो जाता है। चमत्कारी प्रभाव पैदा करता है कपालभाती। इसलिए काम के दबाव व समय की कमी के दौरान केवल इसी तरह की साँस ली जाए, तो बहुत लाभ प्रदान करती है। यहाँ एक बात बता दें कि मन-पतंग स्थायी तौर पर नीचे नहीं रहती, यह फिर बैक चैनल से ऊपर चढ़ जाती है। यह लगातार उपरनीचे घूमती रहती है। यह ऐसे ही है जैसे पतंग को हल्की खींच या तुनका लगाया जाता है, तो वह और ऊपर उठती है। साँसें तो यथार्थ में ही मन की डोर हैं, जैसा अक्सर कहा भी जाता है कि फलां की सांसों की डोर लंबी खिंच गई मतलब कोई जिन्दा बचगया, या सांसों की डोर टूट गई मतलब कोई मर गया। **श्रीमदभागवत गीता** में जब अर्जुन **श्रीकृष्ण** से कहते हैं कि भगवन, मन को वश में करना तो बहुत कठिन है, वायु को वश में करने से भी कठिन है, तब भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे कौन्तेय, मन अभ्यास से वश में आ जाता है, विशेषकर **प्राणायाम** के अभ्यास से।
ठंडे पानी से नहाते समय साँस तेजी से और झटकों से बाहर की ओर चलने लगती है। अधिकांश समय मुंह भी पूरा खुला होता है, जिससे साँसें **धौकनी** की तरह बाहर निकलती हैं। इससे दिमाग़ का दबाव नीचे उतरता है जिससे सिरदर्द से बचाव होता है। सम्भवतः ब्रेन हीमोरेज का खतरा भी कम हो जाता है। इससे ठंडा पानी झेलने की क्षमता बढ़ती है और वह आनंद दायी लगने लगता है। इसी तरह खाना खाने के बाद **वज्र-आसन** से भी लगभग ऐसा ही होता है। इससे दिमाग़ की शक्ति पाचन अंगों तक उतरती है जिससे पाचन दुरस्त होता है। साँस का ये स्टाइल कपालभाती ही है।

कुण्डलिनीयोग आत्मरूप को पाने की कुदरती चेष्टा के तरीके को सीधा करता है

कई बार आदमी **मन-पतंग** में इतना डूब जाता है कि उसे यह एहसास ही नहीं रहता कि वह उसके शरीर से जुड़ी है। न धागा दिखता है, न उसको खींचने वाला, सिर्फ पतंग दिखती है। सम्भवतः यही **अज्ञान** है। इसमें ऐसा लगता है कि मन के दृश्यों का अपना पृथक अस्तित्व है, और हम उन्हें **बनावटी भूत** बनाकर उनसे डरने लगते हैं। वैसे तो कुण्डलिनीयोग में भी **ध्यानचित्र** ही दिखता है, पर वह एक ही होता है, और उसे अपने रूप में और अपने शरीर के अंदर देखा जाता है। साथ में, ज्यादातर मामलों में उसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता या उसके भौतिक अस्तित्व को नकार दिया जाता है। उदाहरण के लिए अगर कोई **देवता, पूर्वज**, दिवंगत या पूर्णतः बिछड़ा प्रेमी ध्यान चित्र के रूप में है, तब तो उसके प्रति भौतिक सत्यता की बुद्धि खुद ही नहीं होगी। पर अगर कुण्डलिनी चित्र किसी जीवित **प्रेमी, गुरु** या अन्य भौतिक वस्तु के रूप में है, तो उसके भौतिक रूप से अनासक्ति रखनी पड़ती है, और उसके साथ अद्वैतमय व्यवहार रखना पड़ता है। वैसे ऐसा स्वभाव व व्यवहार कुण्डलिनी योग से खुद ही बनने लगता है। जैसा कि मैंने एक पिछली पोस्ट में बताया था कि कुण्डलिनी योग से कैसे महसूस होता है कि **अन्नमय कोष, प्राणमय कोष, मनोमय कोष, विज्ञानमय कोष और आनंदमय कोष** सब आपस में जुड़े हैं। इससे यह विश्वास पक्का बना रहता है कि कुण्डलिनी चित्र अपने मन के ही अंदर है, अपने ही **देहसंघात** का हिस्सा है, अपना ही स्वरूप है, कोई बाहरी पृथक भौतिक वस्तु नहीं। यह स्वयं आदमी की **अनासक्ति और अद्वैत** की प्रकृति को बढ़ाता है। क्योंकि अपने आप से किसी को आसक्ति नहीं हो सकती है, और न ही अपने आप में किसीको **द्वैत** महसूस हो सकता है। किसी को नहीँ लगता कि वह एक आदमी नहीं बल्कि दो आदमियों का मिश्रण है। अपने कर्म का फल उसी अकेले आदमी को भोगना पड़ता है, कोई दूसरा नहीं आता। अगर कोई दिनरात भी आईने में बनता-ठनता रहे तो भी वह किसी दूसरे के या **ईश्वर के प्रेम** में पड़कर करता है, अपने लिए नहीं। प्रेम के लिए दो का होना जरूरी है। अकेले में प्रेम नहीं होता। आसक्ति और प्रेम में सैद्धांतिक अंतर नहीं है केवल स्तर, व्यवहार व दृष्टिकोण का ही अंतर है। इसी **मनोवैज्ञानिक सिद्धांत** के अनुसार **कुण्डलिनी चित्र** के प्रति स्वयं ही हो रही **आत्मभावना** से आत्मा शुद्ध होती रहती है। मतलब कि कुण्डलिनी चित्र को अपने पूर्ण आत्मरूप को जानने के लिए सहारे के रूप में अपनाया जाता है। मुझे तो लगता है कि जब कुंडलिनी ध्यान एक विशेष महत्वपूर्ण या शीर्ष बिंदु तक पहुँचता है, तब यह आत्मा को अस्तित्वगत स्व-अभिव्यक्ति की इतनी अधिक शक्ति देता है कि वह उस बिंदु से परे अव्यक्त रहने में अस्मर्थ हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप **कुंडलिनी जागरण** होता है। सम्भवतः आत्मरूप को जानने की कुदरती चेष्टा के रूप में ही मन में विचार आते हैं। पर उन विचारों को समझने का और अपनाने

का तरीका उल्टा होता है। हम उन्हें अपना आत्मरूप न समझकर बाहरी, पराया, स्थूल और भौतिक समझने लगते हैं। इससे उन विचारों से आत्मरूप को शक्ति मिलने की बजाय उनसे संसार की उलझनें और भी आगे से आगे बढ़ती रहती हैं। मतलब कि आत्मा शुद्ध होने की बजाय ज्यादा से ज्यादा अशुद्ध होता जाता है। सम्भवतः यही **मोहमाया** है। कुण्डलिनी योग इस तरीके को सीधा करने की कोशिश करता है। इससे आदमी का रोजाना का व्यवहार भी सकारात्मक रूप से रूपान्तरित होने लगता है। उसके जीवन में अनासक्ति और अद्वैत का प्रभाव बढ़ने लगता है। इससे स्वाभाविक है कि उसके मन की उलझनें सुलझने लगती हैं। मन **स्वस्थ** रहने से शरीर भी स्वस्थ रहने लगता है। व्यक्तिगत स्वास्थ्य से **सामाजिक स्वास्थ्य** में भी सुधार होता है। सामाजिक स्वास्थ्य से समाज के सभी लोग भी अपने अच्छे स्वास्थ्य को महसूस करते हैं। इस तरह समाज से व्यक्ति में और व्यक्ति से समाज में सुधार एक चेन रिएक्शन की तरह आगे से आगे बढ़ता हुआ पूरे विश्व में फैल जाता है, जिसे **युग परिवर्तन** भी कहते हैं।

कुण्डलिनी चित्र विज्ञानमय कोष को विकसित करता है

शास्त्रों में ऐसा बहुत वर्णन है कि आनंद भीतर है अर्थात आत्मा में है, बाहर नहीँ। पर इसका वैज्ञानिक स्पष्टीकरण मुझे कहीं नहीँ मिला। सम्भवतः **आत्मा** का स्वरूप सत्तामयी शून्य या आकाश की तरह है। अविद्या या अंधकार में आत्मा का एक गुण होता है, शून्य या आकाश या सत्ता वाला। प्रकाश का गुण इसमें गायब होता है। इसलिए उसमें **आनंद** काफी कम हो जाता है, क्योंकि आत्मा के सभी गुण एकदूसरे से जुड़े होते हैं। किसी भी रूप में जगत की अनुभूति से जो प्रकाश की अनुभूति होती है, वह आत्मा के **प्रकाश** की कमी को पूरा करने का प्रयास करती है। होता क्या है कि जब वह अनुभूति बहुत तेज, बदलती हुई अर्थात गतिशील जैसी या भड़कीली या वास्तविक जैसी हो, तब यह आत्मा से मिश्रित नहीँ हो पाती, क्योंकि आत्मा है तरंगरहित या परिवर्तनरहित आसमान के जैसे स्वभाव वाली पर इसके विपरीत तेज अनुभूतियाँ ताबड़तोड़ उतार-चढ़ाव की लहरों अर्थात परिवर्तन के स्वभाव वाली होती हैं। इनसे क्षणिक सुख तो मिलता है, जब तक ये रहती हैं, पर इनके हटते ही आत्मा का अंधेरा और भी ज्यादा घना होता हुआ महसूस होता है। यह ऐसे ही होता है, जैसे रात को तेज रौशनी से बाहर निकलते ही आदमी थोड़ी देर के लिए अंधा जैसा हो जाता है। जब **अनासक्ति** या कुण्डलिनी आदि से वे प्रकाशमय अनुभूतियाँ मंद या कम गतिशील जैसी हो जाती हैं, तब वे शून्य आत्मा से मेल खाने लगती हैं। इससे वे आत्मा को अपना प्रकाश प्रदान करती हैं। इससे आत्मा की कमी पूरी होने से आनंद प्रकट होता है, क्योंकि उपरोक्त शास्त्रानुसार आत्मा में ही आनंद है, बाहर नहीं। इसे ही **सतोगुणी अविद्या** कहा गया है। सतोगुण प्रकाशप्रधान होता है। यह कोई आध्यात्मिक महत्त्व ही नहीँ बल्कि व्यावहारिक महत्त्व का विषय भी है। हर कोई ऐसे आदमी को पसंद करता है, जो शांत स्वभाव का हो, न कि भड़कीले स्वभाव वाले को। शांत स्वभाव वाले का मानसिक अंधेरा भी शांत होता है, जबकि भड़कीले स्वभाव वाले की मानसिक अँधेरे के रूप में रजोगुणी अविद्या भी भड़कीली, गहरी और दुखदाई होती है। सज्जन और दुष्ट में यह मुख्य अंतर होता है। **साधु** की **अविद्या** सत्त्वगुण से उत्पन्न होने के कारण सत्त्वगुण सम्पन्न होती है, जबकि दुष्ट की **रजोगुण** व **तमोगुण** से उत्पन्न होने के कारण वैसी ही होती है।

जब रजोगुण के कारण विचार या मानसिक चित्र जल्दी जल्दी बदल रहे हों, तब अपने **प्राणमय और अन्नमय कोष** के साथ उनके एकरूप होने की भावना नहीं की जा सकती। मतलब उन्हें अपने एक ही मिलेजुले **शरीरसंघात** के साथ एकरूप मानना कठिन होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि मन की तुलना में शरीरसंघात के अन्य सभी भाग बहुत धीमी गति वाले या स्थिर जैसे होते हैं। साथ में आम दुनियादारी या जीविका से संबंधित मानसिक चित्र भौतिक होते हैं, क्योंकि वे तथाकथित भौतिक दुनिया से जुड़े होते हैं, पर

आत्मा अभौतिक है, इसलिए भी इनका मिलान नहीं होता। स्थिर या धीमे जैसे व अभौतिक समझे गए मानसिक चित्र को इस संघात के साथ मिलाना आसान होता है। **पंजाबी भाषा** में और **संस्कृत भाषा** में धीमापन या घुमाव होता है, जिससे सतोगुण बढ़ता है। इसीलिए इन भाषाओं के प्रयोग से आनंद पैदा होता है। इनके माध्यम से दुनियादारी के दौरान जो अविद्या का अंधकार पैदा होता रहता है, वह सतोगुणी अविद्या रूप होता है। वह आनंदरूप होता है। इसी तरह साधु बाबा की तरह दाढ़ी रखने से भी आदमी का वर्ताव धीमा, **चिंतनशील** अर्थात **सात्विक** हो जाता है। इसी वजह से **बाबा** आनंद के नशे में मस्त रहते हैं।

जब कोई आदमी उच्च पद या वस्तु प्राप्त करता है, तो उसे घर के **बड़े-बूढ़े** लोग ज्यादा उछलने से रोककर शांत बनाए रखते हैं। हमें बचपन में हमारी माताजी किसी बड़ी उपलब्धि के बाद एकदम से आसमान से जमीन पर उतार दिया करती थीं। ज्यादातर मामले में तो हमें **अहंकार** के आसमान में उड़ने ही नहीँ देती थीं। वे अच्छे व **वैदिक संस्कारों** वाले परिवार के वंश से संबंध रखती थीं। किसी के दायरे में अगर बुजुर्गों और साधुओं का सम्पर्क न हो, तो वह उपलब्धियों से थोड़े समय तो उड़ता ही है। फिर उड़ान का नशा टूटने पर जब गिरकर पाताल के गर्त में डूबने लगता है, और दुनिया उसे क्रेजी या पागल जैसा समझने लगती है, तब उसे होश आता है। पर तब तक वह काफी आनंद को और आत्मा की उन्नति को गवां भी चुका होता है। इसलिए ऐसा नहीँ कि यह सत्त्वगुणी अविद्या वाला **मनोवैज्ञानिक सिद्धांत** **अध्यात्म** में ही लागू होता है। यह दुनियावी व्यवहार में भी उतना ही लागू होता है। शायद इसीलिए **शास्त्रों** में यह बहुतायत में आता है कि **ज्ञानप्राप्ति** के लिए कष्ट उठाना पड़ता है, या तप करना पड़ता है। **तप** के कष्टों से परेशान आदमी जरूर आत्मा में आनंद ढूंढेगा, ऐसा शास्त्रों का विश्वास है।

जब विचारों के साथ स्थूल शरीर की भी भावना की जाती है तब उनकी शक्ति शरीर को मिलती है और मस्तिष्क का बोझ कम होता है। मतलब जो **शक्ति** मस्तिष्क में दबाव पैदा कर रही थी, वह मांसपेशियों की सिकुड़न के रूप में तब्दील हो जाती है। विचार रहते हैं पर आनंद के साथ हल्के पड़ते हुए विभिन्न **चक्रोँ** पर आकर विलीन हो जाते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि चक्रोँ पर बदलते विचारों की बाढ़ नहीँ उमड़ती जैसी मस्तिष्क या **मन** में उमड़ती है। क्योंकि चक्र विचारों के लिए समर्पित अंग नहीं हैं मस्तिष्क की तरह। चक्रोँ पर तो एक ही चित्र मुख्यतः **कुण्डलिनी चित्र** लम्बे समय तक बना रहता है। यह **सतोगुण** का प्रतीक है। इससे जो अविद्या पैदा होती है, वह सतोगुणी अविद्या है। यही **आनंदमय कोष** है। यह ऐसे है जैसे घुप्प और शांत अँधेरे में एक अभौतिक, शांत और हल्का, हालांकि अनौखा **दिया** जल रहा है। लम्बे समय तक स्थिर बना रहने वाला कुण्डलिनी चित्र ही सर्वोत्तम **विज्ञानमय कोष** बनाता है। वह आत्मा के जैसा स्थिर सत्ता का ज्ञान है, पर फिर भी **विशेष ज्ञान** है। मतलब न तो यह **आत्मज्ञान** है, और न साधारण लौकिक ज्ञान है, पर विशेष ज्ञान या **विज्ञान** है जो बेशक आत्मज्ञान के करीब है।

कुण्डलिनीयोग दुनिया ठुकराने की बात नहीं करता

दोस्तों, लिखने को बहुत है, शब्द थोड़े हैं। बहुत अजीब हैं अध्यात्म की पहेलियां, बिन बूझे जो लिख दी गई हैं, कोई माने तो कैसे माने, सबको तो यकीन होता नहीँ। ये जो कहा गया है कि बाहर मत दौड़ो, अपने अंदर महसूस करो, यह एक दोगली तलवार की तरह है। अगर कोई बिल्कुल आंख बंद करके बैठ गया, वह तो मरा, पर यदि कोई आंख खोलकर भी बंद रखने का नाटक कर गया, वह तरा। अब मैं तो प्रेमयोगी वज्र ठहरा। मेरे पास अपने बारे में छुपाने के लिए कुछ नहीं है। मैंने हर किस्म के अनगिनत खूबसूरत नजारे देखे हैं। पर मैंने उन नजारों से दूरी बनाए रखी। यहाँ तक कि कइयों से एक लफ़्ज़ बात भी नहीँ की, पर मन की आँखों से उन्हें पी ही लिया। यह मेरे पारिवारिक आध्यात्मिक परिवेश से भी हुआ, और अन्य भी कई अनुकूल परिस्थितियाँ रही होंगी पिछले जन्मों के प्रभाव से। पर सिद्धांत तो सिद्धांत ही होता है, यह जानबूझकर भी उतना ही लागू होता है जितना अनजाने में। हुआ क्या कि खूबसूरत नजारों की तरफ आसक्तिपूर्वक न भागने से सिद्धांत को यह लगा कि मैं सभी नजारे अपने अंदर, अपने मन के अंदर, अपने शरीर के अंदर या अपनी आत्मा के अंदर महसूस कर रहा हूँ। सच्चाई भी यही होती है। बाहर के नजारे तो अपने अंदर के नज़ारे को प्रकट करने का जरियाभर होते हैं। जैसा कि मैं शरीर के **आनंदमय कोष** की जड़ तक जाने की पिछली कई पोस्टों से कोशिश कर रहा हूँ। पता नहीं क्यों लगता है कि कुछ अधूरा है। **शास्त्रीय वचनों** को वैज्ञानिक व्याख्या की जरूरत है। **योग वैज्ञानिक** है ऐसा कहा जाता है। पर सिर्फ कहने से नहीं होता। आज इसको सिद्ध करने की जरूरत है। दुनियावी रंगीनियों व नजारों में **यौनप्रेम** शीर्ष पर है। अगर कोई यौनप्रेम के साथ भी उससे तठस्थ रह सके, तो उससे बड़ी **अनासक्ति** क्या हो सकती है। उससे तो आत्मा को चमत्कारिक बल मिलेगा और वह सबसे तेजी से जागृत हो जाएगी, सिर्फ एकदो साल के अंदर ही। **भगवान शिव** भी तो ऐसे ही थे। **देवी पार्वती** उनके ऊपर जान छिड़कती थीं, पर वे अपने ध्यान में डूबे अनासक्त रहते थे। देवी पार्वती से प्यार तो वे भी अतीव करते थे, पर तटस्थ रहने का अभिनय करते थे। इससे उपरोक्त **मनोवैज्ञानिक सिद्धांत** के अनुसार उनका सारा प्रेम उनकी **आत्मा** को खुद ही लग जाता था। फिर भला उनकी आत्मा क्यों हमेशा जागृत न रहती। इससे जाहिर होता है कि एक योगी विशेषकर **तंत्रयोगी** से बड़ा अभिनयकर्ता नहीँ हो सकता कोई। देव शिव से उल्टा अगर कोई **कट्टर** या आदर्शवादी या शास्त्रवादी वगैरह या नासमझ ही होता तो देवी पार्वती जैसी प्रेमिका को ठुकरा कर चला जाता या उस पर फूल पे भौरे की तरह आसक्त हो गया होता। आप समझ ही सकते हैं कि फिर क्या होता। मतलब साफ है कि शिव या **बुद्धिस्ट** वाला **मध्यमार्ग** ही श्रेष्ठ है। वैसे कहना आसान है, करना मुश्किल। शास्त्रों में अनासक्ति को ठुकराना इसलिए कहा है, क्योंकि वह अपनाने की बजाय ठुकराने के ज्यादा करीब होती है। शास्त्र भावप्रधान हैं। लोग उनके भावों को न समझकर उनका अंधानुकरण करने लगते हैं। अगर कोई आम आदमी महादेव शिव को

देखता तो बोलता कि उन्होंने देवी पार्वती को ठुकराया हुआ है। विवाह तो उनका बाद में मतलब कहलो कि **ज्ञानप्राप्ति** के बाद हुआ। पहले तो वे कहीं और **ध्यानमग्न** रहते थे, और उनको ढूंढते हुए देवी पार्वती कहीं ओर। बेशक शिव ने पार्वती के रूप की **ध्यानमूर्ति** अपने मन में बसा ली थी और हमेशा उसके ध्यान में आनंदमग्न रहते थे। लोगों को वह उनकी **तपस्या** लगती होगी। उन्हें क्या पता कि मामला कुछ और ही है। मन में जाके किसने देखा। दरअसल असली अनासक्त आदमी ने पूरी दुनिया को अपनी आत्मा के रूप में अपनाया होता है। उसे नहीं लगता कि उसने दुनिया को ठुकराया हुआ है। पर दुनिया वालों को ऐसा लगता है। इसलिए कम समझ वाले आम आदमी उनकी देखादेखी दुनिया को ठुकराने की बातें करने लग जाते हैं। यहाँ तक कि प्रेमी को भी कई बार यह लगता है कि उसका प्रेमी उसे ठुकरा रहा है या नजरन्दाज कर रहा है। इसीलिए तो ऐसा होने पर शिव पार्वती को दिलासा देने के लिए कुछ क्षणों के लिए पार्वती के सामने प्रकट हो जाया करते थे, और फिर **अंतर्धान** हो जाया करते थे। यह बता दूँ कि आत्मा को कुण्डलिनी अर्थात ध्यानचित्र के माध्यम से अभिव्यक्ति की शक्ति पहुंचती है। अगर आप बोलें कि अनासक्ति से मुझे ध्यान चित्र अभिव्यक्त होता महसूस होता है, कोई आत्मा वगैरह नहीं। शुद्ध आत्मा शून्य आकाश की तरह है, वह शरीर के रहते सीधी महसूस हो भी नहीं सकती, वह केवल ध्यानचित्र के रूप में ही महसूस हो सकती है। शिव ठहरे सबसे बड़े **रासबिहारी**। उनका कोई कैसे मुकाबला करे। आम आदमी को प्रेम से ज्ञान प्राप्त करने में अनेकों वर्ष लग जाते हैं। तब तक वह शिव की तरह प्रेमिका को दिलासा भी नहीं दें सकता। अगर देने लग जाए तो भावना में बह जाए और ज्ञान प्राप्ति से वँचित रह जाए। सांसारिक बंदिशें होती हैं सो अलग। सालों बाद सबकुछ बदल जाता है, प्रेमिका का मन भी। कई तो बेवफाई का आरोप लगाकर शुरु में ही किनारा कर लेती हैं। हाहा। वाह रे प्रभु शिव की किस्मत और लीला कि देवी पार्वती के प्रेम से पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति, फिर उनसे ही विवाह और उनसे ही विहार। प्रेम डगरिया में दूजा न कोई आए। ऐसा आम दुनियादारी में होने लग जाए तो **स्वर्गों** और **अमृत** की बौछार होती रहे। इसी तरह ईश्वर को बेवफा न समझकर उससे प्रेम करते रहना चाहिए। वे मनुष्य से बहुत प्रेम करते हैं, इसीलिए हवा, धूप, पानी आदि अनगिनत सुविधाएं आदमी पर लुटाते रहते हैं, बेशक पूरी तरह अनासक्त व दूर जैसे बने रहते हैं। कभी न कभी वे जरूर अपनाएंगे।

जाएँ तो आखिर जाएँ कहाँ

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएं तो आखिर जाएं कहाँ।

है नीचे भीड़ बहुत भारी पर

ऊपर मंजिल खाली है।

हैं भीड़ में लोग बहुत सारे

कुछ सच्चे हैं कुछ जाली हैं।

मंजिल ऊपर तो लगे नरक सी

न दाना न पानी है।

निचली मंजिल की भांति न

उसमें अपनी मनमानी है।

है माल बहुत भेजा जाता पर

अंधा गहरा कूप वहाँ।

न यहाँ के ही न वहाँ के रह गए

पता नहीं खो गए कहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएं तो आखिर जाएं कहाँ।

नीचे पूरब वाले हैं पर

ऊपर पश्चिम (ही) बसता है।

ऊपर है बहुत महंगा सब कुछ

नीचे सब कुछ सस्ता है।

हैं रचे-पचे नीचे फिरते सब

ऊपर हालत खस्ता है।

बस अपनी अपनी डफली सबकी

अपना अपना बस्ता है।

हैं सारे ग्रह तारे सूने बस

धरती केवल एक जहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएं तो आखिर जाएं कहाँ।

अंधों का इक हाथी है हर

कोई (ही) उसका साथी है।

बहुते पकड़े हैं पूँछ तो कोई

सूंड पैर सिर-माथी है।

सब लड़ते रहते आपस में कह

मैं तो कहाँ, पर तू है कहाँ

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएं तो आखिर जाएं कहाँ।

है कटता समय-किराया हरपल

संचित धन ही काम करे।

जा नई कमाई कोष में केवल

खर्च से वो रहती है परे।

है कैसा अजब वपार (व्यापार) है जिसका

तोड़ यहाँ न तोड़ वहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएं तो आखिर जाएँ कहाँ।

है नीचे रोक घुटन भारी पर

ऊपर शून्य हनेरा है।

ऊपर तो भूखे भी रहते पर

नीचे लंगर डेरा है।

है अंधा एक तो इक लंगड़ा

दोनों में कोई प्रीत नहीं।

ले हाथ जो थामे इकदूजे का

ऐसा कोई मीत नहीं।

है कैसी उल्टी रीत है कैसा

उल्टा मंजर जहाँ-तहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएं तो आखिर जाएँ कहाँ।

है बुद्धि तो धन है थोड़ा

पर धन है तो बुद्धि माड़ी।

है बुद्धि बिना जगत सूना

बिन चालक के जैसे गाड़ी।

बस अपने घर की छोड़ कथा हर

इक ही झांके यहाँ-वहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएँ तो आखिर जाएँ कहाँ।

आ~राम तो है सत्कार नहीं

सत्कार जो है आराम नहीं।

है पुष्प मगर वो सुगंध नहीं

है गंध अगर तो पुष्प नहीं।

इस मिश्रण की पड़ताल में मित्रो

भागें हम-तुम किधर कहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ

जाएँ तो आखिर जाएँ कहाँ।

है कर्म ही आगे ले जाता

यह कर्म ही पीछे को फ़ेंके।

है जोधा नहीँ कोई ऐसा जो

कर्म-तपिश को न सेंके।

न कोई यहाँ, न कोई वहां बस

कर्म ही केवल यहाँ-वहाँ।

है कौन यहाँ, है कौन वहाँ
जाएँ तो आखिर जाएँ कहाँ।

कुंडलिनी योग ही हमें या एलियंस को लंबी दूरी की इंटरस्टेलर यात्रा की तकनीक दिखा रहा है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि **अन्नमय कोष** को खोलने के लिए शरीर का **ध्यान** बहुत जरूरी है। ध्यान से पहले **ज्ञान** का होना जरूरी है। इसीलिए शास्त्रों में शरीर के ब्रह्माण्ड के रूप में वर्णन की बहुतायत है। साथ में, **ब्रह्माण्ड** का अध्यात्मिक रूप में वर्णन ज्यादा है, शरीर का कम। क्योंकि सम्भवतः उस समय शरीर की सूक्ष्मता को जाँचने वाली कोई व्यावहारिक वैज्ञानिक तकनीक नहीं थी, इसलिए यही तरीका बचता था। **शरीरविज्ञान दर्शन** में आधुनिक विज्ञान और पुरातन अध्यात्म ज्ञान को मिश्रित किया गया है, जिससे इससे शरीर का उत्कृष्ट तरीके से ज्ञान हो जाता है। सम्भवतः इसीलिए पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन प्रशंसा की पात्र बनी है। इसे विज्ञान से अध्यात्म में प्रवेशद्वार कह सकते हैं। पिछली कुछ पोस्टों का ज्यादा झुकाव **क्वांटम भौतिकी और अंतरिक्ष विज्ञान** की ओर था। हालांकि वे भी कुण्डलिनी योग विज्ञान से जुड़ी हुई थीं। ऐसा इसलिए क्योंकि आजकल अधिकांश लोग भौतिक विज्ञान को ही विज्ञान मानते हैं, अध्यात्म विज्ञान को नहीं। **अध्यात्म विज्ञान से ही टेलीपोर्टेशन संभव हो सकता है।** हो सकता है कि अध्यात्म विज्ञान इतना उन्नत हो जाए कि इस धरती का आदमी सूक्ष्मशरीर बन कर पूरे ब्रह्माण्ड की सैर पर निकल जाए, और कहीं किसी **ग्रह** पर किसी जीव के शरीर में कुछ दिन निवास करके वापिस धरती पर आ जाए। यह भी हो सकता है कि अपने बराबर उन्नत प्राणी के साथ मिलकर आपस में सूक्ष्मशरीरों को कुछ समय के लिए एक्सचेंज करें और एकदूसरे के ग्रहों पर कुछ जीवन बिता कर अपने-अपने ग्रह वापिस लौट जाएं। **सूक्ष्मशरीर** के माध्यम से ही अनंत ब्रह्माण्ड को लंघा जा सकता है, स्थूल शरीर से नहीं। पुराने समय में योगी लोग ऐसी यात्राएं करते भी थे। **कुल मिलाकर आत्मज्ञान होने पर आदमी हर समय हर जगह स्थित हो जाता है, जो सर्वोच्च स्तर की अंतरिक्ष यात्रा ही तो है।** यही **टाइम ट्रेवल** और **स्पेस ट्रेवल** का सबसे आसान और सही तरीका लगता है मुझे, बेशक जो चाहे वह भौतिक शरीर के साथ भी प्रयास कर सकता है। हो सकता है कि **एलियन्स** को उनसे ही धरती का पता चला है, जिसके बाद वे **यूएफओ** से भी यहाँ आने लग गए हों। **क्रायोस्लीप, लाइट सेल, वर्महोल और वार्प ड्राइव** संभावित समाधान प्रदान करते हैं। दुर्भाग्य से, ये केवल दिवास्वप्न हो सकते हैं, जिसका अर्थ होगा कि लंबी दूरी की **इंटरस्टेलर यात्रा** संभव नहीं है। यह मैं नहीं, बहुत से वैज्ञानिक कह रहे हैं। मतलब **तांत्रिक कुण्डलिनी योग व कर्मसिद्धांत** ही धरती से अन्य ग्रह पर पहुंचा सकते हैं। मनोरंजन और उत्साहवर्धन के लिए प्रत्यक्ष व सीधे तौर पर शरीर के टेलीपोर्टेशन की कल्पना भी की जा सकती है। ऐसी ही नाटकीय कल्पना “लॉस्ट इन स्पेस” नामक वेबसेरीस में की गई है। मैंने हाल ही में यह देखी। मुझे अच्छी और बाँधने वाली लगी। मैं

किसीका प्रचार नहीं कर रहा, बल्कि दिल की बात बता रहा हूँ। सच्ची बात कह देनी चाहिए, उसमें अगर किसी का प्रचार होता हो तो होता रहे, हमें क्या।

कुछ बिमारियां आदमी का महामानव बनने का प्रयास लगती हैं

वैज्ञानिक तो यह दावा भी कर रहे हैं कि आदमी में जो आनुवंशिक बिमारियां हो रही हैं, वे एलियन के डीएनए की वजह से हो रही है। कभी एलियन यहाँ की औरतों को उठाकर ले गए थे और उन्हें गर्भवती करके वापिस भेज दिया था या वहाँ उनसे संतान पैदा की थी। फिर वो **डीएनए** सबमें फैल गया। यह आदमी को **महामानव** बनाने के लिए हुआ। मुझे अपना **एंकोलाईसिंग स्पोंडीलोआर्थराईटिस** वैसी ही फॉरेन बिमारी लगती है। यह बिमारी मुझे योग करने के लिए मजबूर करती है। इससे वैज्ञानिकों का दावा कुछ सिद्ध भी हो जाता है। मुझे तो लगता है कि प्रॉस्टेट और बवासीर भी ऐसी ही आनुवंशिक बीमारियां हैं। ये भी आदमी को योगी जैसा बनाती हैं। पुराने लोगों ने इसे ऐसे समझा होगा कि कष्ट झेलने से योग सफल होता है, इसीसे **तप** शब्द का प्रचलन बढ़ा होगा। आजकल कैंसर भी बढ़ रहा है। यह भी **आनुवंशीकी** से जुड़ा रोग होता है। हो सकता है कि यह प्रकृति के मानव को महामानव बनाने के प्रयास के दौरान पैदा हुआ डिफेक्ट हो। वैसे भी बहुत से महान योगियों को कैंसर विशेषकर गले का कैंसर हुआ है। क्वांटम और स्पेस के बारे में लिखने का दूसरा उद्देश्य था कि वैज्ञानिकों की कुछ मदद हो जाए, क्योंकि वे इन क्षेत्रों में कुछ पजल्ड और फ्रस्टेटिड दिखाई देते हैं। अब पुनः अध्यात्म विज्ञान की तरफ लौटते हैं, क्योंकि जो मजा इसमें है, वह और कहीं नहीं है। **भौतिकता से प्यास बढ़ती है, तो अध्यात्म से प्यास बुझती है। दोनों का अपना महत्त्व है। गीता** में भी **श्रीकृष्ण** स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि "**अध्यात्मविद्या विद्यानाम्**"। मतलब विद्याओं में मैं अध्यात्मविद्या हूँ। मतलब उन्होंने अध्यात्मविद्या को सभी विद्याओं में श्रेष्ठ माना है। फिर भी जैसे-जैसे भौतिक विज्ञान की पहेलियाँ सुलझती रहेंगी, हम बीचबीच में उनका भी उल्लेख करते रहा करेंगे।

कुण्डलिनी शक्ति मृत शरीर को भी जीवित कर सकती है

ऐसी ही एक अध्यात्मविद्या है, परकाया प्रवेश, जिसका उल्लेख मैं हाल ही की पिछली एक पोस्ट में कर रहा था। किंवदंती है कि आदिगुरु शंकराचार्य ने शास्त्रार्थ चर्चा में विद्वान् मंडन मिश्रा को हरा दिया था। फिर उनकी पत्नि भारती चर्चा करने लगी। भारती ने उनसे कामशास्त्र से संबंधित व्यावहारिक प्रश्न पूछे पर क्योंकि वे अविवाहित ब्रह्मचारी थे इसलिए जवाब न दे सके। जवाब पाने के लिए उन्होंने मृत्यु को प्राप्त हुए एक गृहस्थ राजा के शरीर में प्रवेश किया था। इस पर एक फ़िल्म भी बनी है। किसी मृत व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर से तो सम्पर्क बन सकता है, जैसा मैं अपना अनुभव बता रहा था, पर जिन्दा शरीर के सूक्ष्म शरीर में घुसा जा सकता है, यह मालूम नहीं। यह भी नहीँ मालूम कि मृत शरीर में घुसकर सूक्ष्मशरीर उसे जिन्दा कैसे कर सकता है। विज्ञान कहता है कि मृत्यु के थोड़े समय के बाद ही शरीर की कोशिकाएँ मृत हो जाती हैं। उनका इर्रिपेयरेबल डेमेज हो जाता है मतलब उनका इतना नुकसान हो जाता है कि उन्हें पुनः जिन्दा नहीँ किया जा सकता। विज्ञान वहीं तक कह सकता है, जहाँ तक उसकी पहुंच हो। हम दरअसल विज्ञान को फाइनल मान लेते हैं, और उसके आगे नहीँ सोचते। सच्चाई यह है कि विज्ञान को विज्ञान ही चुनौती देता रहता है, विकास करते हुए। पिछले सिद्धांतों को नए सिद्धांत ख़ारिज कर देते हैं। हो सकता है, जिन मृत कोशिकाओं को विज्ञान मुरम्मत के अयोग्य मानता हो, अध्यात्म विज्ञान से उनकी मुरम्मत हो सकती हो। मतलब योग से मृत कोशिकाएँ भी जिन्दा हो सकती हों। इसका आम आदमी को पता न हो क्योंकि उन्हें वैसा योग करना न आता हो। शास्त्रों में आता है कि राक्षसगुरु शुक्राचार्य अपनी संजीवनी विद्या से मृत राक्षसों को जिन्दा कर दिया करते थे। मेरे एक प्रत्यक्षदर्शी मित्र ने बताया था कि उन्होंने खुद कुम्भ मेले में एक साधु को मृत चिड़िया को प्राणविद्या से जीवित करते हुए देखा था। अब मैं यह तो नहीँ कह सकता कि वह सच या झूठ कह रहा था। मुझे तो झूठ भी लगता कई बार। फिर भी चलो मैं ओपन माइंड हो लेता हूँ। ऐसा वही नहीं, और भी बहुत से सिद्ध लोग दावे करते हैं, खासकर शास्त्रों में। हालांकि इसकी भी कुछ शर्त या सीमा होती होगी, जो भौतिक विज्ञान की शर्त और सीमा से ज्यादा उदार होती होगी। जब कुण्डलिनी योग की प्राण शक्ति से शरीर स्वस्थ रह सकता है, और बीमार शरीर स्वस्थ हो सकता है, जिसे योगा हीलिंग कहते हैं, तब मृत शरीर जीवित भी हो सकता है, अगर आज के विज्ञान को एक किनारे रख दें। अगर योग से जीवित कोशिका की मुरम्मत हो सकती है, तो मृत कोशिका की मुरम्मत क्यों नहीं हो सकती। हो सकती है, पर ज्यादा योगशक्ति लगेगी। अगर हल्की टूटी कुर्सी की मुरम्मत हो सकती है, तो पूरी टूटी कुर्सी की क्यों नहीँ। हो सकती है, पर शरीर की ज्यादा शक्ति लगेगी।

रामचरितमानस में आता है कि हनुमान जी पहाड़ से संजीवनी बूटी लाए थे, जिसको खाने से लक्ष्मण का मृत शरीर जिन्दा हो गया था। उसको सूर्योदय से पहले खिलाया जाना जरूरी था, अन्यथा वह असर न करती। मुझे लगता है कि इसका मतलब है कि चौबीस घंटे के अंदर ही मृत शरीर जीवित हो सकता है अध्यात्मविज्ञान से भी, उसके बाद उसकी कोशिकाओं में इतनी टूटफूट हो जाती है कि उनकी मुरम्मत अध्यात्मविज्ञान से भी नहीं हो सकती। आजकल रामचरितमानस भी चर्चा में बना हुआ है। गलतफहमी व निहित स्वार्थ के वशीभूत कुछ तत्त्वों द्वारा इसमें वर्णित एकदो वाक्यों बारे दुष्प्रचार किया गया। फिर उसका खंडन करने के लिए कई बुद्धिजीवियों के द्वारा वैज्ञानिक स्पष्टीकरण भी दिया गया। उस सच्चाई को भी न मानने पर उनका मानवीय विरोध भी हुआ। फिर भी लोकतंत्र का ऊंट किस करवट बैठता है, कुछ कह नहीं सकते।

कुण्डलिनी योग से ही मोरनी मोर के आँसू पीकर गर्भवती हो जाती है

दोस्तो, मैं पिछली से पिछली पोस्ट में बात कर रहा था कि कैसे कुछ बिमारियां विशेषकर आनुवंशिक रोग आदमी को **महामानव** बनने की तरफ ले जाती हैं। मैंने खुद देखा है कि जो अपने जीवन के बाद के दौर में उन बिमारियों से प्रभावित होने होते हैं, वे जिंदगी के शुरुआती दौर में बहुत ज्यादा तेज दिमाग़ वाले होते हैं। मतलब कि वे **जागृति** के बहुत करीब होते हैं। कई तो जागृत भी हो जाते हैं। शायद उनकी जो शक्ति शरीर के किसी सिस्टम की नाकामी से बच कर अतिरिक्त रूप से जमा हो जाती है, वह बुद्धि को बढ़ाने और उससे जागृति पैदा करने में खर्च हो जाती है। वैसे लोग आम समाज से थोड़ा हट कर लगते हैं। वे सबके बीच में अलग ही चमकते हैं। उनका व्यवहार भी सबसे अलग व विशेष जैसा होता है, और काम भी। निसंदेह वे आकर्षक तो होते ही हैं। उनसे दोस्ती करने के लिए बहुत से लोग लालायित जैसे रहते हैं। दोस्ती करके उन्हें बहुत लाभ भी मिलता है, हालांकि यह उनके अजीब स्वभाव के कारण कई बार मुश्किल हो सकता है। इसी तरह पिछली पोस्ट में इस संभावना पर बात हो रही थी कि क्या कुण्डलिनी योग से मृत या मरता हुआ शरीर पुनः जीवित हो सकता है। मुझे लगता है कि अगर शक्ति को सही ढंग से घुमाते हुए शरीर के बीमार हिस्सों पर सही से केंद्रित किया जाता रहे, तो ऐसा हो भी सकता है। पर इसके लिए बहुत समय और सूक्ष्म योग तकनीकें चाहिए। यह बहुत सूक्ष्म विज्ञान है। मैंने ऑटोबियोग्राफी ऑफ ए योगी और अन्य कई जगह एक सत्य घटना पढ़ी थी कि ज्यादा खाना खाने वाली एक बहू अपनी सास के ताने से दुखी होकर एक सुनसान जगह पर बैठी थी जब एक योगी ने उसे **कंठकूप** पर प्राण शक्ति को केंद्रित करने वाला योग सिखाया, जिसके बाद उसे कभी खाना खाने की जरूरत ही नहीं पड़ी। गले के गड्ढे में कोई भी शक्ति को केंद्रित कर सकता है, पर वह सूक्ष्म तकनीक किसी को पता नहीं जिससे वह प्रभाव पैदा हो। किसी का सिर भारी हो जाएगा, किसी को **सिरदर्द** होएगा आदि। सबसे बड़ी बात कि विश्वास कैसे होगा कि प्रभाव पैदा हो गया है। क्योंकि प्रभाव होने पर भी आदमी डर के मारे जबरदस्ती खाता ही रहेगा कि कहीं वह भूखा न मर जाए। ऐसा ही सभी विद्याओं के मामले में होता है, जब आदमी को विश्वास नहीं होता या उसे पता ही नहीं चलता कि उसे विद्या आ गई है। इसीलिए जानकीर **गुरु** की जरूरत पड़ती है। अब जैसे प्रेमी जोड़ा एकदूसरे के अंदर शक्ति का संचार करता है, वैसे ही कोई निपुण योगी मृत शरीर में भी शक्ति का संचार कर सकता है, सिद्धांत तो यही कहता है। शायद यही **मृतसंजीवनी विद्या** का आधार हो।

कई लोग छोटी-छोटी बातों की वजह से दोस्ती तोड़ने या ठुकराने पर आ जाते हैं, जिससे वे अपने लाभ से वँचित रह जाते हैं। उदाहरण के लिए, एकदिन मेरे एक फेसबुक मित्र ने एक पोस्ट शेयर की, जिसमें इस अवैज्ञानिक पर शास्त्रीय बात का मजाक बनाया हुआ था

कि मोर के आँसू पीकर मोरनी गर्भवती हो जाती है। ऐसा प्रवचन करने वाली एक **साध्वी** की खिल्ली भी उड़ाई हुई थी। बिना तर्कवितर्क के **दुष्प्रचार** करने की उनकी आदत ही बन गई थी। मैंने उन्हें इसका **अध्यात्मवैज्ञानिक** स्पष्टीकरण दिया। मैंने कहा कि भाई, ऐसी कथाओं के बहुत मनोरंजक और ज्ञानवर्धक आध्यात्मिक अर्थ होते हैं, इन्हें कृपया भौतिक दुनिया से न जोड़ें। मोर बादल को देखकर नाचता है। मतलब वह **अवसाद** के माहौल में भी खुश रहना जनता है। मोर एक योगी की तरह है। संभवतः इसीलिए **योगीश्वर भगवान श्रीकृष्ण** मोरमुकुट पहनते थे। मतलब मोर ने दुःख या अवसाद के आंसू को गिरने दिया। उसने उन्हें रोका नहीं। अवसाद की मनोस्थिति को अभिव्यक्त होने दिया। अवसाद के विचारों को तनिक उमड़ने दिया। मोरनी यहाँ बुद्धि और मोर आत्मा का प्रतीक है। मोर मतलब आत्मा अंधेरारूपी अवसाद को अनुभव कर रहा है। उस आँसू मतलब अभिव्यक्त कटु विचारों की शक्ति को बुद्धि ने ग्रहण कर लिया, और उससे सुंदर व शक्ति से भरे विचारों के रूप में पुत्र को पैदा किया। **शास्त्रों** में मन के सशक्त व सुंदर विचारों को पुत्र कहने का प्रचलन है। कुण्डलिनी चित्र सबसे सुंदर विचार है, इसलिए उसे सर्वश्रेष्ठ पुत्र या **कार्तिकेय** का रूप दिया है। सबसे अच्छे तरीके के अनुसार बुद्धि ने कुण्डलिनी योग करने का निर्णय लिया। इससे बुरे विचारों की शक्ति चमकीले कुण्डलिनी चित्र को लग गई, जिससे अवसाद का अंधेरा खत्म हो गया, और साथ में सम्भवतः **कुण्डलिनी जागरण** भी मिला। जो कुण्डलिनी योगी नहीं था, उसकी बुद्धि ने कलापूर्ण ढंग से आदमी से ऐसी क्रियाएं करवाईं, जिनसे सुन्दर विचार उमड़ते हैं, जैसे कि लेखन, चित्रकारी, संगीत-वादन, अभिनय आदि। इससे भी अवसाद के धूमिल विचारों की शक्ति इन सुंदर विचारों को लग गई। मतलब साफ है कि अवसाद के गुब्बारे को फूटने देना चाहिए, उसे अंदर बंद करके नहीं रखना चाहिए। मेरे साथ भी एकबार ऐसा ही हुआ था, जब मेरे सामने संसार के बहुत से रास्ते बंद हो गए थे। नया काम कुछ था नहीं, इसलिए पुराने विचार मोर के आँसू की तरह उमड़ रहे थे। फिर मैंने **तांत्रिक** कुण्डलिनी योग से उन विचारों की शक्ति कुण्डलिनी चित्र को दे दी। मित्र ने उक्त स्पष्टीकरण के बारे में कोई विचार-चर्चा नहीं की, बल्कि फ्रेंडलिस्ट से ही बाहर हो गया। इससे तो पूरी तरह से सिद्ध हो जाता है कि मेरा निरुत्तर करने वाला विश्लेषण सटीक था। दुष्प्रचार करने वाले इसी तरह जुबानी फायर करके गायब हो जाते हैं। आपकी क्या राय है?

कुंडलिनी योगी नृसिंह भगवान रूपी ध्यानचित्र की मदद से हिरण्यकशिपु रूपी अहंकार व तांत्रिक पापों को भस्म करके प्रह्लाद रूपी आत्मबुद्धि की रक्षा करता है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में मोर कैसे योगी बना हुआ था। **योगी का पिछला एनर्जी चैनल नर मोर है, तो अगला चैनल मोरनी है**। अवसाद से भरे माहौल में मूलाधार की शक्ति से उसके मस्तिष्क में बहुत से दोषपूर्ण विचार बनते हैं, क्योंकि शक्ति को व्यय होने का और रास्ता नहीं मिलता। उन्हीं विचारों अर्थात आंसुओं को वह **खेचरी मुद्रा** के रूप में उल्टी जीभ को मुंह के अंदर के नर्म तालु से छुआ कर पीता है। वही आंसू फ्रंट चैनल से नीचे उतरते हुए चक्रों पर विशेषकर **नाभि चक्र** पर कुण्डलिनी चित्र का रूप ले लेते हैं, मतलब **मोरनी गर्भवती** हो जाती है।

पुराणों की एक कथा के अनुसार **हिरण्यकशिपु** नामक एक राक्षस ने **ब्रह्मा** से वरदान मांगा कि न वह मनुष्य के द्वारा न पशु के द्वारा, न दिन में न रात में, न आकाश में और न धरातल पर, न घर के अंदर न बाहर, और न अस्त्र से और न ही शस्त्र से मारा जा सकेगा। हिरण्यकशिपु भगवान **विष्णु** को अपना कुलशत्रु मानता था। परंतु उसका बेटा **प्रह्लाद** विष्णुभक्त था। हिरण्यकशिपु ने उसे बहुत समझाया पर जब वह नहीं माना तो उसने उसे मारने के बहुत से प्रयास किए। एकबार उसने लोहे का खंबा लाल गर्म करवाया और प्रह्लाद को उससे चिपकने को कहा। प्रह्लाद ने एक चींटी को उस पर रेंगते हुए देखा तो बिना डरे उस खंबे को गले लगा लिया। तभी उससे एक विचित्र जीव निकला, जिसका मुंह शेर का था परंतु वह नीचे से आदमी था। उसका नाम **नृसिंह** था। उसने हिरण्यकशिपु को संध्या के समय, घर के दरवाजे पर ले जाकर, अपनी गोद में उठाकर अपने नखों से मार डाला।

हिरण्यकशिपु **तांत्रिक पाप** का प्रतीक भी है। तांत्रिक **पंचमकार** पापरूप ही तो हैं। पापरूपी शक्ति का रुझान भौतिक दुनिया की तरफ ज्यादा होता है। इसलिए वह आदमी को **अध्यात्म** की तरफ नहीं जाने देती। पर **गुरुकृपा** से आदमी का रुझान अध्यात्म की ओर हो जाता है। इसीको कथा में ऐसे कहा गया है कि पाठशाला के गुरु ने प्रह्लाद को अध्यात्म की तरफ मोड़ा। फिर हिरण्यकशिपु ने उस गुरु को हटा कर छलकपट से भरी भौतिक शिक्षा देने वाला नया गुरु रख लिया। पर प्रह्लाद का स्वभाव नहीं बदला। मतलब साफ है कि **अंधी शक्ति** सच्चे गुरु से भी दूर ले जाने की कोशिश करती है, पर अगर सच्चे गुरु से थोड़ा सा भी संपर्क स्थापित हो जाए, तो वह कामयाब नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप अध्यात्म की तरफ झुके हुए इन तांत्रिक पापों से आदमी की **सुषुम्ना** क्रियाशील हो जाती है। यही हिरण्यकशिपु द्वारा लाल गर्म लोहे का खंबा

बनाना है। योगी द्वारा ध्यानचित्र को इसके साथ जोड़ना ही उसका इससे आलिंगन करना है, क्योंकि आदमी का अपना रूप भी वही होता है, जिसका वह हरपल **ध्यान** कर रहा होता है। ध्यानचित्र के जागने मतलब नृसिंह भगवान के प्रकट होने से अन्य सभी पापों के साथ कुण्डलिनी साधना की सफलता के लिए किए गए वे तांत्रिक पाप भी नष्ट हो जाते हैं। यही नृसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु का वध है। संध्या के समय उस जलते खम्बे से नृसिंह का प्रकट होना मतलब अन्य समय की अपेक्षा उस समय सुषुम्ना ज्यादा क्रियाशील होकर सहस्रार में ध्यान चित्र को जागृत जैसा करती है। सक्रिय सुषुम्ना नाड़ी ही वह दहकता लाल लौह स्तंभ है। सुषुम्ना भी रीढ़ की हड्डी के अंदर रहती है, जो लोहे की तरह कठोर है। क्योंकि कुंडलिनी चित्र को कई लोग **भूतिया** जैसा डरावना मानते हैं, क्योंकि उसका भौतिक अस्तित्व नहीं होता, इसीलिए उसको डरावने नृसिंह का रूप दिया गया है। ध्यान चित्र न मनुष्य होता है और न ही पशु। इसको ऐसे समझ सकते हैं कि जब **हनुमान**, **गणेश** जैसे अर्धमानुष रूपों का ध्यान किया जाता है, तब ध्यानचित्र सबसे ज्यादा अभिव्यक्त होता है। वह न अंदर होता है और न ही बाहर। इसका मतलब है कि ध्यानचित्र कोई भौतिक वस्तु नहीं है, बल्कि केवल एक **काल्पनिक चित्र** है। वह न दिन में अच्छे से बनता है और न रात को, बल्कि संध्या के समय कुंडलिनी योग करते हुए बनता है। वह हिरणयकाशीपु को गोद में उठाकर उसके पेट को नख से फोड़ता है, मतलब मूलाधार व **स्वाधिष्ठान** से **अवचेतन** और **अचेतन** मन के रूप में दबे **अहंकार** को ऊपर उठाकर उन्हें चक्रौँ पर प्रकट करके समाप्त करता है, मतलब यह विपासना साधना ही है। **सहस्रार चक्र में यह अहंकार पूरा अभिव्यक्त जैसा बना रहता है, और मूलाधार में सोया हुआ सा रहता है, इसलिए दोनों ही स्थानों पर मरने को नहीं आता। यह बीच वाले चक्रों में ही अर्धजागृत या अर्धसुशुप्त सा रहता है, इसलिए बीच में ही मरने को आता है। विपासना साधना के साक्षीभाव का भी तो यही सिद्धांत है**। यह शक्ति के द्वारा चक्रभेदन ही है। पहले अवचेतन मन रूपी धरातल से सुषुप्त विचारों और वासनाओं को प्राण शक्ति से जगा कर चक्रों पर अभिव्यक्त किया जाता है, फिर चक्रों पर प्राण के प्रवाह से उनका भेदन किया जाता है। दरअसल भेदन या नाश तो उन **वासनाओं व संस्कारों** का होता है, पर भेदन चक्रों का माना जाता है। क्योंकि पेट का **नाभि चक्र** सबसे प्रमुख होता है, इसलिए हिरण्यकशिपु का पेट फाड़ने की बात कही गई है। क्योंकि ज्यादातर योगी चक्रस्थान पर अंगुली का नख वाला सिरा रख कर नख से चक्र की तीव्र चुभन वाली संवेदना से या कम से कम अंगुली रखकर ध्यान को मजबूत करते हैं, इसीलिए कहा गया है कि नरसिंह ने हिरण्यकशीपु को नख से फाड़ा। इसमें जो संतुलित या बीच वाली अवस्थाओं में हिरणकशिपु का वध है, वह यही बताता है कि **संगम अर्थात यिनयाँग** वाली अवस्था में ही सुषुम्ना क्रियाशील होती है। **अहंकार को न कोई मनुष्य मार सकता है, और न कोई पशु। उसे किसी भी अस्त्र–शस्त्र से नहीं मारा जा सकता। उसे न तो पूरी तरह बाहर अर्थात बाह्यमुखी होके मारा जा सकता है, और न ही पूरी तरह अंदर अर्थात अंतर्मुखी होकर, बल्कि दोनों के उपयुक्त मिश्रण से ही मारा जा सकता है**। कुण्डलिनी

योगी को जो पीठ में अर्थात सुषुम्ना में रेंगती जैसी हल्की संवेदना महसूस होती है, उससे उसे कुण्डलिनी जागने बारे विश्वास हो जाता है, जिससे वह योगाभ्यास में लगा रहता है, और सुषुम्ना को क्रियाशील करके कुण्डलिनी जागरण प्राप्त कर लेता है। इसीको ऐसे कहा गया है कि प्रह्लाद को उस **जलते लोहस्तंभ** पर एक कीड़ी रेंगते हुए दिखी, जिससे आश्वस्त होकर उसने उसे गले लगा लिया, जिससे नृसिंह भगवान प्रकट हुए।

कुंडलिनी ध्यान व मानसिक रोग के बीच तांत्रिक यौन ऊर्जा की एक पतली दीवार होती है

पिछली पोस्ट को जारी रखते हुए, केवल प्रह्लाद ही हिरण्यकशिपु को मनाने गया, क्योंकि वह किसी भी देवता के मनाने से नहीं मान रहा था। जागृति के बाद अक्सर ऐसा ही होता है। इसे ऐसे समझ लो कि अनंत चेतना से गिरा हुआ आदमी बहुत तेजतर्रार और क्रियाशील होता है। वह बाकि लोगों को भी रास्ते पर लाने की कोशिश करेगा क्योंकि कोई भी आदमी समाज के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। वैसे ऐसा ज्यादातर तभी होता है, जब आदमी को जागृति उस समय मिलती है, जब वह स्वस्थ ऊर्जा से भरा होता है, जैसे किशोरावस्था और यौनावस्था। एक बीमार, कमजोर और बूढ़ा व्यक्ति समाज को कैसे बदल सकता है, वह तो अपने को भी बदल ले, तो भी काफी है। जब प्रह्लाद को जागृति मिली, उस समय वह ऊर्जावान बचपन की अवस्था में था। ऐसी अवस्था में उससे लोग ईर्ष्या करेंगे, उसपर क्रोध करेंगे, उसको सता भी सकते हैं, जैसा यीशु के साथ भी हुआ था। इससे समाज को पाप लग सकता है, जिससे उसमें रह रहे लोगों की दुर्गति हो सकती है। मतलब अपनी तरफ से तो लोग जागृति को शांत करने की कोशिश करते हैं, क्योंकि लोगों के विभिन्न अंगों के रूप में देवता उनके शरीर में ही स्थित हैं। देवता कभी नहीं चाहते कि कोई भी साधु जैसा बन जाए, क्योंकि वे तो जगत को भड़काने और विस्तार देने का काम करते हैं। पर साधु जगत को शांत करता है। इसलिए लोग उसे कुंडलिनी योग करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह खुद भी होता है, जब लोग उसे बहिष्कृत सा कर देते हैं। फिर अकेलेपन के उबाऊ माहौल में जागृत व्यक्ति कुंडलिनी ध्यान नहीं करेगा, तो क्या करेगा। दूसरों को तो ध्यानचित्र दिखता नहीं है। वे तो अंदाजा लगाते हैं कि वह डरावना भूत है। जैसा देवताओं ने शेररूप नरसिंह कल्पित कर लिया। पर प्रह्लाद तो उसे जानता था कि वह तो परम प्रेमी व हितैषी है, कोई काल्पनिक भूत वगैरह नहीं। शायद लोग पागलपन या हैलूसिनेशन या भूतप्रेतबाधा या अवसाद या नशे आदि की अवस्थाओं से भी ध्यानसाधना की तुलना करते हैं, बेशक अनजाने में ही, अवचेतन मन में सदियों से पले हुए भ्रम के कारण। और हां, प्यार में धोखा खाया हुआ आदमी भी तो इसी तरह एक भ्रष्ट ध्यानयोगी की तरह अपने प्रेमी की याद में पगलाया जैसा रहता है। सम्भवतः इसीलिए जल्दी से कहीं उसकी शादी कराने पर जोर दिया जाता है, ताकि उसे तांत्रिक यौनबल से कुछ सहारा मिल सके। अधिकांश फिल्में इसी मामले पे तो बनी होती हैं। अजीब लोचा है भाई। कहीं एकबार मैने गलती से तंबाकू खा ली थी, एकबार भांग, और एकबार गुस्सा कम करने की दवाई। तीनों ही स्थितियों में मेरे मस्तिष्क में ध्यानचित्र छलांगें लगा रहा था। हैलुसिनेशन की हद तक असली आदमी की तरह स्पष्ट लग रहा था। पर यह डलनेस और मूर्खता के साथ था। आनंद भी कम था। कुछ अवसाद जैसा भी था। किसी से बात न करने अपनी ही पागल जैसी मस्ती में रहने को मन करता था। सिर में दबाव के साथ कुछ

थकान व बेचैनी भी थी। योग में शारीरिक स्वास्थ्य को उत्तम बनाए रखने पर भी इसीलिए जोर दिया जाता है। मुझे लगता है कि ध्यानचित्र के आनंद में मूलाधार की सम्भोगीय संवेदना का बहुत बड़ा योगदान है। यह ध्यानचित्र से जुड़े तथाकथित नकारात्मक और अवसादीय लक्षणों को खत्म करके आदमी को सामान्य से भी ज्यादा सही ढंग से सामान्य अर्थात स्वस्थ बना देती है। शायद यह यिनयांग से ही पैदा होती है, क्योंकि बिना जोड़े के संवेदना का कोई अर्थ जैसा नहीं रह जाता। यही संवेदना मस्तिष्क को कुंडलिनी जागरण का दबाव सहने में सक्षम बनाती है, क्योंकि दोनों का स्वभाव एकजैसा ही है। अर्थात आनंदरूप। जहां भ्रम रूप में चीजों के दिखने के पीछे मानसिक रोग या मानसिक थकान या मानसिक रसायनों की गड़बड़ी या अन्य मानसिक अनियमितता आदि मुख्य रूप में वजह होते हैं, वहीं ध्यान या कुंडलिनी जागरण की अवस्था में मन बिल्कुल स्वस्थ व तरोताजा होता है, यहां तक कि एक आम तंदुरुस्त आदमी से भी ज्यादा। जहां मानसिक रोग की हालत में आदमी काम करने में अक्षम जैसा होता है, वहीं दूसरी ओर ध्यान की अवस्था में पूरी तरह से सक्षम होता है, यहां तक कि एक आम इंसान से भी ज्यादा। जहां ध्यान की अवस्था में आदमी को दुनियावी कामों और संकल्पों के प्रति साक्षीभाव के कारण आनंद मिलता है, वहीं मानसिक रोगी को नहीं। इसीलिए वह उद्विग्न और मुरझाया सा दिखता है। साक्षीभाव तो वह तब करेगा न जब उसके लिए उसके मस्तिष्क में दुनियावी कामों के तंदुरुस्त संकल्प बनेंगे। पर अक्सर ऐसा होता नहीं है। सच्चाई यही है कि एक स्वस्थ आदमी ही स्वस्थ ध्यान कर सकता है। जब योगी कुंडलिनी ध्यान में आनन्दमग्न रहने लगता है, तब लोग उसके तथाकथित पागलपन से छुटकारा पाकर अपनेअपने कामधंधों में पूर्ववत आसक्ति और जोशखरोश से लग जाते हैं, जिससे देवता खुश हो जाते हैं। इसीको ऐसे कहा गया है कि प्रह्लाद ने नृसिंह भगवान को स्तुति से प्रसन्न किया। इससे क्रोध छोड़कर वे शांत हो गए, जिससे देवता और संसार नष्ट होने से बच गए।

कुंडलिनीपरक संभोग योग ही मस्तिष्क को जागरण के लिए तैयार करती है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में कुंडलिनी ध्यान और मनोरोग के बीच तुलनात्मक अध्ययन के बारे में बात हो रही थी। उसी कड़ी में ऐसा भी लगता है कि ऐसे मनोरोगियों का इलाज प्रेमचिकत्सा से भी हो सकता है। इसलिए अक्सर यह कहावत आम है कि प्यार व्यक्ति को नशामुक्ति में मदद करता है। प्यार एक सुपरटोनिक है। मानसिक रोग हमेशा ही बुरे नहीं होते, जैसी कि आम मान्यता है, पर एक गॉडगिफ्ट भी हो सकते हैं। संभवतः हिंदु धर्म में इसीलिए मानसिक रोगियों को विशेष दैवीय नजरिए से देखा जाता है, सम्मान से देखा जाता है। यहां उन्हें मानसिक हस्पताल कम ही भेजा जाता है, जब तक कोई गंभीर खतरा ही पैदा न हो जाए। वे मनोरंजन का मुख्य स्रोत होते हैं, और समारोह आदि में आकर्षण का मुख्य बिंदु होते हैं। फिर भी ज्यादातर उनके साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जाता है, और उन्हें पीड़ा नहीं पहुंचाई जाती। उन्हें समाज पर बड़ा बोझ भी नहीं समझा जाता। मुझे लगता है कि मूलाधारवासिनी कुंडलिनी शक्ति मस्तिष्क को दबाव झेलने में सक्षम बनाती है। यह शायद रक्तवाहिनियों का लचीलापन बढ़ाकर उन्हें ज्यादा और बिना दबाव के रक्त प्रवाह बढ़ाने में मदद करती है। विचित्र सा लगता था जब ध्यान के नाम से ही आम लोग सिर पकड़कर बैठ जाते थे, पर मेरे मस्तिष्क में हर समय ध्यान–समाधि लगी होती थी, यौनयोग के बल से। जब मुझे क्षणिक कुंडलिनी जागरण हुआ था, उस समय मैं तांत्रिक यौनयोग के पूरे प्रभाव में था। नहीं तो वह मुझे होता ही न। शरीर को पता होता है कि अपने साथ कब क्या करना है। इसने तभी जागृति के लिए बैक चैनल पूरी तरह से खोली, जब मस्तिष्क दो तीन महीनों से लगातार यौनयोग की कुंडलिनी शाक्ति के प्रभाव में रहकर ज्यादा से ज्यादा दबाव झेलने में सक्षम बन गया था। मैंने अनजाने में कुंडलिनी को इसलिए नीचे नहीं उतारा कि मैं उसका दबाव सहन नहीं कर पा रहा था, बल्कि इसलिए क्योंकि मुझे यह भय था कि कहीं मैं भौतिक रूप से पिछड़ न जाऊं। क्योंकि ऐसा ही मेरा एक पुराना अनुभव भी था। यह ऑर्गेज्मिक शक्ति पता नहीं क्या जादू करती है। यह एक आन्नदमयी शक्ति है।
सेक्सुअल यिनयांग एकदूसरे के प्रति समर्पण से बढ़ता है। इसीलिए समर्पण भाव पर बहुत जोर दिया जाता है। होता क्या है कि एकदूसरे के प्रति पूरे समर्पण से ही यिन और यांग आपस में एकदूसरे से पूरी तरह से मिश्रित हो पाते हैं। यौन समर्पण से बड़ा भला कौनसा समर्पण हो सकता है। यिनयांग तो हरेक वस्तु में होता है, पर समर्पण केवल पुरुष और स्त्री के ही बीच में होता है। जितना निकटता और अंतर्संबंध एक प्रेमी पुरुष और स्त्री के जोड़े के बीच बनता है, उतना किसी और के बीच में नहीं बनता। इसीलिए प्रेमसंबंध और समर्पण से भरा हुआ संभोग ही सर्वोत्तम यिनयांग एकत्व का भंडार है। इसलिए स्वाभाविक है कि यही भौतिक और आध्यात्मिक प्रगति का भी सर्वोत्तम आधार है।

यिनयांग ही पूर्णता है, कुंडलिनी जागरण ही पूर्णता है, ईश्वरत्व ही पूर्णता है। भौतिक संसार भी इसी पूर्णता के अंतर्गत आता है, इससे अलग नहीं है।

कुंडलिनी ध्यानसाधना और जागरूकता ध्यान एकदूसरे से भिन्न नहीं हैं

मित्रों, पिछली पोस्ट में सच्चे व समर्पित प्यार से उपजे चमत्कार को हमने देखा। अगर इसका उल्टा हो जाए, तो क्या होगा, आप खुद ही अंदाजा लगा सकते हैं। लवजिहाद में यही उल्टा खेल चल रहा है। ऐसे ही भयानक संक्रामक रोगों के कारण सदियों से स्त्री और पुरुष के बीच अविश्वास की खाई बनी हुई है। यह आज से नहीं, बल्कि सदियों से न्यूनाधिक रूप से, इस नाम से या उस नाम से चल रहा है। आज तो यह ढंग से दुनिया के सामने आ रहा है। विश्वास बनाने में वर्षों लग जाते हैं, पर तोड़ने में कुछ ही पल। बल से शरीर को तो जीता जा सकता है, पर दिल को तो प्रेम और विश्वास से ही जीता जा सकता है। इसी पर बनी हुई लाजवाब फिल्म "केरला स्टोरी" आजकल अन्तर्राष्ट्रीय चर्चा व आकर्षण का केंद्र बनी हुई है। पर यह इस ब्लॉग का विषय नहीं है, यह तो ऐसे ही पोस्ट के संबंध में बात चली थी, तो यह वर्तमानकालिक मुद्दा खुद ही जुड़ गया।

जब किसी मूर्ति आदि पर ध्यान केंद्रित किया जाता है, तब भटकते विचारों की शक्ति वहाँ केंद्रित हो जाती है। विचारों की शक्ति को प्रकट होने का एक ही रास्ता बचता है, ध्यानचित्र के रूप में प्रकट होने का। योगी मूर्ति की बजाय अपने शरीर के चक्रों पर ध्यान केंद्रित करते है। उससे भी वैसा ही होता है। साथ में शरीर भी स्वस्थ रहता है। जो इनको नहीं मानते, वे आसमान पर या उसमें रहने वाले किसी अदृश्य भगवान पर ध्यान केंद्रित करते हैं। उससे भी वैसा ही होता है। मतलब साफ है कि कोई भी काफ़िर नहीं है। साथ में, नदी, पर्वत, वृक्ष पर ध्यान लगाने से अर्थात उनकी पूजा करने से वे सभी भी शरीर के चक्रों की तरह स्वस्थ रहते हैं, क्योंकि फिर चक्रों की तरह ही आदमी की प्राणशक्ति उनको भी लगती है। पर्यावरण की सुरक्षा इसी मूलमंत्र में छुपी हुई है। अवयरनेस मेडिटेशन अर्थात जागरूकता ध्यान पर भी यही सिद्धांत लागू होता है। कहते हैं कि एववयरनेस मेडिटेशन से बहुत लाभ मिलता है। मुझे हाल ही में एक नए मित्र से मिलने का मौका मिला। वे होम्योपैथिक मेडिसिन की अच्छी प्रेक्टिस भी करते हैं। वैसे भी होम्योपेथी भारतीय ऋषि परम्परा से बहुत मेल खाती है। इसी सिलसिले में वहाँ गया था तो थोड़ा परिचय हो गया। उनके साहित्य व अध्यात्म के शौक को जानकर मैं भी अध्यात्म की बातें करने लग गया। कहते हैं कि जौहरी को ही हीरा दिखाना चाहिए, आम आदमी तो उसे पत्थर समझकर नाले में फैक देगा। मैं उनकी इस बात से बहुत प्रभावित हुआ कि हर समय अवेयरनेस के साथ रहना चाहिए। ओशो महाराज भी बिल्कुल यही कहते हैं कि हरेक काम अवेयरनेस के साथ करो। वे खुद भी ओशो के अनुयायी लगे मुझे। सतसंग से लाभ तो मिलता ही है, जैसा मुझे मिला। मैं इसके मनोवैज्ञानिक सिद्धांत की तह तक पहुंच सका। मुझे लगता है कि जब हम वर्तमान के रियल टाइम में शरीर को महसूस हो

रही किसी भी संवेदना पर ध्यान दे रहे होते हैं, तब मनोमय कोष, अन्नमय कोष और प्राणमय कोष आपस में मिश्रित हो रहे होते हैं, जैसा मैंने पिछली कुछ पोस्टों में विस्तृत रूप से वर्णन किया था। वर्तमान की संवेदना की तरफ ध्यान देने से शरीर और सांस पर भी खुद ही ध्यान चला जाता है, क्योंकि तीनों आपस में जुड़े हुए हैं। वैसे तो बीती हुई और आने वाली घटनाओं के ख्याल भी मानसिक संवेदना के ही अंतर्गत आते हैं, पर उनके साथ शरीर और सांस कम जुड़ते हैं, क्योंकि न भूतकाल में यह वर्तमान काल में स्थित भौतिक शरीर था, और न ही भविष्यकाल में होगा, यह तो केवल वर्तमान काल में ही स्थित है। इसीलिए कहते हैं कि वर्तमान में ही स्थित रहना चाहिए। मुझे लगता है कि जब किसी के द्वारा वर्तमान स्थिति के साथ जुड़ी भौतिक संवेदनाओं का ध्यान किया जाता है, तो इससे यह विश्वास पक्का होता रहता है कि वे उसके शरीर से ही जुड़ी हैं, क्योंकि वे शरीर और सांसों की बदलती स्थिति के साथ बदलती रहती हैं। इससे यह विश्वास भी खुद ही हो जाता है कि उसकी सभी मानसिक संवेदनाएं जैसे कि विभिन्न भावनाएं और विचार भी उसके शरीर के ही भाग हैं, क्योंकि संवेदना चाहे शारीरिक हो या मानसिक, वर्तमानकालिक हो या भूतकालिक या भविष्यकालिक, उन सभी का गुणस्वभाव व अनुभव बिल्कुल एकसमान ही होता है। इससे वे शांत हो जाती हैं, क्योंकि अपने आप से किसीको आसक्तिभाव, लगाव या प्रेम नहीं होता। क्योंकि स्वयं तो स्वयं से हमेशा के लिए जुड़ा हुआ है, उसे कोई अलग नहीं कर सकता, क्योंकि वह अपना ही रूप है। आसक्ति केवल दूसरे से या अलग व्यक्ति या पदार्थ से होती है मतलब तब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर जैसे मानसिक दोष शांत होकर जीवन को अपने लिए और औरों के लिए सुखमय बना देते हैं। इसी शान्त माहौल में ही आध्यात्मिक प्रगति भी होती है, भौतिक प्रगति तो होती ही है। इसका प्रमाण है ऐसी अवस्था में कुंडलिनी ध्यानचित्र का आदमी के मन में सुस्पष्ट अभिव्यक्त होना। साथ में, कुंडलिनी ध्यानसाधना से मस्तिष्क इतना ज्यादा चुस्त और संवेदनशील हो जाता है कि वह हरेक भौतिक संवेदना को गहराई से महसूस करने लगता है, जिससे खुद ही जागरूकता साधना की आदत पड़ जाती है। साथ में आदमी को ऐसा भी लगता है कि जब सभी संवेदनाएं एकजैसी ही हैं, तब वह किसी संवेदना पर ज्यादा तो किसी पर कम आसक्त क्यों है। उसे तो सबके प्रति बराबर रहना चाहिए। इसलिए वह निष्पक्ष व निरपेक्ष होकर शान्त हो जाता है। या ऐसा समझ लो कि आसक्ति वाली संवेदनाओं से सामान्य भौतिक संवेदनाओं की तरफ ध्यान डाईवर्ट हो जाता है।

कुंडलिनीयोग और सिगमंड फ्रायड का मनोविज्ञान एक ही बात कहता है

दोस्तो, हाल की पिछली कुछ पोस्टों के विश्लेषण से लगता है कि हो सकता है कि जिन्हें हम **मानसिक बिमारी** समझते हों, वे दरअसल जागृति की तरफ बढ़ रहे मन के लक्षण हों, पर उन्हें हम ढंग से संभाल न पाने के कारण वे मानसिक रोग बन जाते हों। मैं इसे अपनी आपबीती से भी सिद्ध कर सकता हूं। जिस किसी स्थान विशेष पर मुझे यौनबल मिलता था, वहां मेरा ध्यानचित्र मुझे हर क्षेत्र में अव्वल बनाता था, चाहे वह आध्यात्मिक हो या भौतिक। पर जहां मुझे वह नहीं मिलता था, वहां वह मुझे एक मनोरोगी जैसा भी बना देता था। बेशक वह यौनबल काल्पनिक संभोग ही क्यों न हो, काल्पनिक यौनसाथी का समाधि जैसा स्थायी मानसिक चित्र क्यों न हो। यहां तक कि बेशक वह स्त्री की बजाय पुरुष ही क्यों न हो। ऐसे में तो मुझे **समलैंगिकता** में भी कोई बुराई महसूस नहीं हुई। हालांकि यह अलग बात है और जैसा मुझे लगता है कि कुंडलिनी जागरण स्त्रीपुरुष प्रेम से ही मिलता है, क्योंकि यिन और यांग का संपूर्ण सम्मिलन पुरुष और स्त्री के बीच ही हो सकता है। पाठकों को यह अजीब लग सकता है।
महान पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक सिगमंड फ्रायड कहते हैं कि शरीर के हरेक हिस्से में **यौन-उन्माद** अर्थात **ऑर्गेज्म** है। यह तो **तंत्र** में बहुत पहले से कहा गया है। तभी तो कुण्डलिनी शक्ति का **चक्रौँ** पर आना मतलब वहाँ पर यौन उन्माद को अनुभव करना ही है। कुंडलिनी योग का मतलब ही उस मूलाधार की यौनोन्माद या **ऑर्गेस्मिक** से भरी संवेदना को ऊपर चढ़ाते हुए उसे सभी चक्रों को बारीबारी से प्रदान करना है। यह ऑर्गेस्मिक व आनंदपूर्ण संवेदना एक **सुपर टॉनिक** की तरह है। यह जिस चक्र पर पहुंचती है, उसकी सभी जैविक गतविधियों को बढ़ाते हुए उन्हें सुधारती भी है और संतुलित भी करती है। उस **चक्र** के प्रभावक्षेत्र में जितने भी अंग व जैवीय भाग आते हैं, वे भी खुद ही चक्र की तरह लाभान्वित हो जाते हैं। क्योंकि सातों चक्रों में सारा शरीर कवर हो जाता है, इसलिए पूरा शरीर स्वस्थ व संतुलित हो जाता है, बिमारियां इससे दूर रहती हैं। दरअसल जननांगों का यौनोन्माद तो चक्रों के अपने स्वाभाविक या इन्हेरेंट यौनोन्माद को बढ़ाने का ही काम करते हैं, अपना यौनोन्माद तो उनके अंदर पहले से ही है। उनका यह आंतरिक यौनोन्माद विभिन्न जैविक अभिक्रियाओं व प्रक्रियाओं के आधारभूत रूप में है। जननांगों से तो उसे बस अतिरिक्त धक्का ही मिलता है। ऐसा समझ लो कि उनका अपना यौनोन्माद आइडलिंग पर स्वतः घूम रहे इंजिन की तरह है, और जननांगों का यौनोन्माद गाड़ी के एकसेलरेटर पैडल की तरह है। अगर जननांगों का यौनोन्माद ही सबकुछ होता, तब तो फेल हो रहा हार्ट भी उससे चालू हो जाता। पर ऐसा नहीं होता। यह ऐसे ही है, जैसे अगर इंजन बंद हो या पिस्टन आदि पुर्जों की खराबी से वह बंद हो रहा हो, तो एकसेलरेटर पैडल को दबाने से भी वह चालू नहीं होगा।

एक जगह सिगमंड फ्रायड थोड़ा हट कर विचार रखते हैं। वे कहते हैं कि संभोग शक्ति सबसे बड़ी है, मतलब प्राइम मोटिवेटर या प्रमुख प्रेरक है, पर हमारे **तंत्र** दर्शन में शुरु से ही कहा गया है कि संकल्प शक्ति उससे भी बड़ी प्रेरक है। अगर फ्रायड बिल्कुल सही होते तो हरेक व्यक्ति को जागृति मिला करती, क्योंकि संभोग तो सभी लोग करते हैं। सच्चाई यह है कि संभोग से भी जागृति उन्हीं को मिलती है, जिन्होंने योगसाधना और अन्य आध्यात्मिक तरीकों से **गुरु** और जागृति की प्राप्ति के लिए मन में पहले से ही दृढ़ संकल्प बना कर धारण कर रखा हो। इस बारे में किसी नई पोस्ट में विस्तार से चर्चा की कोशिश करेंगे।

कुंडलिनी तंत्र धर्म-जनित मानसिक बीमारी को नियंत्रित कर सकता है

दोस्तों, मैं पिछली पोस्ट में बता रहा था कि कैसे कुंडलिनी योग मेरी मानसिक स्थिति को स्थिर व तंदुरुस्त बना के रखता था। एक मित्र बोल रहे थे कि अपंग दिमाग प्रेम आदि से स्वस्थ नहीं हो सकता। इस हिसाब से तो प्रेम से कुंडलिनी जागरण भी नहीं हो सकता। पर वह होता है। दिमागी विकृति के विभिन्न स्तर होते हैं। हम यह नहीं कहते कि सभी स्वस्थ हो जाएंगे, पर कुछ न कुछ सुधार तो सबमें होगा। यहां तक कि सभी शारीरिक रोगी खासकर जन्मजात या आनुवंशिक रोगी भी दवा से कहां ठीक होते हैं। मेरे कहने का मतलब था कि जब कुंडलिनी योग एक मानसिक बिमारी जैसा लगता है, तब मानसिक बिमारी भी तो कुंडलिनी योग जैसी बनाई जा सकती है। शायद इसीलिए अधिकांश धर्मों में मानसिक रोग को दैवीय दृष्टि से देखा जाता है। एक बात और है। **जब ध्यान को बोला जाए, पर उसके लिए जरूरी ऊर्जा का प्रबंध न किया जाए, तो मानसिक रोग तो फैलेंगे ही। मैं किसी खास धर्म को पिनपोइंट नही करूंगा। पर यह सबको पता है कि ज्यादातर धर्म और अध्यात्म को अंधे जैसे होकर मानने वाले कट्टर किस्म के लोग ही इस समय मानसिक रोगी या मानसिक** रोगी जैसे दिखाई देते हैं। **पाकिस्तान** इसका एक जीता जागता उदाहरण है, जहां एक रिपोर्ट के मुताबिक लगभग पाँच करोड़ से ज्यादा मानसिक रोगी हैं। *ऐसा लगता है कि अगर किसी धर्म में पर्याप्त अतिरिक्त ऊर्जा है, तो सही तरीके से ध्यान नहीं है, या फिर ध्यान है ही नहीं। केवल कुंडलिनी तंत्र ही मुझे इसमें अपवाद लगता है, क्योंकि यह ध्यान के लिए भी बोलता है, और उसके लिए जरूरी अतिरिक्त ऊर्जा का प्रबंध भी क*रता है। सही तरीके से ध्यान और ऊर्जा की कमी से धर्म या अध्यात्म कुछ से कुछ बन जाता है, बिल्कुल उल्टा हो जाता है, अपने असली मूलरूप में रहता ही नहीं है। **एकहोर्ट टाले** को अवसाद के शिखर पर ही जागरण की अनुभूति मिली। मतलब वे मानसिक रोगी नहीं थे बल्कि कुदरती कुंडलिनी साधना के दौर से गुजर रहे थे, जिसे उन्होंने और दुनिया के लोगों ने गलती से अवसाद समझा हुआ था, इसीलिए वे उसे ढंग से नहीं संभाल पा रहे थे। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। एक दिमागी अपंग आदमी हमारे कार्यालय में अपने पैर के जूतों को अपने सिर पर रखकर दौड़ता हुआ अक्सर आता था। उसके साथ प्रसन्नता और हंसीमजाक के साथ हाथ मिलाना पड़ता था, या फिर उसे एक रुपया देना पड़ता था। न मिले तो साबुन का छोटा सा टुकड़ा उठाकर वैसे ही भाग जाता था। एकबार हमारे सामने उसने एक अजनबी को जोर का तमाचा जड़ा था, जिससे वह पूरा हिल गया था। मुझे लगा कि वह मुझसे नाराज़ था पर मेरी तांत्रिक शक्ति से डरकर उसने मेरा गुस्सा उसपर उतार दिया। आजतक मैं उसके चेहरे पर उस घटना का पछतावा देखता हूं। यह प्यार ही है जो उसे लाइन पर रख रहा था। इसी तरह एक हल्के स्तर का अविवाहित व दिव्यांग व्यक्ति मेरी कुंडलिनी योगशक्ति से

प्रभावित होकर मेरे लिए बहुत से काम लगभग बिना मेहनताने के करता था, पर मैं उसके परिवार वालों को उसके नाम पर पैसे दे देता था। ऐसा क्यों न समझा जाए कि **अल्जाइमर** जैसे मानसिक रोगों में मस्तिष्क के मुख्य पुर्जों के खराब होने से जो अतिरिक्त नाड़ी रसायन अर्थात **न्यूरोकैमिकल्स** जमा हो जाते हैं, वे **हैलुसिनेशन** के रूप में असली लगने वाला काल्पनिक चित्र बनाते हैं। इसी तरह योग द्वारा मन पर लगाम लगने से भी ऐसा ही होता होगा, तभी तो स्थायी समाधि चित्र बनता है। पर पहली स्थिति में यह समाधि जैसा मानसिक चित्र अस्वस्थ, अनियंत्रित और जागरण के उद्देष्य से रहित है, पर दूसरी स्थिति में यह नियंत्रित व स्वस्थ ध्यानसमाधि चित्र है, जो जागृति को दिलाता है। क्या **साम्यवादियों** ने इसी भ्रम के कारण "**धर्म की अफीम का नशा**" वाक्य ईजाद किया है? शेष, इस विषय को हम **मनोवैज्ञानिकों** और मनोचिकित्सकों के लिए छोड़ते हैं, क्योंकि हम अपने मूल विषय से भटकना नहीं चाहते।

कुण्डलिनीछवि ही भगवान वामन का अवतार लेकर, जागृत होकर और अहंकाररूपी राजा बलि को पाताललोक भेजकर पूरी सृष्टि पर कब्जा कर लेती है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में धर्म बारे थोड़ी बात चल पड़ी थी। धर्म का शास्त्रीय मतलब है लाइफस्टाइल। जिसका लाइफस्टाइल कट्टर है, वह पिछड़ जाता है। नोकिया ने समय के साथ बदलाव नहीं किया। साथ में, यह निष्कर्ष भी निकला था कि जिन बहुत से लोगों को मनोरोगी समझकर उनके ऊपर दवाईयों से, शोषण से या सामाजिक बहिष्कार से उन्हें दबाया जाता है, वे दरअसल जागृति के रोगी होते हैं। काश कि मनोविज्ञान कुंडलिनी के लक्षणों और मनोरोग या मूर्खता के लक्षणों के बीच अंतर कर पाता। मुझे लगता है कि यह अंतर कर पाना पश्चिमी सभ्यता जैसी संस्कृति के लिए कठिन है, पर पूर्वी संस्कृति वालों को तो इसका अनुभव प्राचीन काल से ही है। खैर, आपने देखा होगा, हाल ही की पिछली एक पोस्ट में शेर कैसे योगी बना था। वैसे तो सिंघासन नाम का एक योगासन भी होता है। वैसे भी कुंडलिनी योगी को अजगर या ड्रेगन जैसा रूप दिया गया है, जिसका मुंह भी शेर की तरह खुला हुआ है। योग सांसों का खेल है, और शेर भी सांसों की ताकत से दहाड़ता है और अपने चेहरे को खतरनाक बना लेता है। हिंदू पुराणों में इसी तरह की एक दंतकथा आती है कि वामन भगवान ने तीन पग में सारी धरती माप ली थी। दरअसल तीन कदम सत्त्व, रज और तम, तीन गुणों के प्रतीक हैं। इड़ा नाड़ी देवी अदिति है, और पिंगला नाड़ी देवी दिति है। पिंगला दुनियावी भेद बुद्धि और अहंकार को बढ़ाती है, मतलब राक्षसी द्वैत भाव, रजोगुण व तमोगुण को बढ़ाती है। पर इड़ा नाड़ी शांति, तनावरहित्य, अद्वैतभाव व सत्वगुण जैसे दैवीय भाव पैदा करती है। इसीलिए कहते हैं कि अदिति सभी देवताओं की मां है और दिति सभी राक्षसों की मां। कश्यप मुनि की ये दोनों पत्नियां थीं। कश्यप ब्रह्मा के पुत्र थे। ब्रह्मा मन ही है। क्योंकि मन ही सारे संसार को रचता है। वह कमल पर बैठता है, सहस्रार रूपी कमल पर। जब आत्मा का स्थान सहस्रार बताया जाता है, तो मन का भी यही हुआ क्योंकि दोनों आपस में जुड़े हैं, एक के बिना दूसरा नहीं। ऋषि कश्यप अवचेतन मन है, क्योंकि वह मन से ही पैदा होता है। वह मूलाधार में रहता है। क का मतलब जल होता है, और श्य शयन शब्द से बना है, मतलब जल में सोने वाला। जल वीर्य द्रव और रीढ़ की हड्डी में बहने वाले सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूड के रूप में है, और अवचेतन मन को सोए हुए आदमी के रूप में दिखाया गया है, क्योंकि इसमें ही सभी भावनाएं दबी–सोई रहती हैं। यह अवचेतन मन मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्रों जैसे गहरे व अंधेरे गड्ढों जैसे स्थानों में रहता है। जब इसके जागते हुए भावों या विचारों को अद्वैत भाव अर्थात इड़ा नाड़ी का साथ मिलता है, तब वे भाव देवता बन जाते हैं, पर जब द्वैत भाव अर्थात पिंगला नाड़ी का साथ मिलता है, तब वे राक्षस बन जाते हैं। ये जागते विचार ही कश्यप और अदिति या दिति के पुत्र हैं। अदिति और दिति के

रूप में क्रमशः इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ ही उसकी दो पत्नियां हैं, क्योंकि वह इन्हीं की मदद से पुत्ररूप में जागता है, मतलब शक्तिमान होता है। मानसिक कुंडलिनी छवि ही वामन भगवान है। यह सभी विचाररूपी पुत्रों में श्रेष्ठ है, इसलिए इसे भगवान विष्णु का अवतार कहा गया है। एकदम मस्त मनोविज्ञान है। ब्रह्मा मूल मन है। वास्तव में वही किस्म किस्म की सांसारिक रचनाएं जैसे घर, बाग, सड़क, पुल आदि बनाता है। वह सीधा विचाररूपी पुत्रों को पैदा नहीं करता। वह पहले अवचेतन मनरूपी कश्यप मुनि को पैदा करता है। उसीसे विचाररूपी पुत्र बनते हैं। आपने भी देखा होगा कि अगर आप दुनिया में कुछ काम न करो तो सीधे कोई मजबूत विचार नहीं बनेंगे। काम करने से उसकी यादें अवचेतन मन में समा जाती हैं, जो बाद में शक्तिशाली विचारों के रूप में उमड़ती रहती हैं। पिंगला नाड़ी के अधिकार क्षेत्र में आने वाला बायां मस्तिष्क राक्षसराज बलि के अधिकार में है, इड़ा–शासित दायां मस्तिष्क देवताओं के अधिकार में है। राजा बलि अहंकार है। अहंकार बलवान ही होता है। बलि नाम उसको इसलिए भी दिया हुआ लगता है क्योंकि अहंकार अपनी ताकत को बनाए रखने के लिए जीवों की बलि लेता है, हिंसा करता है। कुण्डलिनी छवि इड़ा के प्रभाव से बनती है। वैसे तो इड़ा और पिंगला दोनों संतुलित रूप में होनी चाहिए, क्योंकि दोनों का अस्तित्व एकदूसरे पर निर्भर है, पर इड़ा तुलनात्मक रूप से ज्यादा प्रभावी होनी चाहिए। इड़ा नाड़ी के प्रभाव में आदमी शांत, तनावरहित, अच्छी भूख व अच्छे पाचन से सम्पन्न हो जाता है। इसी चैन की अवस्था में शुभ विचार के रूप में कुण्डलिनी चित्र मन में डेरा डालता है, मतलब देवमाता अदिति से वामन भगवान का जन्म होता है। देखने को तो वह एक छोटा सा अकेला मानसिक चित्र है, इसीलिए उसे बौना कहा है। वह राजा बलि से ब्रह्माण्ड में अपने लिए सिर्फ तीन पग भूमि मांगता है। एक मानसिक छवि कितना स्थान लेगी। हरेक मानसिक वस्तु की तरह वह ध्यानचित्र भी तीन गुणों से ही बना है, सत्त्व, रज और तम। यही तीन पग हैं। आदमी का अहंकार रूपी बलि उसे उतनी जगह भी दे देता है, और सोचता है कि उससे उसका क्या नुकसान होगा। अहंकार बहुत बलशाली होता है। वह दुनिया के बड़े से बड़े काम करता है। छोटे से एकमात्र कुण्डलिनी चित्र को वह मजाक में लेता है। रीढ़ की हड्डी शंख है। इसका शंख जैसा ही रूप है, सिर के भाग में चौड़ी और निचले भाग में पतली। इसमें स्थित मेरुदंड या सुषुम्ना नाड़ी ही शंख के अंदर की ड्रेन या नाली है। नाड़ी शब्द नदी शब्द से ही बना है। उस ड्रेन में बहने वाला जल ही कुंडलिनी शक्ति की संवेदना है। शक्ति भी जल प्रवाह की तरह बहती है। क्योंकि इसमें कुण्डलिनी ध्यान या संकल्प मिश्रित होता है, इसलिए इसे संकल्पजल कहा गया है। ध्यान को ही संकल्प कहते हैं। हिंदु धर्म में हरेक धार्मिक अनुष्ठान के दौरान शंख या अर्घे (पूजा का एक विशेष बर्तन) या आचमन से जल गिराते हुए संकल्प किया जाता है, मतलब उस अनुष्ठान के कारण, विधि, पुरोहित, और फल अर्थात उद्देश्य के बारे में कुछ क्षणों के लिए गहरा ध्यान किया जाता है। यज्ञ में बैठे हुए बलि ने शंख से जल गिराते हुए वामन भगवान को तीन कदम भूमि देने का संकल्प लिया था। संभवतः जल गिराने से कुण्डलिनी शक्ति बहने

लगती है, क्योंकि दोनों में समानता है, जिससे ध्यान मजबूत होता है। अरघे या शंख से जल की गिरती धारा के साथ कुण्डलिनी शक्ति भी फ्रंट चैनल से नीचे की ओर बहने लगती है, जिसके दबाव से वह बैक चैनल में से गुजरते हुए पीठ से ऊपर चढ़ जाती है, और अपने साथ मूलाधार की अतिरिक्त व विशेष कुण्डलिनी शक्ति भी ले जाती है। कुण्डलिनीसंकल्प रूपी वामन, पतली मेरुदंड रूपी सुषुम्ना–शंख में, बह रहे शक्तिरूपी संकल्पजल की मदद से योगसाधना से बढ़ता ही रहता है, और अंत में जागृत होकर सम्पूर्ण सृष्टि को व्याप्त कर लेता है। यही तीन पग से तीनों लोकों को मापना है। इससे अहंकार खुद ही अवचेतन रूपी पाताल लोक में दब जाता है। जिसे ऐसे कहा गया है कि तीसरा पग वामन ने बलि के सिर पर रखा। यह कथा आने वाली अगली पोस्ट में भी जारी है।

कुंडलिनी वामन भगवान बनके शुक्राचार्य की द्वैतरूपी आंख फोड़ती है

दोस्तों, पिछली पोस्ट को जारी रखते हुए, वह बलिरूपी अहंकार वामन को मजबूरन आने देता है, और उसे अंदेशा भी हो जाता है कि वह कुंडलिनी जागरण के बाद बच नहीं सकता। वैसे महिमा ऐसे गाई गई है कि राजा बलि सबसे बड़ा दानवीर था, जिसने अपना भावी नाश जानते हुए भी वामन को तीन पग जमीन दान में दी। हरेक जीव राजा बलि की तरह परम दानवीर होता है। वह यह जानकर कि कुंडलिनी योग से उसका अहंकार नष्ट हो जाएगा, उसका असीमित भौतिक संसार नष्ट हो जाएगा, फिर भी वह कभी न कभी जरूर कुंडलिनी साधना करता है। जब आदमी राजा बलि की तरह अच्छे कर्मों में लगा होता है, तब कभी न कभी भगवान विष्णु उसका भला करने एक ध्यानचित्र के रूप में उसके पास आते हैं। वे मित्र, प्रेमी, गुरु या देवता किसी भी रूप में हो सकते हैं। गुरु को भी तो भगवान का ही रूप समझा जाता है। वैसे भी हर किसी के लिए अपना प्रेमी भगवान ही होता है। उदाहरण के लिए मान लो कि किसी पुरुष की जिंदगी में एक स्त्री का प्रवेश होता है। पुरुष के बीसों कारोबार होते हैं, और सैंकड़ों रिश्ते। उनके कारण उसके मन में अनगिनत विचारचित्र बने होते हैं। इसलिए वह उस स्त्री को हल्के में ले लेता है, और सोचता है कि उसके विस्तृत भौतिक संसार के सामने एक स्त्री कुछ भी नहीं है। वह उसे अपने मन में जगह बनाने देता है, मतलब वह उससे जुड़े भाव या सत्त्वगुणरूपी पहले कदम, गति या रजोगुणरूपी दूसरे कदम, और अंधकार या तमोगुणरूपी तीसरे कदम को अपने मनरूपी साम्राज्य में पड़ने देता है। पर धीरेधीरे उसका उसके प्रति प्यार बढ़ता रहता है, और समय के साथ वह उसके मन में ज्यादा से ज्यादा जगह घेरती रहती है। आखिर में वह उसके पूरे साम्राज्य में फैल जाती है, और फिर जागृत होकर आदमी के राजाबलिरूपी अहंकार को खत्म ही कर देती है। कुंडलिनी योग में भी ऐसा ही होता है। इसका मतलब है कि योग और प्रेम के बीच में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। राजा बलि भी बहुत बड़ा यज्ञ मतलब अच्छा काम ही कर रहा था। आदमी को पता चल जाता है कि वह ध्यानचित्र के चक्कर में पड़कर बावला प्रेमी या योगी या प्रेमयोगी या प्रेमरोगी बन जाएगा, फिर भी वह उसे अपनाता है, और आगे बढ़ाता है। उसने कुण्डलिनी जागरण के माध्यम से एक कदम से मतलब सत्वगुण से सारा स्वर्ग कब्जे में कर लिया। स्वर्ग सतोगुण प्रधान होता है। क्योंकि कुंडलिनी जागरण के समय तीनों गुण अनंत हो जाते हैं, इसीलिए कहा गया है कि कुंडलिनी या वामन से तीनों लोक पूरी तरह से व्याप्त हो गए मतलब भर गए। दूसरे कदम मतलब रजोगुण से कुण्डलिनी चित्र पूरी धरती में फैल गया, क्योंकि धरती रजोगुणप्रधान है। तमोगुणरूपी तीसरे कदम से अहंकार व उससे जुड़े कर्मविचार मूलाधार के अँधेरे अवचेतन अर्थात पाताल में चले जाते हैं। क्योंकि तमोगुण किसी को मारकर या नष्ट करके ही बनता है, इसलिए वह अहंकार और उससे पोषित मानसिक

सृष्टि को नष्ट करने से बनता है। पाताल लोक के द्वारपाल के रूप में भगवान विष्णु के स्थित हो जाने का मतलब है कि ध्यानचित्र कुंडलिनीयोग के माध्यम से उन राक्षसों को अर्थात अवचेतन में दबे विचारों को ऊपर अर्थात मस्तिष्क या स्वर्ग की तरफ जाने देकर शुद्ध करता रहता है, ताकि सब देवता ही बन जाएं। साथ में, विष्णुस्वरूप ध्यानचित्र को कुंडलिनी योग से स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्रों पर केंद्रित किया जाता रहता है, जिससे उनमें दबी हुई राक्षसरूपी भावनाएं उजागर होकर उसके संपर्क में आने से शुद्ध बनी रहती हैं, जिससे वे योगी को बंधन में नहीं डाल पातीं, मतलब राक्षस देवताओं को परेशान नहीं कर पाते, क्योंकि शरीर में ही सभी देवता बसे हुए हैं। वैसे भी स्वाधिष्ठान चक्र को इमोशनल बैगेज मतलब भावनाओं की गठरी कहते हैं।
यज्ञ में बलि के पुरोहित बने हुए राक्षसगुरु शुक्र आचार्य पहले बलि को बहुत समझाते हैं कि वह वामन पर भरोसा न करे क्योंकि वह तीन कदमों में ही उसका सबकुछ छीन लेंगे। पर जब बलि नहीं मानता तो शुक्राचार्य संकल्पजल गिरा रहे शंख के सुराख़ में घुस जाते हैं, पर वामन उसमें कुशा डालकर उसकी आंख फोड़ देते हैं? एक बात और, क्योंकि शंख भी जीव की पीठ पर होता है, और रीढ़ की हड्डी की तरह ही उसे सुरक्षा देता है, इससे भी पक्का हो जाता है कि सुषुम्ना नाड़ी को ही शंख कहा गया है। साथ में, शंख का आकार भी एक फन उठाए नाग या ड्रेगन के जैसा ही होता है, जिसकी समानता मेरुदंड व उसमें स्थित सुषुम्ना के साथ की जाती है। एक अनुभवी कुलपुरोहित कभी भी अपने यजमान को अध्यात्म के बीहड़ में नहीं खोने देना चाहता, बेशक उससे यजमान का फायदा ही क्यों न हो। उसे पता होता है कि अगर यजमान को सत्य का पता चल गया तो उसे ठगकर उससे यज्ञ आदि कर्मकांड के नाम पर पैसा ऐंठना आसान नहीं रहेगा। हालांकि अपनी जगह पर कर्मकाण्ड सही है और जागरण के लिए महत्त्वपूर्ण सीढ़ी है, पर मंजिल मिलने पर कौन सीढ़ी की परवाह करता है। वैसे भी वह भौतिकवादी गुरु है। शुक्राचार्य अर्थात भौतिक विज्ञानवादी व्यक्ति या गुरु द्वारा शुक्र अर्थात वीर्य को बाहर बहा कर सुषुम्ना के शक्ति प्रवाह को ब्लॉक करना ही शंख में घुसना है। वामन का उसको कुशा डंडी द्वारा खोलना ही योगी द्वारा कुण्डलिनी ध्यानचित्र के माध्यम से मूलाधार से शक्ति को ऊपर चढ़ाना है। यह मूलाधार से लेकर सहस्रार तक फैली हुई संवेदना की रेखा जैसी होती है जो रीढ़ की हड्डी में होती है। यह झाड़ू या कुशा की सींक जैसी पतली फील होती है। यही सुषुम्ना जागरण है। अगर संभोग से पहले पीठ की विशेषकर मेरुदंड की ढंग से मालिश करवा ली जाए, तो यह संवेदना रेखा आसानी से और आनंद के साथ महसूस होती है। फिर वीर्य शक्ति आसानी से ऊपर चढ़ती है, जिससे संभोग बहुत आनंदमय और आध्यात्मिक बन जाता है। यौनांगों का दबाव भी एकदम से खत्म हो जाता है। आदमी अक्सर ऐसा कुंडलिनीजनित आनंद के लालच से प्रेरित होकर करता है, इसीलिए मिथक कथा में कहा गया है कि वामन ने ऐसा किया। इससे शुक्राचार्य की आंख फूटना मतलब कुण्डलिनी के प्रभाव से वीर्यशक्ति की द्वैत दृष्टि अर्थात दोगली नजर नष्ट होना है। जब वीर्यशक्ति द्वैत से भरे संसार की तरफ न बहकर अद्वैत से भरी आत्मा की तरफ बहेगी, तो स्वाभाविक है कि

वीर्यशक्ति की दोगली नजर नष्ट होगी ही। बलि या अहंकार पाताल को चला जाता है, मतलब कुंडलिनी जागरण के बाद आदमी व्यक्त अर्थात प्रकाशमान जगत का अहंकार नहीं कर सकता क्योंकि उसने सबसे अधिक प्रकाशमान कुंडलिनी जागरण का अनुभव कर लिया है। इसलिए वह स्थूल जगत से उपरत सा होकर अपने सूक्ष्म शरीर के रूप में अव्यक्त अन्धकार सा बन जाता है। यही उसका पातालगमन है। हालांकि सूक्ष्म शरीर के धीरे-धीरे स्वच्छ होने से स्वच्छ होता रहता है। इसे ही ऐसे कहा गया है कि भगवान विष्णु उसके द्वारपाल के रूप में पहरा देते हैं।

कुंडलिनी शक्ति ही राक्षस वृत्रासुर को इंद्र-वज्र बन कर मारती है

मित्रो, पिछली पोस्ट में हमने देखा कि कैसे शुक्राचार्य के रूप में सांसारिक बुद्धि बलि के रूप में बने जीवात्मा को जागृति से वंचित रखना चाहती है। बहुत सुंदर कथा है। ऐसी ही एक योगरहस्यात्मक कथा वृत्रासुर वध की पुराणों में आती है। देवताओं ने दैत्य वृत्रासुर को मारने के लिए दधीचि ऋषि की अस्थियों से वज्र बनाया था। वृत्र शब्द वृत्ति शब्द से बना लगता है। इसका मतलब है मन के संकल्प। चित्त में वृत्ति होती है। चित्त मतलब उन विचारों का संग्रह जो पहले कभी आए थे, और अब याददाश्त में जमा हैं। इसीलिए याद आने को चेता आना भी कहते हैं। उनको कुंडलिनी जागरण ही क्षीण या पंगु कर सकता है। ऐसा लगता है कि कुंडलिनी जागरण मेरुदंड में स्थित सुषुम्ना के क्रियाशील होने से ही मिल सकता है, अन्यथा नहीं। वृत्रासुर वज्र प्रहार से मरा, मतलब मेरुदंड में सुषुम्ना के जागने से ही कुण्डलिनी जागरण हुआ। उसको ऐसे कहा गया है कि वज्र के साथ विश्वकर्मा ने एक बाण भी बनाया। वज्र का आकार दंडवत कहा गया है। रीढ़ की हड्डी भी दंडवत ही होती है। तीर का नाम ब्रह्मशिर है, मतलब वह ब्रह्मरंध्र तक जाता है, जो सिर के सिरे मतलब शिखर पर है। यह तीर सुषुम्ना नाड़ी ही है। दधिचि ऋषि की हड्डियों से विश्वकर्मा ने और भी बहुत से अस्त्र बनाए थे। मतलब कि योगासन हड्डियों की सहायता से ही संभव हो पाते हैं। हड्डियों के विभिन्न जोड़ ही हमें विभिन्न आसन लगाने में मदद करते हैं। फिर उन आसनों से शरीर में उर्जा संचरण होता है, जो शक्ति को जगाने में मदद करता है। वह वृत्रासुर सभी देवताओं को परेशान करता था। इसका मतलब है कि मन की चंचलता व बेचैनी से शरीर का चयापचय गड़बड़ा जाता है, और उसमें विभिन्न रोग घर कर जाते हैं। शरीर देवताओं से ही तो बना है। विश्वकर्मा का शाब्दिक अर्थ होता है, विश्व के सभी कार्य करने वाला, मतलब विश्व को बनाने वाला। सारा विश्व शरीर में ही तो बसा हुआ है। कथा में कहा गया है कि रीढ़ की हड्डियों से वज्र और ब्रह्मशिर नाम का तीर बनाया। यह भी कहा गया है कि इंद्र ने सुरभि को बुलाकर उससे अस्थियों को चटवाया और फिर विश्वकर्मा को उनसे वज्र के निर्माण की आज्ञा प्रदान की। शिवजी के तेज से वृद्धि को प्राप्त इंद्र उस वज्र को उठाकर बड़े वेग से वृत्रासुर पर क्रोध करके इस प्रकार दौड़े, मानो रुद्र यम की तरफ़ दौड़ रहे हों। इसके बाद उन इंद्र ने भलीभांति सन्नद्ध होकर शीघ्रता से उस वज्र के द्वारा उत्साहपूर्वक पर्वतशिखर के समान वृत्रासुर का सिर काट दिया। यह अलंकारिक भाषाशैली है। शिवजी के तेज से, मतलब तंत्र की सहायता से, क्योंकि शिव ही तंत्र के आदिप्रवर्तक हैं। यह कुंडलिनी जागरण की ऊर्जावान अवस्था का ही वर्णन है। क्योंकि चित्तवृत्तियां सिर में ही पैदा होती हैं, इसीलिए वृत्रासुर का सिर काटने की बात कही है। यह कथा अगली पोस्ट में भी जारी है।

जब सभी देवता मिलजुल कर काम करते हैं, तो ऐसा कहा जाता है कि इंद्र ने वह काम किया, क्योंकि इंद्र ही देवताओँ का राजा है। कुंडलिनी योग शरीर के सभी अंगों मतलब सभी देवताओं के मिलेजुले प्रयास से ही संपन्न होता है। इसीलिए कहा है कि इंद्र ने वृत्रासुर को मारा। मुझे लगता है कि सुरभि गाय के द्वारा चटाना खेचरी मुद्रा को कहा गया है, जिसमें उल्टी जीभ नरम तालु के साथ छुआई जाती है। क्योंकि सिर रीढ़ की हड्डी के साथ सीधा जुड़ा है, इसलिए वज्र का ही हिस्सा है। इससे ही ऊर्जा नाड़ी लूप में आसानी से घूमती है। उसके बाद वज्रनिर्माण शुरु होता है, मतलब रीढ़ की हड्डी में उर्जा के दौड़ने का आभास होने लगता है।

विश्वकर्मा ने बनाया, मतलब वह निर्माण वैज्ञानिक सिद्धांत से अपने आप होता है, उसे कोई आदमी नहीं बनाता। बस, अपनेआप होने के लिए अनुकूल परिस्थितियां तैयार करनी पड़ती हैं। विश्व भी अपनेआप ही बनता है। इसी अपनेआप होने को सजाने के लिए विश्वकर्मा का नाम दिया गया है।

कुंडलिनी की सहायता के बिना देवता भी कामयाब नहीं हो पाते

पिछली पोस्ट को जारी रखते हुए, बुद्धिस्म में तंत्र वाली शाखा को वज्रयान नाम इसीलिए दिया गया है। प्रेमयोगी वज्र नाम भी इसीलिए पड़ा है। उसकी साधना में मूलरूप में तो प्रेमयोग ही है, पर उसमें तंत्र का भी अच्छा योगदान है। देवताओं ने वृत्रासुर के साथ लंबे अरसे तक युद्ध किया था। परंतु वे उसे हरा न सके थे। अंत में वे हार मानते हुए अपने अस्त्रशस्त्र दधिचि मुनि के आश्रम के निकट छोड़कर भाग गए। इसका मतलब है कि देवताओं ने दुखों के विचारों से बचने के लिए आदमी के शरीर में हाथपैर, आंखें, कान, मस्तिष्क आदि अनेकों अंग लगाए। पहले आदमी कीटाणुविषाणु की तरह एककोशिकीय जीव होता था। वह तो दुःख से भरी अवस्था ही थी। उस दुःख को दूर करने के लिए देवताओं ने कई युगों तक उस प्राथमिक जीव का विकास किया। अंत में मनुष्य शरीर बना। इतनी मेहनत के बाद भी दुखों का अंत कहां हुआ। उल्टा वह बढ़ने ही लगा। आज विज्ञान जितनी ज्यादा तरक्की कर रहा है, प्रकृति से उतनी ही ज्यादा छेड़छाड़ बढ़ रही है, जिससे जानमाल की तबाहियां भी बढ़ रही हैं। प्राकृतिक आपदाएं बढ़ रही हैं। हत्या, लूटपाट आदि अपराध बढ़ रहे हैं। मन के मुख्य पांच दोष काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर और उनसे पैदा होने वाले अनगिनत मानसिक विकार जैसे कि अवसाद, अकेलापन, हिंसा, स्वार्थभाव आदि बढ़ ही रहे हैं। मतलब दुखों के पहाड़ के रूप में वृत्रासुर का ही हमला हो गया। मजबूरन देवताओं ने हाथ खड़े कर दिए। दधिचि मुनि यहां आत्मा को कहा गया है। उसके आश्रम के निकट देवताओं ने हथियार छोड़ दिए, मतलब उन्होंने शरीर के सभी अंग निर्मित कर दिए, क्योंकि शरीर ही आत्मा के सबसे निकट है। देवताओं ने हार मान ली, मतलब इंद्रियों व अंगों के बल से चित्त का अहंकाररूपी परम दुख या शत्रु कभी नष्ट नहीं हो सकता था, यह पूरी तरह से सिद्ध हो गया था, छोटेमोटे शारीरिक व मानसिक दुख बेशक दूर हो जाते। यह परम दुख ही वृत्रासुर राक्षस था। शिव के वरदान से ही दधीचि मुनि की अस्थियां वज्रतुल्य बनी थीं। मतलब कि शिवप्रदत्त योग से हड्डियों में, विशेषकर रीढ़ की हड्डी में इतनी लोच व जीवंतता थी कि उसमें कुंडलिनी ऊर्जा आसानी से प्रवाहित हो सकती थी। वज्रपात बिजली गिरने को कहते हैं। उससे कठोर चट्टान भी टूट जाती है, और साथ में उसमें बिजली भी प्रवाहित होती है। इसी तरह रीढ़ की हड्डी की सुषुम्ना नाड़ी में प्रकाशमान ऊर्जारेखा का दौड़ना ही बिजली गिरने के समान है, और उससे अहंकार का नष्ट होना ही चट्टान के टूटने जैसा है। अहंकार ही दुनिया की सबसे कठोर वस्तु है, जिसे तोड़ना सबसे कठिन है।

कहते हैं कि ऋषि दधिचि की सुवर्चा नाम की एक पत्नी भी थी। जब देवता ब्रह्मा के पास सहायता मांगने गए थे, तब उन्होंने ही उन्हें दधीचि से अस्थियां मांगने की सलाह दी थी।

सुवर्चा अंदर वाले कक्ष में थी, और देवता बाहर वाले कक्ष में बैठे दधीचि से उनकी हड्डियां मांग के ले गए। दधीचि ने योगसमाधि लगा कर शरीर छोड़ दिया और वे ब्रह्म में विलीन हो गए। जब सुवर्चा को पता चला तो वह बहुत क्रोधित हुई, और उसने देवताओं को श्राप दिया। उस समय सुवर्चा गर्भवती थी। ऋषि की वीर्यशक्ति से उसे दूसरे शिव के समान महान पुत्र प्राप्त हुआ। उसका नाम पिप्पलाद था। सृष्टि के मूल निर्माता तो ब्रह्मा ही हैं। उन्हें पता है कि देवता जितना मर्जी जोर लगा लें, पर वे आध्यात्मिक अज्ञान को नहीं मिटा सकते। यह भी उन्हें पता था कि योगी के मेरुदंड में स्थित सुषुम्ना में ऊर्जाप्रवाह से जब कुंडलिनी जागरण होगा, उसी से वह मर सकता है। जागृति से अज्ञान तो मिटेगा ही, अहंकार भी मिटेगा। अहंकार ही मनुष्य का अपना साधारण या लौकिक अनुभव वाला रूप होता है। जब अहंकार ही नहीं, तब मनुष्य का अस्तित्व भी कैसे रह सकता है। इसी को ऐसा कहा है कि दधीचि मुनि खुद शरीर छोड़कर चले गए। दरअसल अहंकार तो जागृति से पहले ही खत्म हो चुका होता है। तभी तो जागृति का अनुभव होता है। जरा भी अहंकार रहने से जागृति का अनुभव कैसे हो सकता है, क्योंकि दोनों एकदूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं। तांत्रिक योगसाधना से जब योगी का अहंकार नष्टप्राय हो जाता है, तभी जागृति की असली शुरुआत होती है। अहंकार खत्म होने से योगी के मस्तिष्क में सांसारिक कचरा भी कम से कम रहता है, जिससे कुंडलिनी को जागृत होने के लिए पर्याप्त नाड़ी शक्ति उपलब्ध हो जाती है। ऋषि दधीचि की पत्नि जो सुवर्चा है, वह दरअसल बुद्धि है। अहंकार के नष्ट हो जाने से आदमी का रूपांतरण जैसा हो जाता है। रूपांतरण से पुराने विचार और स्मरण भुने बीज की तरह नष्टप्राय जैसे हो जाते हैं। पर वह प्रकाशमान बुद्धि या सद्बुद्धि बनी रहती है, जो अच्छे रास्ते पर लगाती है। पुराने अनुभव भी याद रहते ही हैं। संस्कृत शब्द वर्चस का अर्थ प्रकाशमान होता है। उसने देवताओं को श्राप दिया, मतलब तब शरीर देवताओं के अधीन रहकर मनमाना आचरण नहीं करता, बल्कि सद्बुद्धि के दिशानिर्देशन में रहकर युक्तियुक्त व्यवहार ही करता है। आदमी के रूपांतरण के बाद जो उसकी नई, जागृत व देवतुल्य अवस्था आती है, उसे ही पुत्र पिप्पलाद कहा गया है। वह रुद्र अर्थात शिव की तरह तंत्रात्मक अवस्था होती है, इसीलिए उसे रुद्रावतार कहा गया है।

कुंडलिनी तंत्र पर्यावरण अनुकूल जीवनशैली में ज्यादा अच्छा फलता फूलता है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में हम देख रहे थे कि कैसे आजकल आदमी जितनी भौतिक तरक्की कर रहा है, उसके आधिभौतिक, आध्यात्मिक और आधिदैविक दुख भी बढ़ते जा रहे हैं। मन के सभी दोष चरम के करीब हैं, और राक्षस बनकर आदमी को निगलने को तैयार हैं। यह भी कि कुंडलिनी शक्ति से ही उस राक्षस को मारा जा सकता है। मतलब साफ़ है कि मानव सभ्यता आज उस मोड़ पर खड़ी है, जहां उसे केवल कुंडलिनी योग ही बचा सकता है। मैं हाल ही में पहाड़ों के भ्रमण पर गया था। जहां मैदानों में ऐसी और कूलर चले हुए था, वहां पहाड़ों में लोग रजाई कंबल ओढ़ कर सो रहे थे, और आग जला कर सेंक रहे थे। एक दिन के भीतर ही सालभर के सारे मौसम देखने को मिल जाते हैं। अद्भुत नजारा देखा। वहां एक स्थानीय परिचित भी मिले। उनके पास नदी की गहराई से लेकर पहाड़ के शिखर तक के रास्ते पर हरेक प्राइम लोकेशन पर जमीन है। वे उस रास्ते को टूरिस्ट ट्रेकिंग रूट की तरह इस्तेमाल करने की और बीच के प्राइम पॉइंट्स पर झोंपड़ीनुमा टूरिस्ट कमरों व फुलवारियों की कल्पना को साकार करना चाह रहे थे। हालंकि उसके लिए प्रारंभिक निवेश व मैनपावर की जरूरत होती है, पर वे सस्ते में व प्राकृतिक तरीके से ऐसा करना चाहते थे, ताकि कम से कम कृत्रिम संसाधन लगे, और बिजनेस में जोखिम को दूर किया जा सके, क्योंकि वे आर्थिक रूप से मुझे ज्यादा समृद्ध नहीं लगे। अक्सर ऐसा ही होता है। करने वाले के पास पैसा नहीं होता और पैसे वाले कर नहीं पाते। वे होम्योपैथी व नेचरोपेथी की प्रेक्टिस भी करते हैं। उनका कहना था कि उनके पास प्रतिदिन ऐसे मरीज व अन्य लोग आते हैं, जो 2 किलो वजन कम करने के लिए गोवा जैसी दूरपार की व महंगी जगह जाकर चार लाख तक खर्च करते हैं। तो वे कहते हैं कि वे उनके नजदीक में ही और उससे बहुत कम समय व पैसे में चार किलो वजन कम कर सकते हैं। पर वही बात है न कि लोगों को शतप्रतिशत कुदरती भी पसंद नहीं आता, आकर्षण पैदा करने के लिए कुछ न कुछ कृत्रिम निर्माण तो करना ही पड़ता है। आजकल लोगों में प्रकृति के बीच रहने की जबरदस्त भूख है, क्योंकि हर जगह कृत्रिमता की अंधाधुंध भरमार है। बस उस भूख को शान्त करने के लिए ढंग से परोसने वालों की कमी है। फिर भी मन के घोड़ों को तो उड़ा ही सकते हैं। सबसे बड़ी समस्या है, दिन पर दिन पर्यटकों में शिष्टाचार व अनुशासन का घटता ग्राफ, असामाजिक तत्त्वों का डर अलग से लगा रहता है। वैसे तो उन्हें सही ढंग से गाइड व सर्व करने वाले पर्यटन संबंधी निपुण कर्मचारियों की भी कमी है। पहाड़ों के कुदरती जंगलों की जगह कंक्रीट के जंगल लेते जा रहे हैं। बढ़ती आबादी पर कम व अपर्याप्त नियंत्रण लगता दिख रहा है। मुझे तो कंक्रीट की विशाल, भव्य खूबसूरत हवेली छोड़कर एक छोटे से, शान्त क्षेत्र में बने, पुराने और जीर्णशीर्ण से, कुदरती हवापानी और धूप को अंदर प्रविष्ट कराने वाले और प्यारे

हानिरहित सूक्ष्म जंतुओं जैसे चींटी, छिपकली, कोकरोच, लकड़ी और मिट्टी खाने वाले कीड़ों आदि का सामना करवाने वाले मकान में ही अपनी तांत्रिक योगसाधना सफल होते हुए दिखी। ध्यानस्थ शिव के चारों ओर भी तो सांप बिच्छू रहते हैं। हालांकि यह हम इंसानों के मामले में घातक चरम स्थिति है। बेशक मेरे पुराने घर में भी दो या तीन बार चमगादड़ और चूहे घुसे। चमगादड़ को बड़ी मुश्किल से खिड़की से भगाया क्योंकि उन्हें दिखता नहीं। फिर दीवारों के छेदों, दरारों आदि को लिफाफों आदि की पैकिंग से बंद किया, क्योंकि वे छोटी सी खाली जगह से भी घुस जाते हैं। इसी तरह चूहों को भी सांप के डर से मार भगाना पड़ा। उसकी छत आरसीसी की नहीं थी, बल्कि आरसीसी की पतली कड़ियां अंतरालों पर बिछी हुई थी। अंतरालों के बीच की खाली जगह पर टाइलें लगी थीं, जो दोनों साइड की कड़ियों पर टिकी हुई थीं। टाइलों के उपर चिकनी जैसी मिट्टी की खूब मोटी परत थी। मिट्टी के ऊपर फिर टाइलें आपस में जोड़ के लगी थीं, ताकि बारिश का पानी अंदर न घुसे। थोड़े बहुत रिसाव को तो मिट्टी शोषित कर के बाहर उड़ा देती होगी। इससे छत धूप से ज्यादा तपता भी नहीं था, और ठंड में ज्यादा ठंडा भी नहीं होता था। देखो, बातें आगे से आगे खुलती हैं। अंधेरे जैसी परिस्थितियां मूलाधार की प्रतीक हैं। ऐसे माहौल के प्रभाव से शक्ति आसानी से सहस्रार को चढ़ती है, बशर्ते अगर समुचित साधना की जाए। इसीलिए शिव श्मशान में रहते हैं। शायद यह उसी भव्यता के सूक्ष्म व अप्रत्यक्ष बल से ही बाद में हुआ, क्योंकि रात के बाद ही दिन अच्छा लगता है। वैसे भी भवन, गाड़ी आदि पर सामर्थ्य से ज्यादा खर्च करने पर या उन्हें बेवजह विस्तार देने से आदमी उनकी चिंता में, रखरखाव में उलझा रहता है, जिससे योगसाधना को पर्याप्त समय व प्राणशक्ति नहीं दे पाता। सोचो, एक औसत भव्य मकान कम से कम पचास लाख रुपए में बनता है। इतने पैसे पेंशन स्कीम में डालकर पचास हजार की पेंशन हर महीने बनती है, पूरी उम्र के लिए, और मूलधन पचास लाख वैसा ही सुरक्षित खड़ा रहता है। सारी उम्र कमाई की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। आराम से झोंपड़ीनुमा पर्यावरणमित्र व स्वास्थ्यमित्र मकान में रहते हुए आनंदमय जीवन के साथ योगसाधना करते रहो और गिटार बजाते रहो। गिटार बजाना भी एक उच्चकोटि की साधना है, साक्षीभाव साधना है। कई लोग बैंक से लोन लेते हैं, तो किश्तें चुकाते चुकाते वह मकान दुगुनी मतलब एक करोड़ के लगभग की कीमत में पड़ जाता है। कई चतुर लोग ब्याज से बचने के लिए रिश्तेदारों या मित्रों से पैसा उधार ले लेते हैं। भोलेभाले लोग उनको उधार दे भी देते हैं, पर उनसे ब्याज तो छोड़ो, मूलधन की उगाही भी नहीं कर पाते। उससे फिर रिश्ते और दोस्ती में दरार पड़ जाती है। कई लोग तो अपने बच्चों को भी उधार की चक्की में पिसवा देते हैं। बेफजूल के मकान का शौक बहुत महंगा पड़ता है। भव्यता से अहंकार भी बढ़ता है, और उसके नष्ट होने से वह भी नष्ट हो जाता है। वैसे भी पुराना और कच्चा कंक्रीट फिर भी जीवित और कुछ सांस लेता लगता है, पक्के और नए कंक्रीट में तो दम सा घुटता लगता है। असली जान तो मिट्टी वाले घर में होती है, इसीलिए आजकल मडहाउस की तरफ़ लोगों का क्रेज बढ़ रहा है। यह भूकंपरोधी भी होता है। आजकल कई लोग

पिलरस और लेंटर को आरसीसी का भूकंपरोधी जाल की तरह बना कर दीवारें कूटी हुई मिट्टी की और खूब चौड़ी रख रहे हैं, और लेंटर या लोहे की चद्दर की छत के नीचे लकड़ी के फट्टों की सीलिंग लगा रहे हैं। इससे मजबूती और कुदरतीपने का दोहरा फायदा मिल रहा है। अंदर फर्श पर और दो या तीन फुट की धरातल की दीवार पर कुदरती लगने वाली, चौड़ी और सांस लेने वाली टाइलें भी लगाई जा सकती हैं। कमरों के बीच पार्टिशन ईंट की बजाय मिट्टी की पतली या मोटी दीवार जगह के अनुसार या लकड़ी की भी दी जा सकती है। रसोई और वाशरूम कम टॉयलेट भी इसी तरह मिट्टी के प्राकृतिक रखे जा सकते हैं, बशर्ते फर्श पर और कुछ हाईट तक वर्किंग दीवार और शेल्फ पर टाइलें फिक्स की जाएं। मैं इस तरह की अंग्रजों के समय की बनी आलीशान व पूरी तरह से कुदरती, मिट्टी पत्थर से बनी, सीलिंग तक लगभग बीस फीट ऊंचाई वाली पर्यावरण मित्र कोठी मतलब बंगले में कई सालों तक सुकून से रहा हूं, देखने में लगभग ऐसी ही जैसी इस पोस्ट की हेडर इमेज में दिखाई गई है। बेशक उसमें टाइलें वगैरह बाद में जोड़ी गई हों। उसकी लकड़ी के फट्टों के ऊपर लोहे की चद्दर की छत थी। बोलते हैं कि वह भी उसी पुराने जमाने की है, नई नहीं डाली है। मिट्टी की दीवारों पर बिजली की फिटिंग भी नायाब थी। ऐसा लगता था कि वे नीचे गिर सकती है, पर हमने उसपे झूलना थोड़े ही है। जिस घर की दीवारें भी सांस लेती हों, उसमें प्राणायाम योग आदि करने का मन तो खुद ही करेगा। मिट्टी भी लचीली होती है, और योग में भी लचीलापन होता है। मिट्टी में धरती की आधारशक्ति होती है। यह मूलाधार चक्र का काम करते हुए आदमी को संतुलित व नियंत्रित व व्यवहारिक बनाए रखती है। भूकंप का खतरा तो हर पल बना ही रहता है। आज फिर से भूकंप के हल्के झटके महसूस हुए। लम्बे अरसे से ये झटके लगातार आ रहे हैं, जो किसी अनहोनी की ओर इशारा भी हो सकते हैं। परमात्मा से करबद्ध प्रार्थना है कि ऐसा न हो, अगर वे चाहें तो बेशक धरती की अतिरिक्त व विनाशकारी ऊर्जा छोटेछोटे झटकों से ही खत्म हो जाए। यह पता नहीं लोग भूकंप को बहुत ज्यादा नजरंदाज क्यों करते हैं। वे ऐसा क्यों मान लेते हैं कि उनके होते हुए भूकंप आ ही नहीं सकता। वे गृहनिर्माण के समय हर चीज का ध्यान रखते हैं पर भूकंप का नहीं। शायद भूकंप की बात करने वाले को सभी मूर्ख और डरपोक समझते हैं। शायद यह ऐसे ही है, जैसे मृत्यु सत्य है, पर उसके बारे में कोई बात नहीं करना चाहता। इसकी एक वजह मुझे यह भी लगती है कि आजकल लोग पहले से ही दुनिया में बहुत दुखी और परेशान जैसे हैं, शायद वे भूकंप को अवचेतन मन में मतलब अनजाने में ही सभी समस्याओं का हल समझ लेते हों, पर व्यवहार में उसे नजरंदाज करने का रूप दे देते हों। घर के गुणों का प्रभाव उसमें रहने वाले आदमी पर जरूर पड़ता है। मुझे जितना पक्का और मजबूत मकान दिखता है, उसमें रहने वाले लोगों का अहंकार भी मुझे उतना ही पक्का और मजबूत दिखता है। मिट्टी लचीली और जमीन से जुड़ी होती है, इसीलिए उसमें रहने वाले लोगों का अहंकार कच्चा और लचीला होता है, और वे जमीन से जुड़े हुए, मनमौजी और साधारण सभ्य इंसान प्रतीत होते हैं मुझे। इसका मतलब है कि आजकल के आदमी के पतन में आधुनिक मकानों

का भी बहुत बड़ा योगदान है। ये वातावरण को बहुत ज्यादा प्रदूषित करते हैं। माना जा रहा है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में सीमेंट मुख्य भूमिका निभाता है। वास्तव में सीमेंट बहुत कच्चा होता है। इसे सरिए आदि के मिश्रण से ही ताकत मिलती है। बड़ी इमारतों व शहरों के लिए या बड़े पुलों, फ्लाईओवरों, पुलों, बांधों और अन्य जल भंडारण संरचनाओं के लिए माना कि सिमेंटिड स्ट्रक्चर जरूरी भी है, पर गांव देहात या विरली अबादी वाले स्थानों के आम घरों के लिए इसकी क्या जरूरत है, क्योंकि वहां ज्यादा मजबूती की जरूरत नहीं। वहां ये भेड़चाल या फैशन सिंबल की तरह अपनाया जा रहा है। इसमें बिजली पानी की भी ज्यादा खपत होती है। स्विट्जरलैंड में जब पहली बार इसका प्रयोग बहुत बड़े डैम बनाने में हुआ, तो इसे राष्ट्रीय गर्व मान लिया गया, और इसे अजर अमर समझ लिया गया। पर बाद मैं पता चला कि कंक्रीट की अधिकतम उम्र सिर्फ सौ साल है। जहां पर जमीन की उपलब्धता में कोई बाधा नहीं है, वहां एकमंजिला मकान काफी होता है। वह सुंदर भी लगता है, और जमीन से भी जुड़ा होता है। मुझे लगता है कि पहाड़ों में एक से ज्यादा मंजिल उंचाई का भवन बनाने से देवता का अपमान होता है, क्योंकि ऊंचे पहाड़ देवता का रूप होते हैं। वैसे भी वहां पर पेड़ पौधे और अन्य प्राकृतिक नजारे ऊंचे अर्थात मुख्यरूप से दिखने चाहिए, भवन आदि मानवनिर्मित कृत्रिम संरचनाएं नहीं। वास्तुशास्त्र का एक सिद्धांत भी खुद ही मेरे अनुभव में आया है, मैंने कहीं पढ़ा नहीं है। खुले व हवादार जैसे स्थान में ऐसा चौराहा जहां आमने सामने के रास्ते लगभग बराबर जैसी रचनाओं को धारण करते हैं, वहां कुंडलिनी क्रियाशील होने लगती है। दरअसल ऐसा चौराहा स्वस्तिक जैसा चिह्न बनाता है।

कुंडलिनी योग सबसे बड़े झूठ का पर्दाफाश करता है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में सीमेंट के पर्यावरणीय दुष्प्रभाव बारे बात हो रही थी। वो तो वो, पर जो इसका इस्तेमाल भी करते हैं, वे भी ढंग से कहां करते हैं। सबसे ज्यादा ढिलाई इसमें पानी की सिंचाई रूपी उस क्योरिंग की रखी जाती है, विशेषकर सरकारी और ठेकेदारी कामों में, जो इसकी मजबूती के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। इससे संसाधन बर्बाद होते हैं, और हादसों से जानमाल के भारी नुकसान का अंदेशा बना रहता है। खैर, हम इन तकनीकी मामलों में न जाकर मूल विषय से भटकना नहीं चाहते। इस पर मेरी एक अन्य पुस्तक है, “बहुतकनीकी जैविक खेती एवम वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ”। इस पोस्ट में हम सबसे बड़े झूठ पर चर्चा करेंगे।

विचारों का शांतिपूर्वक अवलोकन करने का अर्थ है कि हम उनकी सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। यथार्थ सत्ता को। सूक्ष्म सत्ता को। आध्यात्मिक सत्ता को। मानसिक सत्ता को। अस्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। किसी पर आधारित सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। अपूर्ण सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। बुझे मन से उनकी सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। इससे जब विचार गायब होगा, तो हमें अभाव का अंधेरा महसूस नहीं होगा या कम महसूस होगा। साथ में अप्रत्यक्ष रूप से यह भी सिद्ध या विश्वास हो जाएगा कि जिस अभाव को हम अंधेरा समझते हैं, वह प्रकाश है, क्योंकि वहीं से ये विचार पैदा होकर उसी में विलीन होते रहते हैं। इससे आत्मा धीरेधीरे साफ होकर मुक्ति की तरफ़ चली जाएगी। अगर हम उनके वेग में बह जाएं, तो उसका मतलब होगा कि हम उनकी अयथार्थ सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। भौतिक सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। स्थूल सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। शारीरिक सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। स्वतंत्र सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। पूर्ण सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। इससे जब विचार गायब होगा, तो हमें अंधेरा सा महसूस होगा। अगर हम उन्हें नकारने या हटाने की कोशिश करें, तो उसका मतलब होगा कि हम उनकी सत्ता को नकार रहे हैं। इसका भी अप्रत्यक्ष मतलब यह बनेगा कि हम अंधेरे की सत्ता को स्वीकार कर रहे हैं। इससे जीवन अंधेरे की ओर जाएगा ही। मतलब साक्षीभाव सबसे बड़ी अध्यात्मवैज्ञानिक साधना है। यह बौद्धों का सर्वोत्तम मध्यमार्ग है। साक्षीभाव में इसीलिए आत्मा से आंनद प्राप्त होता है। विचारों को भगा कर भी नुकसान और गले लगाकर भी नुकसान। इसलिए अपनी सांसों और अपने शरीर पर ध्यान देते रहो, और विचारों को आतेजाते रहने दो।
बोलने की बात है कि साक्षीभाव ही सबकुछ है, योग आदि कुछ और करने की जरूरत नहीं। यह तो ऐसे कहना हुआ कि फल ही सबकुछ है, पेड़ आदि की कोई जरूरत नहीं। असली साक्षीभाव साधना तो योगसाधना के दौरान ही होती है। उस समय विचार मस्तिष्क में आ रहे होते हैं, और ध्यान और दृष्टि मूलाधार आदि शरीर के निचले हिस्सों या चक्रों पर होते हैं। इससे दो काम एकसाथ होते हैं। एक तो यिन मतलब निचला हिस्सा

और यांग मतलब मस्तिष्क वाला हिस्सा आपस में जुड़ते हैं, और दूसरा यह कि मस्तिष्क के विचार आते हुए भी नजरंदाज से रहते हैं, जिससे उत्तम साक्षीभाव होता है। विचारों का बिनबुलाए मेहमानों की तरह स्वागत किया करो। जैसे हम बिन बुलाए मेहमान का स्वागत करते हुऐ भी उससे तटस्थ से रहते हैं, ऐसे ही विचारों के प्रति भी रहना चाहिए। मेन बात यह है कि आदमी 4के सिग्नल से बने दृष्यों को देखना ही पसंद करते हैं, एसडी के सिग्नल वाले दृष्यों को नहीं। योग के दौरान मस्तिष्क में बनने वाले सिग्नल को 4k वाला समझो, और आम दुनियादारी में एसडी वाला या ज्यादा से ज्यादा एचडी वाला। इसीलिए योग के दौरान सबसे ज्यादा साक्षीभाव अर्थात मूकदर्शक भाव पैदा होता है। आम दुनियावी हालत में तो हम मानसिक दृष्यों के अनुरूप प्रतिक्रिया भी दे सकते हैं, पर योग के दौरान कैसे देंगे, क्योंकि मानसिक दृष्य के इलावा स्थूल रूप में कुछ भी नहीं होता। इसलिए मजबूरन शान्त होकर नजारा देखते रहना पड़ता है। इसीलिए कई लोग दूरदर्शन को भी अच्छा साक्षीभाव साधक कहते हैं, क्योंकि उसके लिए भी हम कोई प्रतिक्रिया नहीं दे सकते। इसीलिए काल्पनिक सी फिल्में सत्य घटनाओं पर आधारित फिल्मों से भी ज्यादा मजा देती हैं। क्योंकि जहां ऐसे दृष्यों के प्रति सत्यत्व बुद्धि जागी, वहां आत्म आनंद में खलल तो पड़ेगा ही।

साक्षीभाव साधना मतलब योगसधना दिन में तीन बार की जा सकती है। दिन में तो लगता है सबसे जरूरी है शायद। उस समय शरीर की ऊर्जा शिखर पर होती है, जिससे दबे विचार खूब उभर सकते हैं, जिन पे अच्छे से साक्षीभाव हो सकता है। अगर जगह आदि की कमी हो तो कम से कम प्राणायाम तो किया ही जा सकता है। अगर बैठने की भी दिक्कत हो तो यह तो कुर्सी पर भी किया जा सकता है। चक्रों पर सांसें रोककर गहरा कुंडलिनी ध्यान लगाने से सिरदर्द भी हो सकता है, इसलिए दिन में प्राणायाम ही काफी है। सुबह और शाम की संध्या के समय जब मस्तिष्क को मूलाधार से अतिरिक्त शक्ति मिलती है, वह समय ध्यान के लिए सर्वोत्तम है। उस समय दुनियावी कामों का बोझ भी कुछ हटा जैसा होता है। शायद इसीलिए पुराने समय में त्रिकाल संध्या का काफी प्रचलन था। हर कोई तो हर समय आत्मजागरूकता में नहीं रह सकता, क्योंकि कइयों का काम विचित्र और जटिल सा होता है। जिनको लंबा अभ्यास है या जिन्हें सत्संग सुलभ है, वे रह भी लेते हैं। कर्मयोगी भी हर समय आत्मजागरूक रहता है, पर कर्मयोग भी आसान नहीं है। इसीलिए आम आदमी के लाभ के लिए दिन में केवल तीन बार साधना का प्रावधान है, बाकि समय यथेच्छ व्यावहारिक काम करते रहो, साधना को रखो मेज पर।

समस्या तब होती है जब आदमी यथार्थ नहीं देखता। सत्य नहीं देखता। देखने में बुराई नहीं है। सच्ची चीज देखने में कोई बुराई नहीं है। बुराई है झूठी चीज देखने में। विचारो को सूक्ष्म रूप में देखना सत्यदर्शन है, पर उन्हें स्थूल और भौतिक रूप में देखना असत्यदर्शन है। विचारों को अपने शरीर या मन के अंदर देखना सत्यदर्शन है, पर उन्हें अपने से बाहर

देखना असत्यदर्शन है। विचारो को अपने रूप में मतलब अद्वैतरूप व आत्मरूप में देखना सत्यदर्शन है, पर उन्हें पराए रूप में मतलब द्वैतरूप व अनात्मरूप में देखना असत्यदर्शन है। ऐसा नहीं कि ये सिर्फ दार्शनिक बातें हैं। यह वैज्ञानिक सत्य है। दरअसल दुनियादारी पूरी तरह झूठ पर टिकी हुई है। सूक्ष्म विचारों को झूठा स्थूल रूप दिया जाता है। आध्यात्मिक (चिदाकाश आत्मरूप) विचारों को झूठा भौतिक (आत्मा के बिल्कुल उल्टा) रूप दिया जाता है। शरीर के अंदर स्थित विचारों को झूठमूठ में शरीर के बाहर समझा जाता है। अगर हम विचारों को उनके सच्चे रूप में मानें तो दुनिया गायब और हर जगह आत्मा ही आत्मा है। बड़ी बात है कि योग करते समय बिना प्रयत्न के यह दृष्टि बनी रहती है, क्योंकि उस समय शरीर और सांस के रूप में प्राण की क्रियाशीलता के अनुसार विचारों की क्रियाशीलता भी तेजी से बदलती रहती है, जिससे इन सबके आपस में जुड़े होने का विश्वास खुद ही, अवचेतन में ही बना रहता है। मन या मस्तिष्क की बजाय शरीर इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि विभिन्न विचार अलग अलग ऊर्जा स्तर को लिए होते हैं, इसलिए शरीर के अलग अलग चक्रों पर फिट बैठते हैं। ज्यादा उर्जा वाले विचार सहस्रार की तरफ होते हैं तो कम ऊर्जा वाले मूलाधार की तरफ़। विचारों की ऊर्जा से छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए, नहीं तो मस्तिष्क पर बोझ बढ़ेगा जिससे सिरदर्द भी हो सकती है। इसीलिए आदमी का असली रूप कोई मन या मस्तिष्क नहीं है, जैसा आमतौर पर समझा जाता है, पर सहस्रार चक्र से लेकर मूलाधार चक्र तक का फ्रंट चैनल दंड और उसपर स्थित चक्रों का समूह है। ऐसा समझ लो कि यह सात गांठों वाला बांस का डंडा है। जरूरी नहीं कि वे विचार चक्रों से ही चिपके हों, वे चक्रों की उंचाई के स्तर पर किसी भी लंबी दूरी तक महसूस हो सकते हैं। शायद सहस्रार के विचार आकाश की तरफ़ की सारी दूरी कवर करते हैं, और मूलाधार के विचार पाताल की ओर की सारी दूरी। जहां भी विचार महसूस होए, वहीं उनका स्वागत करना चाहिए, पर उनके असली सूक्ष्म व आध्यात्मिक रूप में, झूठे स्थूल व भौतिक रूप में नहीं। साथ में योग के दौरान विचारों को उनके सच्चे रूप में देखने से वे एकदम से गायब नहीं होते आम दुनियावी अवस्था की तरह, बल्कि आत्मा को आनन्द प्रदान करते हुए आराम से गायब होते हैं, क्योंकि योग करते समय ऊर्जा का स्तर ऊंचा होता है। साथ में सांसों के स्तंभन आदि विभिन्न तकनीकी प्रयोगों अर्थात प्रणायामों से योग के समय मन की चंचलता भी कम हो जाती है। इससे आत्मा भलीभांति तृप्त होते हुए महसूस होती है। आम अवस्था में वे आत्मा को समुचित आंनद मुहैया कराने से पहले ही गायब हो जाते हैं, क्योंकि ऊर्जा का स्तर नीचा होता है, जिससे आत्मा प्यासी सी ही बनी रहती है। अगर हम विचारों को उनके झूठे रूप में मानें तो आत्मा गायब और हर जगह दुनिया ही दुनिया है। सीधी सी बात है कि योग से विचार इतना ज्यादा स्पष्ट बनते हैं, जितने आम भौतिक दुनियादारी की हालत में भी नहीं बनते। इससे उनका सच्चा सूक्ष्म स्वरूप अपनेआप सामने आ जाता है। मतलब कुंडलिनी योग ही सबसे बड़े झूठ का सबसे बड़ा पर्दाफाश करता है। वैसे भी आत्मा को उजागर होने के लिए इसी पर्दाफाश से बल मिलता है। अगर झूठ नहीं होगा, तो पर्दाफाश भी नहीं होगा।

इसका मतलब यह है कि झूठ और उसका पर्दाफाश साथसाथ चलता रहना चाहिए। मतलब कि भौतकवाद और अध्यात्मवाद संतुलित रूप में साथसाथ चलते रहने चाहिए। संतुलित का मतलब यह है कि इतनी भौतिकता भी नहीं होनी चाहिए कि आदमी की जान पर ही बन आए या जीवनदायिनी धरती ही नष्ट होने लगे। पशु में झूठ भी कम होता है, इसलिए उसके पर्दाफाश की संभावना भी कम होती है, जिससे उसका आत्मविकास भी बहुत कम या धीमा होता है। इसी सबसे बड़े झूठ को अध्यात्म की भाषा में अज्ञान कहते हैं, और इसके पर्दाफाश को ज्ञान। जो अध्यात्म के साथ दुनियादारी जोड़ते हुए पैसे ऐंठने की कोशिश करे तो उनसे सावधान, क्योंकि जिस समय वे पैसे वाले दुनियावी मोड में होते हैं, उस समय आध्यात्मिक मोड नहीं रहता। योगी व लेखक श्री ओम स्वामी का कहना ठीक है कि योगी आर्थिक रूप से स्वावलंबी तो होना ही चाहिए, साथ में उद्योगपति भी होना चाहिए जो समाज को भी आर्थिक सहारा दे सके। वह भी क्या योगी जो अपने लिए भी मांगता फिरे।

मुझे तो लगता है कि शुरुआती कुछ साधना ही समूह आदि में ज्यादा अच्छी तरह से कर सकते हैं, संभवतः ज्यादातर मामलों में बाद की उच्च अवस्था की साधना तो एकांत में ही फलीभूत होती है, भीड़ में नहीं। वैसे भी भीड़ में करने योग्य साधना कर्मयोग ही होता है, नाक पकड़कर योग करना नहीं। चलो, कोई बात नहीं, जमाने के साथ बहते चलो। इसमें कोई जबरदस्ती नहीं। जिसको अच्छा व अपने लिए उपयुक्त लगे, वह करे। यह प्रचार उनके लिए है जो इसके हकदार हैं, पर संकोच आदि विभिन्न वजहों से इसकी आदत न डाल पा रहे हों। किसी फिल्म के प्रचार का यह मतलब नहीं होता कि उसे सब देख लें, पर यह कि जिज्ञासु और जरूरतमंद आदमी तक उसकी पहुंच बन पाए। वेलेंटाइन डे का ये मतलब नहीं कि इस दिन सभी लोग जोड़ा बनाकर आपस में प्यार करने लग जाएं, पर यह कि जिसको इसकी जरूरत और गुंजाईश लगती है, पर संकोच आदि से न कर पा रहा हो, उसे करने का मौका मिले। सभी को विश्व योग दिवस सप्ताह की हार्दिक शुभकामनाएं।

कुंडलिनी योग के अभ्यास से हमारा ब्रह्मांड भी एकदिन मुक्त हो जाएगा

दोस्तों पिछली पोस्ट में बात हो रही थी कि कैसे आदमी को मुक्ति के लिए प्रकृति की चाल के उलट चलना पड़ता है। प्रकृति ने झूठ का सहारा लेकर ही जीवविकास किया, जो आज आदमी के लगभग उच्चतम विकास तक पहुंच गया है। पर अब इस कुदरत के झूठे प्रवाह पर रोक लगाने की जरूरत है, प्रकृति के झूठ यानि मोहमाया को उजागर करने की जरूरत है, सच का सहारा लेने की जरूरत है। ऐसा सब मिलजुल कर करे तो ज्यादा अच्छा होगा, क्योंकि मुक्ति की जरूरत सबको है। ऐसा साक्षीभाव या विपश्यना से ही संभव है, जो योग के दौरान ही सबसे ज्यादा प्रभावपूर्ण है। इस पोस्ट में हम ब्लैकहोल की मदद से आदमी की मुक्ति को समझाएंगे। आदमी के बारे में यह कोई नहीं बोलता कि जितने आदमी है, उतने अंतरिक्ष या ब्रह्मांड क्यों हैं, सिर्फ भौतिक अंतरिक्षों की ही खोज होती रहती है। हरेक आदमी एक अनंत अंतरिक्ष है, जिसमें अपने अलग ही किस्म का ब्रह्मांड है। कहीं सभी अनेकों जीव, एक ही अनंत आकाश में अनेक गड्ढे या ब्लैकहोल तो नहीं हैं। एक ब्लैकहोल से एक नया अनंत अंतरिक्ष बन जाता है। मूल अंतरिक्ष वैसा ही रहता है। उसमें कोई कमी नहीं आती। विज्ञान कहता है कि एक ब्लैकहोल से अंतरिक्ष अनंत रूप में मुड़ जाता है, मतलब अंतरिक्ष का वह गड्ढा कभी खत्म नहीं होता। इसीलिए उसमें गया हुआ प्रकाश कभी मुड़कर वापिस नहीं आता। वह आगे से आगे ही उस नई दिशा में जाता रहता है। मूल अंतरिक्ष में कोई कमी नहीं आती, क्योंकि वह अनंत विस्तृत त्रिआयामी चादर की तरह है। जीवात्मा के बारे में भी शास्त्रों में ऐसा ही कहा गया है कि वह अनंत व पूर्ण है, वह जिस परमात्मा से निकलती है, वह भी अनंत और पूर्ण है, फिर भी उसके निकलने से मूल अनंत अंतरिक्ष में कोई कमी नहीं आती। यह एक मंत्र है,"ॐ पूर्णमद: पूर्णमिदम….." , जो एक पुरानी पोस्ट में भी लिखा था। लोग कहते हैं कि इतनी जीवात्माएं कहां से आती हैं, कहां जाती हैं आदि। यह ऐसा ही प्रश्न है कि इतने ब्लैकहोल कहां से आते हैं और कहां जाते हैं। दोनों ही असीम और एकजैसे हैं। जब एकबार कोई जीवात्मा परमात्मा से निकल कर अपना सफर शुरु करती है, तो वह अपने अंदर सूचना इकट्ठी करती जाती है। पर चिदाकाश में शुरुआती गड्ढा करने वाली वैसी सूचना कहां से आती है, जैसे तारे का द्रव्यमान ब्लैकहोल का गड्ढा बनाता है। यह आगे बताएंगे। विज्ञान भी कहता है कि सूचना कभी नष्ट नहीं होती, वह कभी प्रकट और कभी अप्रकट हो जाया करती है। इस तरह जीवात्मा सूचनाओं के जाल में फंस कर रह जाती है, और बारबार जन्मती और मरती रहती है। अंत में कभी वह योग आदि से अपनी मनरूपी सूचनाओं को परमात्मा में मिला देती है, और वह मुक्त हो जाती है। वे सूचनाएं नष्ट नहीं होतीं, पर परमात्मा से एकाकार हो जाती हैं। नष्ट होते रहने से तो वे फिर से उसी रूप में पैदा होती रहती हैं। मतलब साफ़ है कि मरने के बाद आदमी फिर से जन्म लेता है। पर

जो योगी मरता ही नहीं, क्योंकि वह शरीर नष्ट होने से पहले ही योग से अपने मन को परमात्मा में मिला लेता है, वह फिर से जन्म नहीं लेता। सबका मूल अंतरिक्ष जो सबकुछ खत्म होने पर भी बचा रहता है, वही परमात्मा है।

तारे के साथ भी ऐसा ही घटित होता है। उसके नष्ट होने से उसकी सूचना अर्थात उसका मैटीरियल नष्ट नहीं होता, अपितु ब्लैकहोल के रूप में सूक्ष्मरूप में एनकोड हो जाता है। ग्रेविटी से जो और सूचनाएं भी उसके अंदर समाती रहती हैं, वे भी एनकोड होती रहती हैं। ब्लैकहोल के अंदर किसी दूसरे तारे या ब्रह्मांड के जन्म के रूप में वे सूचनाएं फिर से प्रकट हो जाती हैं। कभी वे फिर नष्ट होती हैं, और फिर पुनः प्रकट हो जाती हैं। यह सिलसिला चलता रहता है। कभी ऐसा जरूर होता होगा, जब वे सूचनाएं परमात्मा अर्थात मूल या पितृ अनंत आकाश में विलीन हो जाती हों, नष्ट न होकर। उसे ही शायद तारे की मुक्ति कहा जाए। अभी वैज्ञानिकों को शायद ऐसा कुछ नहीं मिला है, क्योंकि वे अभी तक यही मानकर चले हैं कि सूचना कभी खत्म या नष्ट नहीं होती। वे भी ठीक हैं क्योंकि नष्ट तो अंत में भी नहीं हुई, मूल अंतरिक्ष से एकाकार ही हुई। पर शायद यह पता नहीं चला है कि वह सूचना फिर मूल अंतरिक्ष से कभी वापिस नहीं आएगी, अन्य नई सूचनाएं बेशक आती रहें। पर मनोवैज्ञानिक सिद्धांत तो कहता है कि सूचनाएं कभी पूरी तरह से नष्ट भी हो सकती हैं। बिना पृथक चिह्न या एनकोडिंग के रूप में, अर्थात पृथक अस्तित्व के बिना, परमसूक्ष्म मूलरूप में रहना सूचना का नष्ट होना नहीं है, बल्कि यह भी सूचना का पृथक रूप से अप्रकट होना ही है, जहां से वह पहले सूक्ष्म और फिर स्थूलरूप में प्रकट हो जाती है। इसका मतलब है कि कभी इस ब्रह्मांड की सभी सूचनाएं, लौकिक भाषा में कहें तो नष्ट हो जाएंगी। फिर एक बिल्कुल नया ब्रह्मांड बनेगा, जिसमें सभी सूचनाएं नई होंगी। अब पता नहीं कि किस रूप में होंगी। मतलब कि ब्रह्मांड अनगिनत किस्म व रूपाकार के हो सकते हैं। यानी अनगिनत संसारों के रूप में अनगिनत द्रव्यमान और ऊर्जा उस अंतरिक्ष से निकल सकती है, जिसका कोई मूल नहीं है, क्योंकि अंतरिक्ष स्वयं द्रव्यमान और ऊर्जा का अनंत रूप है, अनंत से अनंत निकल रहा है, इस तरह से भी सब कुछ संरक्षित ही है, सब कुछ हमेशा अनंत ही है। मतलब ब्रह्मांड भी कभी कुंडलिनी योग करेगा, और मुक्त हो जाएगा। फिर नए ब्रह्मांड की वह जाने। मतलब कभी ऐसा समय आएगा कि ब्रह्मांड ब्लैकहोल के रूप में एनकोड न होकर महाकाश में पूरी तरह समा जाएगा, मतलब ब्रह्मांड या ब्रह्मा की मुक्ति। शास्त्रों में भी कहा गया है कि ब्रह्मा की भी एक निश्चित आयुसीमा होती है, जिसके बाद वह मुक्त हो जाता है, मरता नहीं है। पर मैंने शास्त्रों में यह नहीं पढ़ा कि ब्रह्मा भी आम आदमी की तरह बारबार जन्मता और मरता है, ब्रह्माण्ड की तरह। आत्मविकास की सीढ़ियां चढ़ते हुए चींटी भी ब्रह्मा बन सकती है। शायद ब्रह्मा के जन्ममरण को इसलिए नहीं दिखाया गया है क्योंकि वह ब्रह्मांड से ऐसे बद्ध नहीं है, जैसे आम जीव अपने शरीर से होता है। ब्रह्मा तो हमेशा मुक्त ही है। शायद ब्रह्मांड की मुक्ति को ही ब्रह्मा की सांकेतिक मुक्ति कह दिया गया हो।

यह भी हो सकता है कि ब्रह्मा ब्रह्मांड के साथ बहुत कच्चे बंधन से जुड़ा होता हो। जब ब्रह्मांड एनकोड हो जाता है, तो वह ब्रह्मा मुक्त हो जाता है, और एनकोडिड ब्रह्मांड के साथ नया स्तरोन्नत ब्रह्मा जुड़ जाता है, अगली बार के लिए। वैसे भी ब्लैकहोल के अंदर जो ब्रह्मांड बनता है, वह मूल ब्रह्मांड से छोटा ही होगा। वैसे ऐसा नहीं भी हो सकता, क्यों, यह आगे बताएंगे। इसका मतलब कि उसके तारे भी आगे से आगे छोटे होते जाएंगे। ब्लैकहोल की एक ऐसी पीढ़ी आएगी, जिसके अंदर के ब्रह्मांड के तारे इतने छोटे हो जाएंगे कि वे ब्लैकहोल नहीं बना पाएंगे। फिर तो ब्रह्मांड एनकोड न होकर मूल आकाश में विलीन हो जाएगा, मतलब मुक्त हो जायेगा। एक प्रकार से ऐसा समझ सकते हैं कि ब्रह्मांड लगातार कुंडलिनी योग के अभ्यास से अपने अंदर से सूचनाओं का कचरा हटाता गया। एक स्तर पर उसका कचरा इतना कम हो गया कि वह उससे दुबारा जन्म नहीं ले सका, बल्कि सीधा मुक्त हो गया। मतलब कि जैसे आदमी योगसाधना से मुक्त होता है, उसी तरह ब्रह्मांड भी। वैसे भी जो तारे एक निश्चित द्रव्यमान से कम द्रव्यमान के होते हैं, वे ब्लैकहोल नहीं बना सकते और आकाश में विलीन हो जाते हैं मतलब मुक्त हो जाते हैं। शास्त्रों के अनुसार राजा खटवांग ने ढाई घड़ी मतलब एक घंटे के अंदर मुक्ति प्राप्त कर ली थी, जब उन्हें पता चला था कि वे एक घंटे में मृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे। एक घंटे में तो कोई मन का सारा कचरा खत्म नहीं कर सकता। हां इतना कम जरूर किया जा सकता है, जिससे बंधन और पुनर्जन्म न होए। राजा खटवांग को एक बड़े द्रव्यमान का तारा मान लो। उन्होंने किसी अन्य पिंड आदि से अपने को टकराकर अपना द्रव्यमान उस सीमा के नीचे कर दिया, जितना ब्लैकहोल बनाने के लिए जरुरी है। उस टकराव को आप कोई भी ऊर्जासंपन तीव्र योगसाधना समझ सकते हो। इसीलिए योग करते रहना चाहिए, चाहे जागृति मिले या न। भगवान श्रीकृष्ण ने भी योग को ही सर्वाधिक महत्त्व दिया है और अर्जुन को कहा है कि हे अर्जुन, तू योगी बन। क्योंकि मनोवैज्ञानिक सिद्धांत कहता है कि जब आदमी के मन का सूचना का कचरा अर्थात अहंकार एक निश्चित सीमा के नीचे पहुंच जाएगा, तो वह जरूर मुक्त हो जाएगा, जैसा कि एक तारे के साथ भी होता हुआ हमने बताया। अगर मुक्ति के लिए सिर्फ जागृति ही जरूरी होती, तब तो दुनिया में उथलपुथल मच गई होती। इतने कम लोगों की मुक्ति से इतनी सारी जीवात्माओं का जीवनप्रवाह रुक सा गया होता।

कुंडलिनीयोगानुसार ओम ॐ ही वह सिंगुलेरटी है जिसमें ब्लैकहोल समा जाता है

ब्लैकहोल में जो भी पदार्थ रूपी सूचना जाती है, वह नष्ट या अज्ञात रूप में रहती है। उसी तरह आदमी का अवचेतन मन भी उसकी सभी विचाररूपी सूचना को अनादिकाल से लेकर अपने अंदर नष्ट रूप में संजोकर रखता है। जब उन विचारों को साक्षीभाव

साधना आदि से प्रकट या अभिव्यक्त रूप में वापिस लाया जाता है, तब वे धीरे धीरे ढीले होकर परमात्मा में विलीन होने लगते हैं। जब सभी विचार विलीन हो जाते हैं, तो जीवात्मा या सूक्ष्मश्रीर मुक्त हो जाता है। संभवतः ब्लैकहोल से भी इसी तरह बारबार स्थूल सृष्टि बनते रहने से वे सूचनाएं ढीली होती रहती हैं और अंत में महाकाश रूपी परमात्मा से एकाकार हो जाती हैं और पुनः कभी वापिस नहीं आतीं। मतलब ब्लैकहोल मुक्त हो जाता है। यहां एक पेच है। बारबार स्थूल सृष्टि बनने से ब्लैकहोल मुक्त नहीं होता, जैसे आदमी बारबार जन्म लेने से खुद मुक्त नहीं हो जाता। जब ब्लैकहोल से सूचनाएं सूक्ष्मरूप में लगातार बाहर निकलती रहती हैं, उन्हीं के रूप में वह महाकाश में विलीन होता है, सीधा नहीं। संभवतः वे सूक्ष्म सूचनाएं ही हॉकिंस रेडिएशन हैं, जिनके रूप में कभी पूरा ब्लैकहोल विलीन हो जाएगा। बेशक इसमें बहुत ज्यादा समय लगता है। जीव की मुक्ति में भी कम समय कहां लगता है। ब्लैकहोल से हॉकिंस रेडिएशन भी निकलती रहती हैं, और वह साथसाथ में नई सृष्टि भी बनाता रहता है, बेशक नई सृष्टियों का आकार धीरे धीरे घटता जाता है। इसी तरह आदमी की साक्षीभाव साधना भी कम या ज्यादा रूप में चलती रहती है, और साथसाथ में उसके नए नए जन्म भी होते रहते हैं, बेशक आगे आगे के जन्म में मन के विचारों का शोर कम होता जाता है, अहंकार घटता जाता है।

विज्ञान कहता है कि ब्लैकहोल के अंदर जितना पदार्थ घुसता जाएगा, उसका गुरुत्व बल उतना ही बढ़ता जाएगा, और उसके बाहर की एकरीशन डिस्क उतनी ही मोटी होती जाएगी। पहले मैंने सोचा कि ऐसा कैसे हो सकता है कि जब नया अनंत आकाश बन गया, तब तो उसमें घुसे हुए पदार्थ अनंत आकाश में फैल जाने चाहिए, और उनका प्रभाव एकरीशन डिस्क पर नहीं पड़ना चाहिए। साथ में, जब एकबार मूल अनंत आकाश में अनंत गड्ढा बन गया, तब अंदर और पदार्थ घुसने से वह गड्ढा और ज्यादा कैसे बढ़ सकता है, क्योंकि अनंत से बड़ा तो कुछ भी नहीं है। और ग्रेविटी बढ़ने का मतलब ही अंतरिक्ष में गड्ढे की गहराई बढ़ने से है वास्तव में। पर मुझे इसका हल जीवात्मा से इसकी तुलना करने पर मिला। जब पहली बार जीवात्मा रूपी व्यष्टि-अनन्ताकाश बनता है, तो वह नए बने ब्लैकहोल की तरह होता है। पहली बात, जीवात्मा कैसे बनता है। जब किसी सबसे छोटे जीव में मन का पहला विचार बनता है, तो चिदाकाश अर्थात परमाकाश परमात्मा उसे अपने अंदर महसूस करता है। उस विचार की तरफ़ आसक्त होकर वह तुरंत अपने परमाकाश या महाकाश रूप को भूल जाता है। रहता वह महाकाश ही है, पर भ्रम से अपने परम सत्ता, ज्ञान (सत्य ज्ञान) और आनंद को काफी हद तक भूल जाता है। यह महाकाश के अंदर जीवाकाश की उत्पत्ति हो गई। हालांकि महाकाश परमात्मा बिना परिवर्तन का, वैसा ही, अपने मूलरूप में रहता है। मतलब यह परमात्मा के अंदर जीवात्मा की उत्पत्ति हो गई। अब ब्लैकहोल पर आते हैं। मूलाकाश के अंदर किसी बड़े तारे का ईंधन खत्म हो गया। तो उसके अंदर की तरफ़ के गुरुत्व बल का मुकाबला करने के लिए बाहर की तरफ़ का गर्म गैसों का बल नहीं रहता। इससे वह अपने भीतर ही भीतर

लगातार सिकुड़ कर सबसे छोटे संभावित रूप तक पहुंच जाता है। मुझे तो लगता है कि वह रूप मन का सबसे सूक्ष्म विचार ही है। क्योंकि उसके सामने तो प्रोटोन, इलेक्ट्रॉन आदि मूलकण भी स्थूल ही है। सबसे छोटा विचार ॐ की मानसिक आवाज है। इसका प्रमाण यह है कि इसके साथ आत्मा को अपने पूर्ण रूप का सबसे कम भ्रम पैदा होता है। यहां तक कि भ्रम खत्म भी होने लगता है। इसीलिए ब्रह्मज्ञानी व पूर्ण योगियों के मुंह से ॐ का उच्चारण अनायास ही होता रहता है। दूसरे विचार तो जितना बढ़ते रहते हैं, भ्रम भी उतना ही बढ़ता रहता है। तो सबसे छोटी चीज ओम ध्वनि हुई। जीवात्मा की उत्पत्ति भी संभवतः ॐ से ही होती है, क्योंकि यत्पिंडे तत् ब्रह्मांडे। स्थूल वस्तु आकाश में छेद नहीं कर सकती। अगर ऐसा होता तो हरेक पत्थर एक अलग जीव या जीवात्मा होता, हरेक मूलकण जिंदा होता, और अपना अलग से अनंत आकाश वाला पृथक अस्तित्व महसूस करता। पर ऐसा नहीं होता। केवल मन का विचार ही आकाश में छेद कर सकता है। इसीलिए जितने शरीर अर्थात मस्तिष्क या मन हैं, उतने ही अनंताकाश रूपी जीव हैं। इसीलिए नया ब्रह्मांड बनाने के लिए मन की जरूरत पड़ती है, क्योंकि वह तभी बनेगा जब आकाश में छेद होगा। ॐ वही सूक्ष्मतम मन है। इसीलिए कहते हैं कि ईश्वर या ब्रह्मा के संकल्प या विचार से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई। तारे से बने ओम से उसके दायरे का मूलाकाश अपना मूलरूप भूलकर नया ही पूर्ण आकाश बन जाता है। हालांकि मूलाकाश वैसा ही रहता है। इसीको विज्ञान की भाषा में कहा गया है कि तारे से बनी सिंगुलरिटी से अंतरिक्ष में अनंत गहराई का गड्ढा बन जाता है। शायद ॐ को ही विज्ञान में सिंगुलरिटी कहा गया है, क्योंकि पता ही नहीं कि वह क्या है। बस यह अंदाजा लगाया है कि वह सबसे छोटी चीज है। सम्भवतः हमने सिद्ध कर दिया कि वह सबसे छोटी चीज ॐ ही है। फिर कहते हैं कि उसी सिंगुलरीटी में विस्फोट से सृष्टि का निर्माण फैलने लगता है। शास्त्रों में भी यही कहा है कि ॐ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। इस सबसे यह अर्थ भी निकलता है कि एक छोटे से विचार में भी सैंकड़ों सूर्यों के बराबर द्रव्यमान समाया हुआ है, इसी वजह से तो वह मूल आकाश की त्रिआयामी चादर में इतना बड़ा गड्ढा कर देता है कि एक नया ही आकाश बन जाता है, मतलब एक नया स्वतंत्र जीव रूपी नया स्वतंत्र ब्रह्माण्ड अस्तित्व में आ जाता है। पर यह आश्चर्य की बात है कि ब्रह्माण्ड की रचना कर सकने वाला जीव कैसे दयनीय, और परतंत्र सा बना रहता है। तो अगर कल को वार्प ड्राइव बनी, तो वह ऐसी ही कोई ॐ मशीन होगी, जो आकाश को जितना चाहे मोड़कर अन्तरिक्ष की सैर करवाएगी। हो सकता है कि एलियंस ऐसी ही मशीन की सहायता से धरती पर आते हों। तथाकथित यूएफओ क्रैश के बाद एलियन से साक्षात्कार के मामले से जुड़े लोग दावा करते हैं कि एलियंस के पास आध्यात्मिक तकनीकें होती हैं, और वे योगी की तरह अपने असली रूप को अच्छे से पहचानते हैं। उनके लिए धरती की मानव सभ्यता एक बंदरों की सभ्यता की तरह है। फिर

उत्पत्ति के बाद जीवात्मा अपना दायरा बढ़ाता है। वह आंख, कान आदि विभिन्न इंद्रियों से सूचनाएं ग्रहण करता रहता है, और बढ़ता रहता है। यह ऐसे ही है जैसे ब्लैकहोल

बाहर के पदार्थ निगलता रहता है, और अपना द्रव्यमान बढ़ाता रहता है। जीवात्मा जितना महान होता है, उसके प्रभाव का दायरा भी उतना ही बड़ा होता है। जहां कीड़ों मकोड़ों का दायरा कुछ इंच या फीट तक होता है, वहीं महापुरुषों के मन के अंदर इतनी ज्यादा सूचनाएं होती हैं कि उनके प्रभाव का दायरा पूरे राष्ट्र या विश्व तक फैला होता है। पूरी दुनिया से लोग उनकी तरफ़ खिंचे चले आते हैं। उनके प्रभाव के दायरे की तुलना ब्लैकहोल की इकरीशन डिस्क से की जा सकती है।
ओम से सृष्टि बनती रहती है और उसमें समाती भी रहती है। कभी केवल एक तारे की जगह पूरी सृष्टि का द्रव्यमान सिकुड़कर ॐ के अंदर समा जाएगा। इसे परम ब्लैकहोल का बनना कहेंगे। उसे निगलने के लिए कुछ मिलेगा ही नहीं। इससे वह जल्दी ही भूखा मर जाएगा, मतलब फ़िर वह ॐ भी परमाकाश परमात्मा में समा जाएगा। इसे प्रलय कहते हैं। लंबे समय तक प्रलय बनी रहेगी। फिर सृष्टि के आरंभ में सारी पुरानी सृष्टि का द्रव्यमान समेटे हुए ॐ पुनः प्रकट हो जाएगा। उसमें बिग बैंग या महाविस्फोट होगा और सृष्टि की रचना पुनः प्रारंभ हो जाएगी। यह प्रक्रिया बारंबार दोहराई जाती रहती है। अब कई लोग कहेंगे कि ब्लैकहोल ने तो ब्रह्मांड की तुलना में नगण्य सा ही पदार्थ निगला होता है, उससे इतना बड़ा नया ब्रह्मांड कैसे बन सकता है। पर भई अनन्त आकाश तो बन ही गया होता है। उसमें नए पदार्थ खुद भी तो बन सकते हैं। पुराने ब्रह्मांड से निगले हुए पदार्थ तो सिर्फ एक शुरुआत करते हैं। यह ऐसे ही है जैसे एक बच्चा अपने पिछले जन्म की सूचनाएं बहुत सूक्ष्म रूप में लाया होता है, जो कि पिछले पूरे जन्म की तुलना में नगण्य जितनी दिखती है। फिर वह बाहर से भी कुछ सूचनाएं इकट्ठा करता है, वह भी नगण्य जैसी ही होती हैं। अधिकांश सूचनाएं तो वह खुद अपने अंदर तैयार करता है अपनी रचनात्मकता से, अपने कर्मों से। इसी तरह सबसे पहले बनने वाले सूक्ष्म जीव में सिर्फ सूक्ष्मतम ओम विचार होता है, पर विकास करते करते वह ब्रह्मा भी बन जाता है, जिसमें पूरा ब्रह्माण्ड समाया होता है। इससे तो यह मतलब भी निकलता है कि ब्लैकहोल चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो, वह बड़ा से बड़ा ब्रह्मांड बना सकता है, क्योंकि वह अनंत आकाश के रूप में अनंत आकार का बर्तन बना लेता है। और जहां बर्तन है, वहां बारिश का पानी भी इकट्ठा हो ही जाता है।

कुंडलिनीयोग का संकल्पपुरुष ब्लैकहोल के अन्दर ब्रह्मांड की उत्पत्ति की पुष्टि करता है

अनंताकाश का गड्ढा भी तो वही अनंताकाश हुआ न। उसे दूसरा अनंताकाश कैसे कह सकते हैं। चादर में बना गड्ढा भी उसी चादर से बना है, उसे दूसरी चादर थोड़ी न कहेंगे। सीमित चादर तो सीमित गड्ढा ही बना सकती है। असीमित आकाश में असीमित गड्ढा क्यों नहीं बन सकता। जब छोटे, बड़े द्रव्यमान वाले पिंड आकाश में छोटे, बड़े गड्ढे बना सकते हैं, तो अनंत द्रव्यमान का पिंड अनंत आकाश में अनंत आकार वाला गड्ढा भी बना सकता है। क्योंकि तारे के सिकुड़ने से बनी सिंगुलरिटी का आकार अनंत छोटा है, इसलिए उसका द्रव्यमान भी अनंत ज्यादा है। इसीलिए उससे अंतरिक्ष में अनंत आकार का गड्ढा मतलब ब्लैकहोल बनता है। ब्लैकहोल इसीलिए तो गड्ढा है। मतलब बेशक मूल आकाश में ही है, पर खाली है, अर्थात उसकी सृष्टि से अछूता है। ॐ के आकार को अनंत छोटा कैसे मानेंगे। माना कि अनंत बड़ा आकार तो शून्य आकाश है। पर अनंत छोटा आकार भी तो शून्य आकाश ही है। दोनों के अभासिक अनुभव में अंतर हो सकता है, जैसे पहले वाला परम प्रकाश परमात्मा है, तो बाद वाला परम अंधकार जीवात्मा। मतलब एक मृत तारे से नए आकाश का निर्माण हो गया। इसीलिए तो ब्लैकहोल का आकाश खत्म नहीं होता, क्योंकि उसमें तारे के निरंतर सिकुड़ने से नया अनंत आकाश जो बन गया। पर एक से ज्यादा आकाश का होना असम्भव है, इसीलिए वह अलग अनंत आकाश नहीं बल्कि उसमें अनंत आकार का गड्ढा है। ओम शायद आकाश का नाम और रूप है। क्योंकि ध्वनि एक तरंग है, जो आकाश में हर जगह फैलती है प्रकाश तरंग की तरह। यह अलग बात है कि उसे हर जगह डिटेक्ट नहीं किया जा सकता। वैसे भी शब्द या आवाज को आकाश का गुण कहा गया है। फिर सिर्फ ओम ध्वनि को ही आकाश का रूप क्यों दिया गया है। शायद इसलिए क्योंकि यह सबसे साधारण और आधारभूत है। ओम शब्द तीन अक्षरों अ, उ और म से बना है, जिनका मतलब क्रमशः सृजन, पालन और विनाश है। आकाश भी यही करता है। यह पहले अपने अंदर दुनिया को बनाता है, कुछ समय तक उसको कायम रखता है, और फिर अपने में ही विलीन कर लेता है। मतलब ओम अनंत आकाश का ही नाम है। सटीकता से बोलें तो शायद अनंत गड्ढे का, क्योंकि यही सबसे मूलभूत विचार से बनता है। पर आकाश में गड्ढा, यह बात इतनी सरल नहीं है। कुछ तो रहस्य छिपा है इसमें। फिर तो अगर परमात्मा अनंत आकाश है, तो जीवात्मा उसमें अनंत श्याम गड्ढा। शून्य आकाश में गड्ढा भी कोई विशेष होगा, साधारण नहीं। हम तो आकाश में गढ्ढा नहीं बना सकते। हां एक तरीका है, भ्रम से गड्ढे जैसा दिखा दिया जाए। फिर तो अनंत आकाश भी रहेगा, और उसमें अनंत गढ्ढा भी, दोनों एकसाथ। जीवात्मा तो परमात्मा में ऐसा ही भ्रमपूर्ण है, असली नहीं, जैसा कि शास्त्रों में लिखा है। पर अगर भौतिक आकाश में भी ऐसा भ्रमपूर्ण गढ्ढा बनता है, तब तो सभी पदार्थ और यहां तक कि प्रकाश भी भ्रमित

होकर उसमें गिर जाते हैं। जीवात्मा रूपी गड्ढे में भी तो बाहर की दुनिया गिरती रहती है, बेशक सूक्ष्म रूप में। विभिन्न इंद्रियां बाहर से विभिन्न सूचनाएं इकट्ठा करके जीवात्मा का प्रभाव बढ़ाती रहती हैं। बेशक ब्लैकहोल जीवात्मा की तरह भ्रम को महसूस नहीं करते। अंधेरे कुएं की तरफ हरकोई गिरता है, बेशक गिरने वाला महसूस करे या न। अब ये पता नहीं, उस गड्ढे को क्या चीज़ रेखांकित करती है। हो सकता है, आकाश की आभासी अर्थात वर्चुअल तरंग हो। जैसे चादर धागे की बनी है, इसी तरह आकाश भी आभासी धागों या तरंगों से भरा हुआ है। चादर के गड्ढे की खाली जगह में हवा भर जाती है, जो धागे जितनी घनी नहीं है, इसलिए चादर पर रखी गेंद उसके गड्ढे की तरफ़ लुढ़कती है। इसी तरह भारी पिंड के वजन से आकाश के आभासी तानेबाने में गड्ढा बन जाता है। उस गड्ढे की खाली जगह में बाहर के अटूट आकाश की तुलना में कम घना आभासी तानाबाना बुना होता है। इसीलिए आसपास के अन्य छोटे पिंड उस गड्ढे की तरफ़ लुढ़कते हैं, पर हमें ऐसा लगता है कि बड़ा पिंड छोटे पिंड को गुरुत्व बल से अपनी तरफ खींच रहा है। यह ऐसे ही है जैसे हवा उच्च दाब वाले क्षेत्र से निम्न दाब वाले क्षेत्र की तरफ़ बहती है। शून्य आकाश वही एकमात्र है, पर आभासी तरंगों के कारण उसमें आभासी गड्ढा बन जाता है। इसका मतलब है कि अंतरिक्ष में हर समय बनने वाली आभासी तरंगें व कण वस्तुओं पर दबाव डालते हैं। केसीमिर इफेक्ट के प्रयोग में यह सिद्ध भी किया गया है। संभवतः यह दबाव भी पिंडों को आकाश में बने गड्ढों की तरफ़ धकेलने में मदद करता है, जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं।

आदमी दरअसल विशेष किस्म का आकाश है। उसका शरीर तो केवल उस आभासी आकाश का निर्माण करने वाली मशीन है, ब्लैकहोल की तरह। आकाश में सदैव आभासी तरंगे बनती, मिटती रहती हैं, पर उन्हें कोई भी, परमात्मा भी अनुभव नहीं करता, ऐसे ही जैसे समुद्र अपनी तरंगों को महसूस नहीं करता। यह समुद्र और उसकी तरंग का उदाहरण शास्त्रों में अनेक स्थानों पर मिलता है। मस्तिष्क भी उसमें वैसी ही आभासी तरंगें बनाता है, पर उसे जीवात्मा अनुभव करता है, और भ्रम में पड़कर अपने पूर्ण परमात्माकाश रूप को भूलकर जीवात्माकाश बन जाता है। इसे ब्लैकहोल की तरह आकाश में अनंत गड्ढा मान लो।

ऐसा लगता है कि फिर ब्लैकहोल के आकाश में ब्रह्मांड नहीं बनेगा। क्योंकि वह आभासी तरंगों का जाल तो बाहरी मूल आकाश में है जिससे पदार्थ बनते हैं, वह ब्लैकहोल में नहीं है या कम है। पर ब्लैकहोल के आकाश में तारे का द्रव्यमान भी एनकोडिड है, शायद डार्क एनर्जी या डार्क मैटर के रूप में। वह नया ब्रह्माण्ड बनाता हो। या ब्लैकहोल के आकाश में दूसरे व हल्के किस्म की आभासी तरंगें पैदा हो जाती हों जो पदार्थ व ब्रह्माण्ड बनाती हों। फिर उसमें भी कभी ब्लैकहोल बनेगा। जो फिर से नया ब्रह्माण्ड बनाएगा। यह सिलसिला पता नहीं कहां रुकेगा। कुंडलिनी योग से तो सिलसिला जल्दी ही रुक जाता है। योगवासिष्ठ में संकल्पपुरुष शब्द कई जगह लिखा आता है। शायद यह आदमी के लिए कहा गया है कि वह ब्रह्मा के मन के संकल्प या स्वप्न का आदमी है, असली नहीं। इसी

तरह आदमी जब किसी देवता, गुरु आदि का ध्यान करता है, तो वह उसका संकल्पपुरुष बन जाता है। पर क्या वह संकल्पपुरुष अपना पृथक अस्तित्व महसूस करता है हमारी तरह, यह विचारणीय है। कई सभ्यताओं में मान्यता है कि जबतक किसी पूर्वज को उसके वंशजों द्वारा याद किया जाता है और श्राद्ध आदि धार्मिक समारोहों के माध्यम से पूजा जाता है, वह तब तक स्वर्ग में निवास करता है। इस पर कोको नाम की बेहतरीन एनिमेशन फिल्म भी बनी है। इसका मतलब है कि हम ध्यान से नया अस्तित्व तो नहीं बना सकते, पर यदि पूर्वनिर्मित अस्तित्व का ध्यान करते हैं, तो उसे उससे पोषण प्राप्त होता है। फिर तो यह भी हो सकता है कि एक उच्च कोटि का योगी ब्रह्मा की तरह अपने मन से नए मनुष्य की रचना कर दे। शास्त्रों में ऐसी बहुत सी कथाएं आती हैं। एक ऋषि ने तो अपने विवाहोत्तर विहार के लिए मनोवांछित दुनियावी साजोसामान और प्राकृतिक नजारे अपनी योगशक्ति से पैदा कर दिए थे। यह तो ऐसे ही है जैसे ब्लैकहोल में बिल्कुल अपने पितृ ब्रह्मांड के जैसा एक अन्य ब्रह्मांड का निर्माण होता है। अगर शास्त्रों का संकल्पपुरुष संभव है, तब तो ब्लैकहोल के अंदर ब्रह्मांड की उत्पत्ति भी संभव है। ब्लैकहोल इसीलिए तो गड्ढा है, क्योंकि वह मूल आकाश की आभासी तरंगों से रहित मतलब खाली है। मतलब बेशक मूल आकाश में ही है, पर खाली है, अर्थात उसकी सृष्टि से अछूता है।हालाँकि, मूल आकाश की आभासी तरंगें अभी भी अपने मूल स्थान पर हैं, लेकिन इसके ऊपर एक नया आकाश भी बन गया है, पर वह मूल आकाश की आभासी तरंगों के प्रभाव से रहित है। यह कैसे हो सकता है। सीधे शब्दों में कहें तो यह केवल एक और एक ही आकाश है, लेकिन इसके अनगिनत रूप एक ही समय में आभासी तरंगों की विविधता के रूप में मौजूद हैं। अद्भुत मामला है। मैं पिछली एक पोस्ट में भी बता रहा था कि एक ही अनन्त आकाश में एक ही स्थान पर अनगिनत ब्रह्माण्ड हो सकते हैं। संभवतः उन सभी की आभासी तरंगें एकदूसरे से अप्रभावित रहती हों। आत्मा के मामले में भी ऐसा ही होता है। एक ही अनंत अंतरिक्ष में असंख्य आत्माएं अर्थात अलग-अलग जीवों के अपनेअपने अनंत अंतरिक्ष हैं, जो विचारों के रूप में एक-दूसरे की आभासी और सूक्ष्म सृष्टिरचनाओं अर्थात ब्रह्मांडों को नोटिस नहीं कर पाते अर्थात उन्हें प्रभावित नहीं कर पाते। जीवों के मामले में तो सभी जीवों की आभासी तरंगें एकसमान स्वभाव की हैं, फिर भी वे एकदूसरे की पहुंच से परे हैं, शायद स्थूल ब्रह्मांडों के मामले में भी ऐसा ही हो, मतलब वर्चुअल तरंगें एकसमान किस्म की हैं, पर एक ही स्थान पर एक ब्रह्मांड अन्य सभी ब्रह्मांडों से पूरी तरह अप्रभावित और कटा हुआ है। दिवंगत जीवात्मा में सबकुछ सूक्ष्म मतलब अनभिव्यक्त रूप में रहता है, इसलिए उसमें अंधेरा है। ब्लैकहोल में भी इसीलिए अंधेरा है। संभवतः यह अंधकारमय अनुभूति ही श्याम ऊर्जा अर्थात डार्क एनर्जी है, कोई भौतिक वस्तु नहीं। इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है कि यही तथाकथित सबसे छोटी भौतिक इकाई अर्थात सिंगुलैरिटी अर्थात ओम है। डार्क मैटर कहना ज्यादा बेहतर होगा, क्योंकि इसका द्रव्यमान है, जिसमें गुरुत्व बल है। मुझे तो लगता है कि दोनों एक ही चीज़ है, कभी यह एनर्जी के रूप में व्यवहार करती है, तो कभी मैटर के रूप में, ऐसे

ही जैसे आदमी के मन का अंधेरा कभी शांत, हल्का और आनंदप्रद सा प्रतीत होता है, तो कभी घना, भारी और दुखप्रद सा। पहले किस्म के अंधेरे से आदमी योग आदि की तरफ़ मुड़कर दुनिया से दूर भागने की कोशिश करता है, पर दूसरे किस्म के अंधेरे से दुनियादारी को अपनी तरफ आकृष्ट करता है। योग की यह विशेष खासियत है कि यह डार्क मैटर को हल्का करके डार्क एनर्जी में परिवर्तित करने की कोशिश करता है। यह ऐसे ही है, जेसे डार्क एनर्जी में धकेलने का गुण होता है, पर डार्क मैटर में आकर्षित करने का। इसका वर्णन हमें शास्त्रों में मिलता है जब कोई एक ऋषि से पूछता है कि प्रलय के बाद सृष्टि कैसी होती है, तो ऋषि कहते हैं कि इतना घनीभूत अंधेरा होता है कि अगर कोई चाहे तो उसे मुट्ठी में भर ले। यह डार्क मैटर की बात हो रही है, क्योंकि पदार्थ ही मुट्ठी में भरा जा सकता है, खाली आसमान नहीं। मुझे तो लगता है कि बेशक यह साधारण पदार्थ नहीं होता पर उसके जैसा सॉलिड महसूस होता है, वैसे ही जैसे क्वांटम कण दरअसल पदार्थ नहीं तरंगरूप होते हैं, पर पदार्थ के जैसा व्यवहार भी करते हैं।

कुंडलिनीयोग डार्क मैटर को डार्क एनर्जी में बदलता है

दोस्तो, पिछली पोस्ट में बात हो रही थी कि डार्क एनर्जी मुक्त होने के लिए बाहर भागती है, और डार्क मैटर बंधन में पड़ने के लिए अंदर को सिमटता है। इसलिए योग करना चाहिए ताकि डार्क एनर्जी का अंश मन में ज्यादा बना रहे, और आदमी की मुक्ति की संभावना ज्यादा बनी रहे, अंधेरे को पूरी तरह से तो खत्म नहीं किया जा सकता। साथ में कुल मिलाकर यह निष्कर्ष भी निकलता है कि ब्रह्मांड के अनगिनत ब्लैकहोल धरती के अनगिनत जीवों की तरह हैं। जैसे हरेक जीव के अंदर एक भरापूरा सूक्ष्म ब्रह्मांड है, उसी तरह हरेक ब्लैकहोल के अंदर एक भरापूरा स्थूल ब्रह्मांड है। इस तरह एक ही अनंत आकाश में अनगिनत ब्रह्मांड हैं। जैसे विभिन्न जीवों के मस्तिष्क के भीतर अलग अलग आकार व प्रकार के सूक्ष्म ब्रह्मांड हैं, इसी तरह अलग अलग ब्लैकहोलों के अंदर अलग अलग आकार व प्रकार के स्थूल अर्थात भौतिक ब्रह्मांड हैं। ब्लैकहोल अपने अंधेरे से ऊब कर बाहर के चमकीले पिंडों को खाने लगता है, ताकि उसके अंदर की चमक बढ़ सके। पर क्षणिक चमक के बाद वह पिंड उसके अंधेरे में प्रविष्ट होकर उस अंधेरे को बढ़ाते ही हैं। कभी लंबे समय तक ब्लैकहोल को कुछ खाने को न मिले, तो वह सूक्ष्मरूप हॉकिंस रेडिएशनस को धीरे धीरे छोड़ते हुए मूल आकाश में विलीन होकर मुक्त भी हो जाता है।

जीव या आदमी भी तो इसी तरह का व्यवहार करता है। वह अपने मन के अंधेरे को कम करने के लिए विभिन्न इंद्रियों के माध्यम से बाहर की दुनिया को ग्रहण करता है। आंखों से दृष्य रूप में, कानों से श्रव्य रूप में, जीभ से स्वाद रूप में, व जननेन्द्रिय से संभोग रूप में दुनिया को ग्रहण करता है। थोड़ी देर तो उसे आनंद के साथ प्रकाश महसूस होता है, पर वह दुनिया भी उसके अंतर्मन के घनघोर अंधेरे में विलीन होकर उसे बढ़ाने का ही काम करती है। शास्त्रों में भी तो यही बारबार कहा गया है कि आदमी जितना भी प्रयास भौतिक सुख प्राप्त करने के लिए करता है, वह उतना ही दुखी होता जाता है। फिर कभी वह दुनियादारी की मोहमाया से बचकर योगाभ्यास करता है। इससे उसके मन का कचरा बाहर निकलता रहता है, जिससे वह कभी काफी साफ होकर मुक्त भी हो ही जाता है।

हो सकता है कि हमारा ब्रह्मांड किसी दूसरे बहुत बड़े ब्रह्मांड के अंदर बहुत बड़े ब्लैकहोल के अंदर बना हो। हमारे ब्रह्मांड में भी जितने ब्लैकहोल हैं, उनमें भी उनके अपने आकार और निगले गए पदार्थों के अनुरूप अलग अलग आकार प्रकार के ब्रह्मांड हैं ही। उनके अंदर भी जो ब्लैकहोल हैं, उनमें भी अलग ब्रह्मांड हैं। इस तरह यह परंपरा बहुत सूक्ष्म आकार के ब्लैकहोल और सूक्ष्म ब्रह्मांड तक जा सकती है, या हो सकता है कि यह परंपरा कहीं खत्म ही न होती हो। पर ब्लैकहोल बनने के लिए तारे का निश्चित द्रव्यमान होना चाहिए। हो सकता है कि दूसरे ब्रह्मांड में वह सीमा और हो या छोटी हो। हमारे ब्रह्मांड

की सीमा ब्लैकहोल की बाउंड्री है, इसके बाहर हम नहीं देख सकते क्योंकि उसके बाहर से जो प्रकाश की किरण आती है वह फ्रीली नहीं आती बल्कि ब्लैकहोल की ग्रेविटी के आकर्षण से आती है, इसलिए वह ऐसी अदृश्य तरंग के रूप मे हो सकती है जिसे अभी तक देखा न गया हो। या वह तरंग के रूप में न होकर इंडिविजुअल व वर्चुअल फोटोन कणों के रूप में हो। सबसे बड़ी वजह तो दूरी की लगती है। ब्रह्मांड की सीमा बहुत दूर है। वहां से हम तक आतेआते प्रकाश किरण इतनी क्षीण हो जाती होगी कि पकड़ में ही न आए। इसके विपरीत, ऐसा लगता है कि हम न तो ब्लैकहोल से बाहर जा सकते हैं और न ही इसके बाहर से कुछ प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि यह पहले से ही अनंत आकाश है और अनंत का कभी अंत नहीं होता है। इससे ऐसा भी लगता है कि ब्रह्मांड में पदार्थों की मात्रा सीमित व निर्धारित है। वही बारंबार चक्रवत प्रकट व अप्रकट होती रहती है। ऐसा भी हो सकता है कि जब ब्लैकहोल में ब्रह्मांड बनने लग जाए, तब वह अपनी ग्रेविटी छोड़ देता हो या कम कर देता हो, क्योंकि तब उसमें बिगबैंग से ब्रह्मांड बाहर की तरफ़ फैल रहा होता है। ग्रेविटी वैसी ही रहे, तब भी उसका प्रभाव नहीं दिखेगा, क्योंकि बिगबैंग का धक्का भी बाहर की तरफ लग रहा होगा। यह शायद तब होगा जब ब्लैक होल का डार्क मैटर डार्क एनर्जी में रूपांतरित हो जाएगा। यही डार्क एनर्जी बिगबैंग के बाद सभी पदार्थों और पिंडों को एकदूसरे से दूर धकेलती रहती है, जिससे ब्रह्मांड गुब्बारे की तरफ फूलता रहता है। आदमी में भी तो ऐसा ही घटित होता है। जब वह दुनियादारी से थक जाता है, तो सारी दुनिया को अपने मन के अंधेरे में समेट लेता है। कुछ समय के लिए वैसा ही रहता है। फिर किसी कारणवश योग की तरफ मुड़ता है। योग से उसके मन का अंधेरा कम हो जाता है, या हल्का पड़ जाता है। उसे मन में खाली खाली सा महसूस होता है। उससे प्रेरित होकर वह फिर से अपने मन की दुनिया को बढ़ाने में लग जाता है। ब्लैकहोल से शायद हॉकिंस रेडिएशन बाहर निकलने से या अन्य किसी निकासी से उसका डार्क मैटर हल्का होकर डार्क एनर्जी में बदल जाता है। फिर उसके अंदर बिगबैंग और ब्रह्मांड का विस्तार शुरु हो जाता है।

आदमी ब्लैकहोल से बहुत ज्यादा समानता रखता है। जो आदमी जितनी ज्यादा सूचनाओं से भरा होता है, उससे उसके मरने के बाद उतना ही बड़ा ब्लैकहोल बनता है। उससे फिर वे सूचनाएं प्रकट हो जाती हैं उसके पुनर्जन्म के रूप में। मुझे लगता है कि मरने के बाद उसके पुराने जीवन को समेट कर रखने वाला डार्क मैटर कुछ समय वैसा ही रहता है। फिर समय की चाल से वह डार्क एनर्जी में तब्दील हो जाता है। वह उसकी मानसिक दुनिया को बढ़ाना चाहती है, पर उसके लिए पहले किसी जीव के शरीर में जन्म लेना जरूरी होता है। इसे नए सूक्ष्म ब्रह्मांड का निर्माण कह सकते हैं। आगे जाकर वह किसी अन्य मनुष्य जीवन का निर्माण भी करता है, किसीको रोजगार देकर, या किसीको शिक्षा देकर। कोई अपने पुत्र के रूप में नए मनुष्य का निमार्ण करता है। मतलब वह आगे भी ब्लैकहोल बनाता है, कोई आदमी कम संख्या में बनाता है, तो कोई ज्यादा। वह पुत्र

ब्लैकहोल सूचना के मामले में उससे छोटा ही कहा जाएगा। एक प्रकार से एक सूक्ष्म ब्रह्मांड अपने अंदर के ब्लैकहोल से पुत्र या अन्य आश्रित के रूप में एक नया ब्लैकहोल पैदा करता है। वह भी फिर उस परंपरा को आगे बढ़ाता है। मन में जो सूचनाएं दबी पड़ी हैं, वही ब्लैकहोल है। मतलब अवचेतन मन ही ब्लैकहोल है। वह कभी नहीं रजता। वह ब्लैकहोल की तरह सभी सूचनाओं को खाता रहता है। उसमें आदमी के अनगिनत जन्मों से लेकर अनगिनत सूचनाएं दबी होती हैं। और कहें तो ब्लैकहोल भी बिल्कुल स्थिर नहीं हैं, बल्कि अन्य आकाशीय पिंडों की तरह अंतरिक्ष में चलायमान प्रतीत होते हैं। मतलब उनके चलने से उनके अंदर समाया अनंत अंतरिक्ष भी चलता रहता है। पर इसमें कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि जब जीव चलते हैं, उस समय भी तो उनके अंदर समाया हुआ अनंत अंतरिक्ष चल रहा होता है।

कुंडलिनीयोग शक्ति से वैज्ञानिक विचार प्रयोग में मदद मिलती है

अंतरिक्ष फैल रहा है, गेलेक्सियां नहीं भाग रहीं। बिगबैंग से पहले भी अंतरिक्ष ही था। फिर ब्लैकहोल के अंदर का अंतरिक्ष फैलने लगा अनंत अंतरिक्ष के ही अंदर, भ्रम से। आदमी जैसे जैसे अपना नोलेज बढ़ाता है उसे लगता है वह अंतरिक्ष की तरह फेल रहा। आम हालत में उसे अपना अंतरिक्ष स्वरूप सिकुड़ा हुआ सा लगता है। दरअसल अंतरिक्ष नहीं फैल रहा बल्कि ब्लैकहोल के अंदर कैद डार्क एनर्जी फैल रही है। ब्लैकहोल के अंदर अनंत अंतरिक्ष तो बन गया पर डार्क एनर्जी उस पूरे अंतरिक्ष में नहीं फैली है। क्योंकि डार्क एनर्जी का कोई भौतिक रूप नहीं है, इसलिए ऐसा लगता है कि अंतरिक्ष फैल रहा है, मतलब पितृ अंतरिक्ष के अंदर ब्लैकहोल का अंतरिक्ष फैल रहा है। बेशक पूरा तारा सिंगुलरिटी तक सिकुड़ा था, और वह सिंगुलरिटी डार्क मैटर है, जो अंतरिक्ष जितना सूक्ष्म है, मतलब आकार में अनंत छोटा है, फिर भी वह कहीं लोकलाइज्ड है, और पूरे अनंत अंतरिक्ष में नहीं फैला है। यह भी भ्रम जैसा ही है। हम आदमी भी बेशक अनंत अंतरिक्ष हैं, पर हमें ऐसा लगता नहीं। हमें अपना स्वरूप एक लोकलाइज्ड अर्थात शरीर या मस्तिष्क तक सीमित अंधेरे की तरह लगता है। लगता है कि ब्लैहोल को भी आदमी की तरह भ्रम हो जाता है। इसीलिए अंधेरा बनता है। है वही परम उर्जा परमात्मा पर उसका प्रकाश गायब महसूस होता है। वह डार्क मैटर है। इससे उसी परम प्रकाश परमात्मा में तरंग को बनने और बढ़ने की प्रेरणा मिलती है, आदमी की अंधेरी आत्मा में मनतरंग की तरह। दुनियादारी को बढ़ाती हुई डार्क एनर्जी सृष्टि को मुक्ति के लिए ही फैलाती है, क्योंकि उसे पता है कि मुक्ति की ओर रास्ता दुनिया में से होकर ही गुजरता है। अगर ब्लैकहोल बाहर के पिंड को बहुत ज्यादा ताकत से न खींचे तो वह उसके सर्फेस पे ही रहेगा और शायद अक्सर विकिरण ज्वाला के रुप में बाहर निकल जायेगा। ऐसे ही आदमी भी अगर बहुत आसक्ति से दुनिया को न भोगे तो वह उसके मन में गहरी नहीं बैठती, और योग आदि से आसानी से खत्म हो जाती है। उसके साथ अंदर दबी हुई और दुनिया भी बाहर निकल जाती है, जिससे डार्क मैटर पतला होकर डार्क एनर्जी में बदलता रहता है।

प्रकृति गणित को फॉलो करते हुऐ संतुलन बनाने की कोशिश करती है। यह ऐसे ही है कि प्रकाश की गति हर हालत में एकसमान रखने के लिए प्रकृति को समय की चाल बदलनी पड़ती है। सापेक्षता का सिद्धांत यही कहता है। अब जब ब्लैकहोल का द्रव्यमान अनंत ज्यादा हो गया और वह अनंत सूक्ष्म हो गया, तो आसमान में अनंत आकार का गड्ढा भी बनाना ही पड़ेगा गणित के फार्मूले के अनुसार। ऐसा शायद संभव नहीं है, इसलिए वह झुठमुठ में ही या भ्रम से बनाया जाता है। भ्रम यही कि ब्लैकहोल के कारण मूल अर्थात पितृ अनंत आकाश का प्रकाश गायब कर दिया जाता है। यही डार्क मैटर है। दरअसल यह

परमाकाश परमात्मा ही है, पर उसका प्रकाश भ्रम से गायब है, असल में नहीं। इसीलिए यह कोई भौतिक वस्तु न होते हुए भी इसका द्रव्यमान सा होता है। द्रव्यमान इसलिए है क्योंकि इसमें सृष्टि के पदार्थ पहले की तरह विद्यमान हैं, और अंधेरा इसलिए क्योंकि उनसे कोई संपर्क नहीं रहता। इस द्रव्यमान से आकाश में गड्ढा बनता ही है, उसे नहीं टाल सकते। इसीलिए डार्क मैटर ग्रेविटी शो करता है। ग्रेविटी अंतरिक्ष का गुण है, पदार्थ का नहीं, इसलिए उसके संपर्क को नहीं टाला जा सकता। इससे वैचारिक रूप से आइंस्टीन का यह सिद्धांत भी सिद्ध हो जाता है कि अंतरिक्ष का गुण होने के कारण ग्रेविटी अंतरिक्ष के मुड़ने से पैदा होती है। पदार्थ के गुणों का दो किस्म का समूह है। एक समूह पदार्थ के अपने गुणों का है। दूसरा समूह उस अंतरिक्ष के गुणों का है, जिसमें वह पदार्थ स्थित है। पहली केटेगरी में बहुत से गुण हैं जैसे प्रकाश आदि विकिरणों का उत्सर्जन, प्रकाश का परावर्तन व अवशोषण आदि अनेकों। दूसरी केटेगरी में केवल एक ही गुण है, वह है ग्रैविटी। डार्क मैटर में सभी पदार्थ वाले गुणों का गायब रहना और सिर्फ ग्रैविटी गुण का रहना यह अंदेशा जताता है कि ग्रैविटी पदार्थ का नहीं बल्कि अन्तरिक्ष का गुण है। क्योंकि इसमें अंधेरा है, इसलिए अंधे कुएं की तरह इसे मान सकते हैं। हर चीज़ कुएं के अंदर को गिरती है। अंदर गया हुआ प्रकाश बेशक मूल आकाश में ही रहता है, पर अंधेरे के कारण नजर नहीं आता। मतलब वह प्रकाश फिर मूल आकाश की किसी चीज़ से प्रतिक्रिया नहीं करता। इसलिए कई वैज्ञनिक अंदेशा जता रहे हैं कि अंदर गया हुआ प्रकाश इसके दूसरे छोर से निकलकर किसी दूसरे ब्रह्मांड में चला जाता होगा। बात यह भी ठीक है, क्योंकि ब्लैकहोल के अन्दर दूसरा ब्रह्मांड ही है, जो हमारे ब्रह्मांड से बिल्कुल अलग और अछूता है। अनंत आकाश तो दोनों का एक ही है। खेत का कुआं उसी की जमीन पर होता हुआ भी उससे अछूता रहता है। उसके अंदर अपनी अलग ही दुनिया तैयार हो जाती है। इसको ऐसा समझ लो कि गणित के अनुसार अंतरिक्ष में अनंत गड्ढा बनना चाहिए, मतलब एक नया अनंत अंतरिक्ष बनना चाहिए, पर ऐसा संभव नहीं है। जहां पर प्रकृति गणित के फार्मूले पर असल में न चल सके, वहां वह उस पर आभासी रूप में चलती है। इसलिए वह गड्ढा असली न होकर आभासी होता है। क्योंकि गड्ढा किसी चीज़ से भरी जमीन पर बने उस खाली स्थान को कहते हैं, जहां पर उस जमीन की कोई चीज विद्यमान नहीं है, इसलिए आकाश का गड्ढा वह स्थान हुआ, जहां आकाश की कोई चीज नहीं है। इसलिए अनंत आकाश में उसी की चीजों को आभासी रूप में गायब करने से उसमें अनंत गड्ढा बन गया। असल में तो गायब नहीं कर सकते, पर उसका प्रभाव, प्रतिक्रिया आदि गायब कर दी जाती है शायद। यह वैसा भ्रम ही हुआ, जैसा अज्ञान में पड़े आदमी को होता है। मतलब वह खुद प्रकाश और ऊर्जा से भरा परमात्मा ही होता है, पर भ्रम से उसे ऐसा महसूस न होकर बिल्कुल उल्टा महसूस होता है, मतलब परम प्रकाश की जगह परम अंधेरा। इसे यूं कहो कि आभासी रूप में उसका अपना नया अंतरिक्ष बन गया, असल में नहीं। इस तरह से तो अनगिनत अनंत अंतरिक्षों का और उनमें अनंत सृष्टिओं का अस्तित्व सिद्ध होता है। जीवन में आशावादी और सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने के लिए ऐसा

समझना जरूरी है। अब यह कैसे होता है, इसकी गहराई से जांच पड़ताल तो अंतरिक्ष वैज्ञानिक ही कर सकते हैं। एक संदेह की बात जरूर है कि अगर एक ही स्थान पर प्याज के छिलकों की तरह भीतर ही भीतर असीमित संख्या में ब्रह्मांड होते, तो डार्क मैटर अनंत ग्रैविटी प्रदर्शित करता। पर ऐसा नहीं होता। उसकी ग्रैविटी की भी एक सीमा है। इससे जाहिर होता है कि एक ही स्थान पर ओवरलेपिंग ब्रह्मांडों की संख्या सीमित ही है। यह भी हो सकता है कि असीमित ब्रह्मांड हो, पर उनसे उत्पन्न ग्रैविटी किसी अज्ञात कारणवश सीमित ही रह जाती हो। इसलिए हतोत्साहित होने की जरूरत नहीं है। जीवन अनंत है। ऐसा भी हो सकता है कि डार्क मैटर ऐसी तरंगों का बना हो, जैसी तरंगें हमारे मस्तिष्क में मन के रूप में होती हैं। जैसे मनरूपी आभासी तरंगें ग्रैविटी जैसा गुण दिखाती हैं, वैसे ही वे डार्क मैटर में दिखाती हों, मतलब बिना किसी पदार्थ या द्रव्यमान के ग्रेवीटी। शायद इसीलिए कहते हैं कि इस सृष्टि को परमात्मा अपनी इच्छानुसार चला रहे हैं। डार्क मैटर मतलब परमात्मा का मन। संभावनाएं कई हैं। हम तो कुंडलिनीयोग शक्ति की मदद से विचार प्रयोग ही कर सकते हैं। डार्क मैटर में खुद ही ब्रह्मांड बनना शुरु हो जाता है, क्योंकि उसमें मूल आकाश की सारी ऊर्जा तो होती ही है, पर उस पर पर्दा सा पड़ा होता है। मजबूरन उससे चिंगारियों की तरह मूल तरंगें और मूलकण बाहर को कूदते रहते हैं, जो आगे से आगे ब्रह्मांड बनाने का सिलसिला जारी रखते हैं। यह भ्रमरूप अंधेरा मूल परमात्माकाश से सृष्टि बनाने के लिए उत्तेजक का काम करता है। इसीको भारतीय दर्शन में प्रकृति या महामाया या शक्ति कहा गया है। जो इसके आधार में सत्य और मूल आकाश है, उसे पुरुष या परमात्मा या शिव कहा गया है। इसलिए बहुत से लोग यह संभावना ठीक ही जता रहे हैं कि ब्लैकहोल ब्रह्मांड के निर्माण की फैक्ट्री है। जैसे भ्रम आदमी को अपने आत्माकाश में महसूस होता है, वैसा ब्लैकहोल को तो नहीं होता होगा। बेशक न हो, पर भ्रम लायक भौतिक परिस्थिति तो बनाई ही जाती है, जो एक तारे के अनंत सूक्ष्मता तक सिकुड़ने के रूप में है। इस तरह ब्लैकहोल से ब्रह्मांड और ब्रह्मांड से ब्लैकहोल आगे से आगे बनता ही रहता है। पर पहले क्या बना। यह ऐसा ही प्रश्न है कि पहले मुर्गी बनी या अंडा। पहले ब्लैकहोल बना या ब्रह्मांड। पहले अंधेरा बना या प्रकाश। पहले मूल प्रकृति बनी या दृश्य जगत । पहले व्यष्टि प्रकृति बनी या जीव। इस बारे शास्त्र कहते हैं कि दोनों ही अनादि हैं, और क्रमवार एकदूसरे को बनाते रहते हैं।

कुंडलिनी योग ब्लैक होल से काली ऊर्जा अर्थात डार्क एनर्जी को बाहर निकालकर उसे मुक्त कराता है

वर्चुअल पार्टिकल भी हर समय आकाश में बनते ही रहते हैं, और उसीमें विलीन भी होते रहते हैं। मतलब वे भी तो शून्य आकाश जैसी सिंगुलरिटी बनाते हैं फिर उनसे ब्लैकहोल क्यों नहीं बनता। तारे का सिकुड़ते हुए शून्य आकाश बन जाना ही ब्लैकहोल क्यों बनाता है। बात शायद द्रव्यमान की भी है। अनंत द्रव्यमान भी बनना चाहिए। मन का विचार अनंत द्रव्यमान कैसे है। शायद इसलिए कि वह अनंत की कल्पना कर सकता है। पहले तो यह जानना होगा कि विचार का भौतिक स्वरूप क्या है। शायद तारा सिकुड़ते हुए वही भौतिक रूप बनता हो। मान लो पहाड़ का विचार आया या पहाड़ को देखते हुए उसका चित्र मन में बनाया। उस विचारचित्र में स्थूल पहाड़ का पूरा द्रव्यमान दबाया हुआ समझ सकते हो आप। मतलब अगर पूरी सृष्टि का चित्र बने, तो उसमें भी पूरी सृष्टि का वजन समाया होगा। इसीलिए मन का विचार इतना बड़ा गड्ढा बनाता है आकाश में कि नया अनंत जीवाकाश ही बन जाता है। पर विचार का द्रव्यमान अनंत कैसे हो सकता है। यह तभी संभव है, अगर विचार बनाने वाली भौतिक तरंग शून्य स्थान घेरे, ब्लैकहोल की सिंगुलरिटी की तरह। ऐसा तो है ही। विचार न तरंगरूप है और न कणरूप। मतलब विचाररूपी आभासी हलचल का अपना पृथक अस्तित्व नहीं है। बाहर की वस्तु जैसा आभासी चित्र बनाने वाली कोई शून्य की हलचल है, अपना अस्तित्व नहीं है इसका। यह शायद हलचल भी नहीं है, क्योंकि हलचल भी कुछ समय के लिए रहती है, पर विचार तो एक सेकंड से भी कम समय में गायब हो सकता है। इसीलिए विचार शून्य स्थान घेरता है। वैसे भी जब खुद है ही नहीं, बल्कि बाहर की परछाई है, तो शून्यरूप ही हुई। फिर तो अगर छोटे से पत्थर का चित्र भी मन में बना, उसका भी अनंत द्रव्यमान होगा। फिर तो बोल सकते हैं कि अगर ऐसा है तब तो पानी में बना पेड़ का छायाचित्र भी अनंत द्रव्यमान लिए होगा और एक स्वतंत्र अनंत जीवाकाश बनाएगा। पर ऐसा तो नहीं होता। शायद मस्तिष्क में बने छायाचित्र में ही यह विशेष खासियत है, जो और कहीं नहीं है। या यूं कह सकते हैं कि मस्तिष्क में बना विचार ही शून्यरूप है। यह गौर करने का विषय है कि हम अपने ही उन विचारों से कैसे घबराए रहते हैं जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। हम इसलिए हमेशा तनाव में रहते हैं क्योंकि विचारों को हम स्थूल व भौतिक मान के चले होते हैं। यह तो वैज्ञानिक शोध का विषय भी है कि विचार की प्रकृति क्या है। पर विचारप्रयोग से हमने मोटे तौर पर बता दिया है। अगर ब्लैकहोल से अनुमान लगाएं, तो शायद उसमें भी विशाल तारे की परछाई मात्र ही बची रहती है, वह भी मस्तिष्क में बने चित्र की तरह, और कुछ नहीं। परछाई चिदाकाश मतलब मूलाकाश मतलब परमात्मा पर बनती है, जीव के मन की परछाई की तरह आत्मा में नहीं। तारे का पूरा द्रव्यमान उस परछाई में समाया होता है। और वह परछाई पूरे अनंत आकाश में छाई होती है, जैसे

आदमी की आत्मा या अचेतन मन में बने चित्र को हम चिह्नित नहीं कर सकते कि वह कहां है। वह पूरे आत्माकाश में छाया होता है। इसीको नए आकाश का निर्माण होना कहते हैं। हरेक ब्लैकहोल बने तारे का पृथक अस्तित्व एक ही आकाश के अंदर पृथक परछाई के रूप में रहता है। यह ऐसे ही है जेसे हरेक जीवात्मा का पृथक अस्तित्व एक ही परमात्मा के अन्दर एक पृथक परछाई के रूप में होता है। शायद इसी परछाई या छवि को डार्क एनर्जी कहते हैं। जो तारे ब्लैकहोल नहीं बनाते, वे सुपर डार्क एनर्जी में विलीन हो जाते हैं। यह सुपर डार्क एनर्जी एकप्रकार का जनरल पूल है मूल अनंत आकाश में फैला हुआ, जिससे अंतरिक्षीय पिंड बनते रहते हैं, और उसमें ही विलीन होते रहते हैं। शायद वर्चुअल पार्टिकल भी इससे ही अंदर बाहर कूदते रहते हैं। इसीको मैंने एक पिछली पोस्ट में कहा था कि कम वजन वाले तारे ब्लैकहोल रूपी जन्ममरण के चक्कर में न पड़कर मुक्त हो जाते हैं। यह सुपर डार्क एनर्जी भारतीय दर्शन की मूल प्रकृति की तरह है। दोनों में हूबहू समानता है। दोनों ही शाश्वत हैं। दोनों से ही सृजन होता है। दोनों एक ही चीज़ है, सिर्फ विषयानुसार कहने भर का फर्क है। मूल प्रकृति से जीवात्मा या जीव का उद्गम होता है, तो सुपर डार्क एनर्जी से ब्रह्मांड का। जो भी भौतिक पदार्थ बनता है, वह सीधा मूल अनंत आकाश से नहीं बनता, पर उसमें व्याप्त सुपर डार्क एनर्जी से बनता है। इसी तरह कोई भी जीव सीधा परमात्मा से नहीं आता, पर मूल प्रकृति से आता है। पर दोनों में से किसी में भी सबका लय हो सकता है, हालांकि पूरी तरह सुपर डार्क एनर्जी में नहीं, पर इसके अन्दर एनकोडिड व्यक्तिगत डार्क एनर्जी के रूप में। अब कोई कहे कि अगर जीवात्मा या तारा मूल प्रकृति में गया, तो वह मुक्त होकर परमात्मा से कब मिला। मतलब साफ है कि मूल प्रकृति और परमात्मा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसीलिए कह रहे हैं कि मूल प्रकृति से कोई आ ही सकता है, इसके अंदर जा नहीं सकता। परमात्मा अनंत चेतन आकाश है तो मूल प्रकृति उसकी छाया। दरअसल वह छाया अनुभवरूप नहीं है, फिर भी उसका आभासी या काल्पनिक या सैद्धांतिक अस्तित्व तो है। वह होकर भी नहीं है। मतलब कि मूल प्रकृति में गया तो परमात्मा में ही गया, क्योंकि अनुभव तो वह अपने परमात्मरूप को ही करेगा। जीवात्मा के आने के लिए तो वह ठीक है, कि जीवात्मा ने उस परमात्मा की परछाई से कभी जन्ममरण वाली जीवन यात्रा शुरु की थी, क्योंकि परमात्मा कभी भी जीवनयात्रा या जन्ममरण के बंधन में बंध ही नहीं सकता। पर यात्रा का अंत परमात्मा में जाकर ही होता है, उसकी परछाईं में नहीं। वैज्ञानिक भी शंका जाहिर कर रहे हैं कि शायद ब्लैकहोल ने ही डार्क एनर्जी बनाई हो। यह ऐसा ही है जैसे कई भारतीय दर्शन इसपर वादविवाद करते हुऐ कहते थे कि मूल प्रकृति का अपना अस्तित्व नहीं, उसे जीव ने अपनी आत्मा के अज्ञान के अंधेरे से बनाया है। पर शास्त्रों का निष्कर्ष मानें तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि डार्क एनर्जी या मूल प्रकृति अनादि कही गई है। हां उल्टा जरूर हुआ है कि उससे अंतरिक्षीय पिंड बने हैं, जिनसे ब्लैकहोल बने हैं। बेशक वे उसमें बारबार विलीन होते रहते हैं, और उससे जन्म लेते रहते हैं, जीवात्मा की तरह। पर मुझे तो दोनों ही बातें सही लगती हैं शास्त्रों के

अनुसार। मतलब सुपर डार्क एनर्जी और ब्लैकहोल एकदूसरे को बनाते रहते हैं। संभवतः ब्लैकहोल से जो हॉकिंस रेडिएशन निकलती रहती है, वह सुपर डार्क एनर्जी में एड अप होती रहती है। जरूरी नहीं कि हॉकिंग रेडिएशन से ब्लैकहोल की सारी डार्क एनर्जी बाहर निकालकर ही वह अंधेरे से मुक्त होता है, बल्कि थोड़ी सी डार्क एनर्जी निकालने से भी वह काम हो जाता है। इतनी डार्क एनर्जी को इतनी कम विकिरणस्राव रफ्तार से कौन पूरा बाहर निकाल सकता है। अगर ऐसा होता है तो इसमें बहुत ज्यादा समय लगेगा, जो अव्यवहारिक है। इसी तरह आदमी को कुंडलिनी योग से मन का सारा अंधेरकचरा बाहर निकालने की जरूरत नहीं, बल्कि लंबे समय तक थोड़ा थोड़ा कचरा निकालने से भी जागृति या मुक्ति मिल ही जाती है। असंख्य जन्मों से इकट्ठे हुए असीमित कचरे को भला पूरा कौन निकाल सकता है।

हिंदू शास्त्रों में आता है कि सृष्टि के प्रारंभ से पहले परमात्मा के मन में एक ही विचार पैदा हुआ, एकोहम बहुस्याम, मतलब मैं एक हूं, बहुत सा बन जाऊं। शायद यही विचार तथाकथित सिंगुलरिटी तक सिकुड़ा हुआ अनंत द्रव्यमान है। संभवतः उस विचार से ही आकाश में छेद हो गया। एक नया अनंत आकाश बन गया। पर भ्रम से वह अपने पूर्ण प्रकाश को भूल गया, हालांकि मूल परमात्मा पूर्ववत अप्रभावित रहा। यही सुपर डार्क एनर्जी है। इसीसे सृष्टि बनती है, और इसीसे उसका विस्तार होता है। वैसे ही जैसे आदमी के मन के अंधेरे में विचारों की प्रकाशमान दुनिया विकसित होती है। वही सुपर डार्क एनर्जी ब्रह्मा का मूल मन है, और उसके मन में विचारों का विकास ही सृष्टि निर्माण है। फिर ब्रह्मा ने पूछा कि सृष्टि कैसे बनाऊं, तो ब्रह्म यानि परमात्मा ने कहा कि यथापूर्वमकल्पयत अर्थात जैसे पहले बनाई थी। इसका मतलब है कि कोड रूप में पिछली सृष्टि की सूचना ब्रह्मा की याददाश्त के रूप में रहती है।

हिंदु दर्शन बोलता है कि मन के विचारों के प्रति आसक्ति से ही अज्ञान या अंधकार पैदा होता है। यह बात वैज्ञानिक ही तो है। आसक्ति मतलब पकड़कर रखना या चिपकना। ब्लैकहोल भी तो अपने अंदर की सिंगुलरिटीरूपी विचार को पकड़कर रखता है। यह अलग बात है कि हॉकिंग रेडिएशन से उसे बाहर फेंकने की कोशिश भी करता है। आदमी भी योग, विपश्यना, अनासक्तिपूर्ण जीवनयापन आदि से विचारों को बाहर भगाता ही रहता है। यह अलग बात है कि कब इसमें पूरी सफलता मिले।

विज्ञानी कहते हैं कि ब्लैकहोल की सिंगुलरिटी में स्पेसटाईम शून्य हो जाते हैं। फिर बिगबैंग के समय वे फिर से फैलने लगते हैं, जिससे ब्रह्मांड का निर्माण शुरु हो जाता है, और वह आगे से आगे फैलने लगता है। जरा ध्यान से सोचें तो सिंपल सी बात है। कोई ज्यादा गणित लगाने की जरूरत नहीं है। भीतर से सोचते हैं। बाहर तो भीतर की तरह ही है। यही अध्यात्म की खासियत है कि यह भीतर को समझता है, पर विज्ञान बाहर को

समझता है। भीतर समझना आसान भी है, सस्ता भी है और सर्वसुलभ भी। बाहर तो बखेड़ा और परेशानी ज्यादा है। महंगा भी है, और सर्वसुलभ भी नहीं। जब अनंत आत्मा के प्रकाशमान आकाश में अंधेरा छा गया, तब वह होते हुए भी शून्य ही है। है तो उसमें परमात्मा अर्थात सबकुछ पर अंधेरे में किस काम का। अगर फाईव स्टार होटल में अंधेरा छा जाए तो वह किस काम का। वह तो न होने की तरह ही है। इसी को स्पेसटाईम शून्य होना कहा गया है। फिर वह फैलने लगता है, विचारों के ब्रह्मांड के रूप में। वह स्पेसटाईम ही फैल रहा है, क्योंकि उसीकी तरंगें ही तो विचारों के रूप में हैं। फैलना बंद होएगा तब, जब अंतिम छोर पा लेगा मतलब अनंत चैतन्य अंतरिक्ष अर्थात मुक्ति।

कुंडलिनीजागरण के रूप में ब्रह्मास्त्र के दुष्प्रभावों से शैवास्त्र या पाशुपत अस्त्र ही बचा सकता है

दोस्तो, महाभारत में अश्वत्थामा नाम का एक महान व्यक्ति चरित्र है। उनको भगवान शिव का अवतार कहा गया है। वे गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र थे। द्रोणाचार्य कौरवों और पांडवों के गुरु थे। वे सभी विद्याओं में प्रवीण थे, पारलौकिक ब्रह्मविद्या में भी। वे ब्राह्मण थे, और उस समय असली ब्राह्मण उसीको समझा जाता था, जिसे ब्रह्मविद्या आती थी। नाम के ब्राह्मण तो बहुतेरे होते थे। ब्रह्मविद्या कुंडलिनीविद्या का ही पर्याय है, क्योंकि दोनों से ब्रह्मरूप जागृति की प्राप्ति होती है। द्रोणाचार्य के पास सबसे बड़ा युद्धास्त्र माने ब्रह्मास्त्र भी था। ब्रह्मास्त्र में पूरी सृष्टि को जलाने की क्षमता होती है, नाभिकीय हथियार की तरह। द्रोणाचार्य ने वह अतिगुप्त ब्रह्मास्त्रविद्या सिर्फ अपने पुत्र अश्वत्थामा को प्रदान की थी, अपने सर्वप्रिय शिष्य अर्जुन को भी नहीं। जब कौरव हार गए, तब उससे हताश और दुखी दुर्योधन ने अश्वत्थामा से मदद मांगी। वह भी अपने प्रिय मित्र की मांग को ठुकरा नहीं सका। वह रात के अंधेरे में पांडवगृह से पांच सोए हुए पुरुषों को पांडव समझ कर उनके सिर काट कर ले गया। दरअसल वे पांडवों के पांच पुत्र थे। द्रौपदी के विलाप से गुस्से से भरकर अर्जुन श्रीकृष्ण के साथ रथ पे बैठकर उसका पीछा करने लगे। अश्वत्थामा डरकर भाग गया और उसने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र अर्थात ब्रह्मशिर अस्त्र चला दिया। उससे सारी सृष्टि को खतरा पैदा हो गया। उसकी तेज चमक से सृष्टि जलने लग पड़ी। उससे सभी दिशाओं में प्रचंड तेज पैदा हो गया। अपने प्राणों पर आई हुई आपत्ति को देखकर अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया। श्रीकृष्ण भी उस अस्त्र को नहीं रोक पा रहे थे। उसे रोकने की विद्या अश्वत्थामा ने अपने पिता से नहीं सीखी थी। अश्वत्थामा भी अपनी गलती महसूस कर रहा था, पर कुछ नहीं कर पा रहा था। उसे श्रीकृष्ण समेत सबने बहुत लताड़ा कि जब उसे ब्रह्मास्त्र को रोकना नहीं आता था, तब उसने उसे क्यों चलाया। फिर श्रीकृष्ण की सलाह से अर्जुन ने भगवान शिव का ध्यान करते हुए उनके द्वारा प्रदत्त शैवास्त्र अर्थात पाशुपत अस्त्र को चला कर उसे शान्त किया। उससे होने वाला नुकसान टल गया, हालांकि वह उत्तरा के गर्भ को जलाने की कोशिश कर रहा था पर श्रीकृष्ण ने उसे पाशुपत अस्त्र के प्रयोग तक बचा लिया था।

उपरोक्त कथा का अध्यात्मवैज्ञानिक विश्लेषण

पहली बात, साथ के एक श्लोक में इस ब्रह्मास्त्र को वही ब्रह्मशिर तीर भी कहा गया है, जिसको ऋषि दधिचि के मेरुदंड से बना कर उससे दैत्य वृत्रासुर को मारा गया था। हाल की पुरानी पोस्ट में हमने सिद्ध किया था कि वह जागृत सुषुम्ना रूपी शक्तिरेखा है। दूसरा, अश्वत्थामा एक ज्ञानी ब्राह्मण था, जिसको उसके वेदपारंगत पिता द्रोणाचार्य ने सारी शिक्षादीक्षा दी थी। ब्राह्मण का काम वेदों के अध्ययन व अध्यापन का होता है, अस्त्रशस्त्रों

से उनको क्या लेना देना। अगर कोई कहे कि बेशक लड़ना क्षत्रियों का काम था, पर लड़ाई करना सिखाना ब्राह्मणों का काम होता था, तो यह बात कुछ जंचती नहीं। जो खुद ही लड़ना न जाने, वह औरों को क्या लड़ना सिखाएगा। मुझे तो उनके लिए प्रयुक्त यह अस्त्रशस्त्रों की भाषा अलंकारिक लगती है। ऐसा इसलिए भी किया गया होगा ताकि ऐसा न हो कि यौद्धा क्षत्रिय अहंकार में आकर ब्राह्मणों के नियंत्रण में न रहें। वैसे भी बुद्धि को सबसे बड़ा अस्त्र माना गया है, क्योंकि बुद्धिकौशल से बड़े से बड़ा युद्ध भी जीता या टाला जा सकता है, और बुद्धि ब्राह्मण के पास बहुतेरी होती है। महाभारत का युद्ध भी मुझे मानसिक युद्ध लगता है। काफी समय पहले अखबारों और सोशल मीडिया में कुरुक्षेत्र के मैदान में महाभारत युद्ध के रेडियोधर्मी विकिरण होने की खबरें पढ़ी थीं। लिखा था कि फलां वैज्ञानिकों ने जांच की तो टेस्ट पॉजिटिव निकले। पता नहीं मनगढ़ंत बातों को कैसे सच की तरह पेश कर देते हैं, कहां से वैज्ञानिक लाते हैं, और कहां पे जांच करा देते हैं। गहराई से पता करने पर पता चला कि इसकी कोई वैज्ञानिक पुष्टि नहीं हुई है, और इसे अभी तक माइथोलॉजी ही माना गया है। यह अलग बात है कि इसे पूरी तरह जुठलाया नहीं जा सकता, क्योंकि जो भीतर सूक्ष्म रूप में हो रहा है, वही बाहर भी स्थूल रूप में हो रहा है। ब्रह्मास्त्र मन के सूक्ष्म संसार को नष्ट करता है, और नाभिकीय हथियार बाहर स्थित बिल्कुल उसी रूप वाले स्थूल संसार को। वास्तव में सबकुछ सूक्ष्म ही है। शायद आम आदमी के अंदर अध्यात्म के प्रति जिज्ञासा बढ़ाने के लिए ही ऐसी अर्धसत्य जैसी कथाएं गढ़ी जाती हैं। एक बात और, अगर पुराणों में वर्णित युद्ध असली भौतिक युद्ध होते, तो हिंदु कौम सबसे लड़ाकी कौम होती, पर ऐसा नहीं है, बल्कि इसका बिल्कुल उलटा लगता है। हिंदु तो आज सिमटते दिख रहे हैं। साथ में, सूर्यास्त से सूर्योदय तक युद्ध को बंद रखा जाता था। जीवनयुद्ध में ही ऐसा होता है, जब दिन में लोग काम करते हैं, और रात्रि को सो जाते हैं। इन सबसे यही जाहिर होता है कि वे युद्ध मन के दोषों के खिलाफ कुंडलिनी शक्ति द्वारा शरीर में ही लड़े जाते थे। उन्हें रोचक बनाने के लिए ही उन्हें बाहर और असली की तरह दिखया गया है। यह अलग बात है कि जैसा शरीर के अंदर होता है, उसके बाहर भी वैसा ही होता है। दुर्योधन मतलब मुश्किल से युद्ध में जीता जाने वाला व्यक्ति मुझे अहंकार का प्रतीक प्रतीत होता है। कौरव सौ भाई थे। कहावत भी प्रचलित है कि फलां में सौ दुर्गुण हैं। मैं महाभारत के इतिहासरूप होने से भी इनकार नहीं कर रहा हूं। हो सकता है कि दोनों ही बातें सही हों। इससे भी यही जाहिर होता है कि ब्रह्मास्त्र जागृत सुषुम्ना ही है। अश्वत्थामा ने उसे अर्जुन पर चलाया, मतलब अपनी दृष्टि के शक्तिपात से वह अर्जुन के अंदर कुंडलिनी जागृत करने लगा। वैसे भी अश्वत्थामा जागृत व्यक्ति था। इसका प्रमाण उसके माथे की मणि है। दरअसल वह जागृत आज्ञा चक्र अर्थात खुली हुई तीसरी आंख है। अचानक कुंडलिनी जागृत होने से वैसी ही बेचैनी होगी, जैसी वर्षों तक अंधेरी गुफा में रहने वाले आदमी को एकदम बाहर धूप में निकालकर होती है। उससे सभी दिशाओं में प्रचंड तेज पैदा हो गया, मतलब अर्जुन के मस्तिष्क में चारों ओर चमक छा गई, क्योंकि मस्तिष्क के अंदर ही सारा ब्रह्मांड है।

जागृति के समय अजीब सी अनहोनी का डर तो लगता ही है, हालांकि वह सामान्य डर से अलग होता है। वह आनंद, प्रकाश और सुकून से भरा होता है। साथ में नष्ट होते अहंकार मतलब खत्म होते अपने व्यक्तित्व के कारण आसन्न मृत्यु के जैसा आभास भी हो सकता है। यह आभास भी मृत्यु से अलग और प्रकाशपूर्ण व सत्तापूर्ण होता है। आदमी को लग सकता है कि वह किसी शान्त दिव्यलोक या मुक्तिलोक की ओर जा रहा है। इससे अर्जुन दुखी हुए और उनका तेज नष्ट हो गया। दरअसल अहंकार का तेज नष्ट हुआ, ब्रह्मतेज तो बढ़ रहा था। लड़ाई तो अहंकार का तेज करता है, ब्रह्मतेज तो सबकुछ भुलाकर संन्यासी सा बनाता है। समझ लो कि अर्जुन को कुंडलिनी जागरण हुआ या वह उसकी तरफ़ बढ़ा। उससे उसके ऊपर कुंडलिनी जागरण के सहदोष मतलब साईड इफैक्ट पैदा हुए। इन्हीं का अलंकरिक वर्णन हो रहा है। जीवन एक युद्ध ही है। अगर आदमी कुंडलिनी के बोझ से दबेगा, तो जीवनयुद्ध में कैसे लड़ेगा, दुर्योधनरूपी अहंकार को कैसे मारेगा। समस्या यह है कि अश्वत्थामा जैसा शुद्ध और सात्विक ब्राह्मण इतनी ऊर्जा कहां से लाए, जो उन कुंडलिनीदोषों को नष्ट करवा सके। वह उस समय कुंवारा लड़का था, इसलिए गुरु द्रोणाचार्य ने उसे शक्तिस्रोत तांत्रिक तकनीकें नहीं सिखाई थीं। पर विवाहित अर्जुन ने भगवान शिव से वे वामाचारी तकनीकें पहले ही सीख ली थीं, जिनको शैवास्त्र या पाशुपत अस्त्र का नाम दिया गया है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उनकी याद दिलाई। अश्वत्थामा शिव का अवतार था, क्योंकि वह दुर्गुण रूपी कौरवों का साथ दे रहा था। शिव भी तो बाहर से देखने पर दुर्गुणी तांत्रिक ही लगते हैं। वे हमेशा ही राक्षसों के पक्ष में रहते हैं, पर जब देवता उन्हें मनाते हैं, तो देवताओं के पाले में आ जाते हैं। भोले हैं न। उन्हें हरकोई आसानी से गुमराह भी कर सकता और मना भी सकता है। पांडवों ने कृष्ण के साथ मिलकर सजा के तौर पर उसके माथे से मणि निकाल दी थी। इसका मतलब है कि अगर कोई शैवतंत्र के समुचित ज्ञान के बिना शिव के जैसा बनने की कोशिश करेगा, वह जागृत होकर भी मार्गभ्रष्ट हो जाएगा। यह उसके लिए मृत्युदंड के समान ही है। द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र विद्या अपने शिष्यों को क्यों नहीं सिखाई, और सिर्फ अपने पुत्र अश्वत्थामा को ही क्यों सिखाई। लौकिक विद्या में तो इसका उल्टा होता है, मतलब अध्यापक अपने विद्यार्थियों को तो सबकुछ सिखा सकता है, पर अपने पुत्र को कुछ भी नहीं सिखा पाता, उसके लिए अलग से ट्यूशन रखवानी पड़ती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि वह पारलौकिक योगविद्या थी। वह किसी के सिखाने से कम समझ आती है, पर अपने वर्तमान परिवार और पूर्वजों की निरंतर संगति और संस्कारों से बिना सिखाए खुद ही सीखने में आ जाती है। एक बात और, भौतिक अस्त्र ऐसा तो नहीं करता कि महिला को नुकसान पहुंचाए बिना उसके गर्भ में पल रहे बच्चे तक पहुंच जाए। हां, नाभिकीय हथियार के विकिरण ऐसा कर सकते हैं। पर उससे तो अनगिनत औरतों के गर्भ को नुकसान पहुंचता है, सिर्फ अकेली चुनी हुई महिला के गर्भ को नहीं। कुंडलिनी को डीएनए प्रभावित करने वाला कहते हैं। क्योंकि वे सभी एक ही परिवार के सदस्य थे, इसलिए सभी के डीएनए आपस में जुड़े थे। क्योंकि गर्भस्थ शिशु सबसे ज्यादा कोमल

होता है, इसलिए उसका डीएनए सबसे ज्यादा प्रभावित हुआ। उसे ऐसा महसूस हो रहा था कि चारों ओर गहरी और जलाने वाली चमक है, जिसे भगवान कृष्ण अपने सुदर्शन चक्र से शांत कर रहे थे। दरअसल जब कुंडलिनी शक्ति मस्तिष्क में पहुंचती है, तो उसके दुष्प्रभावों से बचाने के लिए उसके बीच में खुद ही एक ध्यानचित्र प्रकट हो जाता है। संभवतः उसके रूप में ही श्रीकृष्ण थे। श्रीकृष्ण ही इसलिए क्योंकि वे ही उसके परिवार के सबसे नजदीकी, सबसे प्रिय और सबसे सम्माननीय थे।

महाभारत को पांचवां वेद कहते हैं। वेद में परम तत्त्व का अनुभवात्मक व गूढ़ वर्णन है। उसी को पुराणों और महाभारत में सरल किया गया है, माईथोलोजिकल कथाओं से। उनमें भौतिक विज्ञान का क्या काम। हालांकि स्थूल भौतिक जगत के अंदर भी वही है, जो मन और आत्मा के अंदर है, पर मुख्य फोकस मन, आत्मा और उससे जुड़े शरीर के पहलुओं पर रखा गया है। कृष्ण आत्मा है। पांच पांडव उनके पांच प्राण हैं। यह श्रीकृष्ण ने खुद भी कहा है। अर्जुन मुख्य प्राण है। सैकड़ों किस्म के दुनियावी व पापी विचार सौ कौरव भाई हैं। वे लगातार प्राणों की शक्ति को हरते रहते हैं। वे उन्हें आत्मा से दूर रखना चाहते हैं। कृष्ण का सबसे प्रिय मित्र अर्जुन है। प्राण ही आत्मा से मिलने के लिए ऊपर उठता है। प्राण सांसों को शक्ति देता है। वही आत्मा के सबसे निकट रहता है। इसीलिए जागृति के समय सांस शांत जैसी हो जाती है। सांसों के बल से ही शक्ति ऊपर चढ़ती है। अश्वत्थामा ने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र चलाया मतलब योग ने प्राण को जागृति के लिए उकसाया। सात चक्र पांडवों के सात पुत्र हैं। प्राणों से ही चक्र क्रियाशील होते हैं। पांच पुत्रों को अश्वत्थामा ने मार दिया मतलब सैंकड़ों बुराईयों के बीच फंसी हुई योग आदि के रूप वाली अच्छी सांसारिक क्रियाशीलता ने पांच चक्रों का भेदन कर दिया। वैसे भी भौतिक क्रियाशीलता से सबसे अधिक दबाव मूलाधार चक्र पर ही पड़ता है, क्योंकि यह कमर के जोड़ के करीब होता है। योग से यह दबाव ज्यादा हो जाता है, क्योंकि इसमें हम ज्यादा झुकते हैं, ज्यादा समय के लिए झुकते हैं, और सांस रोककर झुकते हैं। पिछले स्वाधिष्ठान चक्र की जो उभरी हुई हिप बोन की हड्डी होती है, के बिल्कुल साथ लगता ऊपर की तरफ़ एक गड्ढा सा होता है, मुझे तो वही असली मूलाधार लगता है, या मूलाधार के साथ उसका सीधा सम्बन्ध होता है। उसमें गहरी मालिश करने से यौनानंद जैसी तेज संवेदना की अनुभूति होती है जो ऊपर की ओर चढ़ती है। पाण्डवों के पुत्रों में अभिमन्यु और घटोत्कच बचे रहे मतलब सबसे ऊपर के दो मुख्य चक्रों का भेदन नहीं हुआ। इसीलिए अर्जुन से कुंडलिनी के लक्षण झेले नहीं गए। अब इसे मनगढ़ंत बनाई हुई कहानी कहो या महाकाव्य लेखक ऋषि के द्वारा बनाई गई असली योग कहानी, पर बनी अच्छी और तथ्यात्मक है।

इस कथा का एक दूसरा पक्ष भी है। द्रौण एक पर्वत का नाम भी है। द्रोणाचार्य मतलब पर्वतों को नियंत्रित करने वाले आचार्य। वैसे भी उन्होंने द्रौण पर्वत पर तपस्या की थी।

अस्थियों को पर्वत ही कहा गया है कई स्थानों पर। योग आदि अस्थियों से ही होते हैं। इसीलिए तो अश्वत्थामा योगसाधना को कह रहा हूं। जब योग से चक्रों का भेदन हुआ, तो उनमें दबी हुईं भावनाएं बाहर निकलकर विलुप्त हो गईं, मतलब पूरी तरह मर गईं। इसी से उनकी माता बुद्धि मतलब द्रौपदी दुख से रोने लगी, क्योंकि उसीके कार्यों की बदौलत वे भावनाएं निर्मित हुई थीं। आत्मा कृष्ण के साथ प्राण अर्जुन भी इससे उद्विग्न जैसे हो गए और वे योग को रोकने मतलब अश्वत्थामा को पकड़ने के लिए दौड़े। पर तब तक सुषुम्ना जागृत हो गई थी, मतलब उसने ब्रह्मास्त्र छोड़ दिया था। वैसे भी सहस्रार चक्र को ब्रह्मरंध्र भी कहते हैं। अश्वत्थामा दुर्योधन की ही मित्रता निभा रहा था, क्योंकि स्वार्थ से भरी दुनियादारी से जब आदमी थक या ऊब जाता है, तब खुद ही योग अपनाता है। प्राण उस जागृत कुंडलिनी के तेज को झेल नहीं पाया, इसलिए उसने उसे माथे को मलते हुए आज्ञाचक्र तक नीचे उतार दिया। फिर वह पता नहीं कहां विलीन हो गई। यही अश्वत्थामा के माथे से मणि निकालना है। जागृति के बाद आदमी बच्चे की तरह बनकर नया जन्म सा महसूस करता है। यही अश्वत्थामा का पूर्ण मुंडन है। अगर ब्रह्मास्त्र भौतिक अस्त्र होता तो उसकी चमक व अन्य प्रभाव सभी को महसूस होते, पर वह सिर्फ अर्जुन को ही महसूस हुआ, क्योंकि वह उसके अंदर था। कृष्ण तो साक्षात आत्मापरमात्मा हैं, उन्हें उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वे हमेशा जागृत ही हैं। शैवास्त्र तो दुनियादारी वाला आसक्त जैसा मन है। तंत्र के पंचमकार सबसे बड़ी दुनियादारी है। उसका ध्यान या दर्शन करके वह शैवास्त्र चल पड़ा जिससे ब्रह्मास्त्र शान्त हो गया। हो सकता है कि आसपास कोई स्त्रियों आदि का नाचगाना या समारोह चल रहा हो। उनकी तरफ ध्यान देते ही शैवास्त्र चल पड़ा हो। दरअसल आज्ञा चक्र और सहस्रार चक्र भी क्रियाशील हो जाने चाहिए, तभी कुंडलिनी जागरण अच्छी तरह से झेला जा सकता है। आज्ञाचक्त के क्रियाशील होने से बुद्धि के प्रकट और अप्रकट जटिल विचार भस्मीभूत हो जाते हैं। इसी तरह सहस्रार चक्र के क्रियाशील होने से वहां पर रक्तसंचार बढ़ जाता है, जिससे जागृति का दबाव झेला जा सके। साथ में, क्रियाशील व दबे हुए अनर्गल दृश्य विचार भी भस्म हो जाते हैं।

अर्जुन का पुत्र अभिमन्यु था और उसका पुत्र परीक्षित था जो उत्तरा के गर्भ में श्रीकृष्ण को देख रहा था। वह बाहर आकर भी सबमें कृष्ण की परीक्षा करता रहता था, इसीलिए उसका नाम परीक्षित पड़ा। अभिमन्यु का शाब्दिक अर्थ है, बहुत क्रोध। दरअसल प्राणों से ही क्रोध अभिव्यक्त होता है। वह क्रोध दुर्योधन जैसी कपटी दुनियादारी की तरफ़ था। पर वह ऊपरऊपर की सोच के अंदर दबा था, गहरी सोच के अंदर नहीं। मतलब अर्जुन उनसे ऊपरऊपर से नफरत करता था, गहराई में नहीं। उत का शाब्दिक अर्थ है ऊपर, और तरा का मतलब तैरने वाली। इससे क्रोध की शक्ति कुंडलिनी ध्यानचित्र के रूप में रूपांतरित हो रही थी। इसी से कृष्णरूप ध्यानचित्र परीक्षितरूपी नवजीव को महसूस हो रहा था। नया जीव इसलिए क्योंकि ध्यानचित्र से जीव रूपांतरित होकर नया सा बन जाता है।

फिर वह रूपांतरित व्यक्ति बड़ा होकर भी उसी ध्यानचित्र को हर जगह ढूंढता और परखता रहता था, क्योंकि वह बहुत आनंदकारी और हितैषी होता है। जब वह मन में ही सूक्ष्म रूप में इतना अच्छा है, तब भौतिक रूप में कितना ज्यादा अच्छा होगा। पर भौतिक रूप की अपनी बाध्यताएं होती हैं। इसलिए वह कहीं नहीं मिलता। आदमी हर जगह परीक्षा ही करता रह जाता है। हरेक आदमी खासकर जागृत आदमी परीक्षित है।

एक बात और, जिस चक्रव्यूह में अभिमन्यु घुसा था, उसमें सात तहें थीं। एक तो नाम भी चक्र, और गिनती भी शरीर के चक्रों के बराबर। दोनों ही एक के ऊपर एक परत के रूप में होते हैं। मूलाधार चक्र अपने तक ही सीमित है, स्वाधिष्ठान चक्र उसको भी कवर करता है आदि। इस तरह ऊपर वाला चक्र नीचे वालों को भी समेटता है। सहस्रार सभी चक्रों को कवर करता है। जब आदमी किसी पर क्रोध के कारण चक्रसाधना में घुसता है, तब वह अंदर तो घुस पाता है, पर बाहर नहीं निकल पाता, क्योंकि साधना के प्रभाव से क्रोध खत्म हो जाता है। ध्रुव अपनी सौतेली मां के प्रति क्रोध से भरकर ही भगवान विष्णु को खोजने निकला था, पर जब वे मिल गए, तब उसका क्रोध खत्म हो गया और उसे वही मां बहुत प्रिय लगने लगी। शायद भगवान राम के साथ भी ऐसा ही हुआ, इसीलिए उनका बुरा चाहने वाली सौतेली मां उन्हें सबसे प्रिय लगती थीं।

कुंडलिनीतंत्र और किन्नरों का परस्पर अटूट रिश्ता

शिव पार्वती सहस्रार में मिलने के बाद विभिन्न चक्रों पर भ्रमण करते हैं। दरअसल असली शिव तो पूर्ण अद्वैत रूप परब्रह्म परमात्मा हैं। असली पार्वती मानसिक ध्यान चित्र है। जो पुरुष और स्त्री के शरीर प्रणयप्रेम में बंधे हैं, वे मात्र एक माध्यम या सहायक हैं, असली शिव और पार्वती का मिलन कराने के लिए। वे दोनों शरीर पहले एकांत स्थान में जाते हैं, जहां किसी का व्यवधान न हो। शिव और पार्वती उसके लिए एक गुफा में गए जहां एक हजार साल तक प्रणय करते रहे। इस एकांत स्थान को सहस्रार चक्र कह सकते हैं। वहां शिव को जागृति प्राप्त हुई। फिर दोनों विभिन्न स्थानों पर घूमने लगे। दरअसल कोई स्थान किसी चक्र विशेष से जुड़ा होता है तो कोई किसी से। इसीलिए कभी कोई चक्र क्रियाशील होता रहा तो कभी कोई। जो चक्र क्रियाशील होता है, वहां ध्यान चित्र अर्थात असली पार्वती भी केंद्रित हो जाती है, यह योग का नियम है। उससे वहां अद्वैतानंदरूप आत्मा अर्थात असली शिव भी ज्यादा अभिव्यक्त होता है, क्योंकि शिव और पार्वती साथ रहना चाहते हैं। शरीरधारी शिवपार्वती अशरीरी शिवपार्वती के सहयोगी हैं, विरोधी नहीं। इसलिए अगर कोई कहे कि असली जागृति तो मन के भीतर असली शिवपार्वती के मिलन से होती है, शारीरिक रोमांस अर्थात प्रणय का इसमें कोई योगदान नहीं, तो यह युक्तियुक्त नहीं लगता है।

शरीरी शिव के अंदर अशरीरी शिव अद्वैतब्रह्म के रूप में है, और अशरीरी पार्वती मानसिक कुंडलिनीध्यानचित्र के रूप में है। शरीरी शिव के अंदर बसी अशरीरी पार्वती जब अशरीरी शिव से पूर्णतः एकाकार हो जाती है, उसे शरीरी शिव का कुंडलिनी जागरण कहते हैं। इसमें शरीरी शिव की मदद शरीरी पार्वती प्रणय संबंध के जरिए करती है। इससे अशरीरी पार्वती को ज्यादा से ज्यादा अभिव्यक्त होने या स्पष्ट मानसिक चित्र बनने के लिए ज़रूरी यौनऊर्जा मिलती है। जिससे वह सहस्रार चक्र तक ऊपर उठकर अशरीरी शिव से एकरूप होकर जागृत हो जाती है।

अब शरीरी पार्वती का वर्णन करते हैं। शरीरी पार्वती का अशरीरी शिव भी उसी अद्वैतब्रह्म अर्थात निराकार ब्रह्म के रूप में ही है, और अशरीरी पार्वती उसका भी मानसिक ध्यानचित्र ही है। शरीरी पार्वती के अंदर बसी अशरीरी पार्वती जब अशरीरी शिव से पूर्णतः एकाकार हो जाती है, उसे ही शरीरी पार्वती का कुंडलिनी जागरण कहते हैं। इसमें शरीरी पार्वती की मदद शरीरी शिव प्रणय संबंध के जरिए करता है। इससे अशरीरी पार्वती को ज्यादा से ज्यादा अभिव्यक्त होने या स्पष्ट मानसिक चित्र बनने के लिए जरूरी ऊर्जा मिलती है। जिससे वह सहस्रार तक ऊपर उठकर अशरीरी शिव से एकरूप होकर जागृत हो जाती है।

अब जब जागृति हो गई है मतलब अशरीरी शिवपार्वती सहस्रार में पूरी तरह से एकजुट हो गए हैं, तो यह मिलन आगे के चैनल के माध्यम से नीचे उतरता है। यद्यपि निचले चक्रों में वे पूरी तरह से एकजुट नहीं होते हैं, पर ऐसा लगता है जैसे तीव्र ध्यान छवि को गहन आनंद के साथ अनुभव किया जा रहा है। सबसे पहले यह मिलन आज्ञा चक्र तक गिरता है। वहां ध्यान सहस्रार को छोड़कर सभी चक्रों में सबसे मजबूत है। फिर यह कंठ चक्र तक उतरता है। फिर हृदय चक्र, फिर मणिपुर चक्र, फिर स्वाधिष्ठान चक्र और अंत में मूलाधार चक्र। यहां यह मिलन बैक चैनल के माध्यम से सहस्रार चक्र में वापस लौटने के लिए तैयार हो जाता है, हालांकि कई कारणों से लंबे समय तक जागृति दोबारा नहीं होती है। शिवपार्वती का यह मिलन या जोड़ा चक्रों के समान विभिन्न स्थानों पर अस्थायी रूप से स्थित होकर पूरे ग्रह पर घूमता रहता है। आप सहस्रार को शिव लोक या कैलाश पर्वत, आज्ञा चक्र को अलकापुरी और इसी तरह अन्य सभी को अन्य लोक कह सकते हैं। आप सभी बारह चक्रों को द्वादश ज्योतिर्लिंग भी कह सकते हैं, जिनमें काशी भी एक है जो शिव को अत्यंत प्रिय है और वहां शिवपार्वती अक्सर आनंदपूर्वक विचरण करते नजर आते हैं।

पुरुष और स्त्री, दोनों के अंदर अशरीरी शिव और पार्वती समान रूप से स्थित हैं। स्त्रीशरीर को पार्वती या ध्यानचित्र का रूप इसलिए दिया गया है, क्योंकि दोनों के गुण ज्यादा मिलते हैं। पुरुषशरीर को शिव या ब्रह्म का रूप इसलिए दिया गया है क्योंकि दोनों के गुण आपस में ज्यादा मिलते हैं। इसका मतलब है कि सभी लोग कुछ न कुछ हद तक उभयलिंगी होते हैं, क्योंकि दोनों के अंदर अशरीरी शिवपार्वती समान रूप में मौजूद हैं, और दोनों के भौतिक शरीर भी अशरीरी शिवपार्वती से मेल खाते हैं, हालांकि अशरीरी शिव और अशरीरी पार्वती का अनुपात कम या ज्यादा होता रहता है। पर जो इन दोनों लिंगों को निडरता के साथ बाहर प्रकट करता है, उसे हिजड़ा या किन्नर कहकर अपमानित किया जाता है। इसके पीछे शरीरवैज्ञानिक दोष भी हो सकते हैं। प्राचीन भारत में इनका बहुत सम्मान होता था, और इन्हें विशिष्ट माना जाता था। गुलामी के दौर में यह सोच बदल गई थी। अब तो तीसरे लिंग को आधिकारिक और कानूनी दर्जा भी प्राप्त हो गया है। किन्नर यिनयांग अर्थात शिवशक्ति सम्मिलन का अच्छा उदाहरण होते हैं। इनमें कुंडलिनी शक्ति कूटकूट के भरी होती है। जब किसी स्त्री के संपर्क में आने से उसी जैसे परिचित पुरुष के संपर्क का भी अहसास हो तो समझ लो उसमें यिनयांग गठजोड़ बहुत ज्यादा और मजबूती से बंधे हैं। जागृति तक पहुंचने के लिए ऐसी पुरुषस्वभावी स्त्री का बड़ा योगदान होता है। उससे मन में हमेशा ही एक ध्यानचित्र मजबूती से बना रहता है, बिना किसी विशेष आध्यात्मिक प्रयास या योगाभ्यास के, या इनका थोड़ा अनुष्ठान ही काफी है। इससे तो यह भी संभव हो सकता है कि जब किसी पुरुष के संपर्क में होने से उसके जैसे स्वभाव वाली स्त्री के संपर्क का अहसास होने लगे, तो वह भी यिनयांग का भंडार है। पक्का ऐसा होता है, क्योंकि बहुतों का अनुभव भी ऐसा ही बोलता है। वे भी

ध्यानसाधना और जागृति में सहयोग करते हैं। हां, एक बात और, समलैंगिक, गे, लेस्बियन आदि लोगों के बारे में अलग से लिखने की जरूरत नहीं लगती मुझे, क्योंकि ये भी मुझे किन्नरों की तरह ही उभयलिंगी या शिवशक्ति जैसे ही लगते हैं, मतलब इनमें पुरुष और स्त्री दोनों नजर आते हैं। दरअसल मूलसिद्धांत के रूप में होता यह है कि किन्नरों के प्रति जो संभोग की भावना पैदा होती है, उसमें संयम ज्यादा होता है किसी पूर्ण स्त्री या पुरुष की अपेक्षा। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि स्त्री में पुरुष दिखता रहता है और पुरुष में स्त्री दिखती रहती है। इस विपरीत दर्शन से कामभाव नियंत्रित रूप में हमेशा बना रहता है, मतलब न तो यह आम अवस्था की तरह गायब होता है, और न ही अनियंत्रित रूप से बढ़कर आदमी को यौन अपराध या यौन दुराचार के दलदल में धकेलता है। इससे कामभाव के कारण जो ऊर्जा सहस्रार व अन्य चक्रों से स्वाधिष्ठान व मूलाधार चक्र को जाती है, वह उनसे संबंधित अंगों में क्रियाशीलता पैदा करके बैक चैनल से ऊपर चली जाती है एंप्लीफाय या प्रवर्धित होकर। मतलब वह ऊर्जा संभोग या स्खलन के रूप में बाहर नहीं निकलती। माइक्रोकोस्मिक ऑर्बिट में घूमती हुई ऊर्जा को बेहतरीन समझा जाता है, क्योंकि यह पूरे शरीर को तरोताजा भी करती रहती है, और मूलाधार के प्रभाव से अपने आप को प्रवर्धित भी करती रहती है। अब शायद कोई मुझे किन्नरवैज्ञानिक या किन्नर विशेषज्ञ का दर्जा न दे दे। इसलिए ज्यादा विस्तार में नहीं जाऊंगा। ये दोनों ही किस्म के व्यक्तित्व कुंडलिनी योग और जागृति में बहुत मदद करते हैं। तो क्यों न इसी तर्ज पर किन्नरों को यिनयांग मशीन या कुंडलिनी मशीन की तरह समझा जाए। संभवतः प्राचीन भारत में उनके सम्मान की यही मुख्य वजह थी। इसीलिए भारत में इनकी संख्या काफी है, और यहां इनका अपना पृथक समाज भी है। ये अर्धनारीश्वर की पूजा करते हैं। बाकि तो लोग कहते ही हैं कि उनकी दुआ झूठी नहीं होती, उनकी बोली बात सच साबित होती है आदि, ये सभी कुंडलिनीयोगशक्तिजनित जैसी सिद्धियां ही हैं। अभी हाल ही मैं ताली नाम की बायोपिक वैबसीरीज देखी, जो किन्नर गौरी सावंत के जीवन पर बनी है, जिसने किन्नरों को एक संवैधानिक दर्जा दिलवाने में बड़ी भूमिका निभाई। इसमें दिखाया गया कि कैसे वह अपने उभयलिंगी स्वभाव को प्रकट करने के कारण बचपन से ही ज्यादतियों और नफरत का शिकार बनी रही, और कैसे उसने ऐसे व्यवहार और नजरिए को बदलने में समाज की मदद की।

कुंडलिनीयोग पर्यावरण संरक्षण के लिए विशेष महत्त्व रखता है

जब अर्जुन पाशुपत अस्त्र के लिए भगवान शिव की तपस्या कर रहे थे, तब दुर्योधन का भेजा मूक दैत्य एक सुअर का रूप धारण कर वहां आया। वह पर्वतों के शिखरों को तोड़ता हुआ, अनेक वृक्षों को उखाड़ता हुआ तथा विविध प्रकार के अर्थहीन शब्द करता हुआ उसी मार्ग से जा रहा था, जहां अर्जुन था। उसको देखकर अर्जुन शिव का स्मरण करने लगा। शिव उसे मारने के लिए भीलराज बनके आए। अर्जुन और शिव के बीच वह शूकर अद्भुत शिखर की तरह लग रहा था। दोनों ने एकसाथ बाण चलाया। शिवजी का बाण पूंछ में घुसकर मुख से निकलकर शीघ्र ही पृथ्वी में विलीन हो गया। अर्जुन का बाण (शायद मुख में प्रविष्ट होकर) पूंछ से निकलकर भूमि पर पार्श्वभाग में गिर गया। शूकर उसी समय मर कर गिर गया।

उपरोक्त मिथक कथा का स्पष्टीकरण

दुर्योधन मतलब अहंकार अर्जुनरूपी कर्मयोगी जीवात्मा से इतना काम करवाता है कि उसकी इड़ा और पिंगला नाड़ियां क्रियाशील हो जाती हैं, मतलब अर्जुन का शरीर ही शूकररूप हो जाता है। मूलाधार ही उसकी पूंछ है। इड़ा और पिंगला उसके किनारे वाले दो नुकीले दांत हैं। द्वैत के जंगल में भटकते मन के विविध विचार उसका मुखभाग है। केवल भटकता हुआ मन ही पर्वतों को तोड़ सकता है, शरीर नहीं। मूक गूंगे को कहते हैं। क्योंकि भटकता मन आदमी को कभी नहीं कहता कि वह उसका दुश्मन है और उससे लड़ने आया है, पर धोखे से हमला करता रहता है, इसीलिए उसे मूक दैत्य कहते हैं। जैसे जीवात्मा और परमात्मा के बीच में मन एक पहाड़ की तरह भासता है, वैसे ही वह शूकर भास रहा था। इड़ा और पिंगला नाड़ियों के बारीबारी से क्रियाशील होने से आदमी इतना क्रियाशील हो जाता है कि जैसे वह पहाड़ तोड़ने को तैयार होए। इड़ा के क्रियाशील होने पर वह दुनिया के काम पागलपन जैसे से भरकर ताबड़तोड़ ढंग से करता है, और पिंगला के चालू होने से वह सुस्ता के सो जाता है। नींद से जागकर तरोताजा होकर फिर से लूट खसूट जैसे पापकर्म करने दौड़ पड़ता है। वह इसी अंधेरे और प्रकाश के द्वैत के बीच झूलता रहता है, और उनके बीच वाली सुषुम्ना नाड़ी की साम्य या अद्वैत अवस्था को नहीं देख पाता। भारतीय जंगली सूअर का रंग भी काले और भूरे रंग का मिश्रण है, जो द्वैत को दर्शाता है। पशु की तरह मूर्खता से भरकर घटिया और पर्यावरणघाती काम करता रहता है। आजकल का आदमी ऐसा ही तो है। क्रियाशीलता पर ब्रेक ही नहीं है। अंधे की तरह हर कहीं सिर मार रहा है। जमीन को खोखला कर रहा है। वनों का सफाया कर रहा है। हवा, जमीन और जल को प्रदूषित करके उसमें आनंद और मस्ती के साथ लोट रहा है। ये सब

सुअर के ही लक्षण तो हैं। शिव ने पूंछ से मतलब मूलाधार से तीर घुसाया, मतलब सुषुम्नारूपी शक्तिरेखा को क्रियाशील किया। दरअसल शिवलिंग के ध्यान व पूजन से ऐसा ही होता है। वह तीर उसके मुख से मतलब सहस्रार चक्र से निकलकर पृथ्वी में मतलब फ्रंट चैनल से शरीर में विलीन हो गया।
अर्जुन शिवलिंग का ध्यानपूजन तो वैसे भी कर ही रहा था। उससे स्वाभाविक है कि उसकी सुषुम्ना क्रियाशील हो गई। यह ब्रह्मशिर तीर ब्रह्मरंध्र से बाहर निकलता है। सूअर का पूरा शरीर ही मुखरूप है। ऐसा भी समझ सकते हैं कि वह तीर फिर आज्ञा चक्र में विलीन हो गया। वहां से वह मुख तक पहुंचता ही है, तालु के स्राव के माध्यम से। वहां वह स्राव भूमि मतलब उदर में चला जाता है, और वहां भोजन को पचाने में शक्तिरूप में व्यय या विलीन हो जाता है। जैसे भूमि में अन्न बनता है, वैसे ही उदर में भी बनता है, बेशक हल्के और टूटे हुए सूक्ष्म टुकड़ों के रूप में।
अर्जुन ने तालु से जीभ को छुआ कर मस्तिष्क की शक्ति को फ्रंट चैनल से नीचे उतारा। इससे वह ऊपर चढ़ी हुई शक्ति वापिस मूलाधार तक चली गई। मस्तिष्क के अंदर जो अर्जुन के द्वारा अपनी इच्छा से ध्यान लगाया जाता है, वह अर्जुन का छोड़ा हुआ तीर है। वह ऊपर से नीचे की ओर आता है फ्रंट चैनल से। मान लो कि वह शक्तिबाण मूलाधार तक पंहुचा और बाहर निकलकर पार्श्वभाग में जमीन पर गिर गया। पर बाहर कैसे गिरा। एक तो यह संभावना है कि वीर्य रूप में शक्ति बाहर गिरी। पर अर्जुन उसे हासिल करने बाहर क्यों भागना था। वैसे वीर्य की शक्ति से ही बड़े बड़े काम होते हैं, बड़े बड़े उद्योग धंधे चलते हैं, और चारों ओर भौतिक समृद्धि छा जाती है। शायद अर्जुन उन्हें अपना अपना कहते हुए उन्हें बटोरने इधर उधर भागा। यह संभावना भी है कि शक्ति वीर्यरूप में वज्र शिखा तक आई, जिसे अर्जुन ने योग से वापिस ऊपर खींचना चाहा। पर पार्श्वभाग में कैसे गिरी। हो सकता कि योनि में गिरी हो, जिसे वज्रोली मुद्रा से वापिस खींचा जा रहा हो। पर इसमें शिवगणों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए थी, क्योंकि यह व्यक्तिगत मामला है। शिवगण ने कहा कि वह शूकर शिव के तीर से मरा और वह पार्श्वभाग में गिरा हुआ शिव का तीर है। दरअसल शिवलिंगम के प्रभाव से मूलाधार की शक्ति ही सहस्रार तक जाकर फिर मुड़कर फ्रंट चेनल से नीचे आ रही थी। अर्जुन को लगा कि वह शक्ति उसने पैदा की अपने मस्तिष्क में ध्यान लगाकर, पर वास्तव में वह मूलाधार से ऊपर आ रही शक्ति के बल से ही मस्तिष्क में ध्यान कर पा रहा था, केवल अपने आत्मबल या इच्छाशक्ति से नहीं। मूलाधार चक्र की जागृति से सुषुम्ना सक्रिय हो गई थी, जिसके प्रभाव से इड़ा और पिंगला निष्क्रिय सी हो गई थीं। मतलब अज्ञानरूप सुअर मर गया था और उससे होने वाला अज्ञानजनित उत्पात भी। अर्जुन का अहम में आकर शिवलिंग का आश्रय छोड़ना या शिवलिंग को अज्ञानशूकर को मारने का श्रेय न देना ही उसका शिवावतार भीलराज़ से लड़ना है। अंत में उसे शिवलिंग का माहात्म्य समझ आना ही भीलराज के द्वारा उसे हराना है। अर्जुन के पार्श्वभाग में गिरा हुआ शक्तिबाण अन्न, घास, पुष्प आदि किसी भी रूप में हो सकता है, जिसे उसने टांगों से चलकर उगाया था। टांगों को मुख्यतः

मूलाधार से ही शक्ति नीचे उतरती है। और मूलाधार को शिवलिंग से शक्ति मिली थी। इसीलिए शिवगण उन पर अपना हक जता रहे थे। अन्न, घास, पत्ते, पुष्प आदि खाने वाले पशु, पक्षी और कीट ही शिवगण हैं, जो अपने जीवन के लिए आदमी की दया पर आश्रित हैं।
अर्जुन ने कहा कि वह बाण पिच्छ रेखाओं से चित्रित है तथा उसमें उसका नाम अंकित है। बाणरूपी फ्रंट चैनल की रेखाएं हम पसलियों की लकीरों को कह सकते हैं, जो उसके शुरु में ही होती हैं। नाम खुदा हुआ हम हृदय चक्र को कह सकते हैं, क्योंकि उसीमें आदमी का पूरा मनोभाव मतलब परिचय छिपा होता है। अहंकारी आदमी लड़ाई तो करता ही है ईश्वर के साथ, अपनी संपत्ति बटोरने के लिए। परमात्मा उसे उस स्वार्थ की सजा भी देते ही रहते हैं। यही शिव और अर्जुन के बीच का युद्ध है जो मल्लयुद्ध तक पहुंच जाता है। फिर ऐसा समय आता है कि आदमी अपने स्वार्थ के लिए भगवान के मंदिर में माथा रगड़ता है। यह कहानी का वही भाग है, जिसमें अर्जुन शिव को पैरों से पकड़ता है और उसे घुमाकर पटकने की कोशिश करता है, पर उसी समय अपने पैर पकड़े जाने से प्रसन्न होकर शिव अपने असली रूप में आ जाते हैं और उसे वरदान रूप में पाशुपत अस्त्र देते हैं। यह ऐसे ही कि जब आदमी भगवान के मंदिर में किसी भी भाव से जाकर सद्बुद्धि प्राप्त करता है, और अनजाने में ही विपत्ति से बचने का वर प्राप्त कर लेता है। पाशुपत अस्त्र मतलब शिव ने उपरोक्त घटनाक्रम के माध्यम से उसे समझा दिया था कि मूलाधार ही शक्ति को अच्छे से नियंत्रित कर सकता है, सहस्रार या मस्तिष्क नहीं। इसी समझ से उसने अश्वत्थामा के द्वारा छोड़े हुए ब्रह्मास्त्र से हो रही मस्तिष्क की जलन को शांत किया था।
इस घटना को निम्न प्रकार से और ज्यादा स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। अर्जुन भीलरूपी शिव से कई वर्षों तक युद्ध करता रहा, पहले तीरों से और फिर मल्लयुद्ध से। दरअसल ऐसा युद्ध अहंकार और सत्य के बीच ही हो सकता है, क्योंकि दो व्यक्ति तो वर्षों तक लगातार नहीं लड़ सकते। अंहकार पहले अपने जीवन के सारे साजोसामान और सारी समृद्धियां परमात्मा को झुठलाने में लगा देता है। परमात्मा उन्हें बारीबारी से नष्ट करते जाते हैं ताकि वह सुधर सके। बेशक वे उन्हें उसके मन में ही नष्ट करे उनसे बोरियत के रूप में, बाहरी भौतिक रूप में नहीं। अंत में जब कुछ नहीं बचता तो आदमी अपने अंदर मौजूद उन भौतिक उपलब्धियों की यादों और वासनाओं की मदद से प्रभु से लड़ता है मतलब परमात्मा से अलग होकर अपनी पृथक सत्ता बनाए रखता है। अगर कोई घर का सदस्य घर छोड़ कर जाएगा, तो लड़कर ही जाएगा, प्रेमभाव से गले मिलकर तो नहीं। वासना पंजाबी शब्द वाशना से बना लगता है, जिसका मतलब गंध होता है। सारा मजा गंध में ही होता है। जब जुकाम आदि में गंध महसूस नहीं होती, तब खाना बिल्कुल भी स्वादिष्ट नहीं लगता। आपने देखा होगा कि कभी कोई पुरानी धुंधली याद आती है, पूरे मजे के साथ। ऐसा लगता है कि जो मजा उस असली स्थूल भौतिक घटना के समय भी नहीं आया होगा, वो उसकी बहुत धुंधली सी याद में आता है। यही उस घटना की वासना

या गंध है। यह ऐसे ही होती है जैसे किसी इत्र की खुशबू। शायद यही संसार का सबसे सूक्ष्म रूप है जिसे तन्मात्रा भी कहते हैं। अगर बीती घटनाओं या बीते संसार की ऐसी गंधें आ रही हों, तो समझो योगी साधना के उच्च पद पर स्थित है और उसका सांसारिक कचरा शुद्ध होकर आत्मा में विलीन होता जा रहा है। शीघ्र ही उसे जागृति की झलक भी मिल सकती है। जब वासना रूपी अंतिम हथियार भी खत्म हो जाता है, तब वह अंधेरे जैसे में डूबने लगता है, जिसे डार्क नाइट ऑफ साउल या आत्मा की अंधेरी रात भी कहते हैं। फिर वह परमात्मा को हराने के लिए उन्हींके मंदिर जाता है, मतलब वह शिव को उठाकर फेंकने के लिए उन्हीं के पैर पकड़ता है। यह ऐसे ही है जेसे आदमी भौतिक समृद्धियों की मुराद मांगने मंदिर जाता है। फिर परमात्मा प्रसन्न होकर उसके सामने अपना असली रूप प्रकट कर देते हैं, जिससे वह उसी पल हार मान लेता है। परमात्मा के प्रकाश के सामने अहंकार का अंधेरा टिक ही नहीं सकता। शायद यही जागृति है।

कुंडलिनीयोग से गंगा की तरह बहती हुई शक्ति शिवलिंगरूपी चक्रों को सिंचित करती है

अत्रि-अनसूया की प्रसिद्ध पौराणिक कथा

शिवपुराण में अनसूया की कथा आती है। अनसूया मतलब किसी की असूया या निंदा न करने वाली। एक बार महान अकाल पड़ा। हर जगह पानी की कमी हो गई। लोग व प्राणी प्यास से व्याकुल होकर मरने लगे। साधुओं से संसार का दुख देखा नहीं जाता। इसलिए अत्रि मुनि पानी के लिए तप करने लगे। उनके शिष्य भी उनको छोड़कर चले गए। केवल अनसूया अपने पति की सेवा करती रही और प्रतिदिन शिवलिंग का पूजन करती रही। एक दिन अत्रि ने पानी मांगा। अनसूया कमंडल लेकर पानी ढूंढने चल पड़ी। रास्ते में उसे गंगा मिली। गंगा अनसूया के पातिव्रत्य से प्रसन्न हो गई। अनसूया ने गंगा से पानी मांगा। गंगा ने उसे एक गड्ढा करने को कहा। वह गड्ढा पानी से भर गया। अनसूया पानी लेकर चली गई। उसने अत्रि को पानी पिलाया। अत्रि ने कहा कि वह रोज के पिए जाने वाले पानी के जैसा नहीं था। अनसूया ने सारी बात बता दी। वह अत्रि को उस गड्ढे के पास ले गई। दोनों ने उसमें आचमन व स्नान किया। उससे सारे लोक तृप्त हो गए। गंगा जाने लगी तो अनसूया ने उससे हमेशा वहीं रहने के लिए प्रार्थना की। गंगा ने बदले में उससे उसका एक साल का पतिव्रत धर्म का और शिव पूजा का फल मांगा। गंगा ने कहा कि उसे पतिव्रता धर्म सबसे ज्यादा पसंद है। अनसूया ने वह दे दिया तो गंगा वहीं पर बस गई। साथ में शिव भी अत्रीश्वर लिंग के रूप में हमेशा के लिए वहीं विराजमान हो गए।

मिथक कथा का स्पष्टीकरण

अत्रि जीवात्मा है। अत्रि का शाब्दिक अर्थ है, तीनों गुणों से रहित। ऐसा आत्मा ही है। अनसूया बुद्धि है। बुद्धि किसी की निंदा नहीं करती, क्योंकि वह सबसे अपना काम बनवाना चाहती है। निकम्मा मन ही निंदा करता है। बुद्धि अपने पति जीव की पतिव्रता पत्नि की तरह ही है। वह जीव की हर प्रकार से सेवा करती है, साथ में परमेश्वर शिव की पूजा करती रहती है। निकम्मा मन ही कुछ नहीं करता। दरअसल बुद्धि से काम होता है, और कर्म को ही पूजा कहा गया है। शिवलिंग की पूजा इसलिए कहा है क्योंकि संसार पुरुष मतलब शिव और प्रकृति मतलब शक्ति के संयोग से ही बना है। शरीर ही वह सूखाग्रस्त देश है। शरीर की सभी कोशिकाएं ही उसके लोगबाग और प्राणी हैं। वे प्यासे मतलब शक्तिरूपी जल से वंचित रहने लगे। शक्ति जल की तरह ही बहती है। बुद्धि ऋषि अत्रि रूपी आत्मा को गुजारे लायक शक्ति या जीवनयापन के लिए साधारण पानी दिलवाती थी। पर उससे पूरे शरीरदेश का गुजारा नहीं होता था। इसलिए अतिरिक्त

शक्ति के लिए ऋषि तप अर्थात कुंडलिनी योगसाधना करते हैं। एकदिन ऋषिजीव के शक्तिजल मांगने पर अनसूयाबुद्धि पूरे देहदेश में भटकने लगी उसकी खोज में। उसे शिवलिंग की कृपा से मूलाधार के आसपास यौनाधारित कुंडलिनी शक्ति मतलब गंगा महसूस हुई। उसने शरीर के प्राणों को मतलब दहदेश के कर्मचारियों को वहां गड्ढा बनाने के लिए मतलब सिद्धासन में मूलाधार को एड़ी से दबाने के लिए प्रेरित किया या योगासनों, मालिशों आदि से पिछले मणिपुर चक्र में संवेदनात्मक गड्ढा बनवाया। मुझे तो लगता है कि पीठ वाले मूलाधार या हिप बोन से ऊपर की ओर लगता गहरा गड्ढा ही वह गड्ढा है। उसमे मालिश के समय सीधी हथेली के आधार से जोर से दबाकर और धीरे धीरे ऊपर खिसका कर तेज व आनंदमय सनसनी महसूस होती है जो रीढ़ की हड्डी में ऊपर की ओर चढ़ती लगती है। यह असली मूलाधार या मूलाधार से सीधा जुड़ा लगता है, क्योंकि मूलाधार को भी गड्ढा ही कहा जाता है अक्सर। मेरुदंड में उंगलियों के बल से मालिश नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इससे नाजुक हड्डी में चोट जैसी हानि का डर बना रह सकता है। वहां दिव्य जल भर गया मतलब वहां शक्ति संवेदना महसूस हुई। उसने वह जल ऋषि को पिलाया मतलब जीवात्मा ने उस संवेदना को महसूस किया। जीवात्मा को वह और दिन से अलग और दिव्य लगा क्योंकि उसमें यौनानंद भी मिश्रित था। दोनों ने उसमें स्नान आचमन किया मतलब वह मूलाधार से चढ़कर मस्तिष्क तक चढ़ गई जिससे पूरे शरीर के साथ दोनों तरोताजा हो गए। बुद्धि और जीवात्मा दोनों मस्तिष्क में रहते हैं और आपस में जुड़े होते हैं इसलिए सबकुछ साथ साथ महसूस करते हैं। इसको दूसरे तरीके से भी ले सकते हैं कि एक तांत्रिक जोड़ा यबयुम आसन में एकसाथ शक्ति का उपभोग कर रहा है। सारे जीवजंतु जल पीकर तृप्त हो गए मतलब शरीर के सारे सेल्स शक्ति से रिफ्रेश और रिचार्ज हो गए। गंगा को अनसूया का पतिव्रता धर्म पसंद आया। जरूर उसने उसकी परीक्षा ली होगी, तभी पता चला। आजकल तो पतिव्रता धर्म के परीक्षक बहुत हैं। दफ्तर या कामधंधे पे जाने वाली महिलाओं को विभिन्न पुरूषों के द्वारा उन्हें प्रेमभरी अश्लीलता से झांकना व उनसे बतियाना, उनसे हरकत करने की फिराक में रहना आदि उनकी परीक्षा ही है। घर के अंदर बैठकर परीक्षा थोड़े न होगी। मतलब साफ़ है कि रहो सबके साथ पर सेवा अपने पति की ही करो। गंगा ने स्थायी तौर पर वहां बसने के बदले में अनसूया से एकसाल का सदकर्मफल मांगा मतलब एक साल की तांत्रिक योगसाधना और शिवलिंग पूजा से सुषुम्ना स्थायी तौर पर जागृत हो सकती है। वहां अत्रीश्वर लिंग की भी स्थायी स्थापना हो गई। मुझे तो यह जागृत मूलाधार चक्र ही लगता है। चक्र लिंगरूप ही हैं, क्योंकि वहां लिंग जैसी ही संवेदना अनुभूत होती है। द्वादश ज्योतिर्लिंग बारह चक्र ही हैं। ज्योति वहां ध्यानचित्र के चमकने से पैदा होती है। वह ध्यानचित्र शिव, गुरु, प्रेमी आदि किसी का भी रूप हो सकता है। शिवपुराण के अनुसार बहुत से लिंग और उपलिंग हैं, पर ये बारह ज्योतिर्लिंग मुख्य हैं। अन्य लिंगों को लिंग ही कहा है, ज्योतिर्लिंग नहीं, क्योंकि कुंडलिनीचित्र की चमक चक्रों पर ही महसूस होती है। वैसे तो शरीर की हरेक कोशिका को लिंग कह सकते हैं, क्योंकि सबके ऊपर शक्तिरूपी जल गिरने से ही वे

क्रियाशील हैं। जहां तक गंगारूपी कुंडलिनी शक्ति पहुंचती है स्नान कराने को, वहां तक लिंग ही लिंग हैं। वैसे भी रीढ़ की हड्डी में सेरेब्रोस्पाइनल फ्लूड बहता है, जो पानी की तरह ही है। कई वैज्ञानिक दावा करते हैं कि उसी फ्लूड के प्रवाह के रूप में शक्ति का प्रवाह होता है। हालंकि सुषुम्ना जागरण के समय वह चमकीली संवेदना रेखा के रूप में बहती है। हो सकता है कि दोनों ही तरीकों से प्रवाह हो, खासकर आम व साधारण शक्ति प्रवाह में फ्लूड प्रवाह का योगदान ज्यादा हो। इस कथा से लगता है कि किसी ऋषि ने कुंडलिनी शक्ति की खोज कर के उसको महसूस किया, जिसको उन्होंने सीधा न बताकर मिथक कथा के रूप में बताया।

कुंडलिनी जागरण का कोर्स भौतिक दुनियादारी की डिग्री के साथ संलग्न प्रतीत होता है

शायद कुंडलिनी जागरण जैसी वैज्ञानिक और रोमांचकारी घटना को अजीब, सबसे हटकर, अलौकिक, धर्म या संप्रदाय से जुड़ा या आत्मा से ही जुड़ा हुआ दिखाया गया। पता नहीं क्यों आत्मा को लोग पड़ोसी के खेत में उगी मूली समझ लेते हैं। आत्मा तो अपना आप है, सेल्फ है। अंग्रेजी का सेल्फ फिर भी ज्यादा सटीक लगता है। संस्कृत का आत्मन शब्द भी ठीक है, क्योंकि यह अपने आप या सेल्फ के लिए प्रयुक्त शब्द ही है। अन्य भाषाओं में लोग बात का बतंगड़ बना सकते हैं। कुंडलिनी जागरण भौतिक सुखानुभूति का चरम की तरह ही तो है। भौतिक उपलब्धियों के शीर्ष की तरह ही तो है। जब आदमी इसे भौतिक दुनिया से अलग समझता है, तब वह दुनिया से अलगथलग सा रहने लगता है, किसी अलग ही अलौकिक आंनद या जागरण की खोज में, पर दरअसल उसे मिलता कुछ भी नहीं है। किसी जागृत व्यक्ति के बारे में लोग बड़ीबड़ी, हैरानी व पराएपन या अजनबीपन से भरी आंखें करके बोलते हैं कि वह तो भाई दुनियादारी से हटकर बाबाओं वाली विशेष दुनिया का शख्स है। शायद उससे डरते जैसे भी हैं जैसे कोई एलियन से डरता है। वैसे ऐसा है भी और नहीं भी है। यह समाज और संस्कृति पर निर्भर करता है। वैदिक समाज और संस्कृति वालों को वह अपना नायक या प्रेमास्पद लग सकता है, तो अवैदिक तत्त्वों को इसके विपरीत। इसका कारण यह है कि वैदिक संस्कृति जागृति के सबसे करीब और पक्षधर है। अवैदिक लोग तो यह समझते ही नहीं कि जिस भौतिक मौजमस्ती की वे बूंद बूंद की तरफ़ भागे फिरते हैं, मानो उसी भौतिक मस्ती का उसने पूरा घड़ा जैसा ही इकट्ठा पी लिया है। शायद कोई पारलौकिक वगैरह कुछ नहीं। यह इसलिए क्योंकि उन्होंने सुना ही ऐसा है, उन्हें जन्म से लेकर सिखाया ही ऐसा गया है। अगर दुनिया से दूर रहकर जागृति मिलती तब तो सभी बाबाओं को मिलती, पर मुझे तो एक बाबा भी नहीं दिखा आजतक। मैंने बहुत से बाबाओं के बारे में पढ़ा सुना, पर कहीं उन्हें जागृति का अनुभव होते नहीं जान पाया। बहुत से बाबाओं से बात भी की, वे तो जागृति की परिभाषा भी नहीं दे पाए। कल्पना करो कई पर्वतारोही दोस्त एवरेस्ट चढ़ रहे हों। अचानक उनमें से एक बोले कि उसने तो इससे भी बड़ी उंचाई मैदान में रहकर ही छू ली है जागृति के रूप में, पर कोई विश्वास नहीं करेगा। सब बोलेंगे जागृति एक अलग विषय है, और भौतिक उपलब्धि अलग। इससे क्या होता है कि जब आदमी बड़ी भौतिक उपलब्धि भी हासिल कर लेता है, तब भी वह जागृति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित नहीं होता, क्योंकि उसने माना ही नहीं कि उसके सारे भौतिक प्रयास एक प्रकार के जागृति को प्राप्त करने के प्रयास ही हैं। वह भौतिक विकास के शिखर पर पहुंचकर भी जागृति से सिर्फ एक कदम दूर होता है अपनी इसी मूर्ख मानयता की वजह से। वह समुद्र में मछली की तरह प्यासा होता है। जो सही मान्यता में स्थित रहता है, उसे भौतिकता के

चरम के निकट ही जागृति का अहसास होने लगता है, और तंत्र, योग आदि की सहायता से एक कदम की अंतिम छलांग लगा के उसे पा भी लेता है। जो भेदभाव की गलत मान्यता में रहता है, वह भौतिक दुनियादारी की मौजमस्ती या विकास के चरम के पास पहुंचकर अपनी यात्रा का अंत मान लेता है, और निश्चय करता है कि अब भौतिकता का विषय खतम और अब अध्यात्म का विषय शुरु से प्रारंभ करेगा। मतलब वह पांच में से चार साल की अधूरी डिग्री को संदूक में रखकर पांचवे व अंतिम वर्ष के जागृति के विषय को देखकर बोलता है कि यह तो अध्यात्म का विषय है, इससे उसे क्या मतलब। थोड़े टाइम बाद वह चार साल की डिग्री भी भूल जाता है, और टाइम गैप के कारण उसे पांचवे वर्ष में दाखिला भी नहीं मिल पाता। मजबूरन वह अध्यात्म का विषय नर्सरी केजी से पढ़ना शुरु करता है। सोचो उसे फिर कितना समय लगेगा। संलग्न या अटैचड जागृति के एक साल के आसान कोर्स को छोड़कर वह सत्रह साल की जागृति की डिग्री को चुनता है। जब तक वह मिलती है, तब तक आदमी बूढ़ा हो जाता है। फिर पता नहीं किस जन्म में मिलेगी। जागृति जवान शरीर रहते मिल जाए तो अच्छा है, उसके बाद तो भाई राम भरोसे। ऐसी संकुचित सोच एकदम से नहीं आई है, पुराने पंथों के अंधानुकरण से धीरेधीरे समाज में फैली है। इसलिए पुरानी अच्छी बातों को तो मानना ही चाहिए, पर आदमी को स्वतंत्र सोच का भी होना चहिए। मैं सीमित कट्टरता का विरोधी नहीं हूं। जहां भी मैंने कट्टरता के विरोध की बात की है, उसे अतिकट्टरता का विरोध समझना चाहिए। अब हर जगह अतिअति तो नहीं लगा सकते। ये सब शब्दों के खेल हैं, जो आराम से बात का बतंगड़ बना सकते हैं। कुछ कट्टरता तो धर्म के लिए जरुरी भी होती है। अतिकट्टरता खराब होती है। सारे अमानवीय काम अतिकट्टरता से होते हैं, सीमित या साधारण कट्टरता से नहीं। कट्टरता से आदमी अपने मानवीय नियमधर्म पर दृढ़ता से टिका रहता है। धर्म क्या दुनिया के हर काम के लिए कुछ कट्टरता जरूरी होती है। अगर हिंदुओं में कट्टरता न होती, तो उनके बहुमूल्य वेदपुराण आज तक संरक्षित न रहते, खासकर जैसे हमले उनपर होते आए हैं। किसी देश की संस्कृति, तकनीक व बोलचाल आदि अनगिनत सामाजिक उपलब्धियां कट्टरता से ही संरक्षित रहती हैं, और पीढ़ी दर पीढ़ी आगे से आगे सौंपी जाती रहती हैं। आजकल हाल यह है कि बेचारे हिंदुओं के द्वारा अपनी और अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए अपनाई जा रही मामूली सी कट्टरता पर भी प्रश्नचिह्न लगाया जा रहा है, और अन्य अनेक वर्गों की अतिकट्टरता को भी नजरंदाज किया जा रहा है। इस चाल को समझने की जरूरत है। आत्मरक्षा के लिए कुछ तथाकथित कट्टर हिंदु देश में समान नागरिक संहिता की वकालत कर रहे हैं, वहीं हिंदुओं का बड़ा वर्ग अन्य वर्गों की चाल में आकर और कुछ निजी स्वार्थों के लालच में आकर अपने को पूरी तरह कट्टरताहीन साबित करने के लिए उनका विरोध कर रहा है। यही वजह है कि बड़े भारी अंतर से बहुसंख्यक होकर भी हिंदु बंटे हुए हैं, और अपनी सनातन संस्कृति की रक्षा तक नहीं कर पा रहे हैं, उसका विकास तो दूर की बात है। अशुभ कट्टरता ने शुभ कट्टरता को परेशान किया हुआ है। कहते हैं कि बारह वर्ष की साधना के बाद कुंडलिनी जागरण मिलता है।

इसका यह मतलब नहीं कि बारह साल तक नाक पकड़कर बैठे रहने से जागृति मिलती है। इसका मतलब यह है कि अगर उपरोक्त सही मान्यता के साथ बारह वर्ष तक युक्तियुक्त ढंग से भौतिक दुनियादारी में रहा जाए, तो तेरहवें वर्ष की साधना से कुंडलिनी जागरण मिल सकता है। यह ऐसे ही होता है, जैसे अगर बीटेक की डिग्री के अंत में छात्रों को बोला जाए कि इसके साथ एमटेक की एक साल की डिग्री भी जोड़ी जा रही है, तो आधे से ज्यादा बच्चे छोड़ के चले जाएंगे, क्योंकि वे उसके लिए मानसिक रूप से तैयार नहीं थे। परंतु अगर शुरु से ही चार साल की बीटेकएमटेक इंटीग्रेटिड डिग्री करवाई जाए, तो सभी बच्चे आसानी से कर लेते हैं, क्योंकि वे उसके लिए प्रारंभ से लेकर ही हमेशा मानसिक रूप से तैयार रहे हैं। विश्वास और लगन का महत्त्व जीवन के हरेक क्षेत्र में है। मैंने बचपन में सब तीर्थ किए, जिन्हें चार धाम यात्रा कहते हैं। उस पर भी समय मिलने पर पोस्ट बनाऊंगा। संभवतः इसीलिए जागृति हुई। कई लोग चार दिन योग करके दावा करने लग जाते हैं कि जागृति मिल गई। वो नाड़ियों की हलचल को जागृति मान लेते हैं। माना कि योग करने से जागृति मिलती है, पर सही योगाभ्यास तक पहुंचने के लिए आध्यात्मिक अभ्यास करते हुऐ बहुत लंबा समय लग सकता है। इसीलिए सनातन वैदिक धर्म में विस्तृत आध्यात्मिक प्रक्रियाएं हैं। यह ऐसे ही है जैसे धरती के सबसे बाहरी ऑर्बिट से बाहर अंतरिक्ष में छलांग लगाना बहुत आसान है पर वहां तक पहुंचने के लिए बहुत मेहनत करनी पड़ती है। यह अलग बात है कि कोई तेज दिमाग आदमी किसी अनुभवी आदमी से एकदम सीख जाए, पर ऐसे लोग बहुत बिरले होते हैं। शास्त्रों में इन तीर्थों के प्रति विश्वास बनवाया गया है। पूरे भारत में लगभग सभी स्थानों को अध्यात्म कथाओं के साथ जोड़ा गया है। इससे उन स्थानों को दिव्यता मिलती है। विश्वास या मान्यता में बहुत बल है। उल्टी मान्यता से ही अनंत आत्मा सीमित जगत बन जाता है। जब मान्यता को सीधा किया जाता है, तो सीमित जगत दुबारा अपने असली अनंत आत्मरूप में आ जाता है। क्वांटम विज्ञान भी यही सिद्ध करता है कि अगर पदार्थ को खंडखंड या कणरूप मानोगे तो वह वैसा ही दिखेगा, और अगर अखंड या तरंगरूप मानोगे तो वैसा ही दिखेगा, बेशक असली, सुखरूप और मोक्षरूप दूसरे वाला रूप अर्थात अखंड या अद्वैत रूप ही है। मुझे तो लगता है कि जो सनातन धर्म के कर्मकांड हैं, वे दरअसल शरीर में हो रहीं यौगिक चीजें और क्रियाएं हैं, जिन्हें स्थूल रूप देकर स्थूल जगत में स्थूल वस्तुओं और क्रियाओं के रूप में दिखाया जाता है। इसके दो लाभ होते हैं। एक तो दुनियादारी की सभी चीजों व क्रियाओं में दिव्यता आ जाती है, जिससे सबकुछ पूजा ही बन जाता है। मानो तो पत्थर में भी भगवान है, न मानो तो कहीं भी नहीं है। दूसरा, लोगों के अवचेतन मन पर उनका सूक्ष्म प्रभाव लगातार पड़ता रहता है, जिससे लोग अनायास ही योग की तरफ मुड़ते चले जाते हैं। पुराने जमाने में लोगों के पास बहुत सा अतिरिक्त या खाली समय होता था, खासकर भारत में क्योंकि अनाज आदि प्राकृतिक संसाधनो की उपज अच्छी थी और तकनीकी कलिष्टता या उससे उपजा तनाव भी नहीं था। मानसूनी मौसम है भारत का। यहां मानसून में खूब फसल उगा कर लोग भंडारित कर देते होंगे और पूरे साल

आराम से बैठकर उसका उपभोग करते होंगे, क्योंकि यहां मानसून के मौसम में ही वर्षा होती है, बाकि पूरे साल खुशनुमा धूप खिली रहती है। इसलिए बहुत सोच समझ कर वेदपुराण लिखे गए होंगे ताकि समाज में स्वीकार हो सकें। उनके ऊपर वादविवाद हुए होंगे, फिर उनके संशोधन भी हुए होंगे। आज तो हर कोई पुस्तक लिख दे रहा है, जिसपे न चर्चा होती है और न वादविवाद। इसलिए इनकी प्रामाणिकता पर वेदपुराणों से ज्यादा संदेह है। सभी मिथक कथाओं का रहस्योद्घाटन आम बुद्धि से नहीं हो सकता। इसका मतलब यह नहीं है कि वे बिल्कुल कपोलकल्पित या बिना किसी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के है। पर जिन बहुत सी मिथक कथाओं का रहस्योद्घाटन इस वैबसाईट पर है, इससे यही सबसे बड़ा संदेश जाता है कि वेदपुराणों की सभी मिथक कथाएं शास्त्रीय, सैद्धांतिक और अध्यात्मवैज्ञानिक हैं। इसलिए विश्वास करने में ही भलाई है क्योंकि विश्वास में बहुत शक्ति है। अन्य धर्मों या संप्रदायों की तरह सनातन हिंदु धर्म किसी एक व्यक्ति ने नहीं बनाया है बल्कि इसे अनगिनत ब्राह्मणों, ऋषियों, योगियों और दार्शनिकों ने अनंत कालखंड की धारा से सींचा है। इसीलिए यह सर्वाधिक लोकतंत्रात्मक धर्म प्रतीत होता है।

कुंडलिनीयोग महिषासुर वध की कथा के रूप में वर्णित किया गया है

पुराणों का तरीका वैदिक अर्थात शास्त्रीय अर्थात सामाजिक होता है। इनकी कथाओं में शालीनता, शिष्टाचार और अनुशासन होता है। मर्यादित बोल होते हैं। उनमें असामाजिक रहस्य भी सामाजिक ढंग से वर्णित होते हैं। उदाहरण के लिए मूलाधार को अंधेरे गहरे गड्ढे या पाताल या समुद्र के नाम से वर्णित किया होता है। भटकते मन के आसक्तिपूर्ण विचारों को या अहंकार को राक्षसों या जानवरों की उपमा दी जाती है। वे राक्षस गड्ढे में घुसते दिखाए जाते हैं। वे मनुष्यों समेत सभी जीवों और देवताओं को मारते और परेशान करते दिखाए जाते हैं। फिर इंद्र आदि देवता ब्रह्मा के पास और वे परमात्मारूपी नायक के पास सहायता के लिए जाते हुए और उनकी प्रार्थना करते हुऐ दिखाए जाते हैं। फिर कहानी का नायक उस गड्ढे में घुसकर राक्षसों और उनके अधिपति को बाहर निकालता है। उनसे लड़ता है और उन्हें मारकर या उन्हें पवित्र करके उन्हें मोक्षरूपी सर्वोच्च पद प्रदान करता है। वस्तुतः सभी विचार परमात्मा में ही विलीन होते हैं। यह कुंडलिनी योग का अध्यात्मविज्ञान ही तो है। मतलब परमात्मा ने शरीर में ही अज्ञान से लड़ने के लिए योगकुंडलिनी शक्ति स्थपित कर रखी है। योगी मूलाधार क्षेत्र में ध्यानछवि पर ध्यान केंद्रित करता है। जब वह छवि नाड़ियों से होकर मस्तिष्क तक आती है, तो अपने साथ अवचेतन मन के दबे विचार और भावनाएं भी ऊपर ले आती है। इससे वे साक्षीभाव के साथ मन में अभिव्यक्त होकर आत्मा में विलीन हो जाते हैं। वास्तव में मूलाधार से शक्ति ऊपर चढ़ती है, ध्यानछवि के सहयोग से। वही शक्ति मस्तिष्क में दबे भावों को उजागर करती है। समझाने के लिए कहा जाता है कि शिवरूपी ध्यानछवि ने अपने साथ सभी राक्षसरूपी दबी हुईं छवियों को मूलाधाररूपी गड्ढे से बाहर निकाला और उन्हें मारकर मुक्त कर दिया। शक्ति मूलाधार में सोई होती है, जिस वजह से मस्तिष्क को ऊर्जा न मिलने से उसके कुंडलिनीरूपी विचारभाव भी सोए होते हैं। इसको ऐसा समझाया जाता है कि वे विचारभाव भी मूलाधार में सोए हैं। जब मूलाधार के सशक्त होने से वह शक्ति जागने लगती है, तो वह मस्तिष्क के विचारभावों को भी जगाने अर्थात अभिव्यक्त करने लगती है। इसको ऐसे समझाया जाता है कि मूलाधार की कुंडलिनीशक्ति जाग रही है, अर्थात शक्ति और विचारभावों का मिश्रण जाग रहा है। इसीलिए ज्यादा उम्र जीने वाले लोग अपने मूलाधार क्षेत्र का खास ध्यान रख रहे होते हैं। मैं वेबसीरीज लिव टू हैंडरड इयर्ज देख रहा था, जहां जापान के ओकीनावा के लोगों की लंबी उम्र का एक राज कसरत, शारीरिक श्रम आदि से अपने बेस को मजबूत रखना भी था। आधार से ही मंजिल है। वे खुद तो बस उसे सुलभ और अनुकूल ही बनाते हैं। यह पतंजलि योग के कथन के अनुसार ही है कि योग करते समय परमात्मा के आश्रित भी रहना चाहिए, और उनकी भक्ति भी करनी चाहिए क्योंकि वे योग को सफल बनाने में मदद करते हैं। इसको उन्होंने

ईश्वर प्राणिधान कहा है। सभी कथाओं में लगभग ऐसा ही ट्रेंड है। बीचबीच में नामरूप के फेरबदल के साथ ऐसी ही कथाएं आती रहती हैं। शुद्ध आध्यात्मिक ज्ञान के कुछ श्लोकों या पृष्ठों के बाद ऐसी कोई रूपात्मक कथा आ ही जाती है, ताकि पाठकों की रुचि बनी रहे। शिवपुराण में शिव उनको मारने वाले नायक दिखाए जाते हैं तो विष्णुपूराण में विष्णु। एक ही अद्वैत तत्त्व को भिन्नभिन्न देवताओँ के नाम से पुकारा जाता है, जो जागृतावस्था का अनुभव है। शरीर को ब्रह्मांड, और विशेष अंगों व इंद्रियों को साधारण देवता दिखाया गया है। लोगों को या शरीर की कोशिकाओं या साधारण अंगों को आम लोगबाग या जनता के रूप में दिखाया गया है। ये सब आपस मे जुड़े हैं।

उदाहरण के लिए देवीभागवत पुराण में एक कथा आती है कि महिषासुर नाम का एक राक्षस भैंसे की आकृति वाला था। वह कभी सुंदर युवक का रूप बना लेता था तो कभी भैंसा बन जाता था क्योंकि वह बहुरूपिया था। आम अज्ञानी आदमी भी तो ऐसा ही बहुरूपिया होता है। कभी वह बाहरबाहर की वेशभूषा और मन के आसक्तिपूर्ण विचारों की चमकदमक से सुंदर रूप बना लेता है, तो कभी अपने असली और छुपे हुए रूप में आ जाता है, जो अंधेरे और अहंकार के रूप में है। कभी वह आधा भैंसा और आधा आदमी, जुड़ा हुआ दिखाया जाता है। यह ऐसे ही है जब आदमी के अंदर अवसाद जैसा हो। उस समय उसके मन में अंधेरे के साथ धुंधले चित्र बन रहे होते हैं। या आदमी की वह हालत होती है जिसमें वह अपनी अंधेरी अवस्था का चालाकी से सामना करते हुऐ शुभ विचारों से प्रकाशित होने की कोशिश करता है। वह दैत्य मनुष्यों और देवताओं पर अत्याचार करता था, उन्हें मारता था और उन्हें पीड़ा पहुंचाता था। सभी की मृत्यु अज्ञान से ही होती है। दुख का कारण भी अज्ञान ही है। उसने देवताओं को स्वर्ग से भगा दिया था और सभी लोकों के शासन की कमान अपने हाथ में ले ली थी। वास्तव में देवता परमात्मा के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए मनुष्य की भौतिक तरक्की को सुनिश्चित करते हुऐ उसे उसकी तरफ मतलब मोक्ष की तरफ़ ले जाते हैं। वे स्थूल जगत को तो नियंत्रित करते ही हैं, साथ में शरीर में भी रहकर शरीर को नियंत्रण में रखते हैं। पर जब आदमी अज्ञान से उत्पन्न अहंकार के वश में हो जाता है, तब वह मनमाना आचरण करता है, जिससे उसकी भौतिक तरक्की भी दिखावटी और अंत में दुखदायी होती है, और वह परमात्मा से दूर चला जाता है। स्वर्ग मस्तिष्क है जिसमें सहस्रार और आज्ञाचक्र मुख्य स्थान हैं। मस्तिष्क ही स्वर्ग की तरह प्रकाशमान लोक है। ज्ञानी आदमी में देवता मतलब प्रकाशमान अद्वैत भाव इसको अपने नियंत्रण में रखके आदमी के शरीर व मन से शुभ कर्म करवाते हैं। पर अज्ञानी आदमी में तो इसे राक्षस मतलब अंधकाररूप या अहंकाररूप द्वैतभाव अपने नियंत्रण में लेके शरीर व मन से अशुभ कर्म करवाते हैं। शरीर के सभी काम तब भी देवता ही कर रहे होते हैं, पर वे स्वर्ग से दूर अन्य लोकों में छुप कर अपना काम करते हैं। एकप्रकार से वे दैत्यों के गुलाम जैसे हो जाते हैं। यह ऐसे ही है, जैसे किसी राज्य के सारे काम मजदूर ही करते हैं, चाहे उनकी पसंद का राजा होए या नापसंद का। अगर पसंद का

होए तो उन्हें उचित सम्मान व सुविधाएं मिलती हैं, और राजमहल में उचित पद या प्रतिनिधित्व मिलता है, अगर नापसंद का होए तो वे गुलाम जैसे बन कर रह जाते हैं। शरीर का राजा जीवात्मा है, जो मस्तिष्क में रहता है। सत्संग से वह देवताओं के प्रभाव में रहता है, और कुसंग से राक्षसों के। जैसी वह संगत करता है, वैसा ही वह बन जाता है। उस महिषासुर ने देवी से विवाह करने की इच्छा प्रस्तुत की। देवी ने उसे बहुत खेल खिलाया। अंत में उससे युद्ध करके उसे मार ही दिया। वह देवी में विलीन होकर मुक्त हो गया। एक अज्ञान से भरा आम आदमी भी ऐसा ही चाहता है और प्रयास करता है। जब वह आध्यात्मिक अज्ञान के अंधेरे में होता है, उस समय उसकी कुंडलिनी शक्ति मूलाधार में होती है। वह वहां से ऊपर उठना चाहती है। उसके लिए वह स्त्री से प्रणय और विवाह की कामना करता है। देवी जैसी कोई स्त्री उसका प्रस्ताव एकदम नहीं मानती। वह उसे अपने पीछे खूब नचाती है। इससे आदमी के मन में उस स्त्री की मनमोहक छवि एक निरंतर लगने वाली समाधि के रूप में बस जाती है। धीरेधीरे उस समाधिचित्र से उसके सारे कर्म और विचार जल कर खाक हो जाते हैं, और वह उसके निरंतर ध्यान से जागृत भी हो जाता है। जागृति दिलाने के बाद देवी भी उसे छोड़ कर चली जाती है। वह आदमी तो एकप्रकार से मर ही गया, क्योंकि रूपांतरण के कारण उसकी पिछली दुनिया खत्म हो जाती है। क्योंकि इस जागृति और रूपांतरण में देवी का सबसे ज्यादा योगदान था, इसलिए माना गया कि उसे देवी ने मारा। वास्तव में लगता भी ऐसा ही है। वह देवी दुश्मन भी लगती है और मित्र भी। दुश्मन इसलिए क्योंकि उसने पुरुष का संसार उजाड़ दिया या उसे मार दिया और मित्र इसलिए क्योंकि उसने उसे जागृति दिला दी या अपने में मिलाकर मुक्त कर दिया। तभी तो अधिकांश राक्षस देवता के साथ पूरी उम्र शत्रुता निभाकर भी उसके हाथों मरते समय उसकी स्तुति और प्रशंसा करते हुए उसे धन्यवाद देते हैं। देवी की जगह पुरुष रूप में देव भी हो सकता है। ये पुराणों की कथाओं का सामान्य स्टाईल और सिद्धांत है, जो अधिकांश रहस्यात्मक कथाओं में लागू होता है। ऐसा भी लगता है कि अन्य पुराणों में इन्हें शिवपुराण की अपेक्षा ज्यादा गुप्त रखा गया है। शिवपुराण की अधिकांश कथाओं में कुछ कुंजी शब्द या कुंजी वाक्य ऐसे होते हैं जो कथा को सुलझाने में मदद करते हैं। इसकी वजह यही लगती है कि शिवपुराण मुख्यतः मास्तमालंग और दुनियावी माया में डूबे लोगों के लिए बना है, जिनकी बुद्धि ज्यादा सूक्ष्म नहीं होती, और जिन्हें ऐसी कथाओं के रहस्योद्घाटन से ऑड या अजीब भी नहीं लगता। वैसे ये आम गृहस्थ जीवन का आम सिद्धांत है, पर जागृति से पहले यह कम ही अनुभव में आता है। इसे हम कुदरती कुंडलिनी योग भी कह सकते हैं। शास्त्रों में कहा जाता है कि जिसे भगवान का अवतार मारता है, वह उसी में विलीन होकर मुक्त हो जाता है। संभवतः इस कथा के मूल में भी यही सिद्धांत है।

कुंडलिनीयोग अतिरिक्त तांत्रिक शक्ति का उपभोग करता है

दोस्तों, शास्त्रों में विशेषकर शिवपुराण में एक कथा आती है कि एकबार देवराज इंद्र भगवान ब्रह्मा और अन्य देवताओं को साथ लेकर कैलाश जाकर भगवान शिव के दर्शन करने की इच्छा से अपने घर से निकले। भगवान शिव को तो यह पता लग ही गया, क्योंकि वे त्रिकालदर्शी हैं। उन्होंने लीला के लिए उनकी परीक्षा लेने की सोची। वे एक जटाधारी अवधूत का वेश बनाकर उनके मार्ग में खड़े हो गए। देवराज इंद्र ने उनसे पूछा कि वे कौन हैं, और उनसे रास्ता छोड़ने के लिए कहा। यह भी पूछा कि क्या शिव उस समय कैलाश पर ही थे। पर उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। उनसे बारबार पूछा गया, फिर भी उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। अंत में गुस्से में आकर इंद्र ने उनके ऊपर महा घातक अस्त्र वज्र चला दिया। उसी समय शिव अपने असली रूप में आ गए जिससे वज्र उनका कुछ न बिगाड़ सका। शिवजी को इंद्र पर बहुत क्रोध आ रहा था, और वे उसका वध ही करने वाले थे कि ब्रह्मा उनके पैरों में पड़कर उन्हें मनाने लगे। उससे शिव को उन पर दया आ गई। शिव ने उनसे पूछा कि वे अपना गुस्सा कहां डालें। पूर्णयोगी का गुस्सा अगर एकबार बाहर निकल आए तो वह वापिस नहीं लौटता। ब्रह्मा ने उन्हें वह गुस्सा समुद्र में डालने को कहा। उससे समुद्र से जलंधर असुर का जन्म हुआ।

उपरोक्त कथा का अध्यात्मवैज्ञानिक विश्लेषण

शिव का मतलब यहां जागृत व्यक्ति है। इंद्र का मतलब यहां साधारण तांत्रिक या साधारण पंचमकारी है। साधारण तंत्र से जो शक्ति मिलती है, वह कुंडलिनी ध्यान के लिए नहीं, बल्कि दुनियादारी की बढ़ौतरी के लिए इस्तेमाल होती है। इसमें काली तंत्रसिद्धियां जैसे कि मारण, टारण आदि भी शामिल हैं। सम्भवतः इंद्र के द्वारा मारण शक्ति के प्रयोग को ही वज्रप्रहार कहा गया है, क्योंकि जागृति की तरह ऐसी तांत्रिक शक्तियों का मूल स्रोत भी मेरुदंड से गुजरने वाली वज्रशक्ति या सुषुम्नाशक्ति ही प्रतीत होती है। अलौकिक शक्ति को प्राप्त करने का तरीका इससे अलग तो कोई दिखता नहीं शरीर में। पर उससे असली तंत्रयोगी का उसी तरह कुछ नहीं बिगड़ता जैसे जुगनू दीपक का कुछ नहीं बिगाड़ सकते, उल्टा खुद ही जल सकते हैं। कई बार बहुत से जुगनू इकट्ठे हो जाएं तो उसे थोड़ा ढक जरूर सकते हैं। इसी तरह बहुत शक्तिशाली वज्रशक्ति या बहुत से लोगों द्वारा चलाई गई घृणात्मक तांत्रिक वज्रशक्ति जागृत योगी का कुछ नुकसान भी कर सकती है। ऐसे तो वह अपनी हानि की कोई परवाह न करके सत्य की राह पर चलता रहता है, पर जब उसकी जान पे ही बन आती है, तो फिर आत्मरक्षा के लिए गुस्सा कुदरतन निकलता है, वह जानबूझ कर निकाला गया आम गुस्सा नहीं होता, और न ही

वह गुस्से की तरह लगता है। उसका गुस्सा रूपांतरित होकर निकलता है। जैसे कि किसी समाजसुधारक आंदोलन के रूप में या किसी को वरदान के रूप में। वह गुस्सा किसी का अहित नहीं करता, क्योंकि जागृत व्यक्ति से किसी का अहित होता ही नहीं बस तक। अब जलंधर की उत्पत्ति में समाज का कौन सा भला छिपा है, यह तो पता नहीं, पर इंद्र नष्ट होने से बच गया, मतलब सारी सृष्टि नष्ट होने से बच गई, क्योंकि इंद्र देवताओं का राजा है। गुस्सा आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन है। गुस्से से अपना ही शरीर कमजोर या नष्ट होता है, और हमारे अपने शरीर रूपी ब्रह्मांड में इंद्र समेत सारे देवता स्थित हैं। यह कह सकते हैं कि जलंधर मूलाधार को उतरी हुई गुस्से की ऊर्जा है। इसे कहते हैं गुस्सा पी लिया। उस समय तो पी लिया पर बाद में वह मूलाधार से अनैतिक प्रेम प्रसंग के रूप में भी निकल सकता है। यही जलंधर है जो पार्वती और लक्ष्मी के ऊपर आसक्त हो गया था। उसे पतिव्रता वृंदा ही मरने से बचाती थी। इसका मतलब है कि वह पत्नी की सहायता से प्राप्त तंत्रबल से शिव और विष्णु की तरह तेजस्वी हो गया था। वैसे भी उसे शिव का ही अंश माना जाता है। उसने सब देवताओं को पराजित कर दिया था, मतलब वह देवताओं से संचालित प्रकृति के वश में नहीं रह गया था, और सभी को दुख देते हुए भी तंत्रबल से सुखी रहता था। जब विष्णु ने धोखे से वृंदा का शील भंग किया तो उसने आत्मदाह कर लिया और वहां तुलसी का पौधा उग गया। तुलसी हिंदु धर्म का सबसे पवित्र पौधा है जो लगभग हर हिंदु परिवार के आंगन में उगा मिल जाएगा। यह औषधीय और आध्यात्मिक गुणों का भंडार है। मतलब साफ है कि पतिव्रता स्त्री सभी किस्म के मनुष्यों से श्रेष्ठ है जो हर घरपरिवार में होनी चाहिए। पंजाब का जालंधर नाम इसी असुर के नाम से पड़ा है। यहां एक वृंदा का मंदिर भी है। वास्तव में तंत्रयोगी की सफलता में उसकी पत्नि का बड़ा हाथ होता है। पत्नि अगर सहयोग न करे तो देवता भी सहयोग नहीं करते। मुक्ति की राह में असफल होना ही मरना है। वास्तव में जो ध्यान योगी होता है, उसका अतिरिक्त तांत्रिक बल कुंडलिनी ध्यान में खर्च होता रहता है, जिससे किसी का बुरा सोचने व बुरा करने के लिए शक्ति ही नहीं बची रहती। पर जो तांत्रिक आचारों और तकनीकों का इस्तेमाल तो करते हैं पर इष्ट ध्यान नहीं करते, उनमें अतिरिक्त तांत्रिक उर्जा शरीर में जमा हुई रहती है। वही उनसे गलत करवा सकती है। इसे चाहे काला जादू कहो या टोना टोटका या देसी भाषा में नजर लगना या जिहादी किस्म की मानसिकता रखना या खा पी कर हंगामा करना। कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी कि बहुत से संगठनों, राष्ट्रों, धर्मों या संप्रदायों द्वारा अपनी अवैध व अनैतिक बढ़ौत्तरी के लिए इसी अतिरिक्त या अनियंत्रित तांत्रिक ऊर्जा का इस्तेमाल सदियों से किया जाता रहा है। राक्षस भी इसी से पैदा होते थे, हालांकि मरते भी इसी से ही थे। यह उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है। एनर्जी ने रिलीज होना ही होता है। वैसे भी शिव मस्तमलंग हैं। मतलब वे अपने में ही मस्त हैं। इसका मतलब है कि वे अपने में ही सब गुण धारण कर लेते हैं आवश्यकता अनुसार। तभी उन्हे भूतिया कहा जाता है, क्योंकि वे जरूरत पड़ने पर तमोगुण भी स्वीकार कर लेते हैं। शायद इसी से तांत्रिक पंचमकार की अवधारणा हुई है। अन्य लोग

तो गुणों के संतुलन के लिए एकदूसरे पर आश्रित रहते हैं। कुछ लोग हमेशा सतोगुणी रहते हैं, जैसे कि विष्णु, तो कुछ तमोगुणी, जैसे असुर और पशु और अन्य कुछ रजोगुणी, जैसे कि ब्रह्मा और इंद्र। ये तीनों किस्म के लोग एकदूसरे पर आश्रित रहते हैं। इसलिए ये एकदूसरे को नाराज या परेशान करने से बचते हैं, जहां तक हो सके। खासकर सतोगुणी लोग, क्योंकि सतोगुण सबसे कमजोर होता है, और इसे अपने भारणपोषण के लिए भी अन्य दोनों गुणों की जरूरत पड़ती है। पर शिव को किसी की कोई परवाह नहीं है। वह अपने आप में पूर्ण सक्षम हैं। इसीलिए वे इंद्र को क्षमा करने के मूढ़ में नहीं होते पर लोकहित के लिए करना पड़ता है, अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए नहीं, क्योंकि उन्हें किसी की आवश्यकता ही नहीं है। जागृति की अवस्था को सतोगुणी नहीं कह सकते, बेशक यह सतोगुण की प्रचुरता से प्राप्त होती है। इसमें बेशक सतोगुण जैसा प्रकाश होता है पर वह आम दुनियावी सतोगुण से अलग होता है। उसमें तमोगुण के जैसा और रजोगुण के जैसा आभास भी होता है, पर वे भी इन दुनियावी गुणों से अलग लगते हैं। तीनों गुणों का मिश्रण भी नहीं कह सकते क्योंकि बेशक इसका वर्णन करने के लिए इनका सहारा लेना पड़ता होए, और यह इनके मिश्रण की तरह महसूस होता है, पर शास्त्रों के अनुसार यह इनका मिश्रण भी नहीं होता। शायद इसीलिए इसे त्रिगुणातीत या निर्गुण कहा गया है। यह ऐसे है जैसे अगर पानी में चीनी, नींबू और नमक बराबर मात्रा में घोला जाए तो वह पानी सादा लगेगा पर असल में वह शुद्ध सादा जल नहीं होता। इसी तरह अगर तीनों गुण बराबर रहें तो वह अवस्था त्रिगुणातीत लगेगी पर असल में वह आत्मा की शुद्ध त्रिगुणातीत या निर्गुण अवस्था नहीं होती। शायद इसी धोखे के कारण कई आध्यात्मिक नेता अपने आप को भगवान समझ बैठते हैं। इसी वजह से ही जागृति का अनुभव भी दुनियावी अनुभव से अलग स्वरूप वाला नहीं लगता। पर असल में दोनों के बीच में जमीन आसमान का फर्क होता है। जहां जागृति का अनुभव शुद्ध जल की तरह है, वहीं दुनियावी अनुभव नमक, नींबू और चीनी मिश्रित जल की तरह है। तीनों का अनुपात हरपल बदलता रहता है। जब यह बराबर हो जाता है, तब जागृति जैसा प्रकाश और सुख महसूस होता है। योग से इड़ापिंगला अर्थात यिनयांग के संतुलन से ऐसा ही होता है। यह हमें जागृति जैसी अवस्था का आभास देता है। इससे आदमी असली जागृति को प्राप्त करने के लिए प्रेरित होता है। इन सब बातों का मतलब साफ है कि शिव का तथाकथित तमोगुण उनकी जागृति में बाधक नहीं बल्कि सहायक होता है। वैसे वह तमोगुण नहीं होता पर तमोगुण जैसा लगता है। होता तो वह सतोगुण ही है। शायद सतोगुण के अहंकार को खत्म करके ऐसा होता है। शास्त्रों में भी ऐसा ही कहा है कि सतोगुण से भी जागृति तभी मिलती है, जब उसके प्रति भी अहम भाव नष्ट हो जाता है। अहम नष्ट होने से सतोगुण के रहते हुए भी वह ज्यादा ध्यान में नहीं रहता। उसके प्रति ध्यान या आसक्ति के अभाव से ही वह तमोगुण की तरह भासता है। शिव का तमोगुण ऐसा ही वर्चुअल अर्थात आभासी है, वास्तविक नहीं।

कुंडलिनीयोग आधारित हिंदु-पुराण पूरे विश्व के लिए प्रेरणास्रोत हैं

दोस्तों, वैसे तो इस सीरीज के रिवियू ऑनलाइन दायरे में पहले भी आ चुके हैं। पर सबका अपना अपना नजरिया होता है। मैंने तो इसे परिवार के साथ देख लिया। बच्चे भी बिना किसी उकसावे के उसे देखने हमारे साथ बैठ गए थे। यह सबसे बड़ा प्रमाण है इसके गुणवत्तापूर्ण होने का। आजकल के बच्चों को वैसे गेम वीडियो या हॉलीवुड मसाले से फ़ुरसत ही कहां है। हालंकि यह अलग बात है कि हम हरेक दृश्य की वाहवाही करते रहे, शायद उससे भी बच्चों को प्रेरणा मिली। आजकल यही तरीका है बच्चों को अपने संस्कारों के प्रति जागरूक करने का। इसमें जी फाइव कुछकुछ अच्छी भूमिका निभाता लग रहा। मुझे तो मात्र तीन वर्ष की आयु में ही चारों धाम यात्रा का सौभाग्य मिला था। उस समय जब चिकित्सा विज्ञान भी इतना विकसित नहीं हुआ था और चिकित्सा सुविधा भी आसानी से उपलब्ध नहीं होती थी। यात्रा के दौरान टाइफाइड भी हुआ था, यह पता नहीं कि अपनी इम्यूनिटी से खुद ठीक हुआ या दवाई से या देवताओं की कृपा से। ट्रेन का कोई रिजर्वेशन नहीं मिलता था उस समय। सोचो लगभग पूरे देश का भ्रमण, वह भी जनरल बोगी में। कई जगह तो भीड़ में लोग गोद में ही बैठने लग जाते थे। बिहार के गया में अकेले नदी में भागकर छोटे से गड्ढे में स्नान करना हो जब मैं गुम भी हो गया था, या खड़ी ट्रेन के सीट के पास किसी सुराख में पैर फंस जाना जब किसी भले यात्री ने चमत्कारिक ढंग से निकाला था, सब याद है। चंगलपेटु में रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर सोकर रात गुजारना हो या द्वारिका में अंग्रेज बच्चों को नगाड़े बजाते देखना, सब याद है। वहां तो मैं समुद्र से इकट्ठी की हुई सीपियां इकठ्ठी करकर के द्वारकाधीश कृष्ण के चारों तरफ़ घूमकर कुछ बड़बड़ाते हुए गिराता, जब पुजारी भी भक्तिभाव देखकर गदगद हो गए थे, वह भी याद है। मेरे लिए तो वह खेलतामाशा था औरों को देखदेख कर। एक जगह जहां बड़ी सी धर्मशाला में ठहरे थे, तो मुझे हंसाने के लिए पास के घर के एक बड़े से भैया बंदर की तरफ़ कद्दू जैसी कोई चीज़ फेंकते, वह भी याद है। बस इतना ही याद है। हां, गया में एक सुहागिन को रानी की तरह सजा के नदी की तरफ़ ले जाया जा रहा था। मुझे तो वह असली रानी और बहुत सुंदर लगी थी। आगे बहुत कुछ धुंधला है, जिसे लिखा और बोला नहीं जा सकता। शायद इसीलिए मुझे यह सीरीज अच्छी लगी। घर बैठे तीर्थों के दर्शन। मेरे घूमे हुए तीर्थ भी उसमें जरूर होंगे तभी अपनापन सा लगा। बचपन के संस्कार बहुत जरूरी होते हैं। आजकल तो कितना आसान हो गया है देशभर का भ्रमण। फिर भी लोग कहां जाते हैं और कहां ले जाते हैं बच्चों को। इससे कैसे उनमें संस्कार पड़ेंगे और कैसे होगी सनातन धर्म या भारतीय संस्कृति की रक्षा, यह सोचने का विषय है। दोनों शब्द एक दूसरे के पर्यायवाची जैसे हैं। सनातन धर्म के बिना भारतीय संस्कृति अधूरी है, और भारतीय संस्कृति के बिना सनातन धर्म अधूरा है। बात हो रही है हाल ही में जी फाइव

पर रिलीज हुई वेबसरीज सर्वम-शक्तिमयम की। इसमें अमेरिका से एक खोजी जिज्ञासु आता है और अंत में विश्वास को ही सबकुछ मानकर उसपर पुस्तक लिख बैठता है। वहीं अपने देश से एक परिवार शांति की खोज में जाता है, और मनचाही शांति पा लेता है। जिसको जो चाहिए, उसे मिल ही जाता है। किसी को वैज्ञानिक निष्कर्ष तो किसी को उसका अनुभव। सीरीज में सिर्फ दस एपिसोड और हरेक एपिसोड लगभग आधे घंटे का है, मतलब कुल पांच घंटे की, दो बड़ी फिल्मों के बराबर। हमने एक दिन में ही सारी देख ली, इतना मन लगा। वैसे अगले दिन मेरी पत्नी ने महिलाओं के एक ग्रुप के साथ खाटू श्याम और पुष्कर भी जाना था, इसलिए भी खत्म ही कर ली, ताकि तीर्थयात्रा के लिए अच्छा मूड़ बने और मन में कोई सस्पेंस न रहे।

हमारी माताजी बहुत आध्यात्मिक थीं। छोटी उम्र में बेशक किसी संतान संबंधी समस्या के निदान के रूप में एक साल उन्होंने पूरे साल प्रतिदिन मिट्टी के शिवलिंग सुबह बनाए, दिन में उनकी पूजा की और शाम को बहा दिए। उसके बाद उम्र भर हर साल पूरे श्रावण के महीने में यह नियम बना कर रहीं। मैं मानता हूं कि अधिकांश हिंदु पूरी उम्र भर इन्हीं आधारभूत आध्यात्मिक रिवाजों तक सीमित रहते हैं और अपनी साधना को वह मुक्तिगामी वेग नहीं दे पाते जिससे जागृति और मुक्ति मिल सके। पर यह आध्यात्मिक परंपराओं का दोष नहीं है। परंपराएं तो विश्वप्रसिद्ध हैं। बहुत से पाश्चात्य लोग भी इनके दीवाने होकर इन्हें अपना रहे हैं। अभी हाल ही में एक पड़ौस के मंदिर में बैठा था। तभी वहां कीर्तन शुरु हो गया। महिलाएं बहुत अच्छा गाना बजाना कर रही थीं। मैं आंख बंद करके, सिर और पीठ सीधे करके भजन की ताल के साथ जोरजोर से ताली बजाने लगा। जीभ को तालु से सटाकर खेचरी मुद्रा लगाई थी। ध्यान के साथ कुंडलिनी शक्ति चक्रों की ऐंठन के साथ बहुत अच्छे से घूमने लगी। हथेलियों के टकराने से आवाज भी हो रही थी और संवेदना भी महसूस हो रही थी। उससे कुंडलिनी के नीचे उतरने में भी मदद मिल रही थी, और हृदय चक्र पर उसके प्रकट होने में भी। बात स्पष्ट है कि संभवतः बाकि भक्तलोग मन की अस्थायी शांति के लिए ईजी गोइंग वे में लगे थे, पर मैं कुंडलिनी को मुक्तिगमी वेग मतलब एस्केप विलोसिटी देने की कोशिश में था। अध्यात्म से जब मन तृप्त सा हो जाता है तब भौतिक प्रगति का मन करता है। इससे मुझे लगता है कि पश्चिमी देशों के लोग कभी भारत या एशिया में रहते थे और भारत की आध्यात्मिक परंपराओं से जुड़े हुए थे। बाद में वे यूरोप आदि पश्चिमी देशों में चले गए।

ईसाई संस्था वाईएमसीए फिटनेस कक्षाओं के साथ योग भी सिखा रही है। एप्पल के संस्थापक स्टीव जॉब्स ने लिखा है कि कैसे 'ऑटोबायोग्राफी ऑफ ए योगी' ने उन्हें प्रभावित किया। मार्क जुकरबर्ग ने नीम करोली बाबा आश्रम में समय बिताया। गूगल के संस्थापक लैरी पेज, ई-बे के सह-संस्थापक जेफ स्कोल और अन्य प्रमुख व्यापारिक नेताओं ने अपने जीवन में उद्देश्य खोजने के लिए भगवान हनुमान के भक्त इस गुरु के आश्रम का

दौरा किया। 70 के दशक के बीटल्स और आज का हॉलीवुड भी इस पौराणिक अवधारणा से बच नहीं रहा है। जूलिया रॉबट्र्स से लेकर विल स्मिथ, ओपेनहाइमर और कई क्वांटम भौतिक विज्ञानी जैसे हेइज़ेनबर्ग, बोह्र, शोर्डिंगर आदि हिंदू धर्म से प्रभावित थे। जिनेवा के पास सर्न (CERN) संस्थान में एक पौराणिक नर्तक नटराज की मूर्ति है। 14 शीर्ष जर्मन विश्वविद्यालय संस्कृत पढ़ा रहे हैं, और यूरोपीय विश्वविद्यालयों में इसकी ऊंची मांग है। पिछली सदी के प्रसिद्ध मिथक कथाकार जोसेफ कैंपबेल हिंदू पौराणिक कथाओं से बहुत प्रभावित थे। प्रसिद्ध खगोल-भौतिक विज्ञानी कार्ल सागन भी इससे प्रभावित थे। आज ईसाई जगत में सबसे ज्यादा फॉलो किए जाने वाले आध्यात्मिक शिक्षक, जैसे एकहार्ट टोल, माइक सिंगर, वेन डायर, स्टीफन वोल्पर्ट (राम दास) और कई अन्य भी हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म की शिक्षाओं में गहरा विश्वास रखते हैं। लिसा मिलर ने एक बार कहा था कि ‘अब हम सभी (इसाई) हिंदू हैं।’

कुंडलिनी योग एक लाभ अनेक

दोस्तों, अब समय आ गया है कि सभी धर्मों की वैज्ञानिक और मानवतावादी बातों को लेकर एक वैश्विक धर्म बनाया जाए। खैर, यह विषय इस ब्लॉग के विषय से हटकर है, इसलिए हम इसकी गहराई में नहीं जाना चाहते। अभी हाल ही में मैंने अपनी बेटी के लिए विश्वविद्यालय के किसी कार्यक्रम के लिए योग के ऊपर एक लघु लेख लिखा था, उसी को थोड़ा विस्तृत करके यहां प्रस्तुत कर रहा हूं।

योग सांस, शक्ति, गति, और ध्यान से मिलकर बना है। इन चारों का हम थोड़ा बारीकी से अध्ययन करेंगे।

सांस ही जीवन है, जीवन ही सांस है। मित्रो, सांसें ही मन समेत पूरे शरीर को नियंत्रित करती हैं। और योग सांस को नियंत्रित करता है। अमीर वह नहीं है, जो खाता है और पीता है, बल्कि अमीर वह है जो सांस लेता है। योग से सांसें शरीर के विभिन्न चक्रों पर केंद्रित की जाती हैं, जिससे उन्हें पर्याप्त ऑक्सीजन मिलती है। असली सांस गहरी ही होती है जो पूरे शरीर को अच्छे से लगती है। उसे लेने का आनंद आता है। उससे तृप्ति जैसी महसूस होती है। उसके साथ शरीर की सिकुड़न जैसी हलचल भी जुड़ी होती है। थोड़ी देर सांस रोककर शरीर में ऐंठनें जैसी होने लगती हैं। पूरे शरीर पर ध्यान देते समय वह ज्यादा गहरी महसूस होती हैं, खासकर पेट में। जब सांस रोके रखना बर्दाश्त से बाहर सा हो जाए, उस समय ऐसी सांस निकलती है। थोड़ी देर के लिए यह सांसों को यौगिक सांसें बना कर रखता है। फिर वह क्रम दोहराना पड़ता है। सिर्फ तेज सांसों को कितना ही लेते रहो, पूरी तृप्ति नहीं होती, उल्टा थकान भी बढ़ती है और मन का भटकाव भी।

हमारा शरीर शक्ति से संचालित होता है। और शक्ति योग से नियंत्रित होती है। योग से हम शक्ति को जरूरत के हिसाब से शरीर के विभिन्न अंगों पर केंद्रित कर सकते हैं। इससे अंगों पर ज्यादा बोझ नहीं पड़ता, जिससे वे स्वस्थ रहते हैं। सांस रोककर जब एक विशेष चक्र पर ध्यान लगाया जाता है, तब वहां आनंद के साथ एक ऐंठन सी महसूस होती है। शायद यही शक्ति है, जो चक्र को लग रही होती है। इसी को ऐसा कहते हैं कि सांस चक्र पर केंद्रित हो रही है। इसी को ही ऐसा भी कहा जाता है कि प्राण और अपान यहां आपस में जुड़ रहे हैं। प्राण शरीर के ऊपर वाले हिस्से की सांस को कहते हैं और अपान नीचे वाले हिस्से की सांस को। इसलिए चक्र को संगम स्थल भी कहा जाता है कई जगहों पर। संगम स्थल वह होता है जहां दो विपरीत बहने वाली नदियां आपस में मिलती हैं।

हमारा जीवन शरीर की गतिशीलता से भी प्रभावित होता है। जहां आवश्यक गतिशीलता फायदेमंद है, वहीं अनावश्यक गतिशीलता नुकसानदेह भी होती है। योगासन शरीर की गतिशीलता पर नियन्त्रण लगाते हुए शक्ति के दुरुपयोग को रोकता है।

हमारे जीवन में ध्यान का बहुत ज़्यादा महत्त्व है। ध्यान लगाकर काम करने से ही उसमें गुणवत्ता आती है। काम में दक्षता आने से आदमी तेजी के साथ चहुंमुखी विकास करने लगता है। इसीलिए हर काम के साथ ध्यान शब्द जोड़ा जाता है, जैसे ध्यान से चलना, ध्यान से पढ़ना, ध्यान से खेलना आदि। योग से ध्यान का अभ्यास विकसित होता है। मतलब कि योग से जीवन विकसित होता है।

दोस्तों, योग से उपरोक्त सभी लाभ मिलने से शरीर खुद ही स्वस्थ बना रहता है। सांसों से उसे पर्याप्त ऑक्सीजन अर्थात प्राणवायु मिलती है। शक्ति से उसके सभी अंग सही ढंग से काम करते हैं। आवश्यक गतिशीलता से शरीर में लचीलापन बना रहता है। ध्यान से शक्ति इधर उधर बिखरने की बजाय एक स्थान पर केंद्रित हो जाती है, जिससे वह ज्यादा असर दिखाती है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन निवास करता है। मन स्वस्थ होने से हमारा स्वभाव संतुलित हो जाता है, जिसमें आध्यात्मिकता या धार्मिकता और भौतिकता या सांसारिकता, दोनों की समुचित भागीदारी होती है। इसलिए दोस्तो, चाहे कुछ भी हो जाए, योग हमेशा और प्रतिदिन करना चाहिए।

जयतु योग:

कुंडलिनी योग से ईरानी फिल्म गाव या द काऊ के हसन नामक गौप्रेमी के मनोविज्ञान को समझा जा सकता है

दोस्तो, हाल ही में ,,'गाव','the cow' नाम की ईरानी फिल्म देखी, जो यूट्यूब पर 'ओल्ड फिल्म्स रिवाइवल प्रोजैक्ट' नामक चैनल पर उपलब्ध है। उसमें एक हसन नाम का व्यक्ति गाय के प्यार में इतना ज्यादा डूब जाता है कि उसके मरने के बाद पहले उसे वह अपने बाड़े में दिखने लगती है, और फिर वह पूरी तरह से उस गाय की तरह व्यवहार करने लगता है। यह कुंडलिनी योग ही तो है सैद्धांतिक रूप से। कुंड मतलब अंधेरा कुआं जो गाय के मरने से उसके अवसाद के रूप में पैदा हुआ। कुंडलिनी मतलब गाय का मानसिक चित्र। वह बारबार उसके मूलाधार के अंधेरे से उसके सहस्रार को चढ़कर उसे बावले बाबा जैसा बना रहा था। कुंड का शाब्दिक अर्थ ही कुआं या गड्ढा है। गड्ढा अंधेरा ही होता है। कुंडलिनी का मतलब है, एक मानसिक छवि जो अपने सीमित या सांप के कुंडल जैसे सिकुड़े स्वरूप में है। पूरा मन तो बहुत विस्तृत है, जो परमात्मा की असीमता तक जाता है। पर उसकी एक अकेली छवि बहुत सीमित होती है। मतलब कि जेसे एक लंबा सर्प अपना कुंडल बनाकर अपने को सिकोड़ लेता है, वैसे ही अनंत विस्तृत मन एक मानसिक छवि के आकार तक संकुचित हो जाता है, एकाग्र ध्यान के दौरान। उसे ही ध्यान छवि भी कहते हैं। अब बहुत सी ऐसी चीजें हैं, जो अपने विस्तृत रूप को सिकोड़ देती हैं, फिर सांप का ही उदाहरण क्यों दिया। इसकी दो मुख्य वजहें हैं।एक तो वह छवि फन उठाए सांप के जैसी सुषुम्ना नाड़ी से गुजर कर जागृत होती है। दूसरा, गहन एकांत और अभाव जैसे अंधेरे कुंड में अर्थात गड्ढे में उसका ध्यान किया जाता है, ठीक वैसे ही जैसे एक सफेद बिंदु गहरे काले रंग की पृष्ठभूमि पर सबसे अच्छा दिखाई देता है। श्मशान का घोर एकांत भी गड्ढे जैसा ही है, जहां भगवान शिव साधना करते हैं। गड्ढा मूलाधार का स्वरूप है। इसीलिए शास्त्रों में बहुत जगह वर्णन है कि फलां राक्षस या योगी ने फलां गड्ढे में इष्ट देवता या गुरु का पूजन और ध्यान किया। उसी गड्ढारूपी मूलाधार में ध्यान की गई छवि को ही वैज्ञानिक व संक्षिप्त नाम कुंडलिनी दिया गया है। यह अकेला शब्द ही योग का विस्तृत वर्णन करता है। अब उक्त फिल्म में हसन नाम का वह गौप्रेमी शायद अपनी गौरूपी कुंडलिनी को पर्याप्त शक्ति नहीं दे पाया, इसलिए दुनिया की नजरों में पागल जैसा हो गया। हालांकि वह गाय के मानसिक चित्र के साथ पूरी तरह से एकाकार हो गया था, इसीलिए उसकी तरह व्यवहार करता था। यह तो समाधि की तरह ही है, पर यह जागृति तक पहुंचनी चाहिए। मुझे नहीं पता कि क्या यह असली कहानी है, जिसे फिल्माया गया है, या कोई कोरी कल्पना, पर विषय रोचक है। समस्या सिरे तक पहुंचने की ही तो है। जब तक आदमी के मन में ध्यानचित्र जागृत न हो जाए, तब तक उसे ज्यादा से ज्यादा एकांत और पर्याप्त शक्ति चाहिए होती है, ताकि आम लोग उसे अन्यथा या

मजाकरूप न समझें। जागृति के बाद तो सब समझ आ जाता है, और संतुष्टि भी हो जाती है। फिर तो चाहे उसके सामने ढोल नगाड़े बजाते रहो, उसे ज्यादा फर्क नहीं पड़ता। जागृति के बाद ध्यानचित्र धीरे धीरे शांत हो जाता है, और आदमी का पीछा छोड़ देता है। पहले वह आदमी के मन से जोंक की तरह चिपका रहकर उसकी शक्ति को चूसता रहता है। कई लोग अपने मृत संबंधी की याद में पागल जैसे हो जाते हैं। कोई साधक जानबूझ कर अपने प्रेमी दिवंगत गुरु के ध्यान में साधना करते हैं, और उसे सिरे तक पहुंचाकर जागृत भी कर लेते हैं। कई लोग जागृत न भी कर पाए, तो उसे नियंत्रण में रखकर उससे बहुत से लाभ लेते हैं, और दुनिया में अपनी भौतिक और आध्यात्मिक तरक्की का परचम लहराते हैं। एक ही चाकू भिन्नभिन्न तरीकों और मकसदों से इस्तेमाल होने पर भिन्नभिन्न परिणाम देता है।

कुंडलिनी शक्ति की सहायता से ही देवी भगवती ब्रह्मा-विष्णु सहित संपूर्ण सृष्टि की रचना करती है

सभी मित्रों को नवरात्र पर्व की बधाइयां

मित्रों, सभी पुराणों में सृष्टिरचना का वर्णन लगभग एकजैसा ही है। बस सभी अपनेअपने अराध्यदेव को सर्वोपरि मानते हैं। मतलब विष्णु पुराण में विष्णु को, शिव पुराण में शिव को, तो देवीपुराण में भगवती देवी को इष्ट मानते हैं। शिव पुराण में इस बारे कथा आती है कि शिव अकेले ही थे, पर पूर्ण थे। एकबार वैसे ही उनके मन में हास्यविनोद के लिए एक से दो बनने की इच्छा पैदा हुई। इसलिए उन्होने अपने शरीर को शिव और पार्वती, दो शरीरों में प्रकट किया। फिर शिव और पार्वती से क्रमशः पुरुष और प्रकृति (स्त्री) की उत्पत्ति हुई। उन दोनों को निर्गुण शिव ने आकाशवाणी से तप करने को कहा। उन दोनों ने जब तप करने के लिए स्थान मांगा तो निर्गुण शिव ने अपने रूप से काशी नगरी बना दी। तपस्या के श्रम से उनके शरीर से अनेक जलधाराएं उत्पन्न हो गईं, जिससे सारा शून्य भर गया। उस समय कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। उस आश्चर्य को देखने के लिए जब पुरुषरूप विष्णु ने सिर हिलाया तो उनके कान से मणि नीचे गिर गई। वह मणिकर्णिका तीर्थ बना। जब वह काशी नगरी (पंचकोशात्मिका/पांच कोस विस्तार वाली) पानी में डूबने लगी तो शिव ने उसे अपने त्रिशूल पर स्थापित कर लिया। उसके बाद विष्णु ने प्रकृति नामक अपनी पत्नी के साथ वहां शयन किया। तब शंकर की आज्ञा से उनके नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। तब उन्होंने शिव आज्ञा से अद्भुत सृष्टि की रचना की। उन्होंने चौदह लोकों का निर्माण किया। इस ब्रह्मांड का विस्तार पचास करोड़ योजन है। ब्रह्मांड में कर्म से बंधे प्राणी मुझे कैसे प्राप्त होंगे, ऐसा सोच कर शिव ने काशी ब्रह्मांड से अलग रखा। शिव ने अपने अविमुक्त नामक मोक्षदायक लिंग को वहां स्थापित किया। ब्रह्मा का एक दिन पूरा होने पर भी उस काशी का नाश नहीं होता। उस समय शिव उसे अपने त्रिशूल पर धारण करते हैं। ब्रह्मा द्वारा पुनः सृष्टि किए जाने पर वे काशी को पुनः स्थापित करते हैं।

उपरोक्त कथा का स्पष्टीकरण

कथा का शुरुवाती भाग तो स्वयं विवरणात्मक है। पुरुष और स्त्री तभी विवाह करेंगे और घर बनाने की सोचेंगे अगर उनके पास उस लायक स्थान होगा। मूलभूत आवश्यकता स्थान की है। संसाधन और संपत्ति तो वे बाद में भी जोड़ सकते हैं। उन्हें विवाह के लिए कहना ही तप के लिए कहना है। विवाह भी एक यज्ञ है, जिसे हम गृहस्थ रूपी तप के लिए दीक्षा समारोह मान सकते हैं। उनके पिता आदि ने उन्हें जमीन का टुकड़ा दे दिया

गृहस्थी बसाने को या कहो कि उन्हें अपनी जमीनी दुनिया में जगह दे दी। वही परमपिता के द्वारा प्रदत्त काशी है। वह शिव का ही रूप है, क्योंकि सबकुछ शिवमय ही है। वैसे भी सभी का अपनी जमीन जायदाद के साथ आत्मभाव या अहम जुड़ा होता है। वे वहां तप करते हैं, मतलब सृष्टि विकास के शुभ विचार को मन में लेकर आपस में प्रेमविहार डेटिंग आदि करते हैं। उससे वे दोनों प्रेमरस में डूब जाते हैं। जल भी रसरूप ही है। प्रेम की तुलना जल से की गई है। चारों ओर जल ही जल, मतलब प्रेम ही प्रेम। प्रेमियों को प्रेम के इलावा कुछ नहीं दिखता। शून्य भर गया मतलब अवसाद की अवस्था प्रेम से भर गई। पुरुष जब इससे आश्चर्यचकित होकर यह देखता है तो उसके मन में कुछ काम करने का विचार पैदा होता है, मतलब उसमें थोड़ी व्यवहार बुद्धि आने लगती है। इसीको कथा में ऐसे दिखाया गया है कि उसके कान से मणि गिरने से मणिकर्णिका तीर्थ बन जाता है। तीर्थ इसलिए क्योंकि उसकी व्यवहार बुद्धि या रचना में अथाह प्रेम मिश्रित होता है, जिससे उसमें शुद्धता, दिव्यता और आत्मीयता बनी रहती है। फिर भी प्रेम बढ़ता ही गया, जिससे वे प्रेमांध से होकर अपनी दिनचर्या भी भूलने लगे। उन्हें यह भी सुध नहीं रही कि वे कहां हैं, क्या वक्त है और क्या करना है। इसीको ऐसा कहा गया है कि काशी नगरी जल में डूबने लगी। फिर शिव के स्मरण से उनका दुनियादारी वाला रूझान लौटा। त्रिशूल तीन गुणों का प्रतीक है, और दुनियादारी भी त्रिगुणमयी ही होती है। फिर वे बड़ों और गुरुओं की प्रेरणा से और अपनी इंस्टिंक्ट से संतानोत्पत्ति के लिए एकसाथ शयन करने लगे। फिर स्त्री का गर्भ बन गया। वह भी विष्णुस्वरूप ही है। वह भी जल में स्थित था, क्योंकि गर्भ जल से भरा होता है। विष्णु को क्षीरसागर में शयन करते हुए बताया गया। गर्भ का जल भी खीर की तरह पोषण से भरपूर होता है जो बच्चे की परवरिश करता है। उसे भी मां पुत्र के बीच प्रेम रस कह सकते हैं। काशी नगरी भी उसीको कह सकते हैं क्योंकि उसी पर या उसीके कारण मां पुत्र सृष्टि के लिए तप करते हैं अर्थात गर्भ का महान कष्ट सहते हैं। निद्रावस्था में दोनों साथ में सोए होते हैं। तभी गर्भनाल से जुड़ा गर्भ बढ़ने लगता है, और मनुष्याकार ले लेता है। उसे ही कमल कहा गया है, क्योंकि सभी चक्रों को कमल रूप दिखाया जाता है, विशेषकर सहस्रार चक्र को, जो एक हजार पंखुड़ियों के साथ सबसे बड़ा कमल है। मस्तिष्क विकसित होने पर उसी पर मन अर्थात ब्रह्मा का जन्म होता है। मन में चित्रविचित्र दृष्य, विचार, और अनुभव ही ब्रह्मांड के रूप में विकसित होते रहते हैं। पाठकों को यह शंका हो सकती है कि पिता तो विष्णु को कहा था, न कि गर्भ में पल रहे पुत्र को। तो इसका भावार्थ यह है कि पुत्र को शास्त्रों में पितारूप ही कहा गया है, इसीलिए पुत्र को पिता के आत्मज के रूप से भी संबोधित किया जाता है। जो यह कहा गया है कि ब्रह्मांड के नष्ट होने पर भी काशी नगरी पूर्ववत बनी रहती है, उसका यही अर्थ है कि अगर आदमी मर भी जाए तो माताओं का गर्भाशय वैसा ही बना रहता है। बच्चे के जन्म के बाद गर्भाशय सिकुड़ कर अपने मूल रूप में आ जाता है। इसको संभवतः ऐसा कहा गया है कि ब्रह्मांड के नष्ट होने के साथ वह शिव के त्रिशूल पर स्थित हो जाता है। इसका मतलब साम्यावस्था में त्रिगुणस्वरूपता ही है, क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रकृति

मूलरूप में विद्यमान तो रहती है, पर सृष्टिकाल का कोई काम नहीं करती। वह गर्भाशय सर्वश्रेष्ठ तपोभूमि और मुक्तिभूमि है, क्योंकि वहां बेशक कष्ट झेलने पड़ते हैं, पर संस्कार वहीं पड़ते हैं, जो आगे जाकर आदमी को मोक्ष दिलवाते हैं। इसीलिए कहा है कि स्त्री को गर्भावस्था के दौरान आध्यात्मिक संगति और सत्कर्म करने चाहिए। शास्त्रों में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जब आदमी ने गर्भ में रहकर ही आध्यात्मिक साधना कर ली थी। गर्भाशय को गड्ढे जैसी अंधेरी जगह भी कह सकते हैं। अंधेरे को मूलाधार का स्वरूप माना गया है। वहां से शक्ति सीधी सहस्रार को जाती है जागृति के लिए। शिव के द्वारा श्मशान में तप करना गड्ढे में साधना करना ही है। रावण ने भी गड्ढे में शिव की आराधना करके ही उनके दर्शन पाए थे। वहां अगर कुंडलिनी शक्ति को केन्द्रित किया जाए तो गर्भस्थ बालक की बाद में चलकर मुक्ति अटल या अविलंब व विशेष है। अ का मतलब अटल या अविलंब, और वि का मतलब विशेष है। इसीलिए वहां अविमुक्त लिंग स्थित कहा गया है, जिसका स्नान गंगाजल मतलब कुंडलिनी शक्ति से कराकर जरूर ध्यान पूजन करते रहना चाहिए, ऐसा कहा है। संभवतः यह नाभिचक्र के आसपास ही है। संभवतः गर्भस्थ शिशु के जल में हिलने से जो आवाज होती है, वह कान तक पहुंच कर मणि की झनझनाहट की तरह सुखद होती है। क्योंकि वह अंदर अंदर से ही महसूस होती है, इसलिए उसका नाम मणिकर्णिका है। मतलब वह मणि की तरह श्वेत अस्थियों से प्रवाहित होकर कर्णिका अर्थात कान तक पहुंचती है, न कि वायु से होकर।
फिर कहते हैं कि काशी में जो कोई भी जीव (कीट पतंगा भी) जन्मता है, या मरता है, वह जरूर मोक्ष को प्राप्त होता है। शास्त्रों में हर जगह कहा है कि मुक्ति का अधिकार सिर्फ और सिर्फ मनुष्य को है। मतलब जो जीव मनुष्य के गर्भ में आ गया, वह अवश्य मुक्त हो जाएगा, बशर्ते वह मनुष्य बन कर रहे। फिर मरने की बात आई। यह मुझे तांत्रिक लगती है। गर्भ में शिशु होता है, और वह भोले शंकर की तरह मुक्त जैसा ही होता है, स्वभाव से। पूरी दुनियादारी को सही से निभाते हुए जो बच्चे के जैसा अद्वैतशील बना रहेगा मरते समय भी, वह जरूर मुक्त हो जाएगा। यौनतंत्र की ऊर्जा बच्चे के जन्म को न जाकर जागृति को जाती है। मतलब जिस काशी में बच्चा जन्म लेता है, जागृत व्यक्ति भी उसी में जन्म लेता है। जागृत व्यक्ति तो मरता भी उसी में है। आम आदमी तो किसी भी साधारण अवस्था में मर सकता है। क का मतलब जल होता है, और शी से शयन बना है। मतलब जल में शयन। ऐसे तो विष्णु भगवान ही होते हैं जो शेषनाग पर सोते हैं। इससे भी लगता है कि काशी गर्भाशय जैसी चीज का रूपक है।
कहते हैं कि देवी ने पहले शून्य आकाश में जल पैदा किया। फिर उन देवी भगवती की शक्ति से भगवान विष्णु जाग गए जो जल में शेषनाग पर सोए हुए थे। दरअसल विष्णु सोई हुई कुंडलिनी शक्ति अर्थात अव्यक्त जीवात्मा हैं। स्त्री जब गर्भवती होती है तो उसके गर्भ के जल में भ्रूण प्रकट हो जाता है। वह विकसित हुए मनुष्याकार नन्हें बालक का रूप ले लेता है, और सबकुछ अनुभव करने लगता है, अर्थात जाग जाता है। वह गर्भनाल के माध्यम से स्त्री के शरीर से जुड़ा होता है। वास्तव में मनुष्य का असली रूप फन उठाए

नाग के जैसा है। वही स्त्री का रूप दिखाया गया है। उसे ही ऐसे कहा गया है कि वह नाग विष्णु की रक्षा करता था। एक स्त्री अपने गर्भ को कौन सी सुरक्षा नहीं देती। देवी पुराण में तो देवी को विष्णु से भी बड़ा और सृष्टि रचयिता दिखाया गया है। उसमें दलील दी गई है कि कौन अपनी इच्छा से स्त्री के गर्भ में आकर जन्म लेना चाहता है, क्योंकि गर्भ तो एक कैदखाना है, और उसमें होने वाली समस्याएं नरक की यातनाओं से कम नहीं है। यह तो देवी है जो उसे गर्भ में आने को मजबूर करती है। मतलब इसमें पुराण खुद स्पष्ट कर रहा है कि विष्णु एक गर्भस्थ बालक है, ब्रह्मा उसके द्वारा पैदा किया हुआ उसका मन है, और उसमें विभिन्न विचार ही विविधताओं से भरी सृष्टि है। साथ में यह भी कि उस बालक को गर्भ में लाने वाली उसकी माता ही देवी भगवती है। निकट के प्रयागराज तीर्थ में मरने से स्वर्ग आदि शुभ लोक प्राप्त होते हैं। प्र मतलब प्रचुर और याग मतलब यज्ञ। यज्ञ पुण्य कर्म को कहते हैं। प्रयाग संभवतः मणिपुर चक्र को कहा गया हो। क्योंकि यहां यज्ञ होता बताया जाता है, प्राणों की आहुतियों से। वैसे भी पेट से ही भूख लगती है, और उसीकी मांसपेशियों की हलचल से सत्कर्म होते हैं। मतलब गहरी और लंबी यौगिक सांस पेट से चलती है, और इसी किस्म की सांस से पापकर्म भस्म होते हैं और पुण्यकर्म होते हैं। उथली, तेज और छाती की सांस से तो क्रोध आदि मन के दोष बढ़ते हैं, जिनसे पाप नष्ट न होकर बढ़ते हैं। मणिकर्णिका नाम भी शायद इसलिए होगा कि जब गर्भस्थ बालक हिलता है या सिर हिलाता है तो उसकी आवाज नाभि क्षेत्र में कान लगा कर सुनी जा सकती है। मणिपुर चक्र को तीर्थ इसीलिए कहा गया है जैसा ऊपर बताया गया है। अब हो सकता है कि इस विश्लेषण के सभी भाग सही हों। कुछ न भी हों तो भी कथा को याद रखने के लिए फायदेमंद ही है।

मधु कैटभ नाम के दो राक्षस जो नारायण के कान की मैल से पैदा हुए, उन्होंने वेदपुराण को मतलब चेतना या ज्ञान को हर के पूरी सृष्टि के आस्तित्व को खतरे में डाल दिया था। फिर देवी ने विष्णु को शक्ति देकर उनका वध करवाया। वास्तव में जब आदमी के कान में संक्रमण का मैल होता है, तब वह दर्द आदि से अपना सिर एक तरफ को टेढ़ा रखता है। भ्रूण के सिर को डेढ़ा करने को ही उसके कान की मैल कहा गया है। इससे वह समय आने पर बच्चादानी से बाहर नहीं निकल पाता, और उसका जीवन संकट में पड़ जाता है। फिर मां के खून से प्राप्त शक्ति से वह सिर को सीधा करने की कोशिश करता है। मां की शक्ति से बच्चादानी भी जोर लगाकर इसमें उसकी मदद करती है। इससे वह सीधा हो जाता है मतलब मधुकैटभ मर जाते हैं और बच्चा जन्म ले लेता है मतलब सृष्टि बच जाती है।

कुंडलिनी योग से वर्तमान में जागरूक होने में मदद मिलती है

दोस्तो, हाल ही की पिछली एक पोस्ट में बात हो रही थी कि कैसे हसन नामक आदमी एक गाय बन गया था। दरअसल उसकी गाय उसकी पीठ पीछे तब मरी थी जब वह बाजार गया हुआ था। लोगों ने इस भय से कि कहीं वह इस गम से सदमे में न आ जाए, क्योंकि वह उससे बहुत प्यार करता था, उसे बताया कि वह कहीं भाग के चली गई और उसे ढूंढा जा रहा है। मतलब उसने अपनी गाय का मृत शरीर नहीं देखा। इसीलिए वह उसके मन में बस गई। शायद इसी वजह से बड़े बाबा को मरने के बाद भी आनंद की मुद्रा में आसन पर बैठे हुए जिंदा आदमी के रूप में ससम्मान दफनाया जाता है, ताकि उनके चेलों और भक्तों को वे अपने मन में हमेशा जीवित लगें और उनका ध्यान कर सकें। इसीलिए महापुरुषों की और अवतारों की जीवित अवस्था का ही बोलबाला बना रहता है। अवतारों की तो मृत्यु मानी ही नहीं जाती। उन्हें तो शरीर के साथ ही दिव्य लोक जाते दिखाया जाता है, जैसे राम या कृष्ण को। किसी को आज भी सूक्ष्म रूप में घूमते दिखाया जाता है जैसे परशुराम को। खैर, इस पोस्ट के विषय पर चलते हैं।

लंबी गहरी और धीमी सांसों से जी मिचलाना नौसिया उल्टी को मन करना आदि समस्याएं एकदम खत्म सी हो जाती हैं। मैंने ये फार्मूला चंडोल अर्थात मैरी गो राउंड में और बस में बैठ कर सीखा। पहले सांस रोको। टॉलरेबल लास्ट लिमिट तक जाकर ऐसी उन्नत सांसें भरें और छोड़ें उन पर ध्यान देते हुए। सांस बहुत मीठी लगेगी और संतुष्टिदायक भी। इससे कुंडलिनी चित्र भी चमकने लगेगा जिससे तमोगुणी अंधेरा दूर होगा। उस अंधेरे से उत्पन्न दोष जैसे कि भय, चिंता, पश्चाताप, मन का भटकाव व चंचलता आदि भी दूर होंगे। इसीलिए कहते हैं कि प्राणायाम से पाप नष्ट होते हैं। जब जानबूझ कर सांस रोकने से दम सा घुटता है, वह मृत्यु के समान ही है। मृत्यु तो पाप के लिए सबसे बड़ी सजा है। यह सजा मिल गई, तो बाकि क्या बची। शायद इसके पीछे यही अध्यत्मवैज्ञानिक सिद्धांत है।

वर्तमान में प्रतिष्ठित होने के लिए सांस रोकने से मदद मिलती है। वैसे भी घुमड़ते विचारों का बारीकी से अवलोकन करने के लिए सांस को धीमा और इंपरसेप्टिबल करना पड़ता है। यह ऐसे ही है जैसे किसी भयपूर्ण अवस्था में सांस रुक जैसी जाती है या अपने को छिपाने के लिए आदमी दबे पांव और सांस रोककर चलता है। सांस रोककर आदमी वर्तमान में आकर चौकस हो जाता है जिससे किसी भी विपरीत परिस्थिति से एकदम से निपट लेता है। यही सिद्धांत सांस रोककर वर्तमान की जागरूकता बढ़ाने हेतु प्रयुक्त किया जाता है। सांस रोककर किसी चीज पर ध्यान स्थिर या एकाग्र करना कुंडलिनी योग ही

तो है। इससे जाहिर होता है कि कुंडलिनी योग के अभ्यास से वर्तमान में प्रतिष्ठित होने में मदद मिलती है। अभ्यास से ऐसा समय भी आता है जब खुद ही सांस रुकती है, साधारण रूप से सांस छोड़ने के बाद, मतलब बलपूर्वक नहीं। इसे केवल कुंभक कहते हैं। मतलब यह न तो पूरक कुंभक मतलब सांस भरने के बाद किया कुंभक होता है और न ही रेचक कुंभक मतलब सांस छोड़ने के बाद किया हुआ कुंभक। इससे एक सुकून सा और सांसों के तामझाम या बोझ से छुटकारा सा महसूस होता है। केवल-कुंभक के पूरा होने के साथ ही इतनी शांत और उथली सांस चलने लगती है कि वे खुद को भी महसूस नहीं होती, उसकी आवाज आनी तो दूर की बात है। संभवतः इसी अवस्था में सुषुम्ना के पूरी तरह से खुलने और उसमें शक्ति चढ़ने की दिव्य अनुभूति होती है, जैसा कि एक अमेरिकी योगी जेजे सेंपल ने लिखा है। वे भारतीय योगी श्री गोपीकृष्ण को बहुत मानते थे और उनसे मिले भी थे।

वर्तमान पर ध्यान देने से जो हल्केफुल्के जैसे विचार मन में आते हैं, वे भी वर्तमान से जुड़कर उस जैसे ही हो जाते हैं। मतलब जैसे वर्तमान की अनुभूतियां जजमेंट या निर्णय से रहित शुद्ध अनुभूति मात्र हैं, उसी तरह से मन के विचार भी शुद्ध अनुभूति मात्र रह जाते हैं, जो बंधन में नहीं डाल सकते। साथ में, जैसे मन के विचार अपने अंदर भासते हैं, उसी तरह वर्तमान का स्थूल जगत भी अंदर ही भासने लगता है, क्योंकि दोनों किस्म की अनुभूतियों की प्रकृति में कोई अंतर नहीं होता। डबल फायदा। अंदर वाला बाहर वाले की मदद करता है, और बाहर वाला अंदर वाले की। इस दोहरे फायदे से हर किस्म की अनुभूति सूक्ष्म और जजमेंट अर्थात परीक्षण-तुलना आदि से रहित बन जाती है। संगीत सुनने से भी ऐसा ही होता है, वह भी सहजता से। इसीलिए संगीत सुखद लगता है। पर संगीत के साथ आसपास की वर्तमान की घटनाओं पर भी ध्यान रहना चाहिए, सिर्फ संगीत पर ही नहीं, ताकि संगीत खत्म होने पर उसका अजीब सा अभाव महसूस न होए या उसके प्रति आसक्ति ही न पैदा हो जाए।
एखार्ट टोले की संस्था इसी वर्तमान की जागरूकता पर लिखते हैं और उसी को मुक्ति का एकमात्र सरलतम द्वार मानते हैं। इसके व्यापार का तरीका भी बहुत अच्छा, मनोवैज्ञानिक और यूजर फ्रैंडली है। एक साल तक शुल्क दो, न अच्छा लगे तो पैसे वापस। ज्यादातर लोग पैसे वापस नहीं लेते क्योंकि कुछ न कुछ ज्ञान और लाभ तो उन्हें मिलता ही है। यह आध्यात्मिक धोखाधड़ी का नतीजा ही है कि लोगों का इस पर से विश्वास सा उठ गया। इसी विश्वास को बनाने के लिए मनी बैक ऑफर दी जाती है।

कुंडलिनी जागरण से ही समुद्र में छिपे हुए राक्षसों और भूतप्रेतों का समूल नाश संभव है

दोस्तो, शिवपुराण में एक कथा आती है कि पार्वती के वरदान से अंहकार में डूबी हुई दारुका नाम की एक राक्षसी थी। उसका पति दारुक भी महाबलवान था। वह अनेक राक्षसों को साथ लेकर सत्पुरुषों को दुख दिया करती थी। पश्चिम सागर के तट पर उसका एक वन था, जो सर्वसमृद्धिसंपन्न था। दारूकी ने उसकी देखरेख का भार अपने पति दारुक को दिया हुआ था। लोगों ने ऋषिमुनियों से उन्हें भगाने की प्रार्थना की। तो ऋषियों ने कहा कि अगर ये राक्षस पृथ्वी पर प्राणियों का वध करते रहेंगे और यज्ञ का विध्वंस करते रहेंगे तो खुद भी मर जाएंगे। शाप को सुनकर मौके का फायदा उठाते हुए देवता उनसे युद्ध करने लगे। शाप के डर से राक्षसों ने सोचा कि अगर वे युद्ध करेंगे तो भी मारे जाएंगे, और न करें तो खाएंगे क्या, तब भी मारे जाएंगे। तब दारुक ने पार्वती द्वारा प्रदान किए गए उस वर को याद किया कि वह अपने वन और परिजनों के साथ जहां चाहे वहां जा सकती है। राक्षसों की सलाह से वह संपूर्ण वन को उड़ाकर समुद्र के बीच में पानी पर चली गई। उस घटना को देखकर ऐसा लग रहा था जैसे पर्वत पंख लगा कर आसमान में उड़ रहे हों। और्व मुनि के शाप के भय से वे राक्षस भूमि पर नहीं आते थे। बल्कि जल में ही घूमते रहते थे। वे नावों पर बैठे मनुष्यों को अपने नगर में लाकर जेल में डालते और किसी किसी को मार भी देते थे। वे वहां रहकर भी किसी न किसी तरह से लोगों को पीड़ा देते ही रहते थे। जैसे लोगों को पहले उनके स्थल पर रहने पर भय बना रहता था, वैसे ही अब उनके जल में रहने पर भी बना रहने लगा। एक बार वह राक्षसी जल में स्थित अपने नगर से निकल कर लोगों को पीड़ा देने के लिए पृथ्वी पर जाने का मार्ग रोककर स्थित हो गई। उसी समय वहां चारों ओर से मनुष्यों से भरी हुईं बहुत सी सुंदर नावें आईं। उससे खुश हो राक्षसों ने जल्दी ही उनको पकड़ लिया। उन्हें पक्की जंजीरों में बांधकर जेल में डाल दिया। वहां उनको राक्षसों की फटकार भी पड़ती रहती थी, जिससे वे दुखी रहते थे। उन लोगों में सुप्रिय नाम का शिवभक्त शिवपूजन करता रहता था, और अन्य सभी लोगों को भी सिखाकर उनसे करवाता था। शिव भी उसकी चढ़ाई सामग्री को प्रत्यक्ष ग्रहण करते थे, पर यह बात वैश्य को भी पता नहीं थी। एकदिन दारुक राक्षस के सेवक ने वैश्य के समक्ष शिवजी को प्रत्यक्ष देखा। दारुक ने वैश्य से पूछा तो उसने पता होने से इंकार कर दिया। दारुक ने उसे मरवाने का हुक्म दिया। जब राक्षस उसे मारने दौड़े तो वह लगातार शिवकीर्तन करने लगा। इससे चारों ओर दरवाजों वाले उत्तम मंदिर के साथ शिव उस गड्ढे मतलब कैदखाने से प्रकट हुए। शिव ने वैश्य को पाशुपत अस्त्र देकर सब राक्षसों को मार दिया। फिर वरदान दिया कि इस वन में चारों वर्णों के धर्म नित्य स्थिर रहेंगे और यहां शिवभक्त ही होंगे, तमोगुणी कभी नहीं होंगे। इससे दुखी दारुकी पार्वती के पास रोती हुई चली गई। पार्वती ने उन राक्षसों की रक्षा हेतु शिव से कलह किया। इससे शिव ने उनसे

कहा कि फिर जो चाहे वो करो। फिर पार्वती ने शिव से कहा कि आपका वचन या वरदान युग के अंत में लागू होगा। तब तक तामसी सृष्टि बनी रहेगी। और कहा कि ये दारुकी राक्षसी मेरी शक्ति है, सभी राक्षसियों में बलिष्ठ है, यह राक्षसों पर राज करे। ये राक्षसों की पत्नियां यहां अपने पुत्रों को उत्पन्न करेंगी। ये सब मिलकर इस वन में मेरी आज्ञा से निवास करेंगी। तब शिव ने कहा कि इस वन में अपने भक्तों की रक्षा के लिए मैं भी निवास करूंगा। यहां पर जो अपने वर्णोचित धर्म में स्थित होकर प्रेमपूर्वक मेरा दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा। फिर कलियुग के बीतने पर सत्ययुग प्रारंभ होने पर अपनी बड़ी सेना के साथ जो वीरसेन नामक प्रसिद्ध राजा होगा, वह मेरी भक्ति से अति पराक्रमी होगा, और यहां आकर मेरा दर्शन करेगा, और उसके फलस्वरूप चक्रवर्ती राजा बनेगा। इस प्रकार लीलाधारी शिव और पार्वती हासविलास करते हुए वहीं स्थित हो गए। शिव नागेश्वर ज्योतिर्लिंग के नाम से और पार्वती नागेश्वरी नाम से प्रसिद्ध हुई।

मिथक कथा का अनुसंधानात्मक विश्लेषण

दारुक राक्षस अहंकार है। उसकी पत्नि दारुका राक्षसी बुद्धि है। उससे बहुत से विचार पैदा होते हैं। वे ही इन दोनों की राक्षस संतानें हैं। ये आदमी को इधर उधर भटकाते रहते हैं, उन्हें चिंता में डालते हैं, उनमें भय आदि अनेक दोष पैदा करते हैं। कई तो इन दोषों के कारण मर भी जाते हैं। पश्चिम दिशा शरीर का पिछला हिस्सा है। वन बालों से भरे हुए मास्तिष्क क्षेत्र को कहा है, जो शरीर की पिछली तरफ ज्यादा फैला होता है। सागर मूलाधार क्षेत्र है क्योंकि दोनों ही सबसे नीची जगह पर स्थित होते हैं। यह मानसिक जंजाल मस्तिष्क में ही फैला होता है। अंहकार ही शरीर समेत इसकी भी रक्षा करता है। लोग इस जंजाल की शांति के लिए गुरुओं और ऋषियों के पास जाते हैं। ऋषि कहते हैं कि यदि मानसिक जंजाल लोगों को ऐसे ही भटकाता रहा तो वे काम कैसे कर पाएंगे। और अगर वे काम नहीं करेंगे तो कमाएंगे क्या और खाएंगे क्या। इससे शिकार बने लोगों के ही न रहने से शिकारी बना यह मनोजंजाल भी किसे परेशान करके खाएगा। इससे आश्वस्त होकर लोग इस मानसिक जंजाल को काबू में रख कर अपने अपने काम में लग जाते हैं। इसको ऐसा कहा है कि मौका जानकर देवताओं ने उनसे युद्ध छेड़ दिया, क्योंकि देवताओं के रूप में स्थित इंद्रियों से ही लोग कामकाज कर पाते हैं। अगर यह मानसिक जंजाल योग की मानसिकता से फिर प्रकट होता रहता है, तो इसके प्रति खुद ही साक्षीभाव बना रहता है, क्योंकि लोग अपने कामों में व्यस्त होते हैं। इससे यह नष्ट हो जाएगा। अगर न प्रकट होता रहे, तो अपनी सत्ता को कैसे कायम रखे, मतलब जिंदा कैसे रहे। इसको ऐसे कहा गया है कि अगर राक्षस देवताओं से युद्ध करें, तो भी मारे जाएंगे, और अगर न करें, तो खाएंगे क्या, इसलिए तब भी मारे जाएंगे। मतलब लोगों की परेशानी ही उनका भोजन है, और उससे बढ़ने वाला अज्ञान का अंधेरा ही उनकी बढ़ी हुई सेहत है। इसलिए मानसिक जंजाल सूक्ष्म या अव्यक्त या अवचेतन रूप में आकर छुप

सा जाता है। एक प्रकार से यह मूलाधार रूपी अंधेरे समुद्र में छुप जाता है। समुद्र के बीच में, गहराई में अंदर अंधेरा ही होता है, क्योंकि वहां तक प्रकाश की किरण नहीं पहुंच पाती। जो भी आदमी जिंदगी से थक कर या परेशान होकर अवसाद में आ जाता है, वह एक प्रकार से मूलाधार रूपी समुद्र में नौका विहार करता है, यह सोचकर कि यहां पर दुनियादारी के जमीनी झमेले नहीं हैं। थोड़े समय तो उसे सुकून मिलता है, पर फिर वह अंधेरे अवचेतन मन की गिरफ्त में आ जाता है। हो सकता है कि किसी गरीबी, दुर्भिक्ष, महामारी, राजनैतिक या भौगोलिक संकट के दौर में बहुत से लोग सामूहिक रूप से परेशानी और अवसाद की चपेट में आ गए हों। इसे ही बहुत से लोगों का एकसाथ नौकाओं से समुद्र में उतरना कहा गया हो। अवचेतन मन की अमनस्कता से अनुभव होने वाला अंधेरा उन राक्षसों के द्वारा उसे अंधेरी जेल की कोठरी में डालना है। अंधेरे के रूप में ही वे राक्षस उसे परेशान करते हैं। अवचेतन मन में दबे हुए पुराने किए हुए कुकर्म जब गुस्से से भरे जीवों या मनुष्यों के रूप में महसूस होते हैं, शायद इसे ही राक्षसों द्वारा उन लोगों को फटकारना कहा गया हो। कईयों को मार देते हैं, मतलब कई लोग अवसाद से बीमार होकर मर जाते हैं, और कई आत्महत्या कर लेते हैं। कोई शिवभक्त उस अंधेरी अवस्था में मूलाधार पर कुंडलिनी का ध्यान करता है। उसके सत्संग से अन्य लोगों को भी लाभ मिलता है। जितना ज्यादा अंधेरा उस अवचेतन मन रूपी अंधेरी कोठरी में होता है, कुंडलिनी भी उतनी ही ज्यादा चमकती है। शायद इसी को ऐसा कहा गया है कि एक राक्षस ने भगवान शिव को प्रत्यक्ष देखा। अंधेरा रूपी जगत योगी को साधना से रोकता है। इससे उसके मन में न जगत का क्योंकि वह पहले ही जगत को छोड़ चुका है, और न ही साधना का, कहीं का भी प्रकाश नहीं बचा रहता। यह अवस्था मृत्यु के समान ही है। शायद इसे ही ऐसा कहा गया है कि दारुक रूपी लोगों के अहंकार ने राक्षसों रूपी सांसारिक विचारों और वस्तुओं के माध्यम से वैश्य को मरवाने का हुक्म दिया। इससे साधक जगत के डर के मारे या खुंदक में आकर अपनी साधना को और तेज बढ़ाता है, और अपनी कुंडलिनी को जागृत कर लेता है। शायद इसी को ऐसा कहा है कि उन राक्षसों के डर से वह वैश्य लगातार और जोर जोर से शिवकीर्तन करने लगा। फिर चार दरवाजों वाला मंदिर प्रकट होता है, और उसमें शिव विराजमान होते हैं। मूलाधार चक्र की भी चार पंखुड़ियां होती हैं। कुंडलिनी जागरण ही शिव का प्रत्यक्ष होना है। वह मानसिक जंजाल रूपी राक्षसों को ख़त्म करता है। दरअसल अवचेतन मन आत्मा के अंधकार के रूप में आत्मा से चिपका होता है। जब आत्मा में प्रकाश पैदा हो जाता है, तो वह खुद नष्ट हो जाता है।

पार्वती प्रकृति रूपा है। वह तो संसार का विस्तार चाहती है, जो तमोगुण के बिना संभव नहीं। दारुकी रूपी बुद्धि उनकी शक्ति है। मतलब बुद्धि से ही संसार का विस्तार होता है। बुद्धि ही सबसे बलशाली इंद्रिय है। वह अंहकार रूपी जीव को पति अर्थात अपना रक्षक बनाकर बहुत से राक्षस रूपी विचारों को पैदा करती है। जो विचार हैं, वे हस्तपाद आदि

इंद्रियों से विवाह करके मतलब उनसे मिलकर व उनके सहयोग से किस्म किस्म की सांसारिक वस्तुएं पैदा करते हैं। वे सभी वस्तुएं ही उन राक्षसों और राक्षसियों के पुत्र कहे गए हैं। ये सभी रहते उसी वन रूपी मास्तिष्क में जो सूक्ष्मरूप में मूलाधार में जाकर बस जाता है। दुनियावी वस्तुएं बेशक बाहर लगें देखने में, पर सभी मस्तिष्क में ही होती हैं। उनको वहां रहने की आज्ञा बुद्धि से ही मिलती है, क्योंकि अगर वह चाहे तो वह योग आदि से उन सबको बाहर भी निकलवा सकती है। शिवलिंग, शिवमंदिर और शिवमूर्ति भी इसी वन का हिस्सा हैं, जो भक्तों की रक्षा करते हैं। जो आदमी वर्णोचित धर्म मतलब कर्मयोग का पालन करेगा और उससे उत्पन्न शक्ति से शिवरूपी कुंडलिनी से प्रेम करके उसे जागृत करेगा मतलब शिव के दर्शन करेगा, वह चक्रवर्ती राजा होगा, मतलब ऐसा जीवात्मा होगा जिसके सभी चक्र जागृत या क्रियाशील होंगे। कलियुग, सतयुग ये सब आदमी की अवस्थाएं हैं। कलियुग अवस्था मतलब आदमी की प्रतिस्पर्धा और भौतिकता से भरी दुनियादारी वाली अवस्था। जब तक यह अवस्था है, तब तक तो मन के दोष रहेंगे ही। जब आदमी विकसित होकर सत्ययुग वाली अवस्था में, मतलब आध्यात्मिक साधना वाली अवस्था में प्रवेश करता है, तब वह पराक्रमी योद्धा की तरह इन दोषों का वध करता है। ऐसा शिव की शक्ति से मतलब शिव के ध्यान से होता है। उससे उसको कुंडलिनी जागरण मतलब शिवदर्शन मिलता है, जो चक्रवर्ती राजा जैसी अवस्था है। क्योंकि मूलाधार चक्र कुंडलिनी शक्ति और सुषुम्ना नाड़ी सर्प से जोड़ी गई हैं, इसलिए मूलाधार में स्थित लिंग का नाम नागेश्वर और उससे जुड़ी शक्ति का नाम नागेश्वरी है। इससे जुड़ी वीरसेन राजा की रहस्यात्मक कथा क्या है, उसका वर्णन अगली पोस्ट में करेंगे।

कुंडलिनी शक्ति काठ की मछली के साथ गड्ढे में प्रवेश करके वहां शिव की पूजा करने से क्रियाशील होती है

शिव को नमन गुरु को नमन शिव ही गुरु हैं गुरु ही शिव हैं

मित्रो, निषध नामक सुंदर देश में क्षत्रियों के कुल में महासेन वीरसेन नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो शिव का अत्यंत प्रिय था। वीरसेन ने पार्थिवेश शिव का अर्चन करते हुए 12 वर्षों तक कठिन तप किया। तब प्रसन्न होकर शिव ने राजा से कहा कि वह काठ की मछली बनाकर उस पर रांगे का लेप लगा कर और उसे योगमाया से संपन्न करके उसे दे रहे हैं। उसे लेकर वह उसी समय नौका से उस विवर में प्रवेष करके चला जाए। फिर वहां जाकर उनके द्वारा किए गए उस विवर में प्रविष्ट होकर नागेश्वर का पूजन कर के उनसे पाशुपतास्त्र प्राप्त कर इन दारुकी आदि प्रमुख राक्षसियों का विनाश करे। शिव ने फिर कहा,”मेरे दर्शन के प्रभाव से तुम्हें किसी प्रकार की कमी नहीं होगी। उस समय तक पार्वती का वरदान भी पूर्ण हो जाएगा, जिससे वहां जो अन्य मलेच्छरूप वाले होंगे, वे भी सदाचारी हो जाएंगे। तब शिव अंतर्धान हो गए। इस प्रकार ज्योतियों के पति लिंगरूप प्रभु नागेश्वर देव की उत्पत्ति हुई। वे तीनों लोकों की संपूर्ण कामना को सदा पूर्ण करने वाले हैं।

उपरोक्त मिथक का वैज्ञानिक विश्लेषण

निषध शब्द निषेध शब्द से बना है। वह देश जहां कुत्सित या अज्ञानपूर्ण यौनाचार का निषेध हो, वेदविरोध का निषेध हो, मर्यादाहीनता का निषेध हो, अकर्मण्यता का निषेध हो, कुकर्म का निषेध हो आदिआदि। हरेक आदमी राजा तो होता ही है, अपने देहरूपी देश का। महासेन मतलब जिसके साथ बहुत बड़ी सेना हो। मतलब जो संसार में जाना पहचाना, मशहूर और इज्जतदार आदमी हो, जिसके आगे पीछे बहुत से लोगों की भीड़ लगी रहती हो। वीरसेन मतलब उस संसाररूपी सेना में जो बहादुरी से समस्याओं का सामना करते हुए मानवता के वैदिक मार्ग से पीछे नहीं हटता। वह ध्यानयोग में भी प्रवीण था। इसका मतलब कि वह किसी के प्रेम में मस्त रहता था। प्रेम शिव से, किसी अन्य देवता से, गुरु से, प्रेमिका से किसी से भी हो सकता है। इसीलिए शिवभक्त कहा है क्योंकि शिव ध्यान और प्रेम के प्रतीक हैं। शरीर में 12 चक्र हैं। उन चक्रों पर उसने कुंडलिनी या शिवरूप का ध्यान किया। एक चक्र की साधना एक साल की मानो तो 12 सालों में 12 चक्र। जन्म से लेकर आदमी ऐसे ही विकास करता रहता है। जन्म के कुछ वर्षों तक आदमी मूलाधार चक्र की अज्ञानता के अंधेरे में रहता है। फिर किशोरावस्था आने पर हार्मोनल परिवर्तन के कारण वह स्वाधिष्ठान चक्र पर आ जाता है। युवावस्था में

बलवृद्धि और प्रेमवृद्धि के कारण वह क्रमशः मणिपुर चक्र और अनाहत चक्र पर आ जाता है। प्रेम में और दुनिया के कामों में निपुणता के विकास से वह बोलचाल करने में और सौदेबाजी करने में भी निपुण हो जाता है। इसे कह सकते हैं कि उसकी चेतना विशुद्धि चक्र के स्तर पर पहुंच जाती है। फिर रोजगार के लिए उसे बुद्धि का बहुत प्रयोग करना पड़ता है। उससे वह आज्ञा चक्र पर आ जाता है। अपने रोजगार के पेशे में निपुण होने से वह कमाई के मामले में निश्चिंत सा हो जाता है, और वह अध्यात्म आदि के अभ्यास से अपनी मुक्ति के लिए प्रयास करने लगता है। इससे उसकी चेतना सहस्रार चक्र में आ जाती है। वैसे तो यदि आदमी को ढंग का माहौल मिले तो मात्र 17 18 साल की उम्र में वह अपनी कुंडलिनी को जागृत कर सकता है। पर इस कथा में सतयुग की बात हो रही है, इसलिए 12 साल लिखे हैं। उस समय शायद बालविवाह का प्रचलन भी था, जो 12 13 वर्ष की आयु तक हो जाया करता होगा। इसीलिए विवाह को ही सहस्रार जागरण की अवस्था मानी गई है, क्योंकि इसीसे मूलाधार से सहस्रार को सीधी और प्रचंड शक्ति मिलती है। पूरी कथा से भी यही स्पष्ट होता है, जिसमें बारह वर्ष की साधना के बीतने पर उसे मछली को विवर मतलब गड्ढे में प्रविष्ट कराने को कहा जाता है। थोड़ा गहराई से सोचने से इसका मतलब खुद ही समझ में आ जाता है। शिव ने ही हम सभी का और राजा वीरसेन का भी शरीर बनाया है। मतलब शिव ने ही शरीर के सभी अंग बनाए हैं, जिनमें मछली जैसे रूपाकार वाला जननांग भी शामिल है। काठ की मछली मतलब काठ भी मांस जैसा ही जैव पदार्थ है, और दोनों ही जीवित प्राणियों के घटक हैं, यह विज्ञान भी मानता है। शरीर में हार्मोनल सिस्टम और उससे उत्पन्न उत्तेजना जिससे उसमें कड़ापन आता है, यह सब कुछ भी परमात्मा शिव की ही बनाई हुई प्रणाली है। रांगा टिन धातु को कहते हैं। यह मध्यम सख्त होती है, लोहे जितनी ज्यादा भी नहीं, और ढीले मांस जितनी या काठ जितनी कम भी नहीं। इसी तरह शरीर में यौन विवर भी शिव ने ही बनाया होता है। विवर में जहां तक मछली प्रवेश करती है, विवर को वहीं पर खत्म मान लेना चाहिए। नौका तो पीछे रह जाती है। माया से युक्त मछली मतलब उसमें दिव्य यौन संवेदना होती है, जो किसी को भी मोहित कर सकती है। संभवतः वही अंग की शिखा है, बाकि हिस्से को तो नौका कहा गया है। अब जहां विवर खत्म हो गया, उसे ही मूलाधार रूपी गड्ढे का धरातल समझना चाहिए। यह दो अंगों के बीच में लगभग उसी स्थान पर पड़ता है, जहां योग शास्त्रों में मूलाधार चक्र का स्थान बताया गया है। मुझे तो यही असली मूलाधार लगता है, क्योंकि यही तो शक्ति देता है। बाकि विवरण तो मुझे प्रतीकात्मक या करीबी लगते हैं, असली नहीं। बाहर जहां मूलाधार चक्र के बिंदु की स्थिति दिखाई जाती है, वहां तो कोई अंधेरा गड्ढा नहीं होता। अंधेरा गड्ढा तो उसकी सीध में अंदर होता है। हालंकि जो तीव्र जननसंबंधी संवेदना के नाड़ीजाल अंदर स्थित होते हैं, उनका कुछ प्रभाव बाहर भी महसूस होता ही है। खैर, उस विवर में नागेश्वर लिंग का ध्यान करना, मतलब लिंग के ऊपर नागेश्वर शिवरूपी ध्यानचित्र का ध्यान करना। यह मैडिटेशन एट टिप नामक सर्वोच्च कोटि की तांत्रिक साधना ही तो है। नाग

शब्द मूलाधार और उससे जुड़ी संरचनाओं को भी इंगित करता है। क्योंकि ये सब संरचनाएं परमात्मा शिव ने अपनी प्राप्ति के लिए बनवाई हैं, इसलिए उनका एक नाम नागेश्वर भी है। वहां शिव का पूजन करने से पाशुपत अस्त्र मिलेगा, मतलब अवचेतन मन रूपी गड्ढे में दबे राक्षस रूपी विचारों को उघाड़ने की शक्ति मिलेगी। उससे दारुक आदि प्रमुख राक्षसों का विनाश होगा, मतलब जो बुद्धि आदि और मन के मुख्य विचार हैं, वे बाहर निकलकर असली शून्यरूपी आत्मा में विलीन होते रहेंगे। ये ही हैं जो जागृति में मुख्यरूप से बाधा बनते हैं। अन्य छोटेमोटे अनगिनत विचार तो जागृति के बाद भी विलीन होते रहते हैं, उम्र भर। शिव के दर्शन मतलब जागृति के बाद किसी चीज की कमी नहीं रहती। दुनिया के लोगों का भी युगों की तरह चक्र होता है। वे कलियुग जैसे माहौल के बाद सतयुग जैसा माहौल बनाते हैं। वे ही मास्तिष्क के वन में भी होते हैं। उनके सदाचार के सहयोग से राक्षसों को मारना ज्यादा आसान हो जाता है। ऐसी ही अनुकूल परिस्थितियां मिलती रहें तो आसानी होती है। इस कथा को पढ़कर बिल्कुल भी नहीं लगता कि ऋषिमुनियौं ने कामसुख का अनुभव नहीं किया होता था, जैसा कि अक्सर आम धारणा में दिखने को मिलता है। बल्कि इसके विपरीत ऐसा लगता है कि वे गृहस्थ अवस्था में पूर्ण होकर ही बाद की वानप्रस्थ और संन्यास जैसी वैराग्यमय अवस्थाओं में यह सब दुनिया की भलाई के लिए लिख पाए।

कुण्डलिनी विज्ञान रावण-कथा को कुछ हद तक स्पष्ट कर सकता है

दोस्तो, शिवपुराण में एक कथा आती है कि एक बार रावण नाम का अभिमानी राक्षस कैलाश पर्वत पर शिव की भक्तिपूर्वक अराधना करने लगा। जब उससे शिवजी प्रसन्न नहीं हुए तब उसने दूसरा उपाय किया। वह हिमालय पर्वत के दक्षिण में वृक्षों से भरी भूमि में एक उत्तम गर्त बनाकर उसमें अग्नि स्थापित करके उसके समीप में शिवजी की स्थापना कर हवन करने लगा। वह गर्मी के मौसम में पंचाग्नि के बीच बैठकर, वर्षाकाल में चबूतरे पर बैठकर और शीतकाल में जल के भीतर रहकर, तीन प्रकार से तप करने लगा। इस प्रकार उसने घोर तप किया, तब भी दुष्टात्माओं के लिए दुराराध्य शिव प्रसन्न नहीं हुए। फिर रावण ने अपने सिर काटकर शिव का पूजन प्रारंभ किया। इस प्रकार उसने एक एक करके नौ सिर काट डाले। तब उसका एक सिर रहने पर सदाशिव प्रसन्न होकर उसके सम्मुख प्रकट हुए। शिव ने उसके सिरों को पहले की तरह स्वस्थ करके उसको मनोवांछित फल और अतुल बल प्रदान किया। फिर रावण ने हाथ जोड़कर शिव से कहा,"स्वामी कृपया मेरे साथ लंकापुरी चलिए, मैं आपकी शरण में हूं"। इससे शिवजी ने संकट में पड़कर खिन्न मन से उससे कहा कि बेशक वह उनके श्रेष्ठ शिवलिंग को ले जाए पर वह जहां भी उसे भूमि पर रखेगा वह वहीं स्थापित हो जाएगा। पर रास्ते में रावण को लघुशंका की इच्छा हुई। उसने पास खड़े गोप को उसे पकड़ाया और लघुशंका चला गया। गोप उसके भार को ज्यादा देर नहीं सह सका इसलिए उसे वहीं भूमि पर रख दिया। इस प्रकार वज्रसार से उत्पन्न वह लिंग वहीं स्थित हो गया, जो दर्शनमात्र से पापों को दूर करने वाला और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है। उसका नाम वैद्यनाथेश्वर पड़ा जो भोग और मोक्ष देने वाला है और सभी पापों को नष्ट करने वाला है। रावण फिर घर चला गया। सभी देवताओं ने इकट्ठे होकर उस लिंग की पूजा और स्थापना की। सभी देवता और मुनि चिंता में पड़कर नारद के पास जाकर कहने लगे कि यह दुष्ट रावण पहले ही उन्हे बहुत परेशान करता है, शिव का वरदान पाकर तो वह उन्हें और ज्यादा दुखी करेगा। रावण उनकी सहायता करने के लिए रावण के घर गए और उसकी झूठी प्रशंसा की। नारद के पूछने पर रावण ने शिववरदान वाले सारे घटनाक्रम को गर्व के साथ सुनाया कि कैसे वह शिव को प्रसन्न करने के तरीके की उग्रता बढ़ाता रहा और जब वह अपना दसवां और अंतिम सिर काटने लगा तो शिव ने प्रकट होकर उसे रोका और एक वैद्य की तरह उसके सभी सिर पहले की तरह जोड़ दिए। साथ में उसको अतुल बल का वर भी दिया। रावण ने फिर कहा कि अब वह ज्योतिर्लिंग का पूजन करके तीनों लोकों को जीतने के लिए घर आया है। नारद ने हंसते हुए उससे कहा कि शिव तो विकारी हैं, भांग के नशे में मस्त से रहते हैं, क्या झूठ नहीं कह देते, इसलिए वह उन पर विश्वास न करे। ऐसा कहकर उन्होंने रावण को कैलाश को उखाड़ने के लिए भड़काया और कहा कि उससे शिव

के वरदान की परीक्षा हो जाएगी। उसने वैसा ही करते हुए कैलाश पर्वत को अपनी भुजाओं पर उठा लिया। इससे कैलाश पर स्थित सबकुछ हिलने लगा और सभी चीजें आपस में टकराकर गिरने लगीं। शिव ने जब आश्चर्यपूर्वक पार्वती से इस बारे पूछा तो उन्होंने व्यंग्य कसते हुए जवाब दिया कि उनका उत्तम शिष्य रावण ही वह सब कुछ कर रहा था। इससे शिव ने रावण को कृतघ्न और बल से दर्पित समझकर श्राप दिया कि शीघ्र ही उसकी भुजाओं का घमंड दूर करने वाला कोई वहां उत्पन्न होगा। नारद ने शिव का श्राप सुन लिया और रावण भी कैलाश को नीचे रखकर प्रसन्नचित होकर अपने घर चला गया। इस प्रकार शिव के वरदान को सत्य मानकर रावण ने अपने बल से सारे जगत को वश में कर लिया। शिव की आज्ञा से प्राप्त महतेजस्वी दिव्यास्त्र से युक्त उस रावण की बराबरी करने वाला उसका कोई भी शत्रु उस समय नहीं था।

उपरोक्त मिथक का मनोवैज्ञानिक स्पष्टीकरण

रावण का मतलब है, रुलाने वाला। जो आदमी मन के दोषों से भरा हुआ है, वह दुनिया को रुलाता ही है, हंसाता नहीं। मतलब कि वह सबको दुख ही दे सकता है, सुख नहीं। जब लोग उसका प्रतिकार करते हैं, तो वह उनका मुकाबला नहीं कर पाता। इसलिए वह उनसे मुकाबले के लिए शक्ति प्राप्त करने के लिए आम भाषा में टोना टोटका अर्थात मस्तिष्क या सहस्रार में शिव का ध्यान करता है। दोषी लोगों को अक्सर शिव ही पसंद आते हैं, क्योंकि उन्हें शिव भी अपनी तरह दोषों से भरे दिखते हैं। साधारण ध्यान से शिव कहां प्रसन्न होने वाले। शिव तो अपने प्रति संपूर्ण समर्पण मांगते हैं। इसे चाहे शिव की इच्छा समझ लो या जागरण का सिद्धांत कि केवल एकमात्र शिव की छवि को या किसी भी छवि को मन में बसाने से ही वह जागृत होती है अभी रावण के अंदर बहुत से दोषपूर्ण विचार थे, इसीलिए शिव के रूप की छवि पर उसका अच्छे से प्रगाढ़ ध्यान नहीं लग पा रहा था। फिर उसने शिव की प्रेरणा से दूसरा उपाय मतलब वाममार्गी तांत्रिक उपाय किया। दूसरा वही हो सकता है, जो पहले वाले से बिल्कुल अलग हो। पहला यदि शुद्ध वैष्णव था, तो दूसरा अपने आप तांत्रिक सिद्ध हो गया। यह वह दूसरा नहीं है जो संख्या का बोध कराता है, बल्कि वह वाला है जो अन्यत्व या विपरीतत्व का बोध कराता है। हिमालय अगर मस्तिष्क या सहस्रार है और उसे उत्तर में माना जाए, क्योंकि हिमालय की भौगोलिक स्थिति भी भारत के उत्तर में ही है, तो उसका दक्षिण भाग मूलाधार क्षेत्र ही हुआ। उस क्षेत्र में किया गड्ढा ही मूलाधार है। एक विशेष जातिवर्ग का जो गड्ढा नामक शक्तिशाली देवता है, वह शायद मूलाधार की ही शक्ति से बनता है, तभी उसका नाम गड्ढा है। वह जादू टोने, और काले कारनामों के लिए कुख्यात है। कहते हैं कि उससे कोई नहीं, केवल हनुमान ही बचा सकते हैं। शायद हनुमान की सात्त्विक शक्ति उसकी तामसिक शक्ति को हरा देती होगी। उस गड्ढे में रावण ने अग्नि स्थापित की मतलब उसने सांसों के प्राणायाम से अपने प्राणों को वहां केंद्रित किया। उसके समीप शिवजी की

स्थापना मतलब वहां शिव की मूर्ति या चित्र का ध्यान किया। हवन मतलब प्राणों की अग्नि में अपने शरीर में जमा ग्लूकोज, वसा आदि जलाने लगा, जिससे शक्ति या ऊर्जा पैदा होती है। शरीर को आपातकाल के समय मूलाधार स्थित कुंडलिनी शक्ति की जरूरत पड़ती है, जिससे वह सक्रिय हो जाती है। इसीलिए गर्मी में पांच किस्म की अग्नि का ताप सहना, वर्षा ऋतु में चबूतरे पर बैठना और शीत ऋतु में पानी के अंदर गले तक डूबकर साधना करना बताया गया है। मूलाधार के सक्रिय होने से ही दुख या कष्ट की घड़ी में प्रेमी प्रेमिका याद आते हैं। इसीलिए प्रेमी जोड़े सुखदुख में और मरते समय भी साथ साथ रहना पसंद करते हैं। अधिकांश धर्मों में इसीलिए तप को और सुखसुविधाओं पे नियंत्रण को महान माना गया है। फिर भी रावण के सामने शिव प्रकट नहीं हुए क्योंकि वह दुष्टात्मा था, और इन्द्रियों के दोषों से भरा हुआ था। अंतःकरण चार प्रकार के सूक्ष्म अंगों से बना है, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इसी तरह ज्ञानेंद्रियां पांच सूक्ष्म अंगों या तत्त्वों से बनी हैं, आंख, कान, घ्राण, त्वचा और जननेन्द्रिय। इन सभी नौ अंगों को रावण ने बारी बारी से निष्क्रिय कर दिया। इसे ही रावण के द्वारा अपने नौ सिर कटना कहा गया है। क्योंकि हरेक अंग से एक अलग किस्म का ज्ञान प्राप्त होता है, इसलिए हरेक अंग को कथा में एक पृथक सिर माना गया है। जब वह अंतिम दसवां सिर मतलब अपना असली सिर, जिसके सहारे बाकि सभी सिर हैं, को काटने की तैयारी करने लगा तो शिव प्रकट हो गए। इसका मतलब है कि वह साधना करते हुए इतना कमजोर हो गया था कि मरने के करीब था, तभी उसको जागृति मिली। जब आदमी "करो या मरो" वाली स्थिति में होता है, तब उसे सफलता मिलने की अधिकतम संभावना होती है। फिर शिव ने उसके सिर पहले जैसे करके उसे मनोवांछित वर दिए मतलब रावण फिर से दुनियादारी में लौटने के योग्य हो गया। दुनियादारी में सभी इंद्रियों की और अंहकार की भी जरूरत पड़ती है। वैसे भी शायद रावण को जागृति की क्षणिक झलक मात्र मिली थी, इसी वजह से वह एकदम पहले जैसा हो गया। जितना कुछ आदमी चाह सकता है, या पा सकता है, उसकी सर्वोपरि सीमा जागृति ही है। जब जागृति मिल गई तो जैसे सबकुछ मिल गया। यही शिव का उसे मनोवांछित फल और अतुल बल देना है। बल शस्त्रों की और सत्ता की प्राप्ति से पैदा होता है। ये सब भी तो जागृति की प्राप्ति के अंतर्गत ही आते हैं। डरता वह है, जिसे कुछ पाने को शेष बचा हो। शून्य भय मतलब अमित बल, क्योंकि बल होता ही निर्भयता की प्राप्ति के लिए है। रावण मूलाधार में जागृत की हुई शक्ति को अपने पसंदीदा चक्र तक ले जाना चाहता था। इसी को ऐसा कहा गया है कि वह शिवलिंग को अपनी सोने की लंका को ले जाना चाहता था। शायद यह शरीर का कोई विशेष चक्र या बिंदु है, जो हमें ज्ञात नहीं है, और जिसको जागृत करके अतुलनीय राक्षसी बल प्राप्त होता है। इसीलिए शिव दुखी हुए क्योंकि वह उसका दुरुपयोग कर सकता था। गोप कहते हैं ग्वाले को अर्थात गाय चराने वाले को, और गाय कहते हैं इंद्रिय को। रावण उस वीर्य शक्ति को किसी निकट वाले चक्र तक ही ले जा सका था कि वह लघुशंका के लिए चला गया। इससे मूलाधार से संबंधित इंद्रिय शिथिल हो गई, और शक्ति वहीं रह गई, क्योंकि इस इंद्रिय से

ही शक्ति को ऊपर चढ़ने का बल मिलता है। जहां बीच में किसी विशेष चक्र पर शक्ति फंसी रह गई वह भी अज्ञात चक्र लगता है। उसे वैद्यनाथेश्वर लिंग नाम दिया गया। कथा में कहा गया है कि वह लिंग वज्रसार से बना हुआ था। यह भी इस ओर इशारा करता है कि वह सबलाइमड या वाष्पित वीर्यशक्ति थी। रीढ़ की हड्डी से वज्र बनता है, इसलिए उसका सार उसमें सुषुम्ना से होकर गुजरने वाली शक्ति ही है, जो जागृति रूपी वज्र प्रहार करके अज्ञान रूपी वृत्रासुर राक्षस को मारती है। वह संवेदना शक्ति मूलाधार में बनती है, जिसको बनाने में वीर्यसार का मुख्य योगदान होता है। क्योंकि शिव ने एक वैद्य की तरह रावण के सभी सिर जोड़ दिए थे, इसीलिए उस लिंग का नाम वैद्यनाथेश्वर पड़ा। सभी देवता इसकी पूजा करने पहुंच गए। इससे एक संकेत मिलता है कि यह लिंग शक्ति चाहे कहीं पर भी हो, पर मस्तिष्क के जीवात्मा के द्वारा अनुभव होने वाले क्षेत्र में नहीं पहुंची थी। केवल इसी क्षेत्र पर जीव का अपना पूरा नियंत्रण होता है, देवताओं का नहीं। मतलब इस क्षेत्र में जीव की इच्छा चलती है। शरीर के अन्य सारे हिस्से देवताओं के नियंत्रण में होते हैं। जैसे कि हम अपनी इच्छा से घूम फिर सकते हैं, सोच सकते हैं, काम कर सकते हैं, पर खाना नहीं पचा सकते, दिल नहीं धड़का सकते, और भी शरीर के अनगिनत काम नहीं कर सकते। शायद यह स्वेच्छा वाला क्षेत्र सहस्रार ही है। अगर शक्ति वहां पहुंच जाती, तो रावण दुनिया का कितना अहित न करता। मन ही नारद मुनि है। रावण के मन को जागृति के बाद अहसास हुआ कि अब वह देवताओं को जी भर कर परेशान कर सकता है। यही देवताओं का नारद मुनि से शिकायत करना है। इससे उत्साहित रावण के मन ने सोचा कि क्यों न वह एकबार फिर सहस्रार में जाकर देख ले कि उसे सच में शक्ति मिली है। वह शिव की भक्ति में डूबा हुआ था और हर चीज में शिव को ही देख रहा था, बेशक स्वार्थ के वशीभूत होकर। अचानक उसके सहस्रार में जाने से उसका वह शिवभक्ति का प्रवाह रुक गया, क्योंकि सहस्रार में अद्वैत का माहौल है, और जहां अद्वैत होता है, वहां भक्ति नहीं होती। भक्ति द्वैत में ही होती है। इसलिए थोड़े समय के लिए शिव की भक्ति से संबंधित सांसारिक वस्तुएं गिर गईं। इसी को ऐसा कहा है कि कैलाश में सबकुछ उलटपुलट हो गया। कैलाश को यहां भक्तिभाव से भरा मस्तिष्क जानना चाहिए और उसको ऊपर उठाने को सहस्रार क्षेत्र। जो ज्यादा ही अद्वैत भाव में रहता है, वह दुनियावी द्वैत से भरा प्रेमपूर्वक भाईचारा नहीं जानता। इससे उसमें अहंकार भी पनप सकता है। इससे स्वाभाविक है कि उसके दुश्मन भी बहुत हो जाते हैं, जिनमें से कोई उसका काल भी बन सकता है। इसी को शिव के द्वारा नाराज होकर शाप देना कहा गया है। इससे देवता खुश हो गए, क्योंकि अगर सभी पूरे अद्वैतवादी बन गए तो उनकी बनाई हुई दुनिया कैसे चल पाएगी। सुना है कि भारत के प्राचीन मंदिरों में और गुफाओं में कामुक चित्र इसलिए बनाए गए थे, क्योंकि अद्वैतवाद की लहर से लोग घरबार छोड़कर जंगल को जा रहे थे। अब पता नहीं यह विश्लेषण कितना सही है, पर कथा को वैज्ञानिकता के साथ कुंडलिनी योग में फिट बैठाने के लिए और याद रखने के लिए जरूरी लगता है।

शिव के दर्शन को कुंडलिनी जागरण के इलावा और क्या कह सकते हैं, क्योंकि दोनों ही सर्वोच्च उपलब्धियां हैं। सर्वोच्च उपलब्धि एक ही हो सकती है, दो नहीं, इसलिए दोनों एक ही हैं। ऐसा भी हो सकता है कि देव दर्शन ध्यान की ऐसी प्रगाढ़ अवस्था हो जिसमें देवता स्पष्ट सामने दिखते हों और उनसे बात भी हो सकती हो। बेशक यह कुंडलिनी जागरण रूपी सर्वोच्च स्तर से थोड़ा सा नीचे हो। क्योंकि अगर देवदर्शन ही कुंडलिनी जागरण होता तो देवदर्शन से कम से कम किसी एक राक्षस को तो सद्‌बुद्धि मिलती, पर देखने में तो यह आता है कि किसी को भी नहीं मिली, बल्कि उल्टा जो थी वह भी गई शक्ति के घमंड से। दूसरा, कुंडलिनी जागरण की अवस्था में तो कोई कुछ मांग ही नहीं सकता क्योंकि परम के साथ पूर्ण एकता महसूस होने से आदमी को अपनी पूर्णता भी महसूस होती है, फिर मांगने को बचा ही क्या। उधर देवदर्शन के दौरान तो राक्षस देवता के सामने लंबा चौड़ा मांगपत्र रख देते थे। खैर, अगर दोनों अनुभव मिलते जुलते भी हैं, तब भी इस कहानी से इस मान्यता का भी खंडन हो जाता है कि जागृत व्यक्ति कोई गलत काम नहीं कर सकता। वास्तव में जागृति से अच्छा काम करने की प्रेरणा मिलती है, पर इसकी कोई गारंटी नहीं कि अच्छा ही काम होगा। यह ऐसे ही है कि किसी को महान व्यक्ति की संगति मिले पर वह उसकी प्रेरणा को नजरंदाज करके कोई महान काम न करे। अच्छे या बुरे काम के लिए संस्कार, मानसिकता, व अभ्यास जिम्मेदार होते हैं। इस कथा से यह पता भी लगता है कि जैसे अच्छे काम शक्ति से होते हैं, वैसे ही बुरे काम भी शक्ति से ही होते हैं। शक्तिहीन तो कुछ भी नहीं कर सकता। खुराफाती लोगों में बहुत शक्ति होती है। यदि उनकी शक्ति को सही दिशा में मोड़ा जाए तो वे सबसे जल्दी जागृत हो सकते हैं। शायद रावण के साथ भी यही हुआ था। वह खुराफाती था पर अधिक शक्ति की आकांक्षा से शिव की पूजा करने लगा। खुराफाती लोगों का दिमाग एकदम फल चाहता है, वैसे ही जैसे चोर कमाई का इंतजार नहीं कर सकता, इसलिए किसी चीज को एकदम पाने के लिए उसकी चोरी करता है। वैसे ही जब रावण को पूजा से कोई लाभ मिलता नहीं दिखा तो उसने दूसरा तरीका अपनाया। मतलब शातिर दिमाग को आम जनसमुदाय की तरह सीधा, धीमा, आदर्शवाद वाला और साधारण तरीका कब पसंद आने लगा। इसलिए उसने टेढ़ा, तेज, आदर्शविहीन और असाधारण तांत्रिक तरीका अपनाया। शायद तांत्रिक तरीके की सफलता से वह इस भ्रम में रहा होगा कि वह तो यौन क्रिया में निपुण है, और किसी के साथ भी बिना रोकटोक के कर सकता है। इसी भ्रम के कारण ही उसने कुबेर की होने वाली पुत्रवधु रंभा अप्सरा का शील भंग किया होगा, और इसी भ्रम में आकर उसने सीता हरण किया होगा, जिस वजह से वह सीतापति राम के हाथों मारा गया।

मुझे लगता है कि रावण का अपना घर सहस्रार चक्र था, क्योंकि वहीं आत्मा का निवास माना जाता है। इसीलिए लंका को सोने की नगरी कहा जाता है। चीनी ताओ दर्शन में गोल्डन फ्लावर मेडिटेशन के अंतर्गत गोल्डन फ्लावर आज्ञा चक्र पर महसूस होता है।

आज्ञा चक्र भी सोने की लंका हो सकती है क्योंकि रावण जैसा अहंकारी आदमी सहस्रार जैसे दिव्य स्थान में तो रहने नहीं वाला, बेशक भौतिकवादी और बुद्धिवादी आज्ञा चक्र में जरूर रह सकता है। एक पौराणिक कथा आती है कि लंका से एक कमल के नाल जैसी सुरंग पाताल लोक को जाती थी। यह बताता है कि लंका एक चक्र था जो नाड़ी से मूलाधार से जुड़ा था, क्योंकि मूलाधार को अक्सर पाताल कहा जाता है। लंका को त्रिकूट पर्वत मतलब तीन पर्वत शिखरों के बीच में बताया गया है। अगर एक शिखर को बाईं भौंह वाली हड्डी मानें, दूसरे शिखर को दाईं वाली और तीसरे को नाक की हड्डी मानें तो लंका आज्ञा चक्र ही लगती है।

शिव को पता था कि रावण स्वभाव से ही दुष्ट है, इसलिए अगर उसकी बुद्धि को शिवलिंग का तेज मिल गया तो वह और ज्यादा दुष्ट बनेगा। ऐसा भी हो सकता है कि सहस्रार ही उसका घर हो, पर वह उसकी दिव्यता का दुरुपयोग करता था। इसका मतलब है कि यह जरूरी नहीं है कि सहस्रार पर जाकर आदमी खुद सज्जन बन जाए। प्रयास तो उसे तब भी करना पड़ेगा। कई विशेष धर्मों के अधिष्ठाता शायद सहस्रार को जगा कर हमेशा उसमें स्थित रहते थे, पर उन्होंने धर्म और ईश्वर के नाम पर अंतहीन नरसंहार करवाया, जो आजतक जारी है। ऐसे लोग अगर बिगड़ जाएं तो कालस्वरूप ही होते हैं। कोई उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता क्योंकि वे खुद परम पद पर स्थित होते हैं। संभवतः इसीलिए प्राचीनकाल में ब्रह्मविद्या को गुप्त रखा जाता होगा। अब परमाणु बम भी गुप्त नहीं रहा, अब किस बात का डर। मुझे यह भी लगता है कि जो जागृति के लिए तंत्र आदि से जबरदस्ती प्रयास करते हैं, उन्हें क्षणिक या आंशिक जागृति ही मिलती है, जैसी रावण को मिली, पूर्ण जागृति नहीं। रावण उसी पूर्ण जागृति को शिव से मांग रहा था, जिसको ऐसा कहा गया है कि वह शिवलिंग को स्थायी तौर पर अपने घर में रखना चाहता था। पर शिव ने उसे अनाधिकारी जानकर ऐसा नहीं होने दिया। मतलब जागृत बनने से पहले इंसान बनना पड़ता है।

इस कहानी को थोड़ा सा और ट्विस्ट भी दे सकते हैं। रावण अहंकार ही है। दसवां सिर अंहकार रूप ही था। उसे काटने का प्रयास मतलब वह बहुत कमजोर हो गया था और ख़त्म ही होने वाला था कि शिव प्रकट हो गए। मतलब अहंकार के शून्य होने से तो आदमी मर ही जाएगा, फिर जागृति किसे और कैसे मिलेगी। शिव का दर्शन देना मतलब बचेखुचे अंहकार का शिव में विलीन हो जाना है, नष्ट होना नहीं। रावण की लंका मूलाधार भी है, क्योंकि यह समुद्र के बीच में है, और ज्यादातर कथाओं में मूलाधार को समुद्र के रूप में दिखाया गया है। रावण रूपी दस इंद्रियां सीता रूपी शक्ति को हर के लंका रूपी मूलाधार में ले जाती हैं। मतलब कि दस इन्द्रियों से आदमी दुनियादारी में भटकता है। इससे दुनिया के चित्र उसके मन में शक्ति के नाम से व्यक्त रूप में आ जाते हैं, और फिर शीघ्र ही अवचेतन मन में अव्यक्त रूप में दब कर दर्ज हो जाते हैं। यही सीता

रूपी शक्ति का लंका रूपी मूलाधार को जाना है। अब पाठक कहेंगे कि पहले आज्ञा चक्र को लंका बोला, और अब मूलाधार चक्र को बता रहे हैं। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है, क्योंकि मूलाधार और आज्ञा चक्र सीधे आपस में जुड़े हैं।

यह शंका भी हो सकती है कि पहले मन को ब्रह्मा कहा था, और अब नारद मुनि को बोल रहे हैं। इसमें भी कोई विरोधाभास नहीं है। नारद मुनि ब्रह्मा के पुत्र हैं, मतलब ब्रह्मा रूपी संपूर्ण मन का एक छोटा सा भाग ही नारद रूप

कुंडलिनी शक्ति ही जल और इष्ट ध्यान ही मछली है, जो प्रलय से सृष्टि को बचाने में जागृत मनु भगवान की मदद करते हैं, जैसा की मत्स्य पुराण की मिथक कथा में वर्णित है

दोस्तो, मत्स्यपुराण की मूल व मुख्य कथा में आता है कि पूर्वकाल में आत्मज्ञानी सूर्यपुत्र महाराज वैवस्वत मनु ने पुत्र को राज्य सौंप कर मलयाचल के एक भाग में घोर तप किया। उससे उन्हें उत्तम योग की प्राप्ति हुई। उनके तप करते हुए करोड़ों वर्ष बीतने पर ब्रह्मा ने प्रकट होकर वर मांगने को कहा। इस पर मनु ने यह वर मांगा कि वह प्रलय होने पर सभी जीवों की रक्षा करने में स्मर्थ हो जाए। ब्रह्मा ने यह वर दे दिया। एकबार आश्रम में पितृ तर्पण करते हुए मनु को हथेली पर जल के साथ ही एक मछली आ गिरी। उसे उन्होंने दयावश कमंडलु में डाल दिया। एक ही दिनरात में वह सोलह अंगुल बड़ी हो गई और रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए कहने लगी। तब राजा ने उसे मिट्टी के घड़े में डाल दिया। वहां भी वह मत्स्य एक ही रात में तीन हाथ बढ़ गया। फिर वह ऐसा ही कहने लगा कि वह उनकी शरण में है, रक्षा करें। तब मनु ने उस मत्स्य को कुएं में रखा। वहां वह फिर से एक योजन बड़ा हो गया। और वही कहने लगा। तब मनु ने उसे गंगा में छोड़ा। जब वह वहां भी विशाल हो गया तो मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। मनु ने डर के पूछा कि क्या वह कोई असुरराज या भगवान हैं। तब मत्स्य रूप में भगवान ठीक है, ऐसा कहते हुए बोले कि उसने उन्हें पहचान लिया है। भगवान बोले, "राजन, थोड़े समय में पर्वत, वन और काननों सहित यह पृथ्वी जल में निमग्न हो जाएगी। इसलिए सभी जीवों की रक्षा के लिए देवताओं ने इस नौका का निर्माण किया है। सभी जीवों को इस पर चढ़ाकर तुम इसकी रक्षा करना। जब युगांत वायु से आहत होकर यह नौका डगमगाने लगेगी, उस समय तुम उसे मेरे सींग में बांध देना। फिर प्रलय की समाप्ति में तुम जगत के सभी प्राणियों के प्रजापति होओगे। इस प्रकार कृतयुग के प्रारंभ में सर्वज्ञ और धैर्यशाली नरेश के रूप में तुम मन्वंतर के अधिपति होओगे। उस समय देवगण तुम्हारी पूजा करेंगे। फिर मनु ने कुछ प्रश्न किए जिसका जवाब मधुसूदन ने निम्न प्रकार से दिया। आज से लेकर सौ वर्ष तक इस भूतल पर वृष्टि नहीं होगी। इससे भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा। फिर उस युगांतक प्रलय के उपस्थित होने पर तपे हुए अंगार की वर्षा करने वाली सूर्य की सात भयंकर किरणें सभी जीवों को संतप्त करने लगेंगी। बड़वानल भी बहुत भयानक रूप ले लेगा। पाताल लोक से ऊपर उठकर संकर्षण के मुख से निकली हुई विषाग्नि तथा भगवान रुद्र के ललाट से उत्पन्न तीसरे नेत्र की अग्नि भी तीनों लोकों को भस्म करती हुई भभक उठेगी। इस तरह जब सारी धरती जलकर राख का ढेर बन जाएगी और गगनमंडल ऊष्मा से संतप्त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रों सहित सारा जगत नष्ट हो जाएगा। उस समय सात

प्रकार के मेघ अग्नि के प्रस्वेद से उत्पन्न हुए जल की घोर वृष्टि से धरती को डुबो देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जाएंगे, और तीनों लोकों को एकार्णव में परिवर्तित कर देंगे। उस समय तुम इस वेदरूपी नौका को ग्रहण करके इस पर सभी जीवों और बीजों को लाद देना तथा मेरे सींग में बांध देना। ऐसे में जब सारा देवसमूह भी भस्म हो जाएगा, तब भी तुम मेरी शक्ति से जिंदा रहोगे। इस आंतर प्रलय में सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकों सहित ब्रह्मा, नर्मदा नदी, महर्षि मार्कंडेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओं द्वारा घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह विश्व (नौकारूप), ये ही बचे रहेंगे। चाक्षुष मन्वंतर के प्रलय काल में जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णव में निमग्न हो जाएगी और तुम्हारे द्वारा सृष्टि का प्रारंभ होगा, तब मैं वेदों का पुनः उद्धार करूंगा। ऐसा कह कर मत्स्य भगवान अंतर्धान हो गए।

मत्स्य पुराण के मुख्य मिथक कथानक का पर्दाफाश

सूर्यपुत्र आत्मा को कहा गया होगा, क्योंकि प्रकाशमान सूर्य को अक्सर साक्षात परमात्मस्वरूप कहा जाता है। मनु मतलब एक मनुष्य। मलयाचल मतलब सफेद चंदन का वृक्ष। करोड़ों वर्ष बीत गए तप करते हुए मतलब मनुष्य साधारण जीव से करोड़ों वर्षों के दौरान विकसित हो कर बना है। ब्रह्मा का वर देना मतलब कुदरती तौर पर उस काबिल होना क्योंकि कुदरत में सबकुछ ब्रह्मा ही करता है। प्रलय होने मतलब आदमी के मरने पर वह सभी जीवों की रक्षा करने में मतलब प्रजनन से नए आदमी पैदा करने में समर्थ हो जाए। मछली शक्ति को कहा है। उसे इसलिए भगवान कहा गया है क्योंकि शिव और शक्ति में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। वह वही कुंडलिनी शक्ति है जो मूलाधार से ऊपर चढ़कर तेजी से बढ़ते हुए उस शेषनाग का रूप ले लेती है, जो पूरे शरीररूपी महासागर में व्याप्त हो जाता है। नौका शायद प्रजनन इंद्रिय को कहा है। क्योंकि देवताओं ने ही शरीर के सभी अंगों का निर्माण किया है। वह युगांतक वायु मतलब प्राणवायु से डगमगाने मतलब क्रियाशील हो जाएगी। उसे मछली के सींग से मतलब मछली की तरह मुंह वाले अंग से के अगले भाग में बांधा। प्रलय की समाप्ति पर मतलब बच्चे के जन्म पर सभी प्राणियों के पिता हो जाओगे, क्योंकि सभी प्राणियों सहित संपूर्ण सृष्टि आदमी के मन में ही है। मन्वंतर मतलब मनुष्य का अंतर। एक मनुष्य के मरने के बाद जब उसका दूसरा मनुष्य जन्म हुआ तो वही मन्वंतर हुआ। वह दूसरा जन्म कृतयुग या सतयुग है, क्योंकि एक मनुष्य जन्म में बिगड़ा मनुष्य अपने अगले जन्म में अक्सर सुधर जाता है। युगों का चक्र जैसे बाहर घूमता है, वैसे ही भीतर भी। मन्वंतर के अधिपति मतलब पिता। सर्वज्ञ इसलिए क्योंकि उसे उस नए मनुष्य के पिछले जन्म के बारे में सब ज्ञात है, बेशक सूक्ष्म या अवचेतन रूप में। धैर्यशाली इसलिए क्योंकि नई सृष्टि की उत्पत्ति मतलब नए मनुष्य के विकास में बहुत समय लगा, जिसका मनु ने बखूबी इंतजार किया। देवगण पूजा करते हैं पिता की। पुत्र का शरीर देवताओं से बना हुआ होता है। पुत्र पिता की सेवा या पूजा

करेगा, मतलब देवगण पूजा करेंगे। सौ वर्ष ही मनुष्य का जीवनकाल होता है। उस दौरान उसके मन में जो सृष्टि होती है, वह बिना वर्षा के होती है, क्योंकि वर्षा स्थूल जगत में होती है, मस्तिष्क में उसके सूक्ष्म रूप में नहीं। इसी को दुर्भिक्ष कहा है। फिर सौ साल की उम्र पूरी होने पर आदमी की मृत्यु के रूप में प्रलय का वर्णन है। शरीर का ज्वर सात प्रकार का होता है। इसे ही सूर्य की सात किस्मों की किरणें कहा गया है। बड़वानल मतलब समुद्र में अग्नि। शास्त्रों में मूलाधार को समुद्र की उपमा दी गई है। उसमें आग मतलब उसमें शिवशक्ति का ध्यान, जैसा रावण ने किया था। बड़वानल को शास्त्रों में घोड़े का रूप दिया गया है। घोड़े की आकृति कुछकुछ ड्रेगन से मिलती जुलती है। इसका मतलब कि कुंडलिनी शक्ति ही बड़वानल है, जो अश्व जैसी आकृति की नाड़ी से होकर ऊपर चढ़ती है। इसीलिए बड़वानल का शत्रु पर अस्त्र की तरह प्रयोग भी दिखाया जाता है। शक्ति ही अस्त्र की तरह होती है। वैसे भी घोड़े पीठ में सुषुम्ना नाड़ी के ठीक ऊपर शरीर की केंद्रीय रेखा में पीठ पर पूंछ से सिर, यहां तक कि कुछेक जातियों में भ्रूमध्य बिंदु तक विशेष बाल होते हैं। शायद इसीलिए घोड़े में तेज दिमाग होता है। आपातकाल में या मुसीबत में शरीर को शक्ति देने के लिए मूलाधार सक्रिय होने लगता है। मरते हुए आदमी की सांसें तेज और गहरी हो जाती हैं। उन सांसों के बल से मूलाधार की शक्ति भी तेजी से ऊपर चढ़ने लगती है, और सुषुम्ना नाड़ी से होकर ऊपर उठकर पूरे मस्तिष्क में फैलकर शेषनाग अर्थात संकर्षण का रूप ले लेती हैं। मुंह से बाहर निकलती हवा ही उसकी विषाग्नि है। विष इसलिए कहा है क्योंकि प्राचीन लोगों को पता था कि अगर बाहर की ताजा हवा न मिले तो अपनी ही छोड़ी हवा में सांस लेने से दम घुटने से मौत हो जाती है। जब शक्ति ऊपर चढ़ेगी तो स्वाभाविक है कि वह आज्ञा चक्र पर कांसेंट्रेट हो जाएगी। यही अग्नि उगलता शिव का तीसरा नेत्र है। क्योंकि इन दोनों किस्म की घटनाओं के बाद मृत्यु हो जाती है, इसलिए कहा गया है कि इससे शरीर जलकर राख बन जाएगा। वैसे भी मृत शरीर को जलाते ही हैं। ज्वर के बाद पसीना अर्थात प्रस्वेद पड़ता है। सात प्रकार के ज्वर से सात प्रकार का पसीना हुआ। उन्हें ही सात किस्म के समुद्र कहा गया है। सब समुद्र इकट्ठे हो गए मतलब अंत में शरीर पूरी तरह से ठंडा पड़ जाता है। मन समेत पूरा शरीर समुद्र मतलब मूलाधार में सूक्ष्मरूप में समा जाता है। मतलब कोई आदमी मर गया। मृत व्यक्ति का अपना सारा संसार सूक्ष्मरूप में रूपांतरित होकर होने वाले पिता मतलब मनु के मूलाधार में स्थित हो जाता है। श्य मतलब शयन करने वाला। मनु के मूलाधार में शयन करने वाला प्राणी ही मनुष्य हुआ। उसी मूलाधार रूपी समुद्र में एक इंद्रिय रूपी नौका स्थित होती है। उसी नौका पर वह सूक्ष्म रूप में स्थित मृत व्यक्ति को जीवों और बीजों मतलब वीर्य के रूप में चढ़ाता है। बीज भी जीव ही है। मछली आदि की आगे की कहानी तो खुद ही समझ में आ जाती है। क्योंकि शरीर नष्ट हो गया, इसलिए देवता भी नष्ट हो गए। मृत व्यक्ति के सांस न लेने से वायुदेव नष्ट हो गए, गर्मी न पैदा करने से अग्नि देवता नष्ट हो गए, और रक्तसंचार न करने से जल देवता। ये तीन मुख्य देवता हैं। अन्य भी विभिन्न अंगों से संबंधित सभी देवता नष्ट हो गए। कुछ शाश्वत चीजें

जैसे सोम, सूर्य, और मैं (ईश्वर रूपी मत्स्य), मार्केंडेय, नर्मदा आदि बताई हैं। शायद ये ऐसी चीजें हैं जो परमात्मा के सनातन स्वरूप से जुड़ी हुई हैं। सोम मतलब मन संघात, सूर्य मतलब आत्मा आदि। सूक्ष्म शरीर में तो वैसे सबकुछ ही होता है, पर इसे सूक्ष्म विश्व के रूप में बताया गया है संक्षेप में। सूक्ष्म शरीर विश्वरूप ही होता है, क्योंकि यही इंद्रियों से शरीर में घुसकर दबकर सूक्ष्म हो जाता है। शरीर को हम विश्व को दबाने वाली मशीन कह सकते हैं। विस्तार से कहें तो सूक्ष्म शरीर में आत्मा, बुद्धि, मन, इंद्रियां आदि बताई गई हैं, पर यह केवल दार्शनिक विस्तार है, क्योंकि ये सभी चीजें विश्व के अंतर्गत ही आती हैं। जब मनु के द्वारा सृष्टि रूपी गर्भ स्थापित कर दिया जाएगा, तब भगवान हयग्रीव बन कर वेदों को राक्षस से छुड़ाकर लाएंगे, जिसे अगली पोस्ट में बताएंगे। इस तरह जब मत्स्य भगवान नौका को महासागर में खींच रहे थे, उस समय वे मनु को ज्ञान विज्ञान की बातें बता रहे थे, जिनसे मत्स्य पुराण बन गया। वैसे तथाकथित मत्स्य की क्रियाशीलता से शक्ति खुद ही सुषुम्ना में क्रियाशील रहती है जो नए नए ज्ञानविज्ञान के अनुभव प्रदान करती रहती है। जैसे सृष्टि का हरेक कण भगवत रूप है, वैसे ही शरीर का हरेक अंग और कण भी है।

क्योंकि तप और योगसाधना से ही शक्ति तेजी से ऊपर चढ़ती है, इसीलिए जल तर्पण करते हुऐ ऋषि के हाथ में आई। तर्पण में एक पवित्र तांबे के चम्मच से जल हाथ पर गिराया जाता है। मछली हाथ में मतलब शक्ति अनाहत पर महसूस होती है, क्योंकि तर्पण के समय दिल से दृढ़ भावना की जाती है। शक्ति को इंद्रियां दुनिया में उलझा कर एक प्रकार से खा जाती हैं। यही मछली का हिंसक जलचरों से डरना और मनु से सुरक्षा मांगना है। इससे मनु ने एनर्जी कल्टीवेशन का अभ्यास शुरु किया। वह शक्ति जब बढ़ी तो नाभि चक्र रूपी कमंडलु को उतरी। और बढ़ने पर वह मूलाधार रूपी कुएं को उतरी। वहां बढ़ने पर वह बैक चैनल यानि सुषुम्ना मतलब गंगा से ऊपर चढ़ी। इस प्रकार वह फन ऊपर को उठाए शेषनाग की तरह विस्तृत हो गई। उसे फिर आगे के चेनल से नीचे मूलाधार रूपी समुद्र को उतारा गया। मतलब विशाल मत्स्य को समुद्र में छोड़ दिया गया।

मुझे लगता है कि कुंडलिनी जागरण को ही रूपक के तौर पर देवदर्शन के रूप में दिखाया जाता है। जिस बात को मन में लेकर आदमी कुंडलिनी साधना में लगता है, वह जागृति मिलने पर पूरी हो जाती होगी। इसी को रूपक के तौर पर ऐसा कहा गया है कि देवता ने प्रकट होकर वरदान दिया। योग के अनुसार शुद्ध वैज्ञानिक और सैद्धांतिक कुंडलिनी जागरण तो ऐसा होता है कि आदमी मानसिक ध्यान चित्र के साथ एकाकार होकर और पूरा खुलकर अनंत रूप हो जाता है, उस चित्र से कोई बात वगैरह नहीं होती। ऋषिमुनि मन में अच्छा ध्येय रखकर साधना करते थे, पर राक्षस बुरा ध्येय रखकर। मनु के मन में सृष्टि रक्षा का ध्येय था, जैसा हरेक पिता के मन में होता है। पर रावण के मन में सारी

दुनिया को पराजित करने का ध्येय था। इसलिए उनके मुंह से वैसे ही वरदान की मांग निकली। मनु को कुंडलिनी जागरण ही हुआ था, जब उसने कई करोड़ योजन विस्तार के आकार वाले मत्स्य को देखा। एक करोड़ योजन लगभग 13 करोड़ किलोमीटर के बराबर होता है, जो लगभग पृथ्वी से सूर्य की दूरी है। ऐसे कई दूरियों के विस्तार वाले मत्स्य को देखना कुंडलिनी जागरण के इलावा अन्य कुछ नहीं लगता। मत्स्य इतना फैल गया मतलब नाग के आकार वाली शक्ति सहस्रार से होकर पूरे ब्रह्मांड में फैल गई। शक्ति शिव के साथ एक हो गई। क्योंकि किसी ध्यान चित्र के बिना ही मनु की शक्ति जागृत होकर अनंत में फैल गई, इसीलिए शिव, विष्णु, गणेश आदि किसी देवता से मनु को वरदान मांगते नहीं दिखाया गया है, पर सीधे ही मत्स्य के रूपक में ढाली शक्ति से मांगते या उससे मदद लेते दिखाया गया है। इसका मतलब है कि मत्स्य पुराण अन्य पुराणों से काफी पुराना हो सकता है। उस समय शायद ध्यान चित्र के लाभों की खोज नहीं हुई थी, और लोग सीधे ही आध्यात्मिक कार्य किया करते थे। ध्यान चित्र तो वैसे अध्यात्म से खुद ही बनता है, पर शायद उसे जागृत करने लायक विशेष बल नहीं देते थे, क्योंकि इसके वैज्ञानिक सिद्धांत का पता न होने से इस पर पूरा विश्वास नहीं था। जिस जल से भरे गड्ढे की गहराई का पता न हो, आदमी उस पर अपनी कार नहीं ले जाता। इससे लंबे समय से इकट्ठी हो रही आध्यात्मिक ऊर्जा खुद ही अचानक से आश्चर्य जागृति की झलक के रूप में महसूस हो जाती थी। पतंजलि का वैज्ञनिक अष्टांग योग बाद में लिखा गया होगा, जिससे ध्यान चित्र के महत्त्व का और उससे शीघ्रता से जागृति के बारे में पता चला होगा। इसीलिए पुराणों में हर जगह ध्यान और ध्यान चित्र का बोलबाला है। इसी के आधार पर बाद में रामायण भी लिखी गई, जिसमें ऋषि राम को ध्यान चित्र बना कर लंका रूपी मूलाधार में भेजा जाता है, जहां से वह सीता रूपी सोई हुई कुंडलिनी शक्ति को सुषुम्ना रूपी पुष्पक विमान से उठाकर सहस्रार रूपी अयोध्या में लाकर जागृत कर देते हैं।

यह भी हो सकता है कि जागृति के बाद रूपांतरण को ही प्रलय के बाद नई सृष्टि पैदा होना दिखाया गया हो। जागृति को वैसे भी नया जन्म ही कहते हैं। इसीलिए तो मनु उस प्रलय में मरता नहीं है। मस्तिष्क में पुराना सबकुछ खत्म हो जाता है, पर उसका सूक्ष्म बीज रहता है, तभी तो वह नए रूप में फिर से जन्म ले लेता है। इसका मतलब है कि जैसे पुरानी सृष्टि समय के साथ विकृत और दुख से भरी हो गई थी, उसी तरह नई भी हो सकती है। इसीलिए तो जागृति के बाद भी संभल के रहना पड़ता है और निरंतर योगसाधना करते रहना पड़ता है ताकि नई सृष्टि विकृत होने से बची रहे। मत्स्य रूपी शक्ति उसके रूपांतरण में मदद करती है। रूपांतरण के दौरान आदमी नई नई और अच्छी चीजें सीखता है, इसे ही मत्स्य भगवान द्वारा मनु को मत्स्य पुराण सुनाना कहा गया है। दोनों किस्म के विश्लेषण भी सही हो सकते हैं, क्योंकि पुराणों की कथाएं अक्सर बहुअर्थी होती हैं।

मलय सफेद चंदन को कहते हैं। मलयाचल मतलब सफेद चंदन के वृक्षों से भरा पर्वत। यह मस्तिष्क ही लगता है। इसी में प्रकाशमान और आनन्दमय संकल्प चित्र उभरते हैं। ध्यान मास्तिष्क में ही होता है। मछली ध्यानचित्र का प्रतीक भी हो सकता है। संकल्प जल का गिराना कुंडलिनी शक्ति का माइक्रोकॉस्मिक ऑर्बिट में घूमने का प्रतीक है। इसलिए शक्ति के घूमने से एक ध्यान चित्र खुद ही मनु की पकड़ में आ गया, मतलब हाथ में आ गया। बोलते भी हैं कि फलां चीज या मछली उसके हाथ लग गई या उसके जाल में फंस गई। पुराण आम बोलचाल के शब्दों का ही ज्यादा प्रयोग करते हैं। ध्यानचित्र रूपी मछली शक्ति रूपी जल में ही जीवित रहती है। वह ध्यानचित्र तांत्रिक साधना से बहुत तेजी से बढ़ता है। हाथ अनाहत चक्र से जुड़ा होता है। यह चक्र दिल का और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रेम से कुंडलिनी योग का प्रारंभ होता है, वह हृदय में ही उपजता है। इसी प्रेम मिश्रित दयाभाव से उसने दिल में महसूस हुए मछली रूपी इष्टचित्र को संभाल कर कमण्डलु मतलब उससे निचले चक्र मणिपुर चक्र को उतार दिया। जब दिल में ध्यान मजबूत हो जाता है, तब वह खुद ही नाभि को उतरता है। कहते भी हैं कि प्यार के बाद भूख लगती है। नाभि का आकार भी कमण्डलु मतलब पूजा के पवित्र लोटे की तरह टेढ़े मेढ़े गड्ढे के जैसा होता है। संसारसागर में भौतिक दोष रूपी बड़े बड़े मांसाहारी मतलब दुखदायी मच्छ होते हैं, जिनसे उसे बचाना पड़ता है। प्रेम से उसका ध्यान जारी रखने से वह तेजी से बढ़ता ही गया। इससे वह खुद ही घड़ा रूपी स्वाधिष्ठान चक्र को उतर गया। वैसे भी इस चक्र को बैगेज मतलब बैग या घड़े जितने आकार का कंटेनर ऑफ इमोशंस कहते हैं। वहां भी वह मनु के प्रेम से बढ़ता गया, इससे वह मूलाधार रूपी कुएं को उतर गया। सबसे बड़ा गड्ढा मूलाधार ही है, और कुएं से बड़ा गड्ढा क्या हो सकता है। वहां से वह मनु की योगसाधना से बढ़कर सुषुम्ना से होते हुए वह कुंडलिनी शक्ति के साथ ऊपर चढ़ गया। इसीको मनु के द्वारा मत्स्य को गंगा में डालना कहा गया है। कथा के शुरु में ही लिखा है कि मनु को तप करते हुए उत्तम योग की प्राप्ति हुई। इससे इशारा मिलता है कि यह कुंडलिनी योग का ही वर्णन हो रहा है, क्योंकि कुंडलिनी योग सभी प्रकार के योगों में सर्वोत्तम है। गंगा से वह मत्स्य समुद्र यानि सहस्रार चक्र को चला गया। कई लोग बोलेंगे कि पहले मूलाधार को समुद्र बोला और अब सहस्रार को बोल रहे हैं। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। दोनों सुषुम्ना नाड़ी से सीधे आपस में जुड़े हुए हैं। मूलाधार और सहस्रार, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सहस्रार पहुंचते ही उसका आकार फन उठाए विशाल नाग की तरह हो गया। मतलब मनु को कुंडलिनी जागरण हुआ, जिससे उसका रूपांतरण शुरु हो गया।

कुंडलिनी शक्ति ही जल और इष्ट ध्यान ही मछली है, जो प्रलय से सृष्टि को बचाने में जागृत मनु भगवान की मदद करते हैं, जैसा की मत्स्य पुराण की मिथक कथा में वर्णित है

दोस्तो, मत्स्यपुराण की मूल व मुख्य कथा में आता है कि पूर्वकाल में आत्मज्ञानी सूर्यपुत्र महाराज वैवस्वत मनु ने पुत्र को राज्य सौंप कर मलयाचल के एक भाग में घोर तप किया। उससे उन्हें उत्तम योग की प्राप्ति हुई। उनके तप करते हुए करोड़ों वर्ष बीतने पर ब्रह्मा ने प्रकट होकर वर मांगने को कहा। इस पर मनु ने यह वर मांगा कि वह प्रलय होने पर सभी जीवों की रक्षा करने में स्मर्थ हो जाए। ब्रह्मा ने यह वर दे दिया। एकबार आश्रम में पितृ तर्पण करते हुए मनु को हथेली पर जल के साथ ही एक मछली आ गिरी। उसे उन्होंने दयावश कमंडलु में डाल दिया। एक ही दिनरात में वह सोलह अंगुल बड़ी हो गई और रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए कहने लगी। तब राजा ने उसे मिट्टी के घड़े में डाल दिया। वहां भी वह मत्स्य एक ही रात में तीन हाथ बढ़ गया। फिर वह ऐसा ही कहने लगा कि वह उनकी शरण में है, रक्षा करें। तब मनु ने उस मत्स्य को कुएं में रखा। वहां वह फिर से एक योजन बड़ा हो गया। और वही कहने लगा। तब मनु ने उसे गंगा में छोड़ा। जब वह वहां भी विशाल हो गया तो मनु ने उसे समुद्र में डाल दिया। मनु ने डर के पूछा कि क्या वह कोई असुरराज या भगवान हैं। तब मत्स्य रूप में भगवान ठीक है, ऐसा कहते हुए बोले कि उसने उन्हें पहचान लिया है। भगवान बोले, "राजन, थोड़े समय में पर्वत, वन और काननों सहित यह पृथ्वी जल में निमग्न हो जाएगी। इसलिए सभी जीवों की रक्षा के लिए देवताओं ने इस नौका का निर्माण किया है। सभी जीवों को इस पर चढ़ाकर तुम इसकी रक्षा करना। जब युगांत वायु से आहत होकर यह नौका डगमगाने लगेगी, उस समय तुम उसे मेरे सींग में बांध देना। फिर प्रलय की समाप्ति में तुम जगत के सभी प्राणियों के प्रजापति होओगे। इस प्रकार कृतयुग के प्रारंभ में सर्वज्ञ और धैर्यशाली नरेश के रूप में तुम मन्वंतर के अधिपति होओगे। उस समय देवगण तुम्हारी पूजा करेंगे। फिर मनु ने कुछ प्रश्न किए जिसका जवाब मधुसूदन ने निम्न प्रकार से दिया। आज से लेकर सौ वर्ष तक इस भूतल पर वृष्टि नहीं होगी। इससे भयंकर दुर्भिक्ष पड़ेगा। फिर उस युगांतक प्रलय के उपस्थित होने पर तपे हुए अंगार की वर्षा करने वाली सूर्य की सात भयंकर किरणें सभी जीवों को संतप्त करने लगेंगी। बड़वानल भी बहुत भयानक रूप ले लेगा। पाताल लोक से ऊपर उठकर संकर्षण के मुख से निकली हुई विषाग्नि तथा भगवान रुद्र के ललाट से उत्पन्न तीसरे नेत्र की अग्नि भी तीनों लोकों को भस्म करती हुई भभक उठेगी। इस तरह जब सारी धरती जलकर राख का ढेर बन जाएगी और गगनमंडल ऊष्मा से संतप्त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रों सहित सारा जगत नष्ट हो जाएगा। उस समय सात प्रकार के मेघ अग्नि के प्रस्वेद से उत्पन्न हुए जल की घोर वृष्टि से धरती को डुबो देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जाएंगे, और तीनों लोकों को एकार्णव में परिवर्तित कर देंगे। उस समय तुम इस वेदरूपी नौका को ग्रहण करके इस पर सभी जीवों और बीजों को लाद देना तथा मेरे सींग में बांध देना। ऐसे में जब सारा देवसमूह भी भस्म हो

जाएगा, तब भी तुम मेरी शक्ति से जिंदा रहोगे। इस आंतर प्रलय में सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकों सहित ब्रह्मा, नर्मदा नदी, महर्षि मार्कंडेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओं द्वारा घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह विश्व (नौकारूप), ये ही बचे रहेंगे। चाक्षुष मन्वंतर के प्रलय काल में जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णव में निमग्न हो जाएगी और तुम्हारे द्वारा सृष्टि का प्रारंभ होगा, तब मैं वेदों का पुनः उद्धार करूंगा। ऐसा कह कर मत्स्य भगवान अंतर्धान हो गए।

मत्स्य पुराण के मुख्य मिथक कथानक का पर्दाफाश

सूर्यपुत्र आत्मा को कहा गया होगा, क्योंकि प्रकाशमान सूर्य को अक्सर साक्षात परमात्मस्वरूप कहा जाता है। मनु मतलब एक मनुष्य। मलयाचल मतलब सफेद चंदन का वृक्ष। करोड़ों वर्ष बीत गए तप करते हुए मतलब मनुष्य साधारण जीव से करोड़ों वर्षों के दौरान विकसित हो कर बना है। ब्रह्मा का वर देना मतलब कुदरती तौर पर उस काबिल होना क्योंकि कुदरत में सबकुछ ब्रह्मा ही करता है। प्रलय होने मतलब आदमी के मरने पर वह सभी जीवों की रक्षा करने में मतलब प्रजनन से नए आदमी पैदा करने में समर्थ हो जाए। मछली शक्ति को कहा है। उसे इसलिए भगवान कहा गया है क्योंकि शिव और शक्ति में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। वह वही कुंडलिनी शक्ति है जो मूलाधार से ऊपर चढ़कर तेजी से बढ़ते हुए उस शेषनाग का रूप ले लेती है, जो पूरे शरीररूपी महासागर में व्याप्त हो जाता है। नौका शायद प्रजनन इंद्रिय को कहा है। क्योंकि देवताओं ने ही शरीर के सभी अंगों का निर्माण किया है। वह युगांतक वायु मतलब प्राणवायु से डगमगाने मतलब क्रियाशील हो जाएगी। उसे मछली के सींग से मतलब मछली की तरह मुंह वाले अंग से के अगले भाग में बांधा। प्रलय की समाप्ति पर मतलब बच्चे के जन्म पर सभी प्राणियों के पिता हो जाओगे, क्योंकि सभी प्राणियों सहित संपूर्ण सृष्टि आदमी के मन में ही है। मन्वंतर मतलब मनुष्य का अंतर। एक मनुष्य के मरने के बाद जब उसका दूसरा मनुष्य जन्म हुआ तो वही मन्वंतर हुआ। वह दूसरा जन्म कृतयुग या सतयुग है, क्योंकि एक मनुष्य जन्म में बिगड़ा मनुष्य अपने अगले जन्म में अक्सर सुधर जाता है। युगों का चक्र जैसे बाहर घूमता है, वैसे ही भीतर भी। मन्वंतर के अधिपति मतलब पिता। सर्वज्ञ इसलिए क्योंकि उसे उस नए मनुष्य के पिछले जन्म के बारे में सब ज्ञात है, बेशक सूक्ष्म या अवचेतन रूप में। धैर्यशाली इसलिए क्योंकि नई सृष्टि की उत्पत्ति मतलब नए मनुष्य के विकास में बहुत समय लगा, जिसका मनु ने बखूबी इंतजार किया। देवगण पूजा करते हैं पिता की। पुत्र का शरीर देवताओं से बना हुआ होता है। पुत्र पिता की सेवा या पूजा करेगा, मतलब देवगण पूजा करेंगे। सौ वर्ष ही मनुष्य का जीवनकाल होता है। उस दौरान उसके मन में जो सृष्टि होती है, वह बिना वर्षा के होती है, क्योंकि वर्षा स्थूल जगत में होती है, मस्तिष्क में उसके सूक्ष्म रूप में नहीं। इसी को दुर्भिक्ष कहा है। फिर सौ साल की उम्र पूरी होने पर आदमी की मृत्यु के रूप में प्रलय का वर्णन है। शरीर का ज्वर सात

प्रकार का होता है। इसे ही सूर्य की सात किस्मों की किरणें कहा गया है। बड़वानल मतलब समुद्र में अग्नि। शास्त्रों में मूलाधार को समुद्र की उपमा दी गई है। उसमें आग मतलब उसमें शिवशक्ति का ध्यान, जैसा रावण ने किया था। बड़वानल को शास्त्रों में घोड़े का रूप दिया गया है। घोड़े की आकृति कुछकुछ ड्रेगन से मिलती जुलती है। इसका मतलब कि कुंडलिनी शक्ति ही बड़वानल है, जो अश्व जैसी आकृति की नाड़ी से होकर ऊपर चढ़ती है। इसीलिए बड़वानल का शत्रु पर अस्त्र की तरह प्रयोग भी दिखाया जाता है। शक्ति ही अस्त्र की तरह होती है। वैसे भी घोड़े पीठ में सुषुम्ना नाड़ी के ठीक ऊपर शरीर की केंद्रीय रेखा में पीठ पर पूंछ से सिर, यहां तक कि कुछेक जातियों में भ्रूमध्य बिंदु तक विशेष बाल होते हैं। शायद इसीलिए घोड़े में तेज दिमाग होता है। आपातकाल में या मुसीबत में शरीर को शक्ति देने के लिए मूलाधार सक्रिय होने लगता है। मरते हुए आदमी की सांसें तेज और गहरी हो जाती हैं। उन सांसों के बल से मूलाधार की शक्ति भी तेजी से ऊपर चढ़ने लगती है, और सुषुम्ना नाड़ी से होकर ऊपर उठकर पूरे मस्तिष्क में फैलकर शेषनाग अर्थात संकर्षण का रूप ले लेती हैं। मुंह से बाहर निकलती हवा ही उसकी विषाग्नि है। विष इसलिए कहा है क्योंकि प्राचीन लोगों को पता था कि अगर बाहर की ताजा हवा न मिले तो अपनी ही छोड़ी हवा में सांस लेने से दम घुटने से मौत हो जाती है। जब शक्ति ऊपर चढ़ेगी तो स्वाभाविक है कि वह आज्ञा चक्र पर कांसेंट्रेट हो जाएगी। यही अग्नि उगलता शिव का तीसरा नेत्र है। क्योंकि इन दोनों किस्म की घटनाओं के बाद मृत्यु हो जाती है, इसलिए कहा गया है कि इससे शरीर जलकर राख बन जाएगा। वैसे भी मृत शरीर को जलाते ही हैं। ज्वर के बाद पसीना अर्थात प्रस्वेद पड़ता है। सात प्रकार के ज्वर से सात प्रकार का पसीना हुआ। उन्हें ही सात किस्म के समुद्र कहा गया है। सब समुद्र इकट्ठे हो गए मतलब अंत में शरीर पूरी तरह से ठंडा पड़ जाता है। मन समेत पूरा शरीर समुद्र मतलब मूलाधार में सूक्ष्मरूप में समा जाता है। मतलब कोई आदमी मर गया। मृत व्यक्ति का अपना सारा संसार सूक्ष्मरूप में रूपांतरित होकर होने वाले पिता मतलब मनु के मूलाधार में स्थित हो जाता है। श्य मतलब शयन करने वाला। मनु के मूलाधार में शयन करने वाला प्राणी ही मनुष्य हुआ। उसी मूलाधार रूपी समुद्र में एक इंद्रिय रूपी नौका स्थित होती है। उसी नौका पर वह सूक्ष्म रूप में स्थित मृत व्यक्ति को जीवों और बीजों मतलब वीर्य के रूप में चढ़ाता है। बीज भी जीव ही है। मछली आदि की आगे की कहानी तो खुद ही समझ में आ जाती है। क्योंकि शरीर नष्ट हो गया, इसलिए देवता भी नष्ट हो गए। मृत व्यक्ति के सांस न लेने से वायुदेव नष्ट हो गए, गर्मी न पैदा करने से अग्नि देवता नष्ट हो गए, और रक्तसंचार न करने से जल देवता। ये तीन मुख्य देवता हैं। अन्य भी विभिन्न अंगों से संबंधित सभी देवता नष्ट हो गए। कुछ शाश्वत चीजें जैसे सोम, सूर्य, और मैं (ईश्वर रूपी मत्स्य), मार्केंडेय, नर्मदा आदि बताई हैं। शायद ये ऐसी चीजें हैं जो परमात्मा के सनातन स्वरूप से जुड़ी हुई हैं। सोम मतलब मन संघात, सूर्य मतलब आत्मा आदि। सूक्ष्म शरीर में तो वैसे सबकुछ ही होता है, पर इसे सूक्ष्म विश्व के रूप में बताया गया है संक्षेप में। सूक्ष्म शरीर विश्वरूप ही होता है, क्योंकि यही इंद्रियों

से शरीर में घुसकर दबकर सूक्ष्म हो जाता है। शरीर को हम विश्व को दबाने वाली मशीन कह सकते हैं। विस्तार से कहें तो सूक्ष्म शरीर में आत्मा, बुद्धि, मन, इंद्रियां आदि बताई गई हैं, पर यह केवल दार्शनिक विस्तार है, क्योंकि ये सभी चीजें विश्व के अंतर्गत ही आती हैं। जब मनु के द्वारा सृष्टि रूपी गर्भ स्थापित कर दिया जाएगा, तब भगवान हयग्रीव बन कर वेदों को राक्षस से छुड़ाकर लाएंगे, जिसे अगली पोस्ट में बताएंगे। इस तरह जब मत्स्य भगवान नौका को महासागर में खींच रहे थे, उस समय वे मनु को ज्ञान विज्ञान की बातें बता रहे थे, जिनसे मत्स्य पुराण बन गया। वैसे तथाकथित मत्स्य की क्रियाशीलता से शक्ति खुद ही सुषुम्ना में क्रियाशील रहती है जो नए नए ज्ञानविज्ञान के अनुभव प्रदान करती रहती है। जैसे सृष्टि का हरेक कण भगवत रूप है, वैसे ही शरीर का हरेक अंग और कण भी है।

क्योंकि तप और योगसाधना से ही शक्ति तेजी से ऊपर चढ़ती है, इसीलिए जल तर्पण करते हुऐ ऋषि के हाथ में आई। तर्पण में एक पवित्र तांबे के चम्मच से जल हाथ पर गिराया जाता है। मछली हाथ में मतलब शक्ति अनाहत पर महसूस होती है, क्योंकि तर्पण के समय दिल से दृढ़ भावना की जाती है। शक्ति को इंद्रियां दुनिया में उलझा कर एक प्रकार से खा जाती हैं। यही मछली का हिंसक जलचरों से डरना और मनु से सुरक्षा मांगना है। इससे मनु ने एनर्जी कल्टीवेशन का अभ्यास शुरु किया। वह शक्ति जब बढ़ी तो नाभि चक्र रूपी कमंडलु को उतरी। और बढ़ने पर वह मूलाधार रूपी कुएं को उतरी। वहां बढ़ने पर वह बैक चैनल यानि सुषुम्ना मतलब गंगा से ऊपर चढ़ी। इस प्रकार वह फन ऊपर को उठाए शेषनाग की तरह विस्तृत हो गई। उसे फिर आगे के चेनल से नीचे मूलाधार रूपी समुद्र को उतारा गया। मतलब विशाल मत्स्य को समुद्र में छोड़ दिया गया।

मुझे लगता है कि कुंडलिनी जागरण को ही रूपक के तौर पर देवदर्शन के रूप में दिखाया जाता है। जिस बात को मन में लेकर आदमी कुंडलिनी साधना में लगता है, वह जागृति मिलने पर पूरी हो जाती होगी। इसी को रूपक के तौर पर ऐसा कहा गया है कि देवता ने प्रकट होकर वरदान दिया। योग के अनुसार शुद्ध वैज्ञानिक और सैद्धांतिक कुंडलिनी जागरण तो ऐसा होता है कि आदमी मानसिक ध्यान चित्र के साथ एकाकार होकर और पूरा खुलकर अनंत रूप हो जाता है, उस चित्र से कोई बात वगैरह नहीं होती। ऋषिमुनि मन में अच्छा ध्येय रखकर साधना करते थे, पर राक्षस बुरा ध्येय रखकर। मनु के मन में सृष्टि रक्षा का ध्येय था, जैसा हरेक पिता के मन में होता है। पर रावण के मन में सारी दुनिया को पराजित करने का ध्येय था। इसलिए उनके मुंह से वैसे ही वरदान की मांग निकली। मनु को कुंडलिनी जागरण ही हुआ था, जब उसने कई करोड़ योजन विस्तार के आकार वाले मत्स्य को देखा। एक करोड़ योजन लगभग 13 करोड़ किलोमीटर के बराबर होता है, जो लगभग पृथ्वी से सूर्य की दूरी है। ऐसे कई दूरियों के विस्तार वाले मत्स्य को

देखना कुंडलिनी जागरण के इलावा अन्य कुछ नहीं लगता। मत्स्य इतना फैल गया मतलब नाग के आकार वाली शक्ति सहस्रार से होकर पूरे ब्रह्मांड में फैल गई। शक्ति शिव के साथ एक हो गई। क्योंकि किसी ध्यान चित्र के बिना ही मनु की शक्ति जागृत होकर अनंत में फैल गई, इसीलिए शिव, विष्णु, गणेश आदि किसी देवता से मनु को वरदान मांगते नहीं दिखाया गया है, पर सीधे ही मत्स्य के रूपक में ढाली शक्ति से मांगते या उससे मदद लेते दिखाया गया है। इसका मतलब है कि मत्स्य पुराण अन्य पुराणों से काफी पुराना हो सकता है। उस समय शायद ध्यान चित्र के लाभों की खोज नहीं हुई थी, और लोग सीधे ही आध्यात्मिक कार्य किया करते थे। ध्यान चित्र तो वैसे अध्यात्म से खुद ही बनता है, पर शायद उसे जागृत करने लायक विशेष बल नहीं देते थे, क्योंकि इसके वैज्ञानिक सिद्धांत का पता न होने से इस पर पूरा विश्वास नहीं था। जिस जल से भरे गड्ढे की गहराई का पता न हो, आदमी उस पर अपनी कार नहीं ले जाता। इससे लंबे समय से इकट्ठी हो रही आध्यात्मिक ऊर्जा खुद ही अचानक से आश्चर्य जागृति की झलक के रूप में महसूस हो जाती थी। पतंजलि का वैज्ञनिक अष्टांग योग बाद में लिखा गया होगा, जिससे ध्यान चित्र के महत्त्व का और उससे शीघ्रता से जागृति के बारे में पता चला होगा। इसीलिए पुराणों में हर जगह ध्यान और ध्यान चित्र का बोलबाला है। इसी के आधार पर बाद में रामायण भी लिखी गई, जिसमें ऋषि राम को ध्यान चित्र बना कर लंका रूपी मूलाधार में भेजा जाता है, जहां से वह सीता रूपी सोई हुई कुंडलिनी शक्ति को सुषुम्ना रूपी पुष्पक विमान से उठाकर सहस्रार रूपी अयोध्या में लाकर जागृत कर देते हैं।

यह भी हो सकता है कि जागृति के बाद रूपांतरण को ही प्रलय के बाद नई सृष्टि पैदा होना दिखाया गया हो। जागृति को वैसे भी नया जन्म ही कहते हैं। इसीलिए तो मनु उस प्रलय में मरता नहीं है। मस्तिष्क में पुराना सबकुछ खत्म हो जाता है, पर उसका सूक्ष्म बीज रहता है, तभी तो वह नए रूप में फिर से जन्म ले लेता है। इसका मतलब है कि जैसे पुरानी सृष्टि समय के साथ विकृत और दुख से भरी हो गई थी, उसी तरह नई भी हो सकती है। इसीलिए तो जागृति के बाद भी संभल के रहना पड़ता है और निरंतर योगसाधना करते रहना पड़ता है ताकि नई सृष्टि विकृत होने से बची रहे। मत्स्य रूपी शक्ति उसके रूपांतरण में मदद करती है। रूपांतरण के दौरान आदमी नई नई और अच्छी चीजें सीखता है, इसे ही मत्स्य भगवान द्वारा मनु को मत्स्य पुराण सुनाना कहा गया है। दोनों किस्म के विश्लेषण भी सही हो सकते हैं, क्योंकि पुराणों की कथाएं अक्सर बहुअर्थी होती हैं।

मलय सफेद चंदन को कहते हैं। मलयाचल मतलब सफेद चंदन के वृक्षों से भरा पर्वत। यह मस्तिष्क ही लगता है। इसी में प्रकाशमान और आनन्दमय संकल्प चित्र उभरते हैं। ध्यान मास्तिष्क में ही होता है। मछली ध्यानचित्र का प्रतीक भी हो सकता है। संकल्प जल का गिराना कुंडलिनी शक्ति का माइक्रोकॉस्मिक ऑर्बिट में घूमने का प्रतीक है। इसलिए शक्ति

के घूमने से एक ध्यान चित्र खुद ही मनु की पकड़ में आ गया, मतलब हाथ में आ गया। बोलते भी हैं कि फलां चीज या मछली उसके हाथ लग गई या उसके जाल में फंस गई। पुराण आम बोलचाल के शब्दों का ही ज्यादा प्रयोग करते हैं। ध्यानचित्र रूपी मछली शक्ति रूपी जल में ही जीवित रहती है। वह ध्यानचित्र तांत्रिक साधना से बहुत तेजी से बढ़ता है। हाथ अनाहत चक्र से जुड़ा होता है। यह चक्र दिल का और भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रेम से कुंडलिनी योग का प्रारंभ होता है, वह हृदय में ही उपजता है। इसी प्रेम मिश्रित दयाभाव से उसने दिल में महसूस हुए मछली रूपी इष्टचित्र को संभाल कर कमण्डलु मतलब उससे निचले चक्र मणिपुर चक्र को उतार दिया। जब दिल में ध्यान मजबूत हो जाता है, तब वह खुद ही नाभि को उतरता है। कहते भी हैं कि प्यार के बाद भूख लगती है। नाभि का आकार भी कमण्डलु मतलब पूजा के पवित्र लोटे की तरह टेढ़े मेढ़े गड्ढे के जैसा होता है। संसारसागर में भौतिक दोष रूपी बड़े बड़े मांसाहारी मतलब दुखदायी मच्छ होते हैं, जिनसे उसे बचाना पड़ता है। प्रेम से उसका ध्यान जारी रखने से वह तेजी से बढ़ता ही गया। इससे वह खुद ही घड़ा रूपी स्वाधिष्ठान चक्र को उतर गया। वैसे भी इस चक्र को बैगेज मतलब बैग या घड़े जितने आकार का कंटेनर ऑफ इमोशंस कहते हैं। वहां भी वह मनु के प्रेम से बढ़ता गया, इससे वह मूलाधार रूपी कुएं को उतर गया। सबसे बड़ा गड्ढा मूलाधार ही है, और कुएं से बड़ा गड्ढा क्या हो सकता है। वहां से वह मनु की योगसाधना से बढ़कर सुषुम्ना से होते हुए वह कुंडलिनी शक्ति के साथ ऊपर चढ़ गया। इसीको मनु के द्वारा मत्स्य को गंगा में डालना कहा गया है। कथा के शुरु में ही लिखा है कि मनु को तप करते हुए उत्तम योग की प्राप्ति हुई। इससे इशारा मिलता है कि यह कुंडलिनी योग का ही वर्णन हो रहा है, क्योंकि कुंडलिनी योग सभी प्रकार के योगों में सर्वोत्तम है। गंगा से वह मत्स्य समुद्र यानि सहस्रार चक्र को चला गया। कई लोग बोलेंगे कि पहले मूलाधार को समुद्र बोला और अब सहस्रार को बोल रहे हैं। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। दोनों सुषुम्ना नाड़ी से सीधे आपस में जुड़े हुए हैं। मूलाधार और सहस्रार, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सहस्रार पहुंचते ही उसका आकार फन उठाए विशाल नाग की तरह हो गया। मतलब मनु को कुंडलिनी जागरण हुआ, जिससे उसका रूपांतरण शुरु हो गया।

कुंडलिनी शक्ति संचरण को ही सभी वेद-पुराणों में हयग्रीव भगवान के रूप में दर्शाया गया है

दोस्तों, बहुत से पुराणों में हयग्रीव की कथा आती है। किसी में हयग्रीव को देवता के अवतार में दिखाया गया है, किसी में राक्षस के रूप में, तो किसी में दोनों ही रूपों में। अन्य मिथक चरित्रों की तरह हयग्रीव भी वेदों से ही लिया गया है। हय का मतलब घोड़ा और ग्रीवा का मतलब गर्दन। जिसका शरीर मनुष्य या देवता का पर गर्दन और सिर घोड़े के हैं, वही हयग्रीव है।

भागवत की एक कथा के अनुसार ब्रह्मा प्रलयकाल शुरु होने पर नींद में जा रहे थे, तो उनके मुंह से जो वेद निकले, उन्हें हयग्रीव राक्षस ने चुरा लिया, जिसे विष्णु ने मछली का रूप लेकर मारा। उन्होंने उससे वेद लेकर ब्रह्मा को लौटा दिए, जो प्रलय के बाद जाग गए थे।

अग्नि पुराण में भी लगभग ऐसा ही आता है कि जब प्रलय के समय विश्व राख बन गया था, तब हयग्रीव दानव वेदों को नष्ट करने लग गया, पर विष्णु ने मछली का रूप लेकर उसे मार दिया।

मत्स्य पुराण में यह आता है कि जब प्रलय से विश्व जल गया था, तब विष्णु ने हयग्रीव का रूप लेकर वेदों को बचाया था।

भागवत की ही एक कथा में आता है कि हयग्रीव बने विष्णु ने दानव मधु और कैटभ को मारकर वेदों को उनसे प्राप्त किया था।

देवीपुराण के अनुसार हयग्रीव राक्षस को देवी से वर मिला कि वह हयग्रीव के द्वारा ही मारा जाएगा, किसी अन्य के द्वारा नहीं। इसलिए विष्णु को उसे मारने के लिए हयग्रीव अवतार में आना पड़ता है।

स्कंद पुराण के अनुसार देवताओं ने यज्ञ शुरु किया और उन्होंने विष्णु का पता लगाया तो वह एक धनुष के साथ कहीं समुद्र के बीच द्वीप आदि पर साधना कर रहे थे। उन्होंने विष्णु को उठाया जिससे धनुष की डोरी का एक सिरा टूटकर विष्णु की गर्दन को काट गया, क्योंकि उसे चींटियों ने खाकर कच्चा किया हुआ था। विश्वकर्मा ने फिर उनको घोड़े का सिर लगा दिया। विष्णु ने खुश होकर उन्हें वेद लाकर दिए जिससे यज्ञ पूर्ण हुआ। फिर दीमकों ने और विश्वकर्मा ने भी यज्ञ में अपना हिस्सा मांगा।

मतलब हयग्रीव कहीं न कहीं तीनों रूपों में है, कहीं दिव्य रूप में, कहीं राक्षसी रूप में तो कहीं एकसाथ दोनों के युग्म रूप में। भागवत पुराण में उसके दोनों रूप हैं, पर हरेक रूप अलग अलग कथाओं में है, दोनों एकसाथ एक ही कथा में नहीं, क्योंकि इस पुराण में विष्णु मुख्य हैं। पर देवीभागवत पुराण में दोनों रूप एक ही कथा में दिखाए गए हैं, क्योंकि उसमें देवी मुख्य है, विष्णु नहीं।

भगवान हयग्रीव की वैदिक मिथक कथा का अध्यात्मवैज्ञानिक विश्लेषण

वैसे मूल संस्कृत में पुराण पढ़कर ही स्थिति ज्यादा स्पष्ट होती है, पर फिर भी कोशिश तो ऐसे भी कर सकते हैं। इतने सारे पुराण तो लाइब्रेरी में ही इकट्ठे मिल सकते हैं। ऑनलाइन भी उपलब्ध नहीं मिले मुझे। घर पर एक शिवपुराण पड़ा है, जिसमें विशेषज्ञता प्राप्त करने को मन करता है, क्योंकि यह मुझे सर्वाधिक प्रिय, सरल व वैज्ञानिक लगता है। हम वैसे भी पार्ट टाइम या अंशकालिक या हॉबी शोधार्थी ही हैं, पूर्णकालिक नहीं। इसलिए शिवपुराण तक ही अपने को सीमित रखना चाहते हैं। वैसे भी सभी पुराणों की कथाओं की थीम एक ही होती है, जो मुख्यतः योग ही है, सिर्फ कथाएं बदलती हैं। हयग्रीव, मत्स्य आदि की अन्य पुराणों की कथाएं तो कई बार प्रसंगवश चल पड़ती हैं। कागज पर छपे शिवपुराण में भी कई बार यह दिक्कत आ जाती है कि कुछ भी ढूंढने में समय अधिक लगता है, जबकि ऑनलाइन सर्च तो पलक झपकते ही हो जाती है। संस्कृतबुक्सऑनलाइनडॉटकॉम के नाम से एक साइट मिली पर उसमें जो पीडीएफ बुक्स हैं वे ऐसी हैं कि उनमें कुछ भी सर्च नहीं होता। फिर वैज्ञानिक शोध कैसे होगा। ऐसी सिंगल पीडीएफ की जरूरत है जिसमें कम से कम सारे 18 पुराण शामिल हों, और साथ में सर्च फंक्शन भी हो। अगर मिले तो कृपया बताएं। अगर तो सारे वेद, पुराण, उपनिषद और अन्य सारा संस्कृत साहित्य एक ही पीडीएफ में हो, तब तो महान शोध हो सकता है। मुझे लगता है कि आज की ऑनलाइन संचार सुविधाओं का सदुपयोग इसी में है कि प्राचीन सनातन संस्कृति को पढ़ा जाए और समझा जाए। तकनीक आज की, और संस्कृति पुरानी, यही सर्वोत्तम गठबंधन है। आज की संस्कृति ऐसी है, जिसमें तकनीक के अतिरिक्त ज्यादा कुछ नहीं है। आध्यात्मिक जागृति और मुक्ति, जो मनुष्यमात्र का चरम लक्ष्य है, जिसके लिए पुरानी विशेषकर सनातन संस्कृति पूरी तरह समर्पित रहती थी, उसका आज की संस्कृति में नामोनिशान भी नजर नहीं आता।

प्रलयकाल मतलब जब आदमी के मनरूपी ब्रह्मा का सारा ज्ञानविज्ञान मूलाधार के अंधेरे में डूबा हुआ था, मतलब ब्रह्मा सो गए थे। कई लोग बोलेंगे कि आदमी और उसके अभिव्यक्त मन की उमर तो सौ साल होती है, फिर ब्रह्मा की आयु कई युगों लंबी क्यों बताई जाती है। यह इसलिए क्योंकि मन शरीर से बहुत आगे जा सकता है। जब जीव विकसित होकर आदमी बनता है, तब तक ब्रह्मांड बनने के बाद करोड़ों अरबों साल बीत

चुके होते हैं। इसलिए आदमी के मन में उस पूरे समय का प्रभाव जमा होता है, ऐसे भी क्योंकि वह उतना सारा कुछ सोच सकता है और क्रमिक विकास के दौरान डीएनए के जरिए भी। जितना बड़ा दिन होता w, उतनी ही बड़ी रात होती है। जितने समय आदमी जाग कर काम करता है, सोता भी उतने ही समय के लिए है। मतलब कि जितने समय वह ब्रह्मा के रूप में जीवित रहा, मरने के बाद भी वह उतने ही समय उस स्थिति में रहेगा, जो ब्रह्मा की रात और नींद होगी।

घोड़े के शरीर की एक अनौखी विशेषता है कि उसकी पीठ पर केंद्रीय रेखा में ठीक सुषुम्ना नाड़ी के रास्ते के ऊपर विशेष और बड़े बाल होते हैं। गर्दन और सिर में तो ये बड़े सुंदर और आकार में काफी बड़े होते हैं, जिससे घोड़े की झालर जैसी मेन बनती है। इसीलिए हयग्रीव अवतार में सिर्फ घोड़े की गर्दन और सिर लिए गए हैं, बाकि शरीर तो मनुष्य का ही अच्छा है, क्योंकि वही ठीक ढंग से योग कर सकता है। इसका मतलब है कि एक योगी की आकृति हयग्रीव जैसी है। इसी शरीर से शक्ति मूलाधार से सुषुम्ना से होते हुए मस्तिष्क स्थित सहस्रार को चढ़ती है। मस्तिष्क की यही शक्ति सारे ज्ञानविज्ञान का आधार है। स्वाभाविक है कि जिस शरीर से शक्ति ऊपर चढ़ती है, उसी से नीचे भी उतरती है। जिस सीढ़ी से आदमी घर की छत पर चढ़ता है, उतरता भी उसी से है। जब मरते समय आदमी के मस्तिष्क की शक्ति फ्रंट चेनल से होते हुए मूलाधार को नीचे उतरती है, तब कहते हैं कि ब्रह्मा नींद में जा रहा था, और उसी समय उसके मुख से वेद बाहर निकले, क्योंकि फ्रंट चैनल मुख से होकर ही नीचे गुजरता है। उन वेदों को लेकर हयग्रीव दानव समुद्र में छिप गया। जब उस व्यक्ति का पुनर्जन्म होता है, और उसे अपने मस्तिष्क में शक्ति और चेतना का आभास होता है, क्योंकि फिर शक्ति मूलाधार से मस्तिष्क की ओर ऊपर चढ़ रही होती है। इस बात का प्रमाण है, बच्चे के मातापिता द्वारा किए जाने वाले परस्पर प्रेम प्रसंग का बहुत बढ़ना और गहरा हो जाना। उनका मस्तिष्क उनके हयग्रीव जैसे शरीर के माध्यम से मूलाधार से शक्ति प्राप्त कर रहा होता है। वही शक्ति अत्यधिक निकटता और प्रेम के कारण उनके बच्चे को भी संप्रेषित हो रही होती है, जिससे वह तेजी से विकास करता है। मां बाप भी बच्चे के शरीर को प्यार से सहला कर और उसकी अच्छे से मालिश वगैरह कर के उसकी शक्ति को भी उसके हयग्रीव जैसे शरीर में मूलाधार से ऊपर उठाते रहते हैं। इसीको ऐसा कहा जाता है कि ब्रह्मा नींद से जाग गया है, और भगवान विष्णु ने हयग्रीव के रूप में अवतार लेकर दैत्य हयग्रीव को मारकर उससे वेद छुड़ा कर ब्रह्मा को वापिस कर दिए हैं।

कई स्थानों पर विष्णु की नाभि के कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति बताई है। यहां विष्णु हयग्रीव के रूप में ब्रह्मा के जागने में मदद करता है। बात एक ही है, सिर्फ शब्दों का फर्क है। उत्पत्ति उसी की कही जा सकती है जो जागा हुआ हो। सोए हुए की या ज्ञानविज्ञान से शून्य व्यक्ति की कैसी उत्पत्ति। मतलब यहां भी ब्रह्मा को विष्णु ही उत्पन्न कर रहा है।

पहले मामले में समुद्र में शेषनाग पर लेटे विष्णु हैं, दूसरे में समुद्र में वेद ढूंढते विष्णु। पहले मामले में भी विष्णु अपने शरीर के विकास से ब्रह्मा को निर्मित करता है, दूसरे मामले में भी ऐसा ही होता है। परस्पर प्रेम से मां बाप के मस्तिष्क में जो चेतना का कमल खिलता है, वह भी ब्रह्मा का नींद से जागना ही है। इसे ही ब्रह्मा का जन्म भी कह सकते हैं, क्योंकि सोए हुए का कैसा जन्म। जैसे उनके मस्तिष्क में ब्रह्मा का जन्म होता है, वैसे ही उनके गर्भ में पलने वाले संभावित बच्चे में भी हो सकता है। मूलाधार में सोई हुई कुंडलिनी भी एक प्रकार से प्रलयार्णव में सोया हुआ ब्रह्मा ही है। जब हयग्रीव रूपी विष्णु या योगी उसे ऊपर उठाता है, तो वह सहस्रार में जागने लगता है, और सृष्टिनिर्माण की प्रक्रिया शुरु करता है। पूर्ण जागृति अर्थात कुंडलिनी जागरण को सृष्टि निर्माण की पूर्णता समझना चाहिए। यह तो ब्रह्मा के सोने और जागने की शास्त्रों की बात रही। पर शास्त्रों में यह भी आता है कि ब्रह्मा सृष्टि पूरी होने पर खुद ही मुक्त हो जाता है। आदमी भी तो ऐसा ही होता है। जिसको जागृति रूपी पूर्णता नहीं मिली, वह सोकर या मरकर फिर जागता या जन्म लेता है, पर जिसको मिल गई, वह अपना जीवन पूरा होने पर मुक्त हो जाता है।

अब थोड़ा इसको और समझते हैं कि दैत्य हयग्रीव वेदों को चुराकर ब्रह्मा को केसे चेतनाशून्य बना कर रखता है। यह तो पता ही है कि मस्तिष्क की ऊर्जा फ्रंट चैनल से होकर मूलाधार को जाती है। फ्रंट चैनल को दैत्य हयग्रीव मान लो, और बैक चैनल को भगवान हयग्रीव, क्योंकि दोनों में केंद्रीय रेखा से होकर ही ऊर्जा का सर्वाधिक गमन होता है। अगर भगवान हयग्रीव नहीं होगा, तो वेदरूपी सारी ऊर्जा मूलाधार रूपी समुद्र में ही इकट्ठी दबी रह जाएगी।

शक्ति का ऐसा ऊपर नीचे का गमन सभी में होता है, पर क्योंकि योगियों को ही इसका साक्षात व स्पष्ट अनुभव होता है, इसीलिए योग की चीजों को इससे जोड़ा गया है।

मछली, शेषनाग, हयग्रीव आदि के रूप आपस में दार्शनिक रूप से जुड़े हुए हैं, इसलिए कुछ भी बोल सकते हैं। प्रलय के समय कहीं विश्व को जली हुई राख की ढेरी, तो कहीं समुद्र में निमग्न बताया जाता है। दोनों ही मूलाधार के अंधेरे और अभाव को इंगित करते हैं।

एक कथा के अनुसार हयग्रीव ने मारा, और मछली ने बचाया, इसको समझते हैं। यह तो मुझे तांत्रिक मामला लगता है मत्स्य पुराण की तरह। कुंडलिनी चित्र रूपी छोटी सी संवेदनात्मक मछली कैसे विशाल मत्स्य बन कर कर्मबंधन में फंसे जीवों को सृष्टिसुख और जागृति प्रदान करती है।

मुझे लगता है कि मधु कैटभ इड़ा पिंगला के प्रतीक हैं। ये नाड़ियां शरीर के बाएं और दाएं भाग को कवर करती हैं। इससे शरीर बहिर्मुख सा रहता है, जिससे आदमी अध्यात्म से दूर सा हो जाता है। रहती तो उर्जा शरीर में ही, और शरीर भी स्वस्थ रहता है, पर यह केंद्रीय लूप या छल्ले में नहीं घूम पाती, जिससे सहस्रार में ऊर्जा की कमी हो जाती है। सहस्रार ही अध्यात्म का सर्वप्रमुख चक्र है। सहस्रार में जो ज्ञान है, वह संपूर्ण सृष्टि रूप ही है, क्योंकि इसमें संसार का ज्ञानविज्ञान अद्वैत के साथ होता है, और सृष्टि भी अद्वैतरूप ही है। हयग्रीव के ध्यान से ऊर्जा केंद्रीय छल्ले में आ जाती है, मतलब मधु कैटभ मर जाते हैं, और सृष्टि का सही वर्णन करने वाले वेद क्रियाशील हो जाते हैं। वैसे भी जब दिमाग का कोई फालतु विचार परेशान कर रहा हो तो हयग्रीव के ध्यान से वह गायब होकर उसकी जगह कुंडलिनी चित्र आ जाता है। घोड़ा दिमाग की कम और दिल की ज्यादा सुनता है। गधा तो एक कदम बढ़ कर लगता इस मामले में, तभी तो वह माता शीतला देवी और कालरात्रि देवी की सवारी है। हो सकता है, दोनों देवियों के नाम या चेहरे विशेष पर ज्यादा ध्यान न जाए, इसीलिए गधे को इनके साथ रखा गया है। इसका मतलब है कि अगर अगर चेहरे के रूप सौंदर्य आदि की चिंता हो रही हो, तो हयग्रीव का ध्यान करने से वह खत्म और कुंडलिनी प्रकट हो जाती है।

धनुष का लकड़ी का लहरदार आधार आदमी की लहरदार रीढ़ की हड्डी का बैक चेनल है, और उसमें बंधी डोरी शरीर के आगे का सीधा फ्रंट चैनल है। इसीको ऐसा कहा है कि विष्णु धनुष के साथ साधना कर रहे थे, क्योंकि योग इन्हीं दो मुख्य चैनलों की सहायता से होता है। दिमाग के फालतु पर चिपकू विचारों के कारण उसकी ऊर्जा मस्तिष्क से नीचे नहीं जा रही थी। इन्हीं विचारों को दीमक कहा है, क्योंकि ये आदमी की उम्र को लकड़ी की तरह खाते रहते हैं। इस से उनका फ्रंट चैनल पहले से ही कमजोर था, जब उन्हें देवताओं ने योग से उठाया तो वह बिल्कुल ही टूट गया, मतलब गर्दन कट गई, क्योंकि चैनल को ही गर्दन कहा है। फिर घोड़े का सिर इसीलिए लगाया ताकि फ्रंट चैनल सबसे अच्छा चले। इससे भगवान हयग्रीव बने। इससे जब ऊर्जा लूप पूर्ण हो गया, तो स्वाभाविक है कि सहस्रार में सृष्टिरूपी वेदों की पुनर्स्थापना हो गई। इससे देवताओं का यज्ञ पूर्ण हुआ। यज्ञ होता ही सृष्टि के कल्याण के लिए है। अद्वैत के साथ दुनियादारी, इससे बढ़कर सृष्टि का क्या कल्याण हो सकता है। विष्णु को यज्ञपति इसीलिए कहते हैं क्योंकि वही मनुष्य रूप में सही वर्ताव से यज्ञ को पूर्ण कर सकता है। अन्य देवता तो गुलाम नौकरों की तरह हैं, जो जीवात्मा रूपी विष्णु के शरीर मतलब यज्ञस्थली के सेवाकार्य में लगे रहते हैं। जीवन व्यवहार का अंतिम फैंसला तो जीवात्मा ने ही लेना होता है। इसीलिए यज्ञ के फल का सबसे बड़ा भाग विष्णु को ही मिलता है। हयग्रीव ध्यान से मणिपुर चक्र पर अच्छा ध्यान लगता है, और मणिपुर चक्र को यज्ञस्थल भी कहा जाता है, जहां भोजन रूपी आहुति हर समय शरीरस्थ सभी देवताओं की तृप्ति के लिए जठराग्नि

रूपी अग्नि देवता के माध्यम से दी जाती रहती है, पर यज्ञ तो यज्ञपुरुष विष्णु, राम या आदर्श मनुष्य की भागीदारी से ही पूर्ण होता है।

कुंडलिनी शक्ति ही गंगा नदी जल के रूप में गूलर के वृक्ष की टहनी से निकली होगी

शिवपुराण में गौतम ऋषि और उनकी पत्नि अहल्या की एक मिथक कथा आती है। उन्होंने दस हजार वर्षों तक दक्षिण दिशा में ब्रह्मगिरि पर्वत पर तप किया।100 वर्षों तक वहां पर अनावृष्टि पड़ी। एक भी हरा पत्ता नहीं दिखता था। फिर प्राणियों को जिलाने वाला पानी कहां मिलता। सारे मुनि, मनुष्य, पशुपक्षी दसों दिशाओं को भाग गए। कुछ ऋषि प्राणायाम व ध्यान करके उस भयंकर काल को बिताने लगे। गौतम ने भी प्राणायाम के साथ 6 माह तक तप किया। इससे उनके सामने वरुण देव प्रकट हुए और उन्होंने उनसे वर्षा का वर मांगा। वरुण ने कहा कि वे दैव की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकते। फिर गौतम ने उनसे अक्षय, दिव्य तथा नित्य फल प्रदान करने वाला जल मांगा। वरुण ने गड्ढा खोदने को कहा। गौतम ने एक हाथ का गड्ढा खोदा। वरुण ने उसे दिव्य जल से भर दिया। वरुण ने कहा कि इस स्थान पर किया गया कोई भी धार्मिक और उत्तम कर्म अक्षय होगा। गौतम ने उस दुर्लभ जल से नित्य नैमित्तिक कर्म संपन्न किए। उन्होंने वहां पर हवन के लिए विविध धान्य बोवाए। वहां विविध फलफूल वाले वृक्ष पैदा हो गए। ऐसा देखसुन वहां अन्य हजारों ऋषि आ गए और सपरिवार गृहस्थ धर्म से रहने लगे। एकदिन जल लेने आई ऋषिपत्नियों ने जल लेने आए गौतमशिष्यों को जल लेने से यह कहकर रोका कि पहले वे जल ग्रहण करेंगी। शिष्यों ने जब गौतमपत्नी अहिल्या से शिकायत की तो वे खुद उनके साथ जल लेने चली गईं और जल लाकर ऋषि को दिया, जिससे उन्होंने अपना नित्य कर्म संपन्न किया। उन ऋषिपत्नियों ने गौतमपत्नी को फटकारा और घर लौटकर अपने पतियों से उल्टी सीधी शिकायत की। ऋषियों ने क्रुद्ध होकर गणेश की तपस्या की और उनके द्वारा गौतम ऋषि का नुकसान करवाने का वर जबरदस्ती ले लिया। मजबूर होकर गणेश एक बहुत कमजोर गाय बनकर गौतम का उगाया साग खाने लगे। गौतम के तिनकों से हटाते ही वह मर गई। उससे सभी ऋषि खुश होकर ऋषि को गौहत्यारा कहकर कोसने लगे। उन्होंने गौतम को अपने इलाके से निकल जाने का आदेश दिया और उन्हें पत्थरों से मारने लगे। साथ में यह भी कहा कि जबतक उन्हें गौहत्या का पाप लगा है, तब तक वे कोई धार्मिक कार्य नहीं कर सकते। जब गौतम ने माफी मांगी तब ऋषियों ने उन्हें यह प्रायश्चित करने को कहा कि वह अपने गौहत्या के पाप का डंका बजाते हुए तीन बार पृथ्वी का चक्कर लगाए। फिर वहां वापिस आकर मासव्रत को करे और उसके बाद उस ब्रह्मगिरि पर्वत की परिक्रमा करे, और फिर गंगाजल के सौ घड़ों से स्नान करके पुनः पार्थिवपूजन करे। या इसके बदले में उन्हें वहीं पर गंगा को लाकर उसमें स्नान करने, फिर शिव के एक करोड़ पार्थिव लिंग बनाने और उनकी पूजा करने, फिर 11 बार ब्रह्मगिरि की परिक्रमा करने, और फिर गंगाजल के सौ घड़ों से स्नान करके पुनः

पार्थिवपूजन करने को कहा। गौतम और अहल्या ने वह दूसरा तरीका अपनाया, और उनके शिष्य उस दौरान उनकी सेवा करते रहे। फिर प्रसन्न होकर शिवपार्वती प्रकट हुए और वर मांगने को कहा तो गौतम ने उनसे अपने पाप खत्म करने का वर मांगा। शिव ने कहा कि उनका भक्त कभी पापी नहीं रह सकता। साथ में गौतम को उन कुटिल ऋषियों की सारी करतूत बताई और पूछा कि वे उन्हें क्या दंड दें। गौतम ने उन्हें यह कहकर क्षमा करने को कहा कि अगर वे कुटिलता न करते तो उन्हें उनके दर्शन न होते। इससे शिव बहुत प्रसन्न हुए और फिर वर मांगने को कहा। गौतम ने यह वर मांगा कि इन ऋषियों का वचन झूठा न होए।

उसके बाद पृथ्वी तथा स्वर्ग के सारभूत जिस जल को निकालकर पूर्व में रख लिया था, और विवाहकाल में ब्रह्मा द्वारा दिया गया जो कुछ शेष जल बचा था, उसे शिव ने उन मुनि को दिया। वह गंगाजल स्त्री के रूप में प्रकट हुआ। गौतम ने उन्हें प्रणाम करके उनसे अपने को पवित्र करने की याचना की। शिव ने भी गंगा से निवेदन किया। फिर गंगा ने गौतम के परिवार को पवित्र करके अपनी वापसी बारे बताया। गंगा को रोकते हुए शिव ने उन्हें वैवस्वत मन्वंतर के अठाईसवें कलियुग तक वहीं निवास करने को कहा। फिर गंगा ने कहा कि वह तभी धरती पर निवास करेगी अगर यहां उसका माहात्म्य सबसे ज्यादा रहेगा। साथ में उसने शिव से अपने गणों व पार्वती के सहित अपने निकट निवास करने का निवेदन किया। इस पर शिव बोले कि वह उससे पृथक नहीं हैं, क्योंकि वह उनकी शक्ति हैं, फिर भी वे वहां निवास करेंगे। तभी देवता सहित सभी दिव्य आत्माएं वहां आए, जो गौतम, शिव और गंगा की जयकार करने लगे। शिव ने प्रसन्न होकर देवों से वर मांगने को कहा। तो देवों ने शिव और गंगा से वहीं निवास करने का निवेदन किया। तब गंगा ने देवों से पूछा कि वे कैसे उसकी विशिष्टता बनाए रखेंगे। तब देवों ने कहा कि जब बृहस्पति सिंह राशि पर रहेंगे, तब वे सभी लोग उसके समीप रहेंगे। तथा 11 वर्षों तक लोगों के पाप धोने से जब वे मलिन हो जाएंगे, तो उसे धोने के लिए उनके पास आएंगे। वहां पर वह गंगा गौतमी नाम से तथा शिवलिंग त्र्यंबक नाम से प्रसिद्ध हुए। उपरोक्त मुहूर्त के दौरान देवों के साथ सभी दिव्य आत्माएं वहां आते हैं, और जब तक वहां रहते हैं, तब तक फल नहीं मिलता, मतलब वहां से वापिस जाने पर ही फल मिलता है।

गंगा ब्रह्मगिरि पर्वत से प्रकट हुईं थीं। जब गूलर वृक्ष की शाखा से उसकी धारा निकली, तब गौतम, उनके शिष्यों, और अन्य सभी आए हुए लोगों ने उसमें स्नान किया। तभी से उस क्षेत्र का नाम गंगाद्वार पड़ा। उसका दर्शन करने से सभी पाप नष्ट होते हैं। जब गौतम का बुरा करने वाले वे ऋषि भी नहाने पहुंचे, तब गंगा अंतर्धान हो गई। जब गौतम ने गंगा से प्रकट होने के लिए विनती की तो गंगा ने कहा कि वे कपटी ऋषि पहले आपकी आज्ञा से इस पर्वत की 101 बार परिक्रमा कर के प्रायश्चित करे, तभी ये उसके दर्शन कर सकते हैं। जब उन्होंने यह कर लिया, तब उनके लिए गौतम के द्वारा नामित गंगाद्वार के

नीचे वाले स्थान कुशावर्त में गंगा फिर प्रकट हुई। यहां नहाने वाला सभी पापों को त्यागकर दुर्लभ विज्ञान प्राप्त कर शीघ्र मोक्ष का अधिकारी बन जाता है।

उपर्युक्त मिथक का स्पष्टीकरण

होता क्या है कि पुराणों की कथाओं से अनासक्ति के साथ दुनियादारी की आदत पड़ती है। क्योंकि ये सच भी लगती हैं, और बनावटी भी। इसलिए इनके प्रति अनासक्त बुद्धि बनी रहती है। इसीलिए इनमें आनंद होता है। कोई बोलेगा कि ऐसी तो हैरी पॉटर की कहानियां भी हैं। पर वे मुख्य उद्देष्य से रहित हैं। मुख्य उद्देष्य है कुंडलिनी जागरण। पुराणों की मिथक कथाएं योग, कुंडलिनी और जागृति के वैज्ञानिक सिद्धांतों पर आधारित होती हैं, इसलिए इनका अध्ययन करने वाले को अनजाने में ही इनकी तरफ ले जाती हैं। ऋषि गौतम की ये कथा मुझे मिश्रित आध्यात्मिक व भौतिक लगती है। ऐसा नहीं है कि पुराने लोगों में समझ कम थी, इसलिए एक ही साधारण योग पर अनगिनत शास्त्र बना दिए। बल्कि ऐसा इसलिए है क्योंकि योग से आदमी का उम्र भर और हरपल संपर्क बना रहना चाहिए। एक ही बात को बारबार पढ़कर आदमी ऊब सकता है, इसलिए योग को विविध रूपाकार वाली अनगिनत कथाओं और गतिविधियों में ढाला गया। उदाहरण के लिए शिव रूपी ध्यान चित्र तो सुषुम्ना में गुजर रही शक्ति के निकट खुद ही सैद्धांतिक रूप में बना रहता है। इसी को कहा है कि शिव ने गंगा को उनके निकट रहने का वचन दिया। संभवतः कुंडलिनी शक्ति ध्यानचित्र को इसलिए लगती है, क्योंकि यह यौन आधारित है, और सब जानते हैं कि यौन संबंधी मामले अतीव घनिष्ट संबंधी या प्रेमी के सामने ही उजागर किए जाते हैं। सबसे नजदीकी व घनिष्ट प्रेमी मानसिक ध्यानचित्र ही है। भौतिक वस्तु या व्यक्ति से तो लज्जा महसूस होती है, साथ में अपने ऊपर उनके व्यक्तित्व की छाप भी पड़ सकती है। पर गुरु या देवता पृथक व्यक्तित्व से रहित या परमात्मा रूप ही होते हैं, इसलिए वे आदमी के अपने व्यक्तित्व में बाधा नहीं डालते, अपितु उसे और ज्यादा सुधारने में अप्रत्यक्ष या मूक मदद ही करते हैं। इसीलिए अधिकांशतः उन्हें ही ध्यान चित्र बनाया जाता है। वैसे तो कोई भी चीज हो सकती है, क्योंकि हरेक शुद्ध मनसिक चीज पवित्र है, अपवित्रता तो भौतिकता से आती है। इसीलिए ऐसे चित्र को कुंडलिनी चित्र भी कह सकते हैं। सुषुम्ना से होकर शक्ति सीधी सहस्रार को जाती हैं, जहां अद्वैतभाव का साथी एकाकी कुंडलिनी चित्र ही होता है। इसीलिए इन कुंडलिनी आधारित कथाओं को शास्त्रीय कथाएं या पुस्तकें कहते हैं। संगीत तो कुछ भी हो सकता है, पर जो बहुत सोचविचार के और प्रत्यक्ष अनुभव से बना है और आदमी को उसके चरम लक्ष्य तक ले जाने में मदद करे, वही शास्त्रीय संगीत है। इसी प्रकार शास्त्रीय नृत्य, खेल आदि कुछ भी सांसारिक गतिविधि हो सकती है।

वर्षा वह है जिसमें ज्ञानरूपी या शक्तिरूपी जल की भरमार होए। ऐसा तो कोई देवता नहीं कर सकते, क्योंकि जब चारों ओर भौतिकता और दुष्टता का बोलबाला हो, तब देवता उसमें क्या कर सकते हैं, क्योंकि लोगों की सोच कोई भी जबरदस्ती नहीं बदल सकता। हां, देवता दर्शन देकर अपने भक्त को कुछ ऐसा करने की सलाह दे सकता है, जिससे बाहरी माहौल का बुरा असर उस पर न पड़े। इसलिए वरुण देव गौतम मुनि को एक हाथ का गड्ढा खोदने की सलाह देते हैं। यह मूलाधार को क्रियाशील करना ही है, जिसमें सोई हुई कुंडलिनी शक्ति रूपी जल दबा होता है। वही लुप्त सा जल इसमें भर जाता है। वैसे वे पहले भी प्राणायाम व ध्यान से गुजारा चला रहे थे, पर यह जागृति रूपी वर्षा के सामने नाकाफी था। सौ वर्ष का अकाल बताना आम बात है पुराणों में। शास्त्रों में सी वर्ष ही आदमी की उम्र कही गई है। सौ वर्ष तक जागृति न होना ही सौ वर्ष का अकाल लगता है मुझे, जिससे जीवों की मृत्यु बताई जाती है। ऐसा इसलिए क्योंकि सभी जीवों सहित सारी सृष्टि आदमी के दिमाग में ही होती है। दिमाग मर गया मतलब सभी मर गए। गहरे गड्ढों में तो भूमिगत जल भर भी जाता है, पर एक हाथ की लंबाई मतलब 10 या 12 इंच के गड्ढे में तो कभी खुद से पानी भरते नहीं दिखा। अगर ऐसा होता तो उसके लिए तप करके वरदान क्यों मांगते, पहले ही खोद देते। वैसे भी साधारण जल अक्षय फल देने वाला और दिव्य भी नहीं होता। इसका मुझे यह मतलब भी लगता है कि अंधेरे गड्ढे में मतलब एकांत में, सुखसुविधाओ और सांसारिक प्रवृत्तियों से दूर रहकर साधना करना, जिससे दुनिया में खर्च होने से बची हुई ऊर्जा, जो अंधेरे में कैद रहती है, वह सारी कुंडलिनी चित्र को चमकाने में खर्च होए, और साथ में उसे सम्भोगतंत्र का अतिरिक्त बूस्टर बल भी मिले जिससे वह तेजी से जागृत हो जाए, दुनियादारी के झंझट दुबारा शुरु होने से पहले ही। कई बार क्या होता है कि दुनियादारी से दूर रहने का थोड़े से ही समय का मौका मिलता है। उस दौरान अगर कछुआ या साधारण चाल से साधना की गई, तो जागृति नहीं मिल पाती। गौतम ऋषि को देशनिकाला देकर ऋषियों ने अप्रत्यक्ष रूप से उनका भला ही किया था, तभी वे एकांत में तीव्र साधना से कुंडलिनी को जागृत कर सके। उस सीमित समय में न कर पाते तो नए देश में उनकी नई दुनिया बन जाती और वही पुरानी कहानी शुरु हो जाती। क्योंकि नए देश में घुलनेमिलने से पूर्व ही उन्होंने जागृति प्राप्त कर ली, इसलिए उनकी उपलब्धि देखकर पुराने देशवासियों ने उन्हें वापिस अपने बीच बुला लिया। ये कथाएं ऊपर से देखने पर अजीब लगती हैं, पर गहराई से देखने पर परम व्यावहारिक व हितकारी नजर आती हैं। ऐसा आम आदमी के साथ अक्सर होता है। जो आदमी असल में आध्यात्मिक रूप से कर्म करता हुआ उसके माध्यम से आध्यात्मिक संदेश देता रहता है, उससे दुनिया वाले तो क्या, परिवार वाले व रिश्ते नाती भी जलते हैं, और उससे लड़ाई का बहाना ढूंढते रहते हैं। असल में इसलिए कह रहा हूं क्योंकि नकली, ढोंगी और पाखंडी किस्म के धार्मिक लोगों की जयजयकार होती रहती है। फिर उसे अपने बीच से भगाकर ही उन्हें चैन महसूस होता है। हालांकि वे धोखे में होते हैं, क्योंकि दिया हटने से वे अंधेरे में जा रहे होते हैं। जब दूर एकांत में वह जागृत हो

जाता है, तब उसके पुराने विरोधी लोग तो जैसे गायब ही हो जाते हैं, पर दिल से उसके लिए नरमी रखने वाले कुछ पछताते दिखते हैं। पर जागृत व्यक्ति के मन में उन विरोधियों के प्रति कोई नाराजगी नहीं होती, क्योंकि उन्हीं की अप्रत्यक्ष वजह से उसे जागृति मिली होती है। ऐसा बहुतों के साथ होता है क्योंकि यही दुनियावी सिद्धांत है, इसीलिए पुराणों में लिखा गया है। केवल खाली कथा लिखने से क्या लाभ।

मुझे लगता है कि उस समय गौतम नाम के या परिवर्तित नाम वाले व्यक्ति ने मूलाधार से दुनियावी सुखों समेत जागृति को प्राप्त करने की खोज की होगी। इन खोजों को ऐसे ही अप्रत्यक्ष या मिथक कथाओं के रूप में वर्णित किया गया होगा, ताकि लोग इन्हें गलत न समझें या इनका दुरुपयोग न करें। ऐसे ऋषि वैज्ञानिक ही होते थे, सत्य की खोज करने वाले अध्यात्मवैज्ञानिक। उनसे सीखकर अन्य ऋषियों ने भी ऐसा ही किया मतलब सभी को जल मिल गया। पहले वे जल मतलब ज्ञान या शक्ति की खोज में इधर उधर भाग गए। वैसे भी पुराने जमाने में लोग ज्ञान की खोज में दूर दूर तक जाया करते थे। आगे की कहानी कि जल पर झगड़ा हुआ आदि आदि, यह लगता है कि सामान्य भौतिक घटनाओं को जोड़ा गया है कथा को रोचक बनाने के लिए, जिसका अध्यात्म से ज्यादा संबंध नहीं। हो सकता है कि इनका भी कोई गूढ़ रहस्य हो। फिर शिव प्रकट हुए। गौतम ने शिव से अपने दुश्मनों को क्षमा करने का निवेदन किया। यह स्वाभाविक है कि जब आदमी दुनिया के द्वारा दुत्कारा और सताया जाता है, तभी वह एकांत में ध्यान व तप कर पाता है। शिव के ध्यान से उनकी जागृति तो हो गई, पर अब उस जागृति के प्रभाव को जीवनभर निरंतर बना के रखना था। यह ताउम्र सुषुम्ना की क्रियाशीलता से ही संभव हो सकता था। इसी को गंगा का अवतरण और योग आदि के द्वारा इसे स्थायी तौर पर बने रहना बताया गया है। क्षणिक जागृति तो बिना सुषुम्ना के अनुभव से भी हो जाती है, पर दैनिक क्रियाकलाप में सुषुम्ना का अपना महत्त्व है, क्योंकि यह निरंतर शक्ति की आपूर्ति करती रहती है। इसी शक्ति से पाप नष्ट होते रहते हैं।

मुझे लगता है कि पौराणिक कथाओं पर संदेह करना चाहिए। इससे आदमी अपना दिमाग हर तरफ दौड़ाता है कि इसका मतलब क्या हो सकता है। इससे उसके आगे अनजाने में ही रहस्यों के द्वार खुलते हैं। अगर इन कथाओं को अक्षरशः सत्य मान लिया, तब आदमी अंधविश्वासी सा, अवैज्ञानिक सा, और मूर्ख सा बन जाता है। मतलब इनको सत्य तो मानना चाहिए पर छुपे हुए रहस्य के रूप में, साधारण भौतिक तरीके में अक्षरशः नहीं। ऐसी असामान्य मिथकीय कथाओं से हमारा दायां मास्तिष्क सक्रिय हो जाता है, जो अधिकतर समय सुप्त सा रहता है। जागृति के लिए मस्तिष्क के दोनों भाग संतुलित रूप से सक्रिय रहने चाहिए। यह बच्चा भी समझ सकता है कि गंगा नदी पेड़ की एक टहनी से बाहर नहीं निकल सकती। इसी तरह भौतिक जल की कमी प्राणायाम व ध्यान से पूरी नहीं हो सकती। हां, कुछ हद तक शक्ति की कमी की पूर्ति जरूर हो सकती है। फिर इसे

यदि रहस्यमयी उपमा के तौर पर समझें तो पहाड़ मतलब मस्तिष्क से दुनियावी उपलब्धियों के रूप में शक्ति मतलब गंगा फ्रंट चैनल से नीचे आती हुई गूलर वृक्ष मतलब मूलाधार चक्र की एक शाखा मतलब सुषुम्ना या ब्रह्म नामक नाड़ी से गंगाद्वार मतलब सहस्रार में निकली, जिसमें गौतम ऋषि मतलब जीवात्मा के स्नान करने से सारे पाप नष्ट हो गए। उनकी खोज को उनके शिष्यों ने भी अपनाया। उनके परिवारजनों को लाभ उनकी संगति से मिला। गूलर का वृक्ष एक दैवीय पौधा है, जिस पर शुक्र का आधिपत्य माना गया है, जो प्रेम, सौंदर्य, आकर्षण, यौनसुख, प्रेमविवाह, धनदौलत आदि का प्रतिनिधि ग्रह है। इससे खुद ही समझा जा सकता है कि गूलर की शाखा किसे कहा गया होगा। कुछ तांत्रिक भी लगता है। मुझे तो यह भी लगता है कि प्रेमी प्रेमिका को एकदूसरे के मूलाधार से शक्ति मिलती है। इसीलिए गंगा को स्त्री का रूप दिया गया लगता है। वैसे भी शक्ति को स्त्रीलिंग ही समझा जाता है। अब जब कुटिल ऋषि भी उनकी नकल करने लगे, तो उनके हाथ कुछ नहीं लगा, क्योंकि सुषुम्ना की क्रियाशीलता के लिए बच्चे की तरह नादान और भोले बनना पड़ता है, जो कुटिल आदमी बन नहीं सकते। प्रेम और कुटिलता एक दुसरे के विरुद्ध हैं। स्वाधिष्ठान चक्र का तत्त्व जल है। जल प्रेम का प्रतीक भी है। गौतम ने उन पापियों के लिए उससे नीचे के चक्र में उतरवाया। इसी को कुशावर्त कहा गया होगा। वैसे भी पापियों की चेतना नीचे वाले चक्रों पर ही अटकी होती है।

शक्ति से ही प्रजनन होता है। और उसी से नया मनुष्य बनता है, जिसमें स्वर्ग और पृथ्वी समाए हुए हैं। उस गतिविधि से जो शक्ति बची थी, वही शक्ति ब्रह्मा मतलब शरीर समेत सारी सृष्टि को बनाने वाले मन ने शिव को उनके विवाह के समय दी। उसी को शिव की प्रेरणा से ब्रह्मा रूपी मन ने सुषुम्ना में से गंगा के रूप में गुजारा। वैसे इसका वैज्ञानिक आधार भी है। अभी तक की वैज्ञानिक खोजों से ज्ञात हुआ है कि जल का निर्माण धरती पर नहीं हुआ है, बल्कि यह धूमकेतु आदि बाहरी अंतरिक्षीय पिंडों से आया है। प्राचीन लोगों को भी यह अंदेशा था क्योंकि उन्हें धरती पर कहीं पर भी जल का निर्माण होते नहीं दिखता था। एक ही जल बर्फ, भाप, बादल आदि के रूप में रूप बदलता रहता था। इसीलिए इसे ज्यादा दैवीय माना गया होगा।

पापों का बोझ सबसे ज्यादा शरीर पर पड़ता है, जो शरीर को संचालित करते हैं। शरीर व्रतों, तीर्थों, योग व अन्य आध्यात्मिक साधनाओं से उन पापों से आदमी को बचाता रहता है। शायद इन्हीं से शायद इन्हीं से कथा में 11 वर्ष लिया गया है, क्योंकि हिंदु धर्म में अधिकांश चीजें व गतिविधियां 11 किस्म की हैं। पर उन पापों की सूक्ष्म छाप शरीर के चक्रों पर जमा होती रहती है। इसीलिए चक्रों की सफाई के लिए सुषुम्ना की शक्ति की जरूरत पड़ती है।

बृहस्पति ग्रह का सिंह राशि में होना बहुत उत्तम योग है। इसमें आदमी हर क्षेत्र में चढ़दी कला में होता है। बृहस्पति का सिंह राशि में होना प्रेम और संबंध में भी प्रगाढ़ रिश्ते बनाने में मदद करता है। सिंह राशि वाले लोग अपने साथी के प्रति अधिकार की भावना रखते हैं, लेकिन उनका प्यार भी निष्ठावान और वफादार होता है। बृहस्पति का सिंह राशि में होना किसी एक योग से अधिक अनेक योगों का कारण है। बृहस्पति सबसे शुभ ग्रह माने जाते हैं, जो धर्म, ज्ञान, भाग्य, धन, विवाह, संतान, शिक्षा, व्यवसाय, राजनीति आदि के क्षेत्र में शुभ फल देते हैं। सिंह राशि भी बृहस्पति की उच्च राशि है, जो राजसी, सूर्यमय, तेजस्वी, गर्वी, नेतृत्वपूर्ण, रचनात्मक और उदार है। इसलिए, बृहस्पति का सिंह राशि में होना इन दोनों के गुणों का सम्मिलन है, जो व्यक्ति को अनेक शुभ फल देता है। दरअसल ऐसे ही चहुंमुखी विकास व अनुकूलता के समय सुषुम्ना जागरण और कुंडलिनी जागरण की सर्वाधिक संभावना होती है। इसीको ऐसा कहा गया है कि देवता ऐसे योग मके समय गंगा के निकट रहेंगे। क्योंकि यह योग दुर्लभ लगता है, इसीलिए इसका 11 साल के बाद आना कहा गया है। क्योंकि कुंडलिनी जागरण के समय एकदम लाभ नहीं मिलता पर धीरे धीरे साधना के साथ वर्षों में मिलता है, जब उसका अंतःकरण काफी साफ हो जाता है।

कथा के शुरु में ऋषि गौतम और अहल्या के द्वारा दस हजार वर्षों की तपस्या करने का क्या मतलब होगा, इसका उत्तर पाठकों के लिए छोड़ता हूं।

कुंडलिनी योग जीवन का पार्श्वसंगीत है

दोस्तों, पिछली पोस्ट में शक्तिजल की बात हो रही थी। मुझे तो लगता है कि इंद्र जो बारिश करता है, वह जागृति की ही बारिश है, वही सुषुम्नाशक्ति रूपी वज्र चलाता है। इंद्र की प्रसन्नता मतलब सभी देवताओं की प्रसन्नता या अनुकूलता। यही चढ़दी कला है। मैं यह नहीं कह रहा कि भौतिक वर्षा के साथ इंद्र का संबंध नहीं है। वह भी जरूर है क्योंकि जो भीतर है, वही बाहर भी है। जैसे बारिश होने के लिए सभी देवताओं के साथ से पैदा होने वाली अनुकूल परिस्थितियां चाहिए, वैसे ही जागृति के लिए भी। पुराणों पर प्रेम और विश्वास बना रहे, तो सभी रास्ते खुद ही खुलने लगते हैं। फिर कथा में आया था कि गौतम मुनि ने वरुण देव के वरदान से अक्षय जल पाया। वरुण देवता वेदों के एक प्रमुख देवता हैं। वे जल के अधिपति देवता हैं। जलरूपी शक्ति के बिना गूढ़ आध्यात्मिक वेदों का सही ज्ञान होना संभव नहीं है। वरुणदेव सीमित जल ही दे सकते हैं। ख्वाजा भी सिंधुघाटी सभ्यता का ऐसा ही देवता था, जो समुद्र, नदियों और जल का अधिपति था। मैंने एक भूमिगत जल का पता लगाने वाले आदमी के बारे में सुना था जो काफी सटीक आकलन करता था, और ख्वाजा का सिद्ध उपासक था। वैसे आज भी कई गांवों में ख्वाजा की जलदेव के रूप में पूजा करते हैं। हो सकता है कि वेदों में गुप्त भाषा में वरुणदेव उसके प्रतीक के तौर पर कहा गया हो, जिसकी सहायता से शरीर में शक्तिजल की उपलब्धता बराकरार रहती हो, पर उसके पाठकों या व्याख्याकारों ने उसे भौतिक जल का देवता मान लिया हो। कुछ भी हो, बाहर भीतर में समानता तो है ही, इसलिए एकदूसरे को जरूर प्रभावित करते होंगे। मुझे खुद महसूस होता है कि शुद्ध जल से भरे झील, सरोवर आदि जलस्रोतों के निकट कुंडलिनी शक्ति बहुत अच्छे से घूमने लगती है, क्योंकि दोनों के स्वभाव में बहना है। दोनों में संबंध तो है ही। हिंदुओं और बौद्धों में नागदेवता को भी जल का देवता माना जाता है। कुंडलिनी शक्ति नाड़ी भी नाग की आकृति में होती है। हमारे गांव में नेउआ मतलब दिव्य नाग या सर्प और ख्वाजा दोनों को स्थानीय जल और उसके आसपास उपजी वनस्पति का अधिपति माना जाता था। जो जल के आसपास वनस्पति काटता था, उसे नेऊआ सांप के द्वारा पीछा करने का भय दिखाया जाता था, जिससे वनों का अच्छा सरंक्षण होता था। कई जगह मैंने ख्वाजा को मछली के रूप जैसी मूर्ति में भी देखा। इसका मतलब है कि वरुण, नाग और ख्वाजा आपस में जुड़े हैं और तीनों जलरूपी शक्ति के देवता हैं। यह भी मान्यता है कि ये सिर्फ़ जल ही नहीं देते, बल्कि अन्य दुनियावी समृद्धियां और सुरक्षाएं भी देते हैं। मतलब ये शक्ति के देवता ज्यादा लगते हैं।

इसी तरह इंद्र देव भी वेदों में बहुतायत में वर्णित हैं। जो देव जागृति के लिए जरूरी है, उसका ज्यादा वर्णन होगा ही। क्योंकि वेद का मूल ध्येय जागृति ही है। गुप्त तरीके से शायद इसे ही वर्षा लिखा है। जहां वर्षा है, वहीं कर्म, यज्ञ, धनधान्य और समस्त वैभव हैं। इन्हीं से सब चढ़दी कला में रहते हैं। ऐसी ही अवस्था में जागृति होती है। बेशक इसके

भौतिक और आध्यात्मिक दोनों अर्थ हों, पर दूसरा ही ज्यादा सटीक लगता है, क्योंकि वेद अध्यात्म को डील करते हुऐ लगते हैं, न कि भौतिकता को।

मुझे लगता है कि जागरण और आत्मसाक्षात्कार के बीच अंतर है। पहली अवस्था प्रारंभ है, तो दूसरी अवस्था आध्यात्मिक विकास का चरम या अंत। मुझे यह जीपीटी एआई पावर्ड बिंग सर्च से पता चला। कहते हैं कि कईयों की कुंडलिनी बचपन से ही जागृत होती है। अगर कुंडलिनी जागरण पूर्णता होती तो उसके बाद पुनर्जन्म क्यों होता। यह भी हो सकता है कि पूर्णता के अनुभव के बाद भी आत्मा की पूरी सफाई जरूरी हो, जिसके लिए कई बार नया जन्म लेना पड़ता होए। यह भी बोलते हैं कि महान व्यक्तियों जैसे कलाकारों और नेताओं की कुंडलिनी भी जागृत होती है। बिंग एआई निःशुल्क है और सबसे अच्छी जानकारी देने वाला लगा मुझे, हिंदी अंग्रेजी दोनों में। आजकल ब्लॉग लिखने में और शोध करने में एआई से बहुत मदद मिल रही है। जब शरीर के भौतिक संपर्क के बिना आदमी को अंधेरा सा महसूस होता है, तो उसे कहते हैं कि शक्ति सोई हुई है। पर जब अंधेरे के बीच में भी एक ध्यान चित्र हमेशा चमकता है, तब उसे कहते हैं कि शक्ति जागी हुई है। यहां से साधना शुरु होती है, जिससे ध्यानचित्र उत्तरोत्तर चमकता जाता है, मतलब कुंडलिनी शक्ति को ज्यादा से ज्यादा जगाया जाता है। फिर एक समय ऐसा आता है, जब ध्यानचित्र इतना ज्यादा मजबूत हो जाता है कि साधक को अपने और ध्यानचित्र के बीच फर्क ही महसूस नहीं होता, न ही उसे ऐसा लगता है कि वह उसका ध्यान कर रहा है। मतलब इसमें ध्यान करने वाला, ध्यानचित्र, और ध्यान की प्रक्रिया, तीनों एकाकार हो जाते हैं। इसे ही समाधि कहते हैं। इसी के दौरान कभी भी आत्मसाक्षात्कार अर्थात आत्मज्ञान का अनुभव हो सकता है। शायद मैं इसे ही पहले कुंडलिनी जागरण कह के वर्णन कर रहा था। कोई बात नहीं, यह सिर्फ़ शब्दावलियों का अंतर है, अनुभव में कोई अंतर नहीं पड़ता।

पिछली कथा के अनुसार गंगा रूपी शक्तिजल ने देवताओं से इस शर्त पर हमेशा सुषुम्ना में बसे रहने को कहा था कि उसे सर्वाधिक महत्त्व देना होगा। मतलब साफ है कि अगर रोज योग करते हुए सुषुम्ना में बह रही शक्ति को महसूस न किया गया, तो वह धूमिल पड़ जाएगी। मतलब बेशक कुछ भी काम छूट जाए, पर योग नहीं छूटना चाहिए। अक्सर होता यह है कि भैतिक कर्म ही दिखता है, मानसिक या आध्यात्मिक कर्म नहीं। प्राचीन भारत में लोग ज्ञान, भक्ति आदि जैसे मानसिक कर्म में लगे होते थे, जो सबसे बड़ा कर्म है, क्योंकि इसी से मुक्ति और सृष्टि चक्र को सही गति मिलती है। शेष दुनिया विशेषकर पश्चिम में भौतिकता, साफसफाई आदि में ही व्यस्त रहते थे लोग, जो काम के रूप में स्पष्ट नजर आते हैं। वैसे सर्वोत्तम तरीका कर्मयोग है, जिसमें भौतिक कर्म और योगसाधना खुद ही एकसाथ होते रहते हैं।

दरअसल कुंडलिनी योग जीवनरूपी विविध धुनों को जोड़ने वाला बैकग्राउंड म्यूजिक है। जब किसी कारणवश मुख्य संगीत बजना बंद हो जाता है, तो यही पार्श्व संगीत सुखी जीवन के लिए सहारा होता है। जैसे मुख्य संगीत बंद होने से पार्श्व संगीत बहुत तेज लगने लगता है, वैसे ही जीवन की सांसारिक गतिविधियों के शोर के शांत होने से योग का ध्यानचित्र बहुत तेज चमकने लगता है, जिससे वह जागृत भी हो सकता है। संभवतः पुराणों में इसी को गड्ढे में साधना या समुद्र के भीतर बंद व अंधेरे कारागार में साधना आदि की उपमा दी गई है।

ऋषि गौतम की पिछली कथा का एक दूसरा रूपांतर भी है। इसमें गाय के मरने पर गौतम को कुटिल ऋषियों के षड्यंत्र का पता चल जाता है। इससे क्रुद्ध होकर वे उन्हें और उनकी संतानों को शैवधर्म से बहिष्कृत रहने का और उससे नरकगामी बनने का श्राप देते हैं। कहते हैं कि फिर कलियुग उन्हीं के जैसे लोगों से भर गया। उस कथा रूपांतर में उन्हें शिवदर्शन होने का कोई उल्लेख नहीं है। मतलब साफ है कि दुष्ट ऋषियों की साजिश को उन्होंने सकारात्म सकारात्मकता से लेते हुए शिवसाधना नहीं की, बल्कि अपनी संचित ऊर्जा क्रोध में और श्राप देने में लगा दी, इसीलिए उन्हें जागृति नहीं मिली। हरेक क्रिया की प्रतिक्रिया होती ही है।

कुण्डलिनी जागरण और आत्मज्ञान या आत्मबोध के बीच में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है

मुझे बिंग एआई से जानकारी मिली कि आत्मज्ञान धीरे धीरे हासिल होता है, किसी योग आदि तकनीक से एकदम से नहीं। पर आत्मज्ञान कहते हैं, अपने को महसूस करने को। बहुत से लोगों ने इसे योग तकनीक से महसूस किया है। मुझे भी परमात्मा की असीम कृपा से सौभाग्यवश तंत्रसहायित कुंडलिनी योग से इसकी मामुली सी झलक महसूस की थी, जिसका वर्णन तथाकथित 10 सैकंड का कुंडलिनी जागरण कह के वर्णित किया गया है इस वेबसाईट पर। दुर्भाग्यवश ज्यादातर लोग इस स्तर तक नहीं पहुंच पाए होंगे और कुंडलिनी क्रियाशीलता या तथाकथित कुंडलिनी जागरण तक ही सीमित कर पाए हों, और वैसा ही वर्णन उन्होंने ऑनलाइन किया हो, जिसे बिंग एआई ने पकड़ लिया हो। शायद चैट जीपीटी वही पकड़ता है जो ज्यादा होता है। उनका कुंडलिनी जागरण भी आत्मज्ञान से निचले स्तर का रहा होगा। जागरण या समाधि के भी स्तर होते हैं। जैसे कोई आदमी जागकर बैठता है, कोई चलता है, कोई दौड़ता है, तो कोई दुनिया जीतता है। इसी तरह कुंडलिनी जागरण की अंतिम पराकाष्ठा ही आत्मज्ञान है। अगर मैं पुराणपाठी गुरु और देवताओं के सान्निध्य और उनकी अप्रत्यक्ष प्रेरणा से साधारण कुंडलिनी जागरण को तांत्रिक बल न देता तो शायद वह कुछ ही क्षणों के लिए पूर्ण रूप से जागृत महसूस न हुई होती। यही पूर्ण जागृति आत्मज्ञान है। मतलब इसमें मन जागकर आत्मा या परमात्मा जितना विस्तृत हो गया है। सिर्फ स्तर का अंतर है, और कुछ नहीं। इसे ही पूर्ण समाधि भी कह सकते हैं। तथाकथित आम भाषा की समाधि भी कुंडलिनी जागरण का बहुत ऊंचा स्तर होता है। वैसे तो हरेक अनुभव किसी न किसी स्तर की समाधि होता है। किसी चीज से जुड़े बिना हम उसे अनुभव ही नहीं कर सकते। पर पूर्ण जागरण मतलब आत्मज्ञान उस तथाकथित या लोकप्रसिद्ध योगसमाधि से भी एक कदम आगे होता है। ज्यादातर मामलों में समाधि को ही योग से प्राप्त होने वाली अंतिम अवधि माना जाता है। यह इसलिए क्योंकि योग की सहायता से समाधि से आगे बहुत कम लोग गए होंगे जिनकी आवाज को अनसुना कर दिया गया होगा। संसार में तो बीन बाजे की ही ज्यादा पूछ होती है। ज्यादातर लोग लोकलाज या घरगृहस्थी की मोहमाया से घरबार न छोड़ सकने के कारण अपनी समाधि को यौनतांत्रिक बल न दे पाए होंगे। शायद इसी वजह से पतंजलि ने भी अपने अष्टांगयोग सूत्र में समाधि को ही योग की अंतिम अवधि मान बैठे हैं। हो सकता है कि वे अल्पसंख्यक योगियों की आवाज न सुन पाए हों। पतंजलि भी यही कहते हैं कि अगर समाधि के बाद ईश्वर के सहारे जीवन जिया जाए , तो उनकी कृपा से आत्मज्ञान भी शीघ्र ही हो जाता है। जो काम आदमी खुद कर सकता है, उसके लिए खुद भी प्रयत्न करना चाहिए, ईश्वर तो ख़ैर हमेशा ही सबकी सहायता करता है। यह अक्सर होता है कि अपने काम की कमी को पूरा करने के लिए भी ईश्वर से मदद मांगी जाती है। मुझे यह भी लगता है कि इसमें गलतफहमी भी हुई है। क्योंकि समाधि का अनुभव तो अक्सर योगसाधना की क्रिया के दौरान होता है, पर जागृति का नहीं। जागृति

कहीं सुंदर स्थान जैसे झील के पास, पहाड़ पर, या समारोह आदि में ज्यादा होती है। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि उस समय भी नियमित रूप से चल रही वर्तमानकालिक तांत्रिक योगसाधना से इकट्ठी हुई कुंडलिनी ऊर्जा ही जागृति कराती है। क्योंकि तांत्रिक तरीके से ही योगसाधना वैज्ञानिक रूप से निश्चित और अल्प समय में मतलब कुछ महीनों के अंदर आत्मज्ञान करा सकती है, पर साधारण योग से तो पूर्णतः अनिश्चित होता है। क्या पता कितने साल में होए, पूरी उम्र में होए या ताउम्र न होए। ज्यादातर को तो ताउम्र नहीं होता, ऐसा लगता है। लोग बताने से छिपाते हों, यह अलग बात है। पूरी तरह से चमत्कार या विशेष कृपा की जरूरत होती है, जैसा पतंजलि कहते हैं। वैसे यह पतंजलि की मजबूरी भी रही होगी क्योंकि अगर उनकी पुस्तक में तंत्र का उल्लेख किया गया होता, तो शायद वह उस समय के अति आदर्शवादी समाज को ज्यादा स्वीकार्य न होती। एक कामयाब लेखक बनने के लिए कई बार सत्य को ढकना भी पड़ जाता है। इसीलिए मुझे शिव सबसे बड़े देवता लगते हैं, क्योंकि वे खुलकर सत्य सबके सामने रखते हैं। जिसे ऑनलाइन पोर्टल पर उम्र के पड़ाव के साथ धीरे धीरे मिलने वाला बताया गया है, वह आत्मज्ञान नहीं बल्कि आत्मा की विचारों की गंदगी की सफाई है। आत्मा मतलब अपने को जानने में तो कुछ ही क्षण काफी हैं। हम दोस्त को पहचानने में भी कुछ क्षणों से ज्यादा समय नहीं लेते, फिर उस अपने आप को पहचानने में कैसे ज्यादा समय ले सकते हैं, जो सबसे निकट है।

कुंडलिनी तंत्र का मूल आधार शिव-लिंग

मित्रों, शिवपुराण की एक कथा के अनुसार एकबार कुछ शिष्यों ने कथावक्ता से पूछा कि क्या शिवलिंग लिंग होने के कारण ही हर जगह पूजित है या कोई अन्य कारण है। इस पर वे एक कथा सुनाते हैं कि दारुक नाम के एक श्रेष्ठ वन में शिवजी के ध्यान में नित्य तत्पर शिवभक्त रहा करते थे। किसी समय वे समिधा लेने वन में गए हुए थे। उसी समय शिव उन्हें शिक्षा देने और उनकी परीक्षा लेने के लिए एक तांत्रिक अवधूत के वेष में आए, जो लिंग को हाथ में धारण कर के दुष्ट चेष्टा कर रहे थे। उनको देखकर ऋषिपत्नियां बहुत डर गईं। और अन्य बेताब और आश्चर्यचकित होकर वहां चली आईं। कुछ अन्य स्त्रियों ने एकदूसरे का हाथ पकड़कर परस्पर आलिंगन किया। कुछ स्त्रियां उस आलिंगन के घर्षण से आनंदमग्न हो गईं। उसी समय ऋषिवर आ गए और उस आचरण को देखकर दुखी और क्रोध से व्याकुल हो गए। वे आपस में कहने लगे, यह कौन है, यह कौन है। जब तांत्रिक अवधूत ने कुछ नहीं कहा तो उन्होंने उसे यह कहते हुए श्राप दिया कि वह वेदविरुद्ध आचरण कर रहा था इसलिए उसका लिंग भूमि पर गिर जाए। ऐसा ही हुआ। उस लिंग ने अग्नि की तरह सामने स्थित सभी वस्तुओं को जला दिया। जहां वह जाता, वहां सबकुछ जला देता। वह पाताल में गया, स्वर्ग में गया, भूमि पर भी सर्वत्र गया, पर कहीं स्थिर नहीं हुआ। सभी लोक व्याकुल हो गए, और वे ऋषिगण भी बहुत दुखी हुए। किसी भी देवता या ऋषि को शांति नहीं मिली। जिन देवों और ऋषियों ने शिव को नहीं पहचाना, वे ब्रह्मा की शरण में गए। ब्रह्मा ने यह कहते हुए उन्हें खूब लताड़ा कि आम आदमी अगर शिव को न पहचान पाए तो बात समझ आती है पर उनके जैसे ज्ञानी लोग शिव को कैसे नहीं पहचान पाए, और कहा कि अगर देवी पार्वती योनिरूपा बन जाए तो यह स्थिर हो जाएगा। देवी को प्रसन्न करने को यह निम्न विधि उनको बताई। अष्टदल वाला कमल बनाकर उसके ऊपर एक कलश स्थापित कर उसमें दूर्वा तथा यवांकुरों से युक्त तीर्थ का जल भरना चाहिए। फिर वेदमंत्रों के द्वारा उस कुंभ को अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर वेदोक्त रीति से उसका पूजन करके शिव का स्मरण करते हुए शतरुद्रीय मंत्रों से कलश के जल से उस शिवलिंग का अभिषेक करना चाहिए। फिर उन्हीं मंत्रों से लिंग का प्रोक्षण मतलब छिड़काव करें, तब वह शांत हो जाएगा। फिर गिरिजायोनि रूपी बाण को स्थापित करके उस पर लिंग को स्थापित करना चाहिए, और फिर उसको अभिमंत्रित करना चाहिए। फिर षोडशोपचार मतलब सोलह किस्म की सामग्रियों से परमेश्वर का पूजन करना चाहिए, और फिर उनकी स्तुति करनी चाहिए। इससे लिंग स्थिर और स्वस्थ हो जाएगा, तथा तीनों लोक विकार से रहित और सुखी हो जाएंगे।

वैसे इस कथा का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। यह आस्था से जुड़ा हुआ एक संवेदनशील धार्मिक मामला है। इसे खुद ही समझा जा सकता है। हां इतना जरूर कह सकते हैं कि हरेक आदमी अपने यौनसाथी की खोज में कभी न कभी जरूर भटकता है। उस दौरान

उसके मन में जो समाधि चित्र बना होता है, वह उसे चिड़चिड़ा सा और जलाभुना सा जरूर बना सकता है। ऐसा इसलिए क्योंकि समाधि के लिए अतिरिक्त ऊर्जा की जरूरत होती है, जो किसी नजदीकी साथी के सहयोग से ही मिल सकती है। अष्टदल कमल अनाहत चक्र का प्रतीक है, और प्रेम उस पर ही उपजता है। उस पर तीर्थों के जल से भरे कलश को रखने का मतलब उस पर ध्यान शक्ति को इकट्ठा करके केंद्रित करना है। विभिन्न तीर्थ मतलब विभिन्न चक्र। दूर्वा घास प्रजनन, वृद्धि और विकास का प्रतीक है। यव अंकुर मतलब अंकुरित हुए जौ चढ़दी कला मतलब चहुंमुखी विकास का प्रतीक हैं, क्योंकि उसमें हर किस्म के टॉनिक, विटामिंस और मिनरल्स होते हैं, इसीलिए इसे ग्रीन ब्लड भी कहते हैं। इसका आम भाषा में यही मतलब लगता है कि दिल पर अर्थात प्यार पर अपना सबकुछ न्यौछावर कर देना। जोगी भी ऐसे ही होते हैं, जो घरबार छोड़कर अपने देवता की पूजा अर्चना में लग जाते हैं, और ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। उस कलश के पूजन का मतलब है, हृदय से शक्ति के साथ जुड़े देवरूप आदि ध्यानचित्र का पूजन। जिससे वह ज्यादा प्रकाशित अर्थात प्रसन्न होता है, जैसे किसी आदमी की सेवा से वह आदमी प्रसन्न हो जाता है। वेदमंत्रों से पूजन का मतलब है, उस चित्र को और ज्यादा धार देते हुए और स्पष्ट, शुद्ध और प्रकाशमान बनाना। बीजमंत्र भी ऐसा ही करते हैं। वह मानसिक ध्यान चित्र गुरु, प्रेमिका, देवता, बीजमंत्र आदि किसी का भी हो सकता है। उस पूजित चित्र से मिश्रित शक्ति को फिर अनाहत चक्र से स्वाधिष्ठान और मूलाधार चक्र को उतारा जाता है। यही कलश के जल से उस दिव्य लिंग का अभिषेक है। अभिषेक में पवित्र जलरूपी शक्ति की धारा निरंतर चलती है। प्रोक्षण जल के छिड़काव को कहते हैं। हृदयकलश से शक्ति को सुबहशाम की साधना से बारंबार नीचे उतारना ही ही दिव्य प्रोक्षण है। शतरुद्रीय मंत्र में विभिन्न बीजमंत्र आदि हैं, जो विभिन्न अदृश्य तरंगें छोड़ते हैं, जो आदमी के मन पर अदृश्य दिव्य आध्यात्मिक प्रभाव डालते हैं। वैसे कुदरती बाणलिंग नर्मदा नदी में मिलते हैं, पर लगता है कि कथा में बाण को लिंग के आसन अर्थात पीठ के रूप में कहा गया है। मैंने जब बिंग एआई से पता किया तो उसने जवाब दिया कि एक अभिमंत्रित बाण को जमीन के अंदर गाड़ा जाता है, और उसके ऊपर शिवलिंग को स्थापित किया जाता है। हो सकता है कि यह ठीक कह रहा हो। क्योंकि कई स्थानों पर ऐसे शिवलिंग देखे जाते हैं जिनकी पीठ या आधार ही नहीं होता। पूछने पर वहां के पुजारी आदि बताते हैं कि यह शिवलिंग जमीन में गहराई तक गढ़ा होता है। हो सकता है, जमीन के अन्दर बाण ही उसकी पीठ हो। वैसे पीठ का आकार भी बाण से मिलता जुलता सा होता है। फिर उसके आगे तो आम आदमी की भाषा में तांत्रिक या दैवीय संभोगयोग ही लगता है। वैसे सबकी अपनी अपनी सोच हो सकती है। उससे तीनों लोक मतलब पूरा शरीर शांत और स्वस्थ मतलब अपने शुद्ध आत्मरूप में स्थित हो जाता है, क्योंकि सब लोक शरीर में ही हैं। यह दुनिया में अक्सर देखा जाता है इसीलिए बिगड़े हुए या बिगड़ रहे नौजवानों का विवाह उनके परिवार वाले जल्दी में करते हैं। उसके बाद मैंने बहुत से सुधरते हुए देखे हैं। पर कुछ नहीं भी सुधरते। इसमें उनकी पत्नियों का कसूर भी

लगता है मुझे, शायद हालांकि ज्यादा कसूरवार तो पुरुष ही होते हैं। इसीलिए कहा है कि शिवलिंग को पार्वती रूपी पीठ ही धारण कर सकती है। इसीलिए तो स्त्री को अध्यात्मिक संस्कार देना पुरुष से भी ज्यादा जरूरी समझा जाता था, क्योंकि स्त्री ही पूरे परिवार की नींव होती है। मैंने एक व्यस्क आदमी को अपनी निजी राय जाहिर करते सुना था कि अगर पुरुषों का विवाह न हुआ करता तो वे एकदूसरे को कच्चा ही खा जाया करते, क्योंकि पत्नियां ही पुरुषों को नियंत्रित करती हैं। उन्होने खुद अपनी पहली पत्नि की मृत्यु के बाद एक अन्य महिला से विवाह क्रिया हुआ था। बात सही भी है। एक मित्र भी कह रहे थे कि तांत्रिक संभोग तो संभोग ही नहीं लगता, वह तो कोई और ही अति पवित्र अध्यात्मिक कर्म बन जाता है। मुझे लगता है कि मूर्ख, नकारात्मक, असफल और विधर्मी लोग ही दोनों को एक श्रेणी में रखकर अपने दिल की भड़ास निकालते हैं। एक पुस्तक लव स्टोरी ऑफ ए योगी में तो लेखक एक महिला के द्वारा उसके कुंडलिनी जागरण की मुख्य वजह पूछे जाने पर अपना अनुभव प्रश्नकर्ता को चिह्नित करने की बजाय सबको सुनाते हुऐ कहता है कि उसने वज्रशिखा की संवेदना पर कुंडलिनी चित्र का ध्यान करते हुए उसे उसके पूरक अंग में अंदरबाहर करते हुए ही जागृति प्राप्त की, पर जो उसने किया वह संभोग नहीं था। इस पर ऑनलाइन कुंडलिनी ग्रुप पर मौजूद वह प्रश्न पूछने वाली पाश्चात्य या संभवतः अमेरिकन महिला प्रेमभरी हैरानी और कुछ मजाकिया लहजे से उसे पिनपोइंट करते हुए उससे कहती है कि हमारे देश में तो उसे संभोग ही कहते हैं, वह पता नहीं कौनसी अचरजभरी संस्कृति या भूमि से ताल्लुक रखता है। उसके बाद उस विषय पर उस ग्रुप में सबके संवाद बंद हो गए थे, और तंत्र की उपयोगिता का विषय सामने आ गया था, जिसमें जागृति के लिए तंत्र की सर्वाधिक महत्ता को सभी स्वीकार कर रहे थे। मतलब लेखक ने अपने दिल की बात भी रख दी थी और अप्रत्यक्ष तौर पर मुख्य प्रश्न का जवाब भी दे दिया था। वैसे यह कथा मिस्र की अंखिंग तकनीक की तरह भी लग रही है।

मतलब यह साफ है कि इस कथा में विधर्मियों या हिंदु विरोधियों द्वारा फैलाए गए दुष्प्रचार का खंडन किया गया है। ऋषि बहुत दूरदर्शी होते थे। उन्हें पता था कि आने वाले समय में ऐसा हो सकता था। यह कथा भी समाज में घटने वाली आम घटना को दर्शाती है, कोई दिव्य पारलौकिक आदि नहीं। अविवाहित किशोर व्यक्ति ऐसे ही होते हैं। वे मौका मिलने पर युवतियों से लिंगोन्मुखी मजाक करते रहते हैं। उनमें से कोई शिव किस्म का तंत्र का असली हकदार भी होता है। पर लोग तो सबको एक जैसा लंपट बदमाश समझते हैं। कहते हैं कि दाने के साथ घुन भी पिसता है। उन्हें क्या पता कौन सच्चा है और कौन झूठा। इसलिए औरों के साथ वे शैव का भी अपमान करके शाप दे देते हैं, मतलब उसे भी बुरी नजर से देखते हैं। वस्तुतः शैव का लिंग कोई सामान्य लिंग नहीं होता। शैवतंत्र के प्रभाव से वह साक्षात इष्ट देवता होता है। एक प्रकार से साधना के प्रभाव से वह शैव व्यक्ति लिंगरूप बन जाता है। वह जहां भी जाता है, एक किस्म से उसके रूप में उसका इष्टदेवरूपी लिंग ही जा रहा होता है। उस इष्टदेव की नाराजगी सबको परेशान

करती है, मतलब जलाती है। ऐसा भी हो सकता है, क्योंकि सारा विश्व लोगों के भटकते मन में है, और उस शैवलिंगरूपी इष्टदेव के सान्निध्य से उनका अपने भटकते मन से मोहभंग हो रहा होता है, इसीको जगत का जलना कहा गया हो सकता है। उस माहेश्वर लिंग को पार्वती के जैसी तंत्रयोगिनी ही सही से धारण कर सकती है, ताकि उसके साथ इष्टदेव रूपी ध्यानचित्र का ध्यान भी हो सके। आम महिला तो ध्यान में सहयोग कर ही नहीं पाएगी। मतलब इससे इष्टदेव नाराज मतलब बिना जागृति के ही रहेगा। बिना जागृति की कुंडलिनी क्रियाशीलता नुकसानदायक भी हो सकती है, क्योंकि वह नियंत्रण से बाहर भी हो सकती है। अनियंत्रित शक्ति सबको जलाएगी ही। जागृति आदमी को शक्ति का असली और पूर्ण रूप दिखाती है। और वह रूप सबसे सुंदर और शक्तिशाली होने पर भी परम शांत होता है। इससे आदमी शांत रहता है, मतलब जागृति के नियंत्रण में रहता है।

यह कथा मुझे शिवपुराण की सबसे सारगर्भित कथा लगी। इस पर कोई जितना चाहे लिख सकता है। ऋषियों ने जो शुरु में पूछा था कि क्या शिवलिंग लिंग होने के कारण ही पूजित है, या कोई अन्य कारण है, इसका उत्तर बहुत सभ्य तरीके से दिया गया है इसमें। यह ऐसा ही है जैसा उत्तर उपरोक्त लेखक ने दिया था। मतलब शिवलिंग सामान्य लौकिक लिंग नहीं है, जैसा कि मूर्ख, दुष्ट, लंपट बदमाश, भौतिकवाद की मोहमाया में उलझे हुए, अति कर्मप्रधान, धर्मविरोधी या सैक्सी किस्म के लोग समझते हैं या बोलते हैं। हैरानी तब होती है जब बहुत से हिंदु भी उनके बहकावे और उकसावे में आ जाते हैं, और वैसा ही समझने लगते हैं। वे सोशल मीडिया आदि पर हर जगह शिवलिंग को शिव के शरीर का अंग समझने पर ही पाबंदी लगा देते हैं, कहने लगते हैं कि यह तो केवल शिव का चिह्न या प्रतीक है, या केवल शिवशक्ति मिलन का प्रतीक है, किसी शारीरिक कर्म आदि का नहीं आदि आदि। वैसे अपनी जगह पर और अध्यात्मवैज्ञानिक सोच के हिसाब वे सही ही कह रहे होते हैं, क्योंकि साधारण सांसारिक वस्तु या अंग जैसी इसमें कोई बात ही नहीं है। उनसे सीखकर बिंग एआई भी ऐसा ही कहता है। इस मामले में अगर विधर्मी लोग अति नीचे गिरते हैं, तो वे तथाकथित हिंदुरक्षक अति ऊपर उठ जाते हैं। व्यावहारिक दुनिया के बीच में अर्थात मध्यमार्ग पर कोई नहीं रहते। अति सर्वत्र वर्जयेत। मध्यमार्ग ही सर्वोत्तम है। इसको एक उदाहरण से समझ सकते हैं। एक ही बंदूक होती है। एक सभ्य आदमी उससे आतंकवादी को मारता है, तो दूसरा सिरफिरा व्यक्ति आम जनता को। इसमें बंदूक का क्या दोष। इसी तरह शिवनियंत्रित शिवलिंग अज्ञानरूपी राक्षस को मारता है, तो इसके विपरीत आमजनप्रयुक्त इसका साधारण रूप ज्ञानरूपी देवता को। एकबार मेरी मुलाकात एक तांत्रिक व्यक्ति से हुई थी, जो मेरे मित्र का मित्र था। उसने कामाक्षी मंदिर में गुरु से दीक्षा ली हुई थी। वह बता रहा था कि उसके सामने एक तांत्रिक ने भीड़ भरी सड़क से गुजर रही आम व अनजानी महिला पर अपनी वशीकरण विद्या चलाई थी, जिससे वह उसके बुलाने पर उसके पीछे आकर उसके साथ कुछ भी

करने को तैयार थी। हालांकि वह तो अपनी विद्या का परीक्षण कर रहा था, इसलिए उसने वशीकरण को बंद कर दिया, जिससे वह महिला वापिस अपने रास्ते चली गई। सच्चे तांत्रिक तो कभी गलत काम करते भी नहीं हैं, अगर करते हैं तो सीधे नरक को जाते हैं। बोलने का मतलब है कि उपरोक्त पौराणिक कथा के अन्दर भी कोई ऐसा ही वशीकरण रहस्य छिपा हुआ, क्योंकि पुराने जमाने के लोगों के लिए तो जागृति ही सबसे अहम उपलब्धि हुआ करती थी, जिसके लिए वे सबसे अधिक प्रयास किया करते थे। आजकल तो और भी बहुतेरी विद्याओं और कलाओं का बोलबाला है, जिसके लिए लोग बहुत संघर्ष करते हैं। फिर भी वे पौराणिक विद्याएं अभी भी गुरुपरंपराओं में जीवित हो सकती हैं, जिन्हें यदि राजसहायता मिले तो उन्हें खोजा जा सकता है, और उन्हें भविष्य के लिए संरक्षित किया जा सकता है।

वो गाने न दिखते हमको नित जिनको पक्षी गाते

इस आनंदपूर्ण कविता को कभी मैं अपने रात्रिनिद्रागत जीवंत स्वप्न में किसी मित्र के साथ गा रहा था जिसकी शुरुआती दो पंक्तियां ही मैं याद रख पाया था, जिसे मैंने उसी समय जाग कर लिख लिया था। बाद में समय मिलने पर मैंने इस कविता को पूरा भी कर लिया था।

वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।

सुंदर झील किनारे चींचीं
किसको नहीं सुहाती है।
मीठी पवन की वो लहरी जो
मन के भाव बहाती है।।
सारस बन उड़ जाए ऊपर
निखिल जगत पर छा जाए।
मन का पंछी तोड़ के बंधन
मुक्त गगन ही हो जाए।।
गीत सुरीले बोल रसीले
हृदय-धरा से न जाते।
वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।।

चींचीं नहीं समझ आती पर
फिर भी गहरी बात करे।
बोली जो खग की समझे वो
कर्ण-शहद दो-गुना भरे।।
कागभाषी~ बड़े दुनिया में
असली अच्छा कोई कहे।
बहुते तो पंछी-बोली को
मुख अपना दे वही कहे।।
असली वक्ता असली पाठी
ढूंढे नहीं धरे जाते।
वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।।

पंछी जल पर बस जाते पंक्ति
बन कर पीते-खाते।
सुबह कहीं से आते हैं फिर
घर की ओर चले जाते।।
चींचीं-चकचक सिखा-सिखा कर
क्या है डूब तो क्या है तैर।
दर्पण सबको रोज दिखा कर
क्या है बंधन क्या है सैर।।
अनपढ़ जालम न समझे जो
हा-हा कर हैं भ~गाते।।
वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।

अपने पोत बढ़ाते लोग
अपने गोत बढ़ाते लोग।
निकट से नाव लगे पर सबका
बड़ा है जगजलधि का रोग।।
हंस-मत्स्य बिन लटरं-पटरं
सरपट दौड़े पार करे।
मूरख भारी लश्कर के संग
उसमें डूबे और मरे।।
जीवनरक्षक नाव जो बनकर
मंझधारी को बचा पाते।
वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।।

कूकू-वेदपुराण छा गए
अद्‌भुत साउंड-रेकॉर्डर बन।
बिन बिजली बिन बाती के जो
युगों तलक करते छनछन।।
अंडे फूटे शास्त्रों के जब
गहरा हर्षोल्लास हुआ।
चींचीं बोली किलकारी से
छूमंतर जग-त्रास हुआ।।
वही लिख गए दुनिया को जो
लौट गए पाते-पाते।

वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।।

कागभुषुन्डी रुकते पल भर
ज्ञान चखा कर उड़ जाते।
भक्त जटायु राम-मिलन को
प्राण-बलि हैं दे जाते।
गरुड़ जटायु शुक-उल्लू खग
सब ज्ञानी माने जाते।
कुछ पुराण की रचना करते
कुछ सुर-वाहन बन जाते।।
कलियुग में तो बका~सुर ही
सत्कारे पूजे जाते।
वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।।

यह गाते~ वह गाते
वीणा संग आते-जाते।
दुनिया में झंकार मचा के
अजब जगत को तुर जाते।।
तुकाराम नानक रहीम हो
सब सुनने-में-ही आते।
आए थे जो धरा पे संतन
अब दिखते उड़ते जाते।।
गीत बहुत हैं लोकों में पर
पुतलों से ही-सुने जाते।
वो गाने न दिखते हमको
नित जिनको पक्षी गाते।।

कुंडलिनी योग सांसारिक जीवन पर एक अतिरिक्त सुविधा मात्र है

दोस्तो, शिवपुराण में अंधक नामक एक दैत्य की कथा आती है। कहते हैं कि उस देवशत्रु दैत्य ने तीनों लोकों को अपने वश में कर लिया था। वह समुद्र में गर्त का आश्रय लेकर रहता था। वह अत्यंत पराक्रमशाली दैत्य उस गर्त से निकलकर प्रजाओं को पीड़ित करने के पश्चात पुनः उसी गड्ढे में प्रवेश कर जाता था। तब दुखी होकर सभी देवताओं ने बारंबार शिव की प्रार्थना करते हुए उनसे अपना सारा दुख निवेदन किया। इस पर शिव ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा कि वे उसे मारेंगे और उनसे कहा कि वे अपनी सेना के साथ वहां जाएं, वे खुद भी गणों के साथ वहां आ रहे हैं। तब उस गर्त से देवताओं और ऋषियों से द्वेष करने वाले उस भयंकर अंधक के निकल जाने पर देवता लोग उस गर्त में प्रवेष कर गए। तब देवताओं और दैत्यों ने परस्पर अत्यंत भयानक युद्ध किया। शिवजी की कृपा से देवता उस युद्ध में प्रबल हो गए। देवताओं से पीड़ित होकर वह ज्यों ही उस गड्ढे में प्रवेष करने लगा, उसी समय परमात्मा शिव ने उसे त्रिशूल में पिरो दिया। तब त्रिशूल में स्थित हुआ वह शिवजी का ध्यान करके प्रार्थना करने लगा,"हे देव, अंत समय में आपका दर्शन करके प्राणी आपके ही सदृश हो जाता है"। शिवजी ने खुश होकर उससे वर मांगने को कहा। तब सात्त्विक भाव को प्राप्त हुए उस दैत्य ने शिवजी को प्रणाम करके व उनकी स्तुति करके अपने लिए उनकी भक्ति मांगी और उनसे वहीं निवास करने की प्रार्थना की। इस पर शंकर ने दैत्य को उसी गड्ढे में फेंक दिया और लोकहित की कामना से वहीं लिंगरूप धारण कर स्थित हो गए।

उपरोक्त पौराणिक कथा का आध्यात्मिक-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

मुझे लगता है कि अवचेतन मन को ही अंधक राक्षस कहा गया है। यही आदमी को नियंत्रित करता है। अनजाने में जो आदमी से व्यवहार होता है, वह इसी के वश में आकर होता है। इसीलिए तो आदमी शराब आदि के नशे में मन में गहरी दबी हुई बातों, भावनाओं और शारीरिक क्रियाओं को प्रकट करता है। उस समय वर्तमान का चेतन मन निष्क्रिय सा रहता है, जिससे अवचेतन मन को शरीर को नियंत्रित करने का ज्यादा मौका मिलता है। समुद्र का गड्ढा मूलाधार चक्र है। समुद्र में भी जल होता है, और चक्रों में भी शक्तिरूपी जल होता है। समुद्र भी भूमि पर सबसे ज्यादा निचाई पर स्थित होता है, और मूलाधार चक्र भी शरीर में सबसे ज्यादा निचाई पर स्थित माना जाता है। चक्र के बीच में खाली घेरा ही वह गड्ढा है। जैसे मूलाधार चक्र शरीर का सबसे सुदूर और निष्क्रिय सा भाग है, उसी तरह अवचेतन मन भी संपूर्ण मन का सबसे सुदूर और निष्क्रिय सा हिस्सा है। जैसे समुद्र के गड्ढे की गहराई में प्रकाश न पहुंचने से वहां अंधेरा होता है, इसी तरह अवचेतन मन में भी अंधेरा होता है। इसलिए मूलाधार और अवचेतन मन, दोनों को एक स्थान पर साथ रहते दिखाया जाता है। अंधक मतलब अंधा या अंधेरा करने वाला। जब आदमी अवचेतन मन के प्रभाव में होता है, तो वह भी आदमी को अंधा सा या अंधेरानुमा बना देता है। जैसे नींद आदि के रूप में कुछ देर अवचेतन मन में रहने के बाद आदमी जागकर चुस्ती के साथ क्रियाशील हो जाता है, उसी तरह मूलाधार में अवचेतन मन के

रूप में सोई हुई शक्ति जागकर और ऊपर उठकर पूरे शरीर और मन को स्वस्थ और क्रियाशील कर देती है। पुरानी इच्छाएं और आदतें अवचेतन मन में सूक्ष्म वासनाओं के रूप में दबी हुई होती हैं। ये आदमी के व्यवहार को निर्धारित करती हैं। आदमी की मानसिक शक्ति कमजोर पड़ने पर ये वासनाएं जागकर उसके मन में काम, क्रोध आदि छः दोष पैदा कर सकती हैं, जिससे वह कई बार बुरे कर्म कर बैठता है, जो उसे पतन या विनाश की ओर ले जाता है। वासनाओं से बुरे काम और बुरे काम से पुनः वासना का निर्माण होने से ये दोनों चक्रवत एकदूसरे को बढ़ाते रहते हैं। अच्छा काम भी बुरा ही माना जाएगा यदि उसके साथ आसक्ति जुड़ जाए, क्योंकि यही आसक्ति वासना के बनने में मदद करती है। हां बुरे काम की तुलना में इससे यह फायदा होगा कि अच्छे काम का फल भी अच्छा ही मिलेगा। हालांकि अच्छे फल को आसक्ति के साथ भोगने से उससे भी वासना बनकर अवचेतन मन में दर्ज हो जाएगी, जो आदमी से फिर अच्छा काम करवाएगी। जैसे मर्जी कर्म और फल हों, आसक्ति का साथ मिलने पर बंधन तो डालेंगे ही। अच्छे काम और फल को सोने की जंजीर समझ लो, और बुरे कर्मफल को लोहे की जंजीर। दोनों आदमी को जन्ममरण के चक्कर में जकड़ेंगी ही। उसके बाद आदमी को चेतना या होश आने पर थोड़ी देर के लिए जागी हुई वह वासना फिर से उसके अवचेतन मन रूपी गड्ढे में चली जाती है। ऐसा बारंबार होता रहता है। अंधक मतलब अवचेतन मन और उससे उत्पन्न विभिन्न दोष मतलब उसकी सेना के विभिन्न राक्षस। जैसे ही काम, क्रोध आदि दोष आदमी पर हावी होने लगता है, वैसे ही उसके द्वारा शरीरविज्ञान दर्शन आदि अद्वैत साहित्यों या देवपूजा आदि अद्वैतवर्धक कर्मों की सहायता से उत्पन्न अद्वैतमय देवताओं के ध्यान से शिवरूपी ध्यानचित्र नीचे के चक्रों पर उजागर होने लगता है। योग से भी ऐसा ही होता है। योग से जब शरीर की प्राण शक्ति घूमते हुए मूलाधार पर पहुंचती है, तो इसे ही देवताओं का वहां पहुंचना कह सकते हैं, क्योंकि देवता शरीर के अंगों और उनको चलाने वाली शक्ति के साथ जुड़े होते हैं। देवताओं की सेना आध्यात्मिक कृत्यों को कहा गया होगा और शिव की सेना मतलब गणसेना तांत्रिक कृत्यों को कहा गया होगा। दोनों एकदूसरे के पूरक हैं। शक्ति के साथ शिवरूपी ध्यान चित्र का आभिव्यक्त होना स्वाभाविक ही है। वहां राक्षसों के साथ युद्ध का मतलब है, वहां दबे स्थूल या इसी जन्म के विचारों का प्रकट होना और उससे उनका कमजोर होना या नष्ट होना। अवचेतन मन में तो अनगिनत जन्मों के विचार दबे होते हैं। इसलिए उसे हराना इतना आसान नहीं है। मस्तिष्क में शक्ति पहुंचने से वह स्थूल विचारों और क्रियाओं के रूप में प्रकट होता रहता है, और उससे सर्वाधिक दूर मूलाधार में शक्ति पहुंचने से वह अपने अंधकारमय मूलरूप में छिपता रहता है। मतलब आदमी पूरी तरह उसके नियंत्रण में होता है, बेशक उसे लगे कि वह सबकुछ अपनी मर्जी से कर रहा है। जैसे ही वह शक्ति के साथ मूलाधार में पहुंचता है, वह बैक चैनलस से ऊपर जाती हुई शक्ति के साथ फिर ऊपर चढ़ जाता है। मतलब जैसे ही वह नीचे जाते हुए मूलाधार चक्र पर पहुंचता है, वैसे ही वह इड़ा, पिंगला, और सुषुम्ना नाड़ियों से ऊपर उठने लगता है। यही शिव के द्वारा अंधक को

त्रिशूल पर लटकाना है। उन नाड़ियों से मास्तिष्क में पहुंचकर वह शिवध्यान की संगति से पवित्र हो जाता है। वहां से फिर वह फ्रंट चैनल से नीचे गिरकर पुनः मूलाधार चक्र में पहुंच जाता है। यह चक्र चलता रहता है। क्योंकि मूलाधार चक्र उस अंधक को त्रिशूल पर उठाकर लगातार पवित्र करता रहता है, इसलिए यही अंधकेश्वर लिंग लगता है। वह शिवलिंग मतलब शिव का लिंग इसलिए है क्योंकि वह शिवरूप ध्यानचित्र के साथ जुड़ा होता है। क्योंकि ध्यानचित्र एक पार्श्व संगीत की तरह जीवनरूपी शोरभरे संगीत के झटकों से आदमी को बचाता है, इसीलिए कथा में कहा गया है कि शिव ने देवताओं और लोगों की अंधक से रक्षा की। मतलब योग अगर पुरानी दबी वासनाओं को बाहर निकालकर उन्हें साफ करता रहता है, तो उसमें प्रयोग किया गया ध्यानचित्र योगी को उनके वशीभूत होने से बचाता रहता है। तभी तो वे वासनाएं साफ होती हैं, नहीं तो उनके वशीभूत होने से फिर नई वासनाएं बन जाएंगी। मतलब साफ है कि ध्यानचित्र के बिना योग अधूरा है और यहां तक कि नुकसानदायक भी हो सकता है। मतलब योग सैशन के अंत में एक ध्यान सैशन भी होना चाहिए। बहुत समय लगता है वासनाओं की सफाई में। इसलिए योग जीवनभर निरंतर और प्रतिदिन नियमित रूप से चलता रहना चाहिए। वैसे यह ध्यान देने वाली बात है कि आम दुनियावी कामों से भी शक्ति घूमती रहती है। जब आदमी शारीरिक काम करता है, तो रक्तसंचार से, पहले तो शरीर और मन को काफी आनंदमय ताजगी और स्फूर्ति मिलती है। फिर थक जाने पर जब आदमी आराम करता है तब रक्त को घुमाने वाली शरीर की क्रियाशीलता नहीं रहती, जिससे भागता हुआ रक्त अपने भारीपन की वजह से मूलाधार चक्र पर जमा हो जाता है, और साथ में शक्ति भी। उससे फिर से आदमी अवचेतन मन के अंधेरे की गिरफ्त में आ जाता है। उससे ऊबकर वह फिर सांसारिक क्रियाशीलता को अपनाकर उस मूलाधार पर जमा हुई शक्ति को घुमाने की कोशिश करता है। इससे पूरे शरीर और मास्तिष्क में शक्ति पहुंचने से वह फिर से आनंदित हो जाता है। मतलब अंधक गड्ढे से बाहर आकर शरीररूपी विश्व को नियंत्रित करने लगता है। क्योंकि आदमी से काम वही होते हैं, जो उसके अवचेतन मन में दबे होते हैं। वैसे बड़ों, गुरुओं और ज्ञानियों की संगति से वह उसके प्रभाव में आकर बुरे काम करने से बचता भी है। पर कब तक। जब तक उसका समूल नाश नहीं किया गया, तब तक पूरी सुरक्षा नहीं।

दुनियावी कामों से अगर पुराने जमे विचार शिथिल होते रहते हैं, तो नए विचार अवचेतन मन पर जमते भी रहते हैं। मतलब आगे दौड़, पीछे चौड़। इसीलिए कामों को कर्मयोग के रूप में करने को कहा जाता है। इसमें कर्ता, कर्म, और फल में आसक्ति नहीं रखी जाती। अनासक्ति की वजह से वे अवचेतन मन पर गहरे नहीं जमते बल्कि ऊपर ही रहकर जल्दी ही बाहर निकलकर नष्ट भी होते रहते हैं। इससे कुल मिलाकर विचारों का नष्ट होना विचारों के जन्म से ज्यादा होता है, जिससे अवचेतन मन रूपी अंधक धीरे धीरे शुद्ध होता रहता है।

दूसरी बात, योग के समय प्रकट होने वाले दबे विचारों को हम खुलकर प्रकट होने देते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि वे हमारे से ऊटपटांग काम या व्यवहार नहीं करवा सकते, क्योंकि हम उस समय काम तो कर ही नहीं रहे होते हैं बल्कि एकांत में योग कर रहे होते हैं। इससे वह बार बार प्रकट होकर नष्ट होते रहते हैं। उन्हें गीले बारूद का मिसफायर होना कह सकते हैं। दूसरी ओर, काम के समय हम बुरे विचारों को खुलकर प्रकट नहीं होने देते, क्योंकि वे हमें दिग्भ्रमित करके हमसे बुरे कर्म और बुरे व्यवहार करवा सकते हैं।

तीसरी बात, योग के समय ध्यानचित्र ज्यादा प्रभावी होता है। वह ऊटपटांग किस्म के दबे विचारों के प्राकट्य के बुरे प्रभाव को कम करते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि ज्यादा ध्यान ध्यानचित्र पर रहता है, जिससे जाग रही बुरी मानसिक वृत्तियों की तरफ कम ध्यान जाता है। वैसे तो कर्मयोग के समय भी ध्यानचित्र प्रभावी रहता है, पर उतना नहीं, जितना योग के समय। हालांकि मेरे कर्मयोग के दौरान तो ध्यानचित्र साधारण योग से भी ज्यादा प्रभावी रहता था, फिर भी तंत्रयोग के ध्यानचित्र से तो थोड़ा कम ही प्रभावी होता था। थोड़ा ही फर्क था। बेशक जागृति योग्य बल तंत्रयोग से ही मिला। कर्मयोग में भी बहुत शक्ति होती है। ध्यानचित्र के इसी अध्यात्मवैज्ञानिक लाभ को देखते हुए उसे शिवपुराण रचयिता ने शिव का रूप दिया है। वह योग की सहायता से अंधक को बार बार त्रिशूल पर उठाता रहता है और उसे पवित्र करके पुनः गड्ढे में फेंकता रहता है। मतलब बैक चैनल की नाड़ियों के माध्यम से शक्ति और शिवचित्र के साथ अवचेतन मन ऊपर उठता रहता है, अपनी एनर्जी रिलीज करके पवित्र होता रहता है, और फ्रंट चैनल से होकर नीचे गिरता रहता है। फिर पुनः पीछे से ऊपर उठता है। यह चक्र चलता रहता है।

चौथी बात, दुनियावी कामों से शक्ति को इतना ज्यादा और जल्दी जल्दी नहीं घुमा सकते, जितना कि योग से। दिनभर योग करते रहने से शक्ति को सैंकड़ों बार घुमाया जा सकता है, जबकि काम करते हुए तो शक्ति ज्यादा से ज्यादा 4 5 बार ही घूम सकती है। सुबह के ब्रेकफास्ट के बाद के काम से शक्ति एकबार घूमती है। फिर लंच के समय आराम होता है। आराम के बाद के काम से शक्ति फिर एकबार घूमती है। लगभग 1 2 बार तो सभी शक्ति को घुमा लेते हैं। कई लोग शाम के समय आराम के साथ चायपानी कर लेते हैं। उसके बाद के काम से शक्ति तीसरी बार घूमती है। बहुत तेज लोग जल्दी सोकर उठने से लेकर ब्रेकफास्ट तक के काम से भी शक्ति को चौथी बार घुमा लेते हैं। अति क्रियाशील लोग तो शाम के पूजा के आराम और खाना खाने के बाद से लेकर सोने तक शक्ति को पांचवी बार भी घुमा लेते हैं। मतलब शक्ति को घूमने के लिए काम के साथ आराम भी जरूरी होता है।

ये सब बारूद का खेल है। अवचेतन मन में जमा विचारों के बारूद को इस तरह जलाना है कि धमाका भी न होए और वह जलता भी रहे। इसके लिए उस पर अनासक्ति रूपी हल्के

जल का छिड़काव किया जा सकता है। यही योग का ध्येय है। कुदरती चेष्ठा भी हल्के दर्जे का योग ही है, जिसमें आदमी को उसके अवचेतन मन में दबे कर्मविचारों के जैसे फल मिलते रहते हैं। इससे वे कर्मविचार याद आ जाते हैं, मतलब वे दबी हुई ऊर्जा के रूप में थे, जो बाहर निकलकर आत्मा में विलीन हो जाती है। ऊर्जा न पैदा होती है और न ही नष्ट होती है। वह आत्मा से प्रकट होती रहती है और उसी में विलीन होती रहती है। इस जन्म के दबे विचार तो याद आ जाते हैं, पर पिछले जन्म के विचार बिना याद आए ही विलीन होते रहते हैं। हालांकि उसका अहसास जरूर होता है। इसीलिए तो किसी अच्छे या बुरे फल मिलने के बाद आदमी अपने में हल्कापन और आनंद सा पैदा होता हुआ महसूस करता है। क्योंकि आदमी बुरे फल से घबराकर उसे अन्यथा व नकारात्मक रूप में लेता है, इसलिए उसमें आनंद होने से भी वह उसे महसूस नहीं कर पाता। अगर आदमी अनासक्ति व अद्वैत भाव को अपना कर रखे, तो आनंद ही है, चाहे फल अच्छा हो या बुरा हो। इसी कुदरती योग को तेज गति देने के लिए ही कुंडलिनी योग बना है।

कुंडलिनी योग में बीजमंत्रों का महत्त्व

दोस्तों, हरेक चक्र के साथ एक बीजमंत्र जुड़ा होता है। सहस्रार चक्र के साथ ॐ आज्ञा चक्र के साथ ओम या शं, विशुद्धि चक्र के साथ हं, अनाहत चक्र के साथ यं, मणिपुर चक्र के साथ रं, स्वाधिष्ठान चक्र के साथ वं, और मूलाधार चक्र के साथ लं जुड़ा होता है। इस लेख में हम उनसे जुड़ा विज्ञान समझने की कोशिश करेंगे। बीजमंत्र के ऊपर जो बिंदी होती है, वह चक्र रूप होती है। इससे ध्यान ज्यादा पिनपोइंट मतलब ज्यादा केंद्रित और प्रभावी हो जाता है। बीजमंत्र के दृश्यात्मक रूप आकार का ध्यान चक्र पर करने से और उसकी आवाज मन में बोलने से ऊपर का प्राण और नीचे का अपान उस बीजमंत्र पर पहुंच कर इकट्ठे हो जाते हैं। यह अच्छी वैज्ञानिक तकनीक है पूरे शरीर की शक्ति को एक बिंदु पर केंद्रित करने की। चक्र पर कईयों को सीधा ध्यान केंद्रित करने में दिक्कत आती है। उनके लिए यह अच्छा विकल्प है। इससे ध्यानचित्र भी चक्र पर ज्यादा स्पष्ट हो जाता है। मुझे तो वैसे बीजमंत्र की जरूरत नहीं पड़ी थी, क्योंकि चक्रों पर ध्यानचित्र मुझे पहले से ही स्पष्ट अनुभव होता था। लगता है कि उसी ने मेरे लिए बीजमंत्र का काम किया। उसी से मैं चक्रों को शक्ति दे पाया। अब जाकर मैं बीजमंत्रों की उपयोगिता समझ पाया हूं। पहले तो मैं इन्हें हल्के में लेता था। जिनका ध्यानचित्र अभी विकसित नहीं हुआ है, उनके लिए बीजमंत्र बहुत अहम हैं, क्योंकि ये ध्यानचित्र को विकसित करते हैं। बीजमंत्र के शीर्ष पर जो बिंदु होता है, उसे चक्र के सबसे संवेदनात्मक स्थान पर संलग्न करो, और उसके साथ बीजमंत्र का शेष भाग जिस मर्जी आड़े तिरछे, सीधे, उल्टे, यहां तक कि बिंदु के चारों ओर घुमाते हुए जोड़कर पूरा बीजमंत्र बनने दो और मन में उसका उच्चारण करो तो एकदम से फायदा महसूस होता है। उदाहरण के लिए नाभि के छेद को रं बीजमंत्र का बिंदु बना दो। हं गले के चक्र से इसलिए जुड़ा है क्योंकि शायद यह अहंकार का प्रतीक है, और गले से ही मैं मैं मतलब अहम अहम की आवाज निकलती है। ॐ अक्षर सहस्रार व आज्ञा चक्र को इसलिए दिया गया है क्योंकि तीनों में ही अद्वैत का भाव है। शं बीजमंत्र आज्ञा चक्र को इसलिए दिया गया है क्योंकि संस्कृत में इसका मतलब शांति है, और दिमाग के भटकाव, थकान या अशांति का प्रभाव आज्ञा चक्र पर ज्यादा पड़ता है, क्योंकि यह बुद्धि और दिमाग के सांसारिक कार्यों से जुड़ा है। सहस्रार तो पहले ही पारलौकिक चक्र है, इसलिए उसमें अशांति का मतलब ही नहीं है। दिमाग के ये दो ही मुख्य चक्र हैं। यं हृदय चक्र को इसलिए दिया गया है क्योंकि दया भाव हृदय में रहता है, और दोनों में य अक्षर है। रं नाभि को इसलिए दिया गया होगा क्योंकि पेट में भोजन जलता है, और जलाने को राड़ना भी कहते कहते हैं। ब बं बं बं बं लहरी की मंत्र तो शिव को प्रसन्न करने वाला प्रमुख मंत्र है। शायद यह स्वाधिष्ठान चक्र का बीजमंत्र वं ही है। लं मूलाधार को इसलिए दिया गया होगा क्योंकि ल अक्षर में कामभाव है। बीजमंत्र के ऊपर स्थित बिंदु के दो फायदे हैं। एक तो उससे ॐ जैसी अद्वैतबोधक ध्वनि मिलती है, और दूसरा इससे संवेदनात्मक चक्रबिंदु पर ध्यान केंद्रित करने में मदद मिलती है। वैसे तो विभिन्न चक्रों के

साथ विभिन्न रंगों और पंखुड़ियों के कमल भी जुड़े होते हैं। रंगों से ध्यानचित्र का रिसोलयुशन अर्थात स्पष्टता बढ़ती है। पंखुड़ियों से चक्रों के शरीर से संपर्क माने कनेक्शन का पता चलता है। इससे शरीर से चक्र तक पर्याप्त प्राणशक्ति पहुंचती है। जैसे कि आज्ञा चक्र पर दो पंखुड़ियों का मतलब दोनों भौहों की तरफ से दो नाड़ियां हैं। ये इड़ा और पिंगला ही हैं जो आज्ञा चक्र तक शक्ति लाती हैं। इसी तरह हृदय चक्र का षट्कोण यहां चारों तरफ से शक्ति लाता है। आसमानी नीला रंग गले के चक्र को इसलिए दिया गया है क्योंकि आवाज आसमान में ही चलती है। हरा रंग हृदय चक्र को इसलिए दिया गया है क्योंकि यह शांति, दया, हरियाली, वृद्धि व विकास का प्रतीक है। पीला रंग नाभि चक्र को इसलिए दिया गया है क्योंकि पेट में खाना जल कर पीला पड़ जाता है, जैसे पेड़ के पत्ते ज्यादा धूप से पीले पड़ जाते हैं। हल्दी भी पीली होती है और लड्डू भी। स्वाधिष्ठान चक्र पर संतरी रंग से ज्यादा ध्यान लगता है। कामभाव खट्टे स्वाद से जुड़ा है और संतरा भी खट्टा मीठा होता है। मूलाधार चक्र को लाल रंग इसलिए दिया गया है क्योंकि अज्ञानता के अंधेरे में हिंसा आदि के साथ ही लाल रक्त जुड़ा है आदि आदि। सहस्रार चक्र पर बैंगनी रंग से अच्छा ध्यान लगता है। इसी तरह आज्ञा चक्र पर गहरे नीले या काले रंग से अच्छा ध्यान लगता है। वैसे रंगों का और कमल के फूल का अभ्यास थोड़ा मुश्किल होता है, पर लगता है कि इससे फायदा भी उतना ही ज्यादा मिलता है। सिर्फ रंग या रंगदार घेरे का ध्यान भी किया जा सकता है। वं के बिंदु को एक संतरा माना जा सकता है। इसी तरह मूलाधार चक्र के संवेदनात्मक बिंदु मतलब लं के बिंदु को टमाटर माना जा सकता है। नाभि छिद्र को रं का बिंदु और एक पीला लड्डू माना जा सकता है। हृदय चक्र पर जो हरा षट्कोण है, उसे यं का बिंदु समझा जा सकता है। सहस्रार के कमल या किसी भी फूल के केंद्रीय सघन गोले को ॐ का बिंदु माना जा सकता है। चारों तरफ इसके पंखुड़ियां होती हैं। कमल का फूल इसलिए लिया गया है क्योंकि कमल का पत्ता जल में रहकर भी उससे निर्लिप्त रहता है, और शायद इसके ध्यान से आदमी भी दुनिया में निर्लिप्त रहना सीख जाए। फूल के केंद्रीय गोले का आकार भी ऐसा ही होता है, जैसे ॐ के ऊपर एक तिरछी ब्रेकेट होती है। बिंदु को उस गोले के अंदर उस फूल का बीज समझा जा सकता है। कुछ भी निर्धारित नियम नहीं है। जैसा आसान व प्रभावी लगे, उस तरीके से ध्यान कर सकते हैं। इसी तरह आज्ञा चक्र और विशुद्धि चक्र के फूल को भी क्रमशः ओम और हं अक्षर का भाग माना जा सकता है। जो बीजमंत्र ध्यान में आए, उसी का ध्यान करते रहना चाहिए, वह खुद अपनी जगह पर बैठ जाता है। सभी चक्र आपस में जुड़े होते हैं। यदि गले पर हं का ही ध्यान हो रहा है, तो कोई बात नहीं, यह जब ऊर्जा खींचेगा, तो बीच वाले अनाहत, मणिपुर आदि चक्र खुद ऊर्जा प्राप्त करेंगे क्योंकि वे बीच के रास्ते में ही पड़ते हैं। इससे उन चक्रों के यं, रं आदि बीजमंत्र खुद ही ध्यान में आ जाते हैं। जब ऊर्जा की जंजीर घूमती है तो सभी चक्रों की मालिश खुद ही हो जाती है। एक चक्र को बल देने से सभी चक्रों को खुद ही बल मिलता है। यह ऐसे ही है जैसे चंडोल अर्थात मैरी गो राउंड के इसी एक बॉक्स सीट को धक्का देने से सभी बॉक्स सीटों को गति मिलती है।

अभ्यास होने पर सिर से पैर तक सभी चक्रों पर उनके बीजमंत्रों का माला के मनके की तरह ध्यान किया जा सकता है। शायद यही असली माला है और भौतिक माला भी इसीको क्रियाशील करती है।

कुंडलिनी योग से मृत व्यक्ति भी जीवित हो सकता है

शिवपुराण में एक सुधर्मा ब्राह्मण की कथा आती है। वह संतुष्ट, प्रसन्न और अद्वैत भाव में स्थित रहता था। उसकी सुदेहा नाम की एक शिवधर्मपरायण पतिव्रता पत्नि थी। उनकी उम्र काफी बीत गई पर उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। फिर भी तत्त्ववेत्ता सुधर्मा को जरा भी दुख नहीं हुआ। पर उसकी पत्नि को पुत्र न होने का बड़ा दुख था। वह अपने पति से पुत्र के लिए प्रयत्न करने को कहा करती। फिर सुधर्मा उसे डांटकर समझाते कि पुत्र क्या करेगा। कौन किसकी माता तथा कौन पिता है, कौन पुत्र है और कौन भाई या मित्र है। सभी स्वार्थ का ही साधन करने वाले हैं। एक बार किसी पड़ोसी औरत ने सुदेहा को पुत्र न होने का ताना देते हुए बहुत धिक्कारा। वह फिर अपने पति से शिकायत करने लगी। उसने उसे बहुत समझाया पर जब वह फिर भी नहीं समझी तो उसने उसके सामने दो पुष्प रखे और उसे उनमें से एक पुष्प उठाने को कहा। सुदेहा ने वह पुष्प उठाया जिस पर ब्राह्मण ने पुत्र न होना सोचा था। फिर भी वह न मानी और पुत्र के बिना आत्महत्या की धमकी दे दी। तब सुदेहा अपनी सगी बहन घुश्मा को लेकर आई और अपने पति को उससे पुत्र के लिए विवाह करने को कहा। सुधर्मा ने उसे समझाया कि वह उसके पुत्रवती होने पर उससे ईर्ष्या करने लगेगी, जिससे उसे दुख होगा। उस पर घुश्मा ने कहा कि वह अपनी सगी बहन से कैसे ईर्ष्या कर सकती थी। घुश्मा प्रतिदिन एक सौ एक पार्थिव लिंगों का निर्माण, पूजन और विसर्जन करती थी। इस तरह जब एक लाख लिंगों की संख्या पूरी हुई तो उसे सुंदर पुत्र प्राप्त हुआ। सुधर्मा उसे देखकर बहुत खुश हुआ और आसक्तिरहित होकर सुखभोग करने लगा। उसके बाद तो सुदेहा घुश्मा से बहुत ईर्ष्या करने लगी। सभी संबंधी घुश्मा का सम्मान करने लगे। हालांकि सुधर्मा तब भी सुदेहा को अधिक सम्मान और प्रेम देता था, पर उसके मन में कपट था। घुश्मा के बेटे का विवाह भी हो गया। जलती भुनती सुदेहा से एक दिन रहा न गया। उसने अपनी पत्नि के साथ सोए सौतेले पुत्र को मारकर उसके शरीर को खंडखंड करके उन खंडों को नदी में बहा दिया। संयोग से उसी स्थान पर ही सुदेहा भी पार्थिव लिंगों का विसर्जन करती थी। जब पुत्रवधु ने सुबह उठकर खून के छींटे और पति के शरीर के टुकड़े शैय्या पर बिखरे देखे तो रो पड़ी। सुदेहा भी नाटक करते हुए रोने लगी। पर घुश्मा ने जरा भी दुख नहीं किया और पार्थिव पूजन के व्रत में लगी रही। उसके पति ने भी कोई ध्यान नहीं दिया, जब तक शिवलिंग पूजन पूरा नहीं हुआ। वह स्थिरचित्त होकर शिव का नाम लेते हुए पार्थिव शिवलिंगों को बहाने गई और जब वह मुड़ लौटने लगी तो उसने उस सरोवर के तट पर अपने पुत्र को देखा। घुश्मा अपने पुत्र को जीवित देखकर भी ज्यादा खुश नहीं हुई, जैसे कि वह उसके मरने पर दुखी भी नहीं थी, पर यथावत शिवजी के ध्यान में तत्पर रही। उसी समय वहां से संतुष्ट हुए ज्योतिस्वरूप सदाशिव प्रकट हो गए और घुश्मा से वर मांगने को कहा। तब उसने अपनी बहन सुदेहा की रक्षा का वर मांगा। शिव ने जब इस पर आश्चर्य प्रकट किया तो घुश्मा ने कहा कि जो अपकार करने वाले का भी उपकार करता है, उसके दर्शन मात्र से ही सभी

पाप नष्ट हो जाते हैं। तब शिव ने इससे खुश होकर अन्य वर मांगने को कहा। तब घुश्मा ने शिव को हमेशा अपने पास रहने को कहा। इस पर शिव वहां पर घुश्मेश्वर लिंग नाम से स्थित हो गए। पुत्र को जीवित देखकर सुदेहा लज्जित हो गई और दोनों से क्षमा मांगकर अपने पाप को नष्ट करने वाले व्रत का आचरण करने लगी।

घुश्मेश्वर लिंग कथा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

इस कथा के रूप में कर्मयोग, अनासक्ति और अद्वैतभाव की महिमा का वर्णन हुआ है। घुश्मा को पुत्र देखकर भी ज्यादा खुशी नहीं हुई। मतलब किसी अन्य व्यक्ति के लाभ की खुशी तो कर्मयोगी को भी होती है, पर ज्यादा नहीं, मतलब इतनी नहीं कि उसके प्रति आसक्ति ही हो जाए। अपने मृत पुत्र को देखकर घुश्मा को जरा भी दुख नहीं हुआ। जो जाना था, वह तो चला गया। उसके लिए दुख करने का क्या फायदा था। अपने लिए जरा भी दुख नहीं हुआ, मतलब कर्मयोगी अपने लिए दुख को जरा भी नहीं मानता। शायद अपने लिए खुशी को भी नहीं मानता। अपने जीवित पुत्र को देखकर जो उसे थोड़ी खुशी हुई, वह उसके लिए हुई होगी, अपने लिए नहीं। अद्वैतभाव में रहने पर खुद ही इष्ट पर ध्यान लगने लगता है। इसीको ऐसा कहा है कि वह अपने पुत्र को जीवित देखकर खुश नहीं हुई, पर शिवजी के ध्यान में तत्पर रही। संबंध न्याय से तो इष्ट के ध्यान से अद्वैतभाव पैदा होना चाहिए शायद यही हुआ हो। कुंडलिनी ध्यानयोग से आध्यात्मिक गुण पैदा होने के पीछे यही सिद्धांत कारण है। मृत व्यक्ति कभी जीवित नहीं हो सकता। वह जो उसे अपना मृत पुत्र दिखाई दिया, वह उसकी शिवसाधना के प्रभाव से उसका प्रगाढ़ ध्यान लगने के कारण उसे अपने मन में ही दिखाई दिया। तभी उसे शिव भी नजर आए, मतलब उस ध्यान से वह जागृत भी गई। अगर सचमुच उसका पुत्र जीवित हो गया होता तो सुदेहा तप करके प्रायश्चित क्यों करती, क्योंकि तब तो उसके पुत्र के जीवित होने से उसको मारने का पाप खुद ही नष्ट हो जाता। कहानी अप्रत्यक्ष रूप से बताती है कि सुदेहा द्वारा घुश्मा की ध्यानसिद्ध कल्पना में उसके द्वारा मारे गए उसके बेटे को देखे जाने से उसे बार-बार अपना वह पाप याद आया जिसने उसे तपस्या करने के लिए प्रेरित किया। इस तरह की सौतनों पर बहुत सी फिल्में बनी हैं। एक पंजाबी फिल्म सौंकण सौंकने तो हूबहू यही कथा लगती है। यही अंतर है कि उसमें सौतन कुछ नुकसान होने से पहले खुद ही अलग होकर अपने मायके चली गई। रही बात अपकार करने वाले को माफ करने की, तो ऐसे उदाहरणों से वेदपुराण भरे पड़े हैं। शायद हिंदु धर्म इसीलिए सबसे सहिष्णु कौम है। पर कई कौमों ने इसका नाजायज फायदा भी उठाया। कहते हैं कि यदि पृथ्वीराज चौहान मुहम्मद गौरी को तराईं के युद्ध में माफ न करता तो भारत सैंकड़ों सालों के लिए मुगलों का गुलाम सा न बनता। गुलामी की झलक तो आज तक दिखती है किसी न किसी रूप में। सबको पता है कि जनसंख्या नियंत्रण कानून और समान नागरिक संहिता को लागू करने में कौन सी कौमें सबसे ज्यादा अड़चन पैदा कर सकती हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं। अब म्यांमार के बौद्ध संत विराथू को ही लें। उनकी यह बात सोशल

मीडिया पर बड़ी चली थी कि प्यार और सहिष्णुता तो ठीक है पर आप पागल कुत्ते की बगल में तो नहीं ही सो सकते। खैर यह पुराण पर आधारित बात चल पड़ी, इसका कोई पृथक उद्देश्य नहीं। कुल मिलाकर अतिवाद हर जगह हानिकारक होता है। मतलब कि दूसरे को माफ करना बेशक बहुत पुण्यदायक है, पर अगर सामने वाला जान लेने पर ही उतारू है, तो उस पुण्य का क्या करोगे, क्योंकि सबकुछ शरीर पर ही निर्भर है। वैसे भगवान शिव इस अतिवाद के खिलाफ ही लगते हैं, क्योंकि वे लगभग हर जगह ऐसे अति सहिष्णु वरदान पर आश्चर्य प्रकट करते हैं। अगर ऐसा वर मांगना स्वाभाविक होता या बिल्कुल ठीक होता तो उन्हें आश्चर्य नहीं होना था। वैसे वे इस पर बहुत प्रसन्न भी होते थे। मतलब कि सहिष्णुता और अति सहिष्णुता को विभाजित करने वाली रेखा बहुत पतली है, और मौके के अनुसार ही प्रतिक्रिया होनी चाहिए। मुझे लगता है कि घुश्मा, अत्रि आदि लोग महान शिवभक्त होते थे जिन्होंने शिवलिंग की सहायता से जागृति प्राप्त की। उन्हीं को सम्मान देने के लिए ही उनके निवास स्थानों पर उनके नामों से स्थायी शिवलिंग बनाकर वहां तीर्थों के निर्माण कर दिए होंगे ताकि लोगों को उनसे प्रेरणा मिलती रहे। भौतिक वैज्ञानिकों को भी जब ऐसा श्रेय दिया जाता है तो आध्यात्मिक वैज्ञानिकों को क्यों नहीं। यही घुश्मेश्वर लिंग, अत्रीश्वर लिंग आदि के पीछे का कारण नजर आता है। इस कथा से एक अंदाजा यह भी लगता है कि किसी को मरणोपरांत याद करने से उसे परलोक में लाभ मिलता है। हो सकता है कि जब तीव्र ध्यान से घुश्मा ने अपने पुत्र को जीवित देखा तो वह सूक्ष्म रूप से जीवित हो गया हो, बेशक किसी को न दिखता हो। इसीलिए बहुत सी संस्कृतियों में हर वर्ष मृत संबंधियों को याद करते हुए उनकी पूजा करने की परंपरा है। शायद वह पुनर्जीवित आत्मा उसका ध्यान करने वाली आत्मा के नजदीक सूक्ष्म रूप में बस जाती है, और उसके द्वारा किए जा रहे कर्मों को करती है, उसके द्वारा भोगे जा रहे फलों को भोगती है, और उसके साथ ही मुक्त भी हो जाती है। शायद यह ऐसा ही संबंध होता है जैसा एक मां और उसके पेट में पल रहे बच्चे के बीच में होता है। कई बार जब कोई बुरी आत्मा किसी के शरीर में डेरा डालती है तो उससे गलत काम भी करवाती है। फिर उसे तांत्रिकों की सहायता से भगाना भी पड़ता है। इसीलिए बुरी संगति से बचने को कहा जाता है। अच्छी आत्माएं किसी के शरीर में ज्यादा दखलंदाजी नहीं करती क्योंकि वे अपनी मर्यादाएं समझती हैं, हालांकि मौका पड़ने पर सही रास्ते पर लगाती भी रहती हैं। इसलिए उन्हें भगाने की जरूरत नहीं होती, बल्कि उन्हें तो बुलाकर किया जाता है, जैसे कि देवताओं का इन्वोकेशन अर्थात आह्वान। वैसे भी इस अजूबों से भरी दुनिया में क्या कुछ अजीब नहीं घट सकता।

कुंडलिनी कुंड से जागकर सुदर्शन चक्र रूपी वैकल्पिक कालचक्र को क्रियाशील कर देती है, जिसमें शरीरविज्ञान दर्शन एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र पुस्तक बहुत मदद करती है

कुंडलिनी शब्द को कहते हैं कि यह शास्त्रों में नहीं है। पर कुंड शब्द तो शिवपुराण में बहुत है। संस्कृत भाषा में कान के कुंडल या छल्ले जैसे आकार वाला पुलिंग पदार्थ कुंडली हुआ और ऐसे आकार वाली स्त्रीलिंग वस्तु कुंडलिनी कहलाई। शायद कुंडल शब्द भी कुंड शब्द से बना है। दोनों में संबंध तो साफ दिखता है। कुंड का शाब्दिक अर्थ गोल गड्ढा है, और कुंडल का अर्थ गोल छल्ला है। दोनों में यही अंतर है कि गड्ढे में धरातल होता है, पर छल्ले में नहीं होता, बाकि तो दोनों समान ही हैं। जैसे हर्ष से हर्षिल बना है वैसे ही कुंड से कुंडल बना हो सकता है। हर्ष मतलब हर्ष से युक्त और कुंडल मतलब कुंड से युक्त। मेरे इस अनुमान की जांच तो कोई संस्कृत व्याकरण विद्वान ही कर सकते हैं, अगर यह लेख पढ़ रहे हैं। कुंड से कुंडल न भी बना हो तो भी कुंडल के जैसे आकार में ढलकर सर्प कुंड अर्थात गड्ढे में छिप जाता है। इसीलिए कहते हैं कि सांप ने कुंडली लगाई हुई है। जिस गड्ढे में सर्प कुंडली मारकर छिप जाता है, उसे अगर कुंड कहा जाए तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए। मूलाधार रूपी अंधेरे कुंड में मन की शक्ति सिकुड़ कर ध्यानचित्र के रूप में छिप जाती है। इसीलिए उस शक्ति को कुंडलिनी कहा जाता है। यही सभी चक्रों से होकर ऊपर चढ़ते हुए, फन उठाए नाग के जैसे आकार वाली पीठ और मास्तिष्क की नाड़ी में फैल जाती है। विष्णु ने कुंड में शिवलिंग को स्थापित किया। धार्मिक आस्था से जुड़ा होने के कारण इस बारे ज्यादा कुछ कहा नहीं जा सकता क्योंकि कुछ कट्टर हिंदु तो पुराणों की कथाओं को मिथकीय कहने वाले के हिंदु होने पर ही संदेह करने लगते हैं। वैसे अपनी सोच से वे भी सही ही कहते हैं, क्योंकि ये कथाएं मनगढ़ंत नहीं हैं। मिथक भी दो किस्म के होते हैं, एक मनगढ़ंत या निरर्थक किस्म के और एक वैज्ञानिक सत्य पर आधारित या सार्थक किस्म के। पुराणों के मिथक दूसरे किस्म के हैं, मतलब बेशक ये मिथक लगे पर पूरी तरह से वैज्ञानिक सत्य पर आधारित हैं। इसीलिए हम इनके वैज्ञानिक सत्य को उजागर करते हैं ताकि इन्हें मनगढ़ंत मिथक न समझा जा कर इनका खोया सम्मान वापिस मिल सके। हालांकि आम लौकिक सोच से ऐसा समझ सकते हैं कि देव विष्णु की उपरोक्त शिवलिंग पुकार ऐसी ही है जैसे किसी कुशल तांत्रिक ने यबयुम आसन से उत्पन्न शिवध्यानयुक्त संभोगशक्ति मूलाधार को दी। लिंग पर शिव के ध्यान से ही वह पवित्र होकर शिवलिंग बनता है। देव विष्णु जैसे महान व आदर्श योगियों का तरीका बेशक उन्नत और सात्त्विक हो सकता है, पर सबका मकसद एक ही है, और वह है शक्ति को जागृत करना।

विष्णु एक हजार कमल पुष्पों से शिव की पूजा करने की कोशिश कर रहे थे मतलब सहस्रार चक्र तक शिवध्यानचित्र को मूलाधार से उठाने की कोशिश कर रहे थे मेरुदंड से। एक पुष्प शिव ने माया से छिपा लिया मतलब शिव की माया से मोहित होकर विष्णु अपने अंहकार को शिव को अर्पित नहीं कर पा रहे थे। विष्णु ने धरती पर उस आखिरी पुष्प को हर जगह ढूंढा पर वह नहीं मिला मतलब अंहकार भीतर होता है, बाहर नहीं।

बाहर की सारी सृष्टि भी शिव को चढ़ा दें, तो भी चढ़ावा अधूरा ही रहेगा, क्योंकि मास्तिष्क के अंदर बसा अहंकार तो चढ़ाया ही नहीं। विष्णु ने फिर अपना नेत्र चढ़ाया मतलब तीसरे नेत्र मतलब आज्ञा चक्र को जागृत करके वे उसकी शक्ति को फ्रंट चैनल से नीचे उतारकर मूलाधार चक्र तक लाए। उससे वहां स्थित शिव उससे पूर्ण संतुष्ट होकर वहां से सहस्रार चक्र तक चढ़कर पूरी तरह से जागृत हो गए मतलब प्रसन्न होकर उन्होंने विष्णु को अपने दर्शन करा दिए। अंहकार का जंजाल बुद्धि के रूप में बसा हुआ होता है, और बुद्धि का प्रतीक आज्ञाचक्र है। मतलब जो मन की शक्ति बुद्धिवादी सांसारिकता के जंजाल में फंसी थी, वह मुक्त हो कर शिवध्यानचित्र अर्थात कुंडलिनी चित्र को लग गई, जिससे वह जाग गया। फिर शिव ने उन्हें सुदर्शन चक्र दिया, मतलब जो अच्छे दर्शन या शिवदर्शन अर्थात जागृति के बाद सहस्रार चक्र बना, वही सुदर्शन चक्र है। वही दुष्टों व राक्षसों का वध मतलब बुरे विचारों का खात्मा करता है। कई जगह पर उसे दंड की तरह भी दिखाया जाता है, जो सुषुम्ना नाड़ी का द्योतक लगता है।

श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र पर ही गोवर्धन पर्वत को उठाया था मतलब ज्ञानरूप जागृत सहस्रार चक्र से ही स्थूल जगत को इतना हल्का, सूक्ष्म और आकाशरूप बना दिया कि वह ऊपर उठकर शून्य आसमान के बीच में आ गया। इससे ग्वालबाल मतलब इन्द्रियों के वशीभूत आम सांसारिक आदमी दुखों की अंधाधुंध वर्षा से बच सके थे, जो अंहकार रूपी इंद्र के कारण हो रही थी। गाय इंद्रिय को कहते हैं और गाय चराने वाला अर्थात इंद्रियों के संसर्ग से पीड़ित अज्ञानी मानव हुआ। यह ऐसा ही मामला लगता है जैसा रावण के द्वारा कैलाश पर्वत को भुजाओं पर उठाने का है। सुदर्शन चक्र का केवल इच्छामात्र से चलना और प्रहार करके खुद वापिस लौट आना और हमेशा घूमते रहना इसके दिव्य चक्र मतलब सहस्रार चक्र होने की ओर इशारा करता है। इसकी अरे मतलब स्पोकें, धुरी आदि ऋतुओं आदि का संकेत करती हैं। बौद्धों में कालचक्र भी शायद इसे ही कहते हैं। कालचक्र में भी सुदर्शन चक्र के बराबर ही अरे आदि होते हैं जो कि समय, ऋतु आदि की चाल को इंगित करते हैं। दोनों में ही वज्र और विद्युत होती है। यह सुषुम्ना में बहने वाली और जागृति देने वाली ऊर्जा ही है। कालचक्र को भी सुदर्शन चक्र की तरह विष्णु, कृष्ण, शिव आदि से जोड़ा जाता है। दोनों का ही वर्णन वेदशास्त्रों में है। हालांकि कालचक्र का उपयोग मुख्यतः बौद्धों में होता है।

कालचक्र के तीन प्रकार हैं, बाह्य, आभ्यंतर और गुप्त। बाह्य में बाहरी स्थूल ब्रह्मांड, आभ्यंतर में शरीर के अंदर का सूक्ष्म ब्रह्मांड और गुप्त में योग आदि रहस्यमय मुक्तिदायी विद्याएं आती हैं। मुझे लगता है कि एक का पूर्ण ज्ञान होने से तीनों का ज्ञान हो जाता है। बहिर्मुखी आदमी के लिए बाह्य कालचक्र की साधना है। अंतर्मुखी व्यक्ति के लिए आंतरिक कालचक्र और संन्यासी किस्म के व्यक्ति के लिए गुप्त कालचक्र बना है। तीनों से ही ज्ञान और मुक्ति मिलती है। प्रेमयोगी वज्र रचित शरीरविज्ञान दर्शन को एक प्रकार का आंतरिक कालचक्र कह सकते हैं, क्योंकि उसमें शरीर के अंदर के ब्रह्मांड का वर्णन किया

गया है। कालचक्र एक मंडल होता है, जिसमें विभिन्न देवताओँ, चिह्नों और आकृतियों को प्रदर्शित किया जाता है। वास्तव में भी तीनों कालचक्रों में भी ऐसे ही विविध रूपरंग वाला संसार है। इसकी साधना से स्वाभाविक है कि सुषुम्ना, सहस्रार और कुंडलिनी आदि जागृत हो जाते हैं, जो फिर दुष्ट विचारों और स्वभावों रूपी राक्षसों का नाश करते हैं। इस मामले में भी कालचक्र और सुदर्शन चक्र एक ही हैं। यह कह सकते हैं कि कालचक्र आम आदमी को मिलता है जबकि विष्णु जैसे परम आदर्श मनुष्य को मिलने वाले कालचक्र को सुदर्शन चक्र कहा गया है। आम आदमी तो केवल अपने ही अज्ञान का नाश करता है जबकि विष्णु और राम, कृष्ण, बुद्ध आदि उनके अवतार अनगिनत भक्त लोगों का अज्ञान नष्ट करते हैं। इसीलिए सुदर्शन चक्र को विशिष्ट कालचक्र कह सकते हैं।

वामन पुराण में भी इस चक्र को कालचक्र कहा गया है। इसकी बारह स्पोकें बारह महीनों और छः नाभियां छः ऋतुओं को इंगित करती हैं। यह भी कहा जाता है कि मंत्र सहस्रात हुम फट इसकी स्पोकों पर खुदा है। यह एक बौद्ध मंत्र लगता है। सिख भी चक्र को हथियार की तरह इस्तेमाल करते थे, जिसे सीधे भी और फेंक कर भी चलाया जाता था। कई जगह यह भी आता है कि सुदर्शन चक्र का केंद्र वज्र से बना है। वज्र वही मेरूदंड है, जिससे होकर वज्र शक्ति सहस्रार तक गुजरती है। पूरी तरह से यह लेख अगले लेख को पढ़कर समझ आएगा क्योंकि उसमें शिवपुराण में वर्णित इसकी मूल कथा लिखी जाएगी।

ऋग्वेद में भी सुदर्शन चक्र को कालचक्र कहा गया है। तीनों कालचक्रों से अलग एक चौथा वैकल्पिक कालचक्र भी है, जिसमें मन को समय की चाल से प्रभावित नहीं होने दिया जाता। यही बुद्धत्व और आत्मज्ञान का कालचक्र है। यही अद्वैत है, यही द्वैताद्वैत मतलब द्वैत के बीच रहकर अद्वैत है। यही प्रेमयोगी वज्र कृत शरीरविज्ञान दर्शन नामक तंत्र दर्शन की अवधारणा है। विष्णु का दुष्टविनाशक सुदर्शन चक्र ये ही पूर्व के तीनों कालचक्र हैं, जो समय के थपेड़ों से आम आदमी के मन को द्वैत, अज्ञान और दुख में डालकर उसे बारंबार जन्म मृत्यु के चक्र में डालने वाले हैं। कृपा करने वाला सुदर्शन चक्र चौथा और अंतिम मतलब वैकल्पिक कालचक्र है, जो बेशक समय की रफ्तार से घूमता है, पर आदमी को उसके बीच अद्वैत से रहना सिखाकर उसे सुख समृद्धि और मुक्ति देता है। मारने वाला समय चक्र तो किसी के पास भी हो सकता है, पर बचाने वाला तो विष्णु जैसे आत्मज्ञानी के पास ही हो सकता है। वह तब मिलता है जब सहस्रार चक्र जागृत होता है। यह काल तो चक्र की तरह चलता ही रहता है, कभी नहीं रुकता। जन्म के बाद मृत्यु, मृत्यु के बाद जन्म और फिर मृत्यु। सृष्टि के बाद प्रलय, प्रलय के बाद सृष्टि और फिर प्रलय। ऋतुएं चक्रवत बदलती रहती हैं, सुख दुख चक्रवत आते जाते रहते हैं। इस चक्र से हम भाग नहीं सकते। चक्र को चक्र ही काटता है। वरदायी सुदर्शन या वैकल्पिक चक्र ही बचने का एकमात्र उपाय है। मतलब चक्र के साथ चलते रहो पर उससे अपनी अद्वैतमय शांति भंग न होने दो। यही सुदर्शन चक्र की स्तुति और पूजन है।

शिशुपाल को सुदर्शन चक्र ने गले से काटा मतलब शिशुपाल के द्वैतपूर्ण व्यवहार से उसकी शक्ति विशुद्धि चक्र से ऊपर नहीं चढ़ी। क्योंकि आदमी गले के विशुद्धि चक्र की शक्ति से बोलता है, तो ऊपर चढ़ती शक्ति को गले ने रोककर गाली गलौज में खत्म कर दिया मतलब गले के पास शक्ति का रास्ता कट गया मतलब गला कट गया। शिशुपाल कृष्ण को बहुत गालियां निकाल रहा था। कुंडलिनी चक्र भी शायद इसीलिए चक्र कहलाते हैं क्योंकि इन पर भी शक्ति का स्तर चक्रवत बदलता रहता है। कभी शक्ति बढ़ते बढ़ते चरम पर पहुंच जाती है, जिसे चक्र का जागृत होना कहते हैं, और फिर घटते घटते न्यूनतम भी पहुंच जाती है। उदाहरण के लिए कभी दिल की भावनाएं उफान पर होती हैं और कभी वह भावशून्य सा हो जाता है। कुछ समय बाद दिल फिर भावनाओं से भर जाता है, जिससे कई बार अच्छी सी कविता का निर्माण भी हो जाता है। ऐसा चक्र चलता रहता है। चक्र जागृत हो गया तो इसका मतलब यह नहीं कि वह हमेशा जागृत रहेगा। उसकी शक्ति घटती बढ़ती रहेगी। इससे घबराना नहीं है और न ही प्रभावित होना है। यही वैकल्पिक कालचक्र है, मतलब बुद्धवादी विकल्प अर्थात कल्पना या दर्शन से कालचक्र के दुष्प्रभाव को ख़त्म करके उससे सद्प्रभाव पैदा करना है। इसी तरह सहस्रार चक्र भी कभी चरम शक्ति पर होता है। उस समय यह पात्र व्यक्ति को ज्ञान या वरदान देकर भौतिक समृद्धि और मुक्ति भी दे सकता है, और पापी व्यक्ति को श्राप देकर उसे भौतिक हानि और बंधन में भी डाल सकता है। फिर सहस्रार चक्र निम्न शक्ति स्तर पर भी होता है, जिस समय श्रीकृष्ण एक आम आदमी की तरह व्यवहार करते थे। सहस्रार की चरम शक्ति की अवस्था होने पर ही वे अवतारी पुरुष की तरह व्यवहार करते थे, और जिस समय सहस्रार चक्र के बाह्य और स्थूल प्रतीक के रूप में उनकी अंगुली पर सुदर्शन चक्र घूमता हुआ दिखाया जाता था। आम आदमी तो मन या मस्तिष्क में छिपे सूक्ष्म सहस्रार चक्र को महसूस नहीं कर सकते। जागृत सहस्रार चक्र मतलब सुदर्शन चक्र से ही दिव्यता है, परमात्मता है, पुरुषोत्तमता है।

आदमी बाह्य कालचक्र में ही पैदा होता है और उसमें लंबे समय तक रहते हुए बहुत कुछ सीखता है। यह शुरुवाती अभ्यास का कालचक्र है। फिर उससे उत्पन्न दुखों के थपेड़ों से परेशान होकर उसे आंतरिक कालचक्र के ऊपर अध्यारोपित करने लगता है। मतलब वह अपने मन को यह दिलासा देने लगता है कि जो कुछ विस्तृत ब्रह्मांड में है वही सबकुछ उसके अपने छोटे से शरीर में भी है। मतलब यत्पिंडे तत् ब्रह्माण्डे। ऐसा करना **"शरीरविज्ञान दर्शन, एक आधुनिक कुंडलिनी तंत्र, एक योगी की प्रेमकथा"** नामक पुस्तक से बहुत आसान हो जाता है। उससे उसे कुछ अद्वैत की अनुभूति होती है जिससे वह काल के थपेड़ों से थोड़ी सुरक्षा महसूस करता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि शरीर के अंदर पूरा कालचक्र दौड़ता रहने के बावजूद उसका कोई भी घटक द्वैत के बंधन में नहीं पड़ता। लंबे समय तक उसमें स्थिर रहने के बाद जब वह काफी पवित्र हो जाता है, तब उसकी प्रवृत्ति खुद ही योगसाधना रूपी गुप्त कालचक्र की ओर झुक जाती है। योग करते हुए और आगे बढ़ते हुए वह खुद ही तांत्रिक कुंडलिनी योग की तरफ मुड़ जता है। तंत्र योग से

उसकी कुंडलिनी सहस्रार चक्र में जागृत हो जाती है, मतलब वह वैकल्पिक कालचक्र या सुदर्शन चक्र का अधिकारी बन जाता है। फिर भी जब भी वह सहस्रार में ऊर्जा की कमी से इस सर्वोच्च कालचक्र से नीचे आता रहता है तब तांत्रिक ऊर्जा के थोड़े से धक्के से वह आसानी से उसमें पहुंचता रहता है।

अनंत विस्तृत बाह्य कालचक्र अद्वैत सूक्ष्म होता जाता है। पहले वह आंतरिक कालचक्र के स्तर पर पहुंचता है। फिर और सूक्ष्म होकर सात कुंडलिनी चक्रों तक सीमित होकर गुप्त कालचक्र बन जाता है। इसे गुप्त कालचक्र इसलिए कहते हैं क्योंकि सभी इसे महसूस नहीं कर सकते, पर केवल कुंडलिनी योगी ही इसे महसूस करते हैं। फिर जागृति के बाद यह सहस्रार चक्र के बिंदु के स्तर तक सूक्ष्म बनकर वैकल्पिक कालचक्र बन जाता है। कालचक्र शुरु से लेकर अंत तक रहता है, पर पहले वह अज्ञान के बंधन में डालने वाला था, अंत में ज्ञान और मुक्ति देने वाला बन जाता है। यह बेहद कारगर और व्यवहारिक साधना है जिसे जरूर अपनाना चाहिए। सबसे साधारण शब्दों में बोलें तो यह ऐसा है कि भौतिक दुनियादारी के बीचबीच में अपने शरीर को भी अनुभव करते रहना चाहिए, उसके आगे के रास्ते खुद खुलते जाते हैं। **योग इसकी आदत डालने के लिए ही बना है। योगासन करते समय प्राणों की क्रियाशीलता से दुनियावी विचार भी आते रहते हैं और साथ में शरीर के विशेष पोज और सांस पर भी ध्यान लगा होता है मतलब बाह्य कालचक्र आंतरिक कालचक्र में रूपांतरित होता रहता** है।

कुंडलिनी योग ही बौद्ध धर्म का गुप्त कालचक्र है

किसी समय दैत्य महाबलवान हो गए थे। वे लोकों को पीड़ित करने और धर्म का लोप करने लगे। परेशान होकर देवताओं ने देवरक्षक विष्णु से अपना दुख कहा। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए विष्णु कैलाशपर्वत के समीप जाकर स्वयं कुंड का निर्माण कर उसमें अग्निस्थापन कर उसी के समक्ष तप करने लगे। वे पार्थिव विधि से अनेक प्रकार के मंत्रों एवं स्तोत्रों द्वारा मानसरोवर में उत्पन्न हुए कमलों से प्रसन्नता के साथ शिवजी का पूजन करते रहे। वे हरि स्वयं आसन लगाकर स्थित रहे और विचलित नहीं हुए। बहुत समय तक भी शिव प्रकट नहीं हुए। इस पर विष्णु ने हैरान होकर शिव के सहस्रनाम का जाप शुरु कर दिया। वे एक एक नाममंत्र का उच्चारण कर उन्हें एक एक कमल अर्पित करते हुए शंभु की पूजा करने लगे। उस समय शिव ने विष्णु की भक्तिपरीक्षा के लिए उन सहस्र कमलों में से एक कमल का अपहरण कर लिया। विष्णु शिव की माया को न समझकर एक कमल को ढूंढने में लग गए। विष्णु ने उस कमल के लिए पूरी पृथ्वी का भ्रमण किया। उसके प्राप्त न होने पर उन्होंने उसकी जगह अपना एक नेत्र ही अर्पित कर दिया, बेशक शिव ने उन्हें अपना नेत्र निकालने से रोक दिया। तभी शिव प्रसन्न होकर प्रकट हुए और विष्णु को वर देने के लिए तैयार हो गए। पूछने पर विष्णु ने बताया कि उनका आयुध दैत्यों को मारने में सक्षम नहीं हो रहा है। विष्णु का यह वचन सुनकर शिव ने उन्हें अपना महातेजस्वी सुदर्शन चक्र प्रदान किया। उसे प्राप्त कर विष्णु ने बिना परिश्रम के शीघ्र ही उन महाबली राक्षसों को विनष्ट कर दिया। इस प्रकार संसार में शांति हुई। देवता सुखी हुए और सुंदर सुदर्शन चक्र प्राप्त कर अति प्रसन्न विष्णु भी परम सुखी हो गए।

कथा का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

विष्णु या विष्णु अवतार शरीर को संचालित करने वाला जीवात्मा है, और परब्रह्म विष्णु वह अनिर्वचनीय परमात्मा है जिससे वह अवतरित होता है। वही शरीर के रूप में तीनों लोकों का पोषण करता है और विभिन्न देवताओं से भी करवाता है। इसी तरह शिव अवतार रुद्र मृत्यु के निकट शरीर को नष्ट करने वाली उसी जीवात्मा की अवस्था है। ब्रह्मा भी उसी जीवात्मा की मनरूपी सृष्टि का निमार्ण करने बाली अवस्था है। ब्रह्मा का कोई परब्रह्म रूप नहीं, क्योंकि वह विष्णु रूपी जीवात्मा से उत्पन्न मन ही है। इसीलिए कहा जाता है कि ब्रह्मा का जन्म विष्णु की नाभि से होता है। देवताओं से संचालित शरीर तो बहुत कोशिश करता है अज्ञानरूपी दुर्दांत राक्षसों के चंगुल से निकलने के लिए, पर सफल नहीं हो पाता। अंतिम सहारा जीवात्मारूपी विष्णु ही होता है। वह इसके लिए तांत्रिक विधि से शिवसाधना करता है। कैलाश सहस्रार चक्र है जहां परब्रह्म शिव का निवास है। उसके समीप मूलाधार चक्र है जो कुंड की तरह है। दोनों चक्रों को एकदूसरे के करीब इसलिए कहा है क्योंकि दोनों सीधे नाड़ी के माध्यम से आपस में जुड़े हुए होते हैं बेशक

भौतिक दूरी अन्य चक्रों के बजाए मूलाधार की अधिक है। कुंड शब्द शिवपुराण में गड्ढे या कुंड के लिए बहुत प्रयुक्त किया गया है। इसका मतलब है कि कुंडलिनी शब्द इसी कुंड से बना है। कुंड में सर्प कुंडली लगाकर बैठता है। कुंडल या कुण्डली वाला सर्प कुंडलिन हुआ और सर्पिणी कुंडलिनी हुई। वैसे ही जैसे धनिन का मतलब है धन वाला और धनिनी का मतलब है धन वाली। कुंडल कान में पहने जाने वाले छल्ले को कहते हैं। इसलिए कुंडलिन का अर्थ हुआ कान की बाली या छल्ले जैसी आकृति वाला। और कुंडलिनी का अर्थ हुआ कान की बाली या छल्ले जैसी आकृति वाली। कुंडल और कान के गड्ढे या कुंड के बीच संबंध है। इसी तरह कुंडलिनी और मूलाधार रूपी गड्ढे या कुंड के बीच भी संबंध है। कुंड में अग्नि स्थापन मतलब मूलाधार चक्र को प्राणवायु से क्रियाशील करना। उस कुंड में शिवसाधना मतलब मूलाधार चक्र पर इष्ट ध्यान। पार्थिव विधि से शिवपूजन किया मतलब मिट्टी का शिवलिंग बनाया। मनुष्य के शरीर को भी पार्थिव देह कहा जाता है। तो उसके अंग पार्थिव अंग हुए। मानसरोवर के फूल मतलब मन के या ध्यान के फूल। उन्होंने एक हज़ार फूल चढ़ाए मतलब हज़ार बार चक्रों की ऊर्जा को मूलाधार पर स्थापित किया और उसके साथ इष्ट ध्यान किया। मतलब ऊर्जा के एक हजार बार चक्कर लगाए। फूल यहां चक्र को कहा है। हजारवां फूल शिव ने चुरा लिया मतलब सहस्रार चक्र तक ऊर्जा नहीं जा पा रही थी। इससे विष्णु ने अपना नेत्र मतलब तीसरा नेत्र मतलब आज्ञा चक्र खोला और उसके ध्यान से अर्थात उस पर शांभवी मुद्रा में ध्यान देने से ऊर्जा सेंट्रल हुई। वह ऊर्जा पहले मूलाधार में पहुंची, वहां उससे प्रगाढ़ शिवध्यान लगा और फिर शिवध्यानचित्र के साथ सहस्रार में चली गई जहां उन्हें शिव के साक्षात दर्शन प्राप्त हुए मतलब उन्हें जागृति प्राप्त हो गई।

उपरोक्त कथा को दूसरे तरीके से भी समझ सकते हैं। एक पंखुड़ी को एक फूल कह सकते हैं क्योंकि कर्मकांड की पूजा के दौरान फूल की कुछ पंखुड़ियां चढ़ाना ही पूरा फूल चढ़ाना समझा जाता है। इससे फूलों की भी बचत होती है और एक ही फूल से बहुत से देवताओं का पूजन भी हो जाता है। सहस्रारचक्ररूपी कमलपुष्प में एक हजार पंखुड़ियां होती हैं। शिव के नाम से एक पुष्प चढ़ाने से मतलब शिव के ध्यान की किसी निश्चित मात्रा से सहस्रार की एक पंखुड़ी खिल रही थी। दरअसल जागृति पाने के लिए सभी चक्रों की पूरी ऊर्जा सहस्रार को अर्पित करनी होती है। जब सहस्रार एक पुष्प है और वह ध्यान से खिलता है तो स्वाभाविक है कि ध्यान भी एक पुष्प ही है। जैसे जल से भरे किसी बर्तन में जल डालने से उसका जल बढ़ता है, वैसे ही सहस्रार रूपी पुष्प में पुष्प जोड़ने से वह पुष्प बढ़ेगा ही। सहस्रार पूरा खिलने वाला था मतलब जागृति होने वाली थी पर उसकी अंतिम पंखुड़ी नहीं खिल पा रही थी। आज्ञाचक्ररूपी ध्यानपुष्प से वह भी खिल गई। कर्मकांड पूजा में ध्यान करते समय पुष्प को नमस्कार मुद्रा में बंद हाथों के अंदर रखा जाता है। ध्यान को देवता को समर्पित करने के रूप में उस अंजलिस्थित पुष्प को देवता के चरणों में अर्पित किया जाता है। सहस्रार को जब सभी चक्रों की समस्त ऊर्जा एकसाथ मिलती है, तभी यह जागृति के स्तर तक पहुंचता है। ऊर्जा को सीधे सहस्रार तक

पहुंचाना कठिन है, इसलिए इसे मूलाधार तक लाने का व्यावहारिक तरीका सामने लाया गया है, जहां से यह आसानी से सीधे सहस्रार तक पहुंच जाती है।

यह लेख पिछले और अगले लेख से जुड़ा है। उसमें कालचक्र के ऊपर भी अच्छी अनुसंधानात्मक चर्चा है। बाह्य कालचक्र में अद्वैत भाव आंतरिक कालचक्र के ध्यान की सहायता से बनता है। ऐसा इसलिए क्योंकि आंतरिक कालचक्र के अंदर कहीं भी असक्तिजनित और द्वैतजनित बंधन नहीं दिखता। सभी देवता, कर्मकाण्ड आदि सब आंतरिक कालचक्र के ही अंग है। हरेक बाह्य पदार्थ में उनके अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में मानवशरीरधारी देवताओं का ध्यान करना आंतरिक कालचक्र का ध्यान करना ही है। इससे आदमी धीरे धीरे पवित्र होकर गुप्त कालचक्र मतलब कुंडलिनी योगसाधना की और बढ़ता है। शरीरविज्ञान दर्शन देवसाधना को और ज्यादा मजबूती देता है क्योंकि यह वैज्ञानिक रूप से दर्शाता है कि देवताओं और साथ में मनुष्यों सहित सभी जीवों के शरीर के अंदर पूरा ब्रह्मांड मतलब बाह्य कालचक्र मौजूद है।

कुंडलिनी शक्ति ही अंधेरे से संपूर्ण सृष्टि की रचना करती है

गुप्त कालचक्र मुझे अवचेतन मन का खेल लगता है। आदमी के हरेक अंग से संबंधित सूचना उससे संबंधित चक्र में छुपी होती है। ये पिछले अनगिनत जन्मों की सूचनाएं होती हैं, क्योंकि सभी जीवों के शरीर, उनके क्रियाकलाप, उनसे जुड़ी भावनाएं और चक्र सभी लगभग एकजैसे ही होते हैं, मात्रा में कम ज्यादा का या रूपाकार का अंतर हो सकता है। चक्रों पर ध्यान करने से वे सूचनाएं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में प्रकट होकर मिटती रहती हैं। जब स्थूल मन की सफाई हो जाती है, तब आदमी सूक्ष्म मन की सफाई के लिए खुद ही चक्रसाधना की ओर मुड़ता है। जैसे स्थूल मन की अवस्था समय के साथ प्रतिपल बदलती रहती है, वैसे ही सूक्ष्म अवचेतन मन की भी बदलती रहती है, क्योंकि सूक्ष्म मन भी स्थूल मन का ही प्रतिबिंब है, पर वह हमें नजर नहीं आता। इसीलिए इसे गुप्त कालचक्र कहते हैं। मतलब कि अगर अवचेतन मन पूरा साफ भी कर लिया तो इसकी कोई गारंटी नहीं कि यह फिर गंदा नहीं होगा। सभी चक्रों का ऊर्जा स्तर बदलता महसूस होता रहेगा चक्रसाधक को। काल के थपेड़ों से कुछ नहीं बच सकता। इसलिए भलाई इसी में है कि जो है, उसे स्वीकार करते रहो हर स्थिति में बराबर और अप्रभावित से बने रहते हुए। यही वैकल्पिक कालचक्र है। यही गुप्तकालचक्र साधना का मुख्य उद्देश्य लगता है मुझे।

कुंडलिनी शक्ति सृष्टि का निर्माण करती है, जो यह कहा जाता है इसका यह अर्थ नहीं लगता कि वह अंतरिक्ष के ग्रह तारों आदि भौतिक और स्थूल पिंडों का निर्माण करती है। बल्कि ज्यादा युक्तियुक्त तो यह अर्थ लगता है कि वह प्रजनक संभोगशक्ति के जैसी है जो एक बच्चे को जन्म देती है और उसके शरीर और मनमस्तिष्क के रूप में संपूर्ण सृष्टि का निर्माण करती है। हालांकि पहले वाली उक्ति भी अप्रत्यक्ष रूप से सही हो सकती है, क्योंकि जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है, पर दूसरी उक्ति तो प्रत्यक्ष, व्यवहारिक व स्पष्ट रूप से सत्य दिखती है।

कई लोग बोल सकते हैं कि संभोग शक्ति तो वंश परंपरा को बढ़ाने के लिए है, उसमें कुंडलिनी कहां से आ गई। आदमी तो कुछ भी मायने निकाल सकता है उस शक्ति के। अगर उसका असली उद्देश्य जानना हो तो पशु को देखना चाहिए। ये अपनी सोच या लक्ष्य के हिसाब से नहीं बल्कि कुदरती प्रेरणा या इंस्टिंक्ट अर्थात स्वाभाविक प्रवृत्ति से ज्यादा चलते हैं। उनके मन में संतानोत्पत्ति का उद्देश्य नहीं होता संभोग को लेकर। वे तो अज्ञान के अंधेरे में संकुचित मन को विस्तार देने के लिए ही संभोग के लिए प्रेरित होते हैं, वह भी तब जब प्राकृतिक अनुकूल परिस्थितियां उन्हें इसके लिए प्रेरित करे, ऐसे तो इसके लिए भी अपनेआप उनमें लालसा पैदा नहीं होती। एक भैंस और भैंसा तभी इसके लिए प्रेरित होंगे जब भैंस मद में अर्थात हीट में होगी जो महीने में एक या दो दिन के लिए आती है। गर्मियों के मौसम में तो वह हीट आना भी बंद हो जाता है। अन्य समय तो दोनों साथ में रहते हुए भी संभोग नहीं करेंगे। आदमी विकसित प्राणी है। वह कुदरती

नियमों से लाभ लेना जानता है। तंत्रयोगी एक कदम और आगे है। वह अंधेरे में संकुचित मन की एक ध्यानचित्र के रूप में छोटी सी लौ जलाता है। फिर वह उसे संभोगसहायित योग से इतना ज्यादा बढ़ाता है कि वह जागृत हो जाती है। यही कुंडलिनी जागरण है। अब चाहे ध्यानचित्र के रूप में संकुचित मन को कुंडलिनी कहो या अंधेरे में संकुचित मन को। बात एक ही है क्योंकि वही अंधेरा ध्यानसाधना से विकसित होकर ध्यानचित्र बन जाता है। जो संभोग शक्ति उसे विकसित होने का बल देती है, वह मूलाधार मतलब अंधेरे कुंड में रहती है, इसीलिए इसका नाम कुंडलिनी है। मतलब ध्यानचित्र का कुंडलिनी नाम तभी पड़ा जब उसे संभोग शक्ति अर्थात वीर्यशक्ति का बल मिला। मतलब कुंडलिनी शब्द ही तांत्रिक है। आम आदमी अंधेरे में या अनगिनत क्षुद्र और हल्के विचारों में संकुचित मन के साथ सीधे ही संभोग करता है, जिससे अनगिनत विचारों में वह शक्ति बंट जाती है। इससे उसे दुनियावी विस्तार या तरक्की तो मिल सकती है, पर जागृति के लाभ कम ही मिलते हैं।

जब शक्ति मूलाधाररूपी कुंड के अंधेरे में घुसती है, तभी जीव संभोग की ओर आकृष्ट होता है। हमेशा पूर्ण ज्ञान के प्रकाश में रहने वाले व्यक्ति का तो संभोग का मन ही नहीं करता। मेरे एक खानेपीने वाले एक वरिष्ठ अनुभवी मित्र थे जिन्होंने मुझे एकबार कहा था कि अगर मैं मांसाहार नहीं करूंगा तो संभोग कैसे कर पाऊंगा। मैं उस बात को मन से नहीं मान पाया था। आज मैं उनकी बात में छिपे तंत्र दर्शन को समझ पा रहा हूं। अंधेरा सिर्फ़ खानेपीने से ही पैदा नहीं होता। दुनियादारी में आसक्ति से कर्मशील रहते हुए भी पैदा होता है। मुझे लगता है कि शरीर की बनावट ही ऐसी है कि मस्तिष्क या मन का अंधेरा जैसे जैसे बढ़ता है, वैसे वैसे ही शक्ति नीचे जाती है। सबसे ज्यादा या घुप्प अंधेरे का मतलब है कि शक्ति मूलाधार पर इकट्ठी हो गई है। यह रक्तसंचार ही है जो कुदरतन नीचे की ओर इकट्ठा होता रहता है। मूलाधार तक पहुंचकर शक्ति फिर पीठ से होकर सीधी मस्तिष्क को चढ़ जाती है। मूलाधार पर शक्ति के पहुंचने से स्वाभाविक है कि वहां के यौनांग क्रियाशील हो जाएंगे। कई संयम रखकर उस शक्ति को वापिस ऊपर जाने का मौका देते हैं। कई तांत्रिक विधि से उसे बढ़ा कर फिर बढ़ी हुई मात्रा को ऊपर चढ़ाते हैं, और कई गिरा देते हैं। शक्ति के गिरने से मूलाधार में शक्ति फिर इकट्ठी होने लगती है जिसमें पहले से ज्यादा समय लग जाता है। अच्छी खुराक से वह जल्दी इकट्ठी होती है पर उसमें पापकर्म भी शामिल हो सकता है। साथ में, भोजन को पचाने और उसे शरीर में लगाने में भी ऊर्जा खर्च होती है, मतलब कुल मिलाकर प्राण ऊर्जा की हानि ही होती है। फिर ऐसे ही होगा कि आगे दौड़ और पीछे चौड़। इन साधारण लोकोक्तियों के बड़े गहन अर्थ होते हैं। चौड़ मतलब कुंडलिनी सर्पिणी का कुंडल। मतलब शक्ति पाप के अंधेरे के रूप में सो जाती है, बेशक उसे उस अंधेरे की शक्ति से ही ऊपर चढ़ाया गया हो। पर मुझे लगता है कि उतना पाप खाने पीने से नहीं लगता जितना दुनिया में आसक्तिपूर्ण व्यवहार से लगता है। इसीलिए तो शिव भूतों की तरह खाने पीने वाले दिखते हुए भी मस्तमलंग, निस्संग और निष्पाप बने हुए विचरते रहते हैं। पर जब आदमी का मन या आत्मा इतना

साफ हो जाएगा कि उसमें अंधेरा होगा ही नहीं बेशक शक्ति मूलाधार को गई हुई हो, तब क्या होगा। शायद तब बिना संभोग के उसकी शक्ति ऐसे ही घूमती रहेगी। उसे यौनोन्माद भी होगा, इरेक्शन भी होगा, पर वह भौतिक संभोग के प्रति ज्यादा प्रेरित नहीं होगा, क्योंकि उसे महसूस होगा कि उससे शक्ति की हानि है, बेशक कितनी ही सावधानी क्यों न बरती जाए। मुलाधार में शक्ति के समय उसके मन में किसी कामुक स्त्री का चित्र छा सकता है, और सहस्रार में शक्ति के समय किसी गुरु या आध्यात्मिक व्यक्ति या प्रेमी पुरुष का। पर वह दोनों से ही अनासक्त रहते हुए अपने काम में व्यस्त रहेगा, जिससे वह शक्ति उसमें झूलती रहेगी और वह हमेशा आनंद में डूबा रहेगा।

जब ऊर्जा मूलाधार को जाएगी तो मास्तिष्क में तो उसकी कमी पड़ेगी ही जैसे जब बारिश का पानी जमीन में रिसेगा, तो पानी से भरे गड्ढे सूखेंगे ही। इससे मन में कुछ न कुछ अंधेरा तो छाएगा ही, बेशक आदमी कितना ही ज्यादा शुद्ध और सिद्ध क्यों न बन गया हो। विकारशील दुनिया में इतना सिद्ध कोई नहीं हो सकता जिसका मन मस्तिष्क हमेशा उजाले से भरा रहता हो। आम सांसारिक आदमी के मन का उजाला तो ऊर्जा के सहारे ही है। बिना भौतिक ऊर्जा के उजाला रखने वाला तो कोई अति विरला साधु संन्यासी ही हो सकता है। फिर भी पूरा उजाला तो पूर्ण मुक्ति की अवस्था में में ही होना संभव है, जो शरीर के रहते संभव नहीं है। विकारी शरीर के साथ जुड़े होने पर कोई पूरी तरह कैसे निर्विकार रह सकता है। बैलगाड़ी में बैठने वाला हिचकोलों से कैसे बच सकता है। जो बिना संभोग के ही मन में उजाला बना कर रखते हैं, उन्होंने संभोग से इतर सात्त्विक तकनीकों में महारत हासिल कर ली होती है, जिनसे मूलाधार की ऊर्जा पीठ से ऊपर चढ़ती रहती है। यह सांसों पर ध्यान, शरीर पर ध्यान, वर्तमान पर ध्यान, चक्रों पर साधारण या बीजमंत्रो के साथ ध्यान, विपश्यना, देवपुजा आदि ही हैं। उदाहरण के लिए चक्रों पर बीजमंत्रों के ध्यान से प्राण खुलते हैं, सांसें खुलती हैं, चेतना और उससे मन विचारों की चमक बढ़ती है, बुद्धि बढ़ती है, और मूलाधार पर ऊपर की तरफ संकुचन बल लगता है। चमक चाहे शरीर के भीतर हो या बाहर, ऊर्जा से ही आती है।

मानसिक अंधेरा भी दो किस्म का होता है। एक खाने पीने, शारीरिक श्रम, नींद, आराम आदि से उत्पन्न अंधेरा होता है। उसमें शरीर में ऊर्जा तो बहुत होती है, पर मन में उसकी कमी होती है, क्योंकि हिंसा, नशे आदि से और दुनियावी आसक्ति के भ्रम के बाद अकेलेपन से मन की चेतना दबी हुई होती है। मतलब साफ़ है कि जब मास्तिष्क में नहीं, तब वह मूलाधार के दायरे में केंद्रित होती है। शरीर के दो ही मुख्य दायरे हैं। एक सहस्रार का तो दूसरा मूलाधार का। ऊर्जा एक दायरे में नहीं तो स्वाभाविक है कि दूसरे दायरे में होगी। अगर सिक्के का हैड नहीं आया तो टेल ही आएगा, अन्य कोई विकल्प नहीं। ऐसी अवस्था में तांत्रिक संभोग से लाभ मिलता है। दूसरी किस्म का अंधेरा वह होता है जिसमें पूरे शरीर में ऊर्जा की कमी होती है। यह तो रोग जैसी या अवसाद जैसी या थकावट जैसी या कमजोरी जैसी अवस्था होती है। इसीलिए इसमें संभोग का मन नहीं करता। अगर

करेगा तो बीमार पड़ सकता है, क्योंकि एक तो पहले ही शरीर में ऊर्जा की कमी होती है, दूसरा ऊपर से संभोग में भी ऊर्जा को व्यय कर रहा है। सबको पता है कि घर की छत की टंकी में पानी जीवन के कई काम संपन्न करवाता है। पर पानी को छत तक चढ़ाने के लिए भी ऊर्जा चाहिए और भूमिगत टैंक में भी पानी होना चाहिए। अगर सूखे टैंक में या कम वोल्टेज में पंप चलाएंगे, तो पंप तो खराब होगा ही। वैसे तो तांत्रिक संभोग का भी संत वाला शांत तरीका भी है, जिससे उसमें कम से कम ऊर्जा की खपत होती है, और ज्यादा से ज्यादा ऊर्जा ऊपर चढ़ती है। मस्तिष्क में ऊर्जा होना सबसे ज्यादा जरूरी है, क्योंकि वही पूरे शरीर को नियंत्रित करता है। नीचे के चक्रों में, विशेषकर सबसे नीचे के दो चक्रों में ऊर्जा कुछ कम भी रहे तो भी ज्यादा नुकसान नहीं।

कई लोग बोल सकते हैं कि शून्य अंधेरे से विचाररूपी सृष्टि कैसे बनती है। अंधेरे का मतलब ही सूक्ष्म या अव्यक्त या छुपी हुई सृष्टि है। अंधेरा वास्तव में शून्य नहीं होता जैसा अक्सर माना जाता है। असली शून्य तो बौद्धों का शून्य मतलब परब्रह्म परमात्मा ही होता है। सृष्टि बनने के लिए दो चीजें ही चाहिए, अंधेरा और शक्ति अर्थात ऊर्जा। अगर ऊर्जा नहीं है तो अंधेरा सृष्टि के रूप में व्यक्त नहीं हो पाएगा। जीवात्मा के रूप में जो अंधेरा होता है, उसी को सृष्टि के रूप में प्रकट करने के लिए ही उसे शरीर मिलता है, जिससे ऊर्जा मिलती है। यह अलग बात है कि वह योगसाधना से उस सृष्टि को शून्य कर पाएगा या उसी अंधेरे में छुपा देगा या उससे भी ज्यादा आसक्तिमय दुनियादारी से अपने को उससे भी ज्यादा अंधेरे में बदल देगा, जिसके लिए उसे फिर से नया जन्म और नया शरीर प्राप्त करना पड़ेगा। नया शरीर कर्मों के अनुसार मिलेगा। अच्छे कर्म हुए तो मनुष्य शरीर फिर मिल जाएगा जिससे सृष्टि को शून्य करने का मौका पुनः मिल जाएगा। अगर कर्म बुरे हुए तो किसी जानवर का शरीर मिलने से अंधेरे का बोझ कुछ कम तो हो जाएगा पर शून्य नहीं हो पाएगा, क्योंकि जानवर योग नहीं कर सकते। इस तरह पता नहीं फिर कब मौका मिलेगा। यही वेदवाणी कहती है।

वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध कर चुके हैं कि स्थूल भौतिक सृष्टि में भी ऐसा ही होता है। उन्होंने पाया कि अंतरिक्ष में हर जगह वे मूलभूत कण या तरंगें क्वांटम फ्लैकचुएशन के रूप में मौजूद हैं जिनसे सृष्टि का निर्माण होता है। क्योंकि वे बहुत सूक्ष्म और अव्यक्त जैसे हैं इसलिए पकड़ में न आने से अंधेरे के रूप में महसूस होते हैं। उदाहरण के लिए डार्क एनर्जी, डार्क मैटर यह सब अंधेरा ही तो है। जब कहीं से उन्हें ऊर्जा मिलती है तो उनका स्पंदन बढ़ने लगता है जिससे सृष्टि का या स्थूल पदार्थों का निर्माण शुरु हो जाता है। विचारों के लिए तो यह ऊर्जा शरीर से मिलती है पर स्थूल सृष्टि के लिए कहां से मिलती है। इसके बारे में अभी स्पष्टता और एकमतता नहीं दिखती। कुछ कहते हैं कि ब्लैकहोल आदि पिंडों के आपस में टकराने से जो गुरुत्वाकर्षण तरंगें आदि अंतरिक्ष में हलचलें पैदा होती हैं, उसीसे वह ऊर्जा मिलती है। जहां पर अंतरिक्ष में ज्यादा हलचल है, वहां ज्यादा तारों का निर्माण होता पाया गया है। पर सृष्टि की शुरुआत में अंतरिक्ष की सबसे पहली

हलचल के लिए ऊर्जा कहां से आई, यह पता नहीं है। शास्त्र तो कहते हैं कि ओम ॐ की आवाज निकली जिससे सृष्टि का निर्माण शुरु हुआ। ओम की ध्वनि एक अंतरिक्ष की तरंग या हलचल ही है। हो सकता है कि उसी ने आगे की हलचलों और निर्माणों का सिलसिला शुरु किया हो। ॐ ध्वनि रूपी हलचल के लिए ऊर्जा कहां से आई, यह प्रश्न अनुत्तरित है। यह शायद परमात्मा की अपनी अचिंत्य शक्ति है, जिसका उत्तर योग के अतिरिक्त विज्ञान से मिल भी नहीं सकता। अगर शक्ति नहीं होगी तो शिव शव की तरह अंधेरा बना रहेगा, व्यष्टि शरीर के अंदर भी और समष्टि शरीर मतलब स्थूल भौतिक सृष्टि में भी।

कुंडलिनी शक्ति कभी नहीं सोती

शरीर में शक्ति गुप्त रहकर सब काम करती है। यह भोजन का पाचन करती है, दिल को धड़काती है, और भी शरीर के छोटे बड़े अनगिनत काम करती है। यह सोई हुई नहीं हो सकती। अगर यह सोई होती तो इतने काम कैसे करती। शायद हम उसे सोई हुई इसलिए कहते हैं क्योंकि आदमी का शरीर गहरी नींद में होने पर भी अनगिनत काम करता रहता है जीवन के, अन्यथा मर न जाता क्या। उससे एक ही काम नहीं होता बस, चेतन विचारों को पैदा करना। इसी तरह सोई हुई शक्ति का मतलब है कि उससे शरीर के सभी काम हो रहे हैं, पर जागृत विचार पैदा नहीं हो रहे। इसे अर्धसुशुप्त अवस्था कह सकते हैं क्योंकि साधारण या धुंधले विचार तो पैदा हो ही रहे हैं। हल्के विचार तो आदमी को नींद में भी आते हैं स्वप्न के रूप में। शक्ति को जगाने का मतलब है उसे सबसे ज्यादा अभिव्यक्त रूप में लाना और वह है कुंडलिनी जागरण। जैसे आदमी के जागने के अनगिनत स्तर हो सकते हैं पर असली जागृति वही है जिसमें वह सबसे ज्यादा अभिव्यक्त होता है, जो कुंडलिनी जागरण ही है। अन्य अवस्थाओं को सुषुप्ति भी कहा जा सकता है। शास्त्रों में अनेक जगह आता है कि यह दुनिया स्वप्न की तरह है। हम जो साधारण जीवन जी रहे हैं, वह स्वप्न ही है, मतलब हम नींद में हैं। असली जागना तो कुंडलिनी जागरण की अवस्था है। सहस्रार से नीचे सब कुंड ही है, मूलाधार सबसे बड़ा कुंड है। क्योंकि अन्य कुंडों से थोड़ा बहुत शक्ति का रिसाव सहस्रार को होता रहता है इसलिए वहां घुप्प अंधेरा नहीं होता। पर मूलाधार में कुंडलिनी होने पर सबसे ज्यादा अंधेरा होता है, क्योंकि यह सहस्रार से सबसे ज्यादा दूर है। आदमी में ही यह ऊर्जा का घूमना खास महत्त्व का है, क्योंकि वह खड़ा होकर चलता है, और मस्तिष्क तक रक्त को पहुंचाने के लिए विशेष ताकत चाहिए होती है। योग से या शारीरिक क्रियाशीलता से जब चक्र पर शक्ति पहुंचने से वहां मांसपेशियों का संकुचन सा होता है, तब वहां खुराक की खपत बढ़ जाती है, इससे वहां खुद ही रक्तसंचार बढ़ जाता है। इसीलिए कहते हैं कि शक्ति रक्तसंचार को नियंत्रित करती है। वैसे सीधे तौर पर वह मांसपेशियों के संकुचन और प्रसारण की गति को नियंत्रित करती है, जिससे रक्तसंचार खुद ही नियंत्रित हो जाता है। पशुओं में पीठ सीधी होने से ऐसा नहीं होता। क्योंकि बंदर, लंगूर , चिंपांजी आदि भी काफी सीधे हो जाते हैं, इसीलिए वे भी चंचल होते हैं ताकि शक्ति बहती रहे व पूरे शरीर में रक्तसंचार सुचारु रूप से चलता रहे।

शरीरविज्ञान के अनुसार शरीर को सिर्फ नर्व फाइबर ही नियंत्रित नहीं करते, बल्कि हार्मोन नामक जैवरसायन भी नियंत्रित करते हैं और अंगों का कुछ अपना स्थानीय नियंत्रण भी होता है। पर नाड़ियां तो पूरे शरीर को सुचारु कर देती हैं। ऐसा तो कभी नहीं सुना गया कि फलां योगी में नाड़ी चालन से कुछ अंग तो दुरस्त हो गए, पर कुछ

अंगों पर विशेषकर हार्मोन से नियंत्रित होने वाले अंगों पर कोई असर नहीं पड़ा। इससे तो यह भी लगता है कि नर्व फाइबर को नाड़ियां नहीं कहा गया है। कहते हैं कि नर्व फाइबर में विद्युत ऊर्जा और नाड़ी में प्राण ऊर्जा या शक्ति प्रवाहित होती है। वैसे जब चक्र में हलचल होगी तो वहां हार्मोन बनाने वाले सेल्स भी सक्रिय होंगे और स्थानीय प्रणालियां भी सक्रिय होंगी ही।

शक्ति और ऊर्जा में काफी समानताएं हैं, पर दोनों अलग अलग हैं। ऊर्जा जड़ है, जबकि शक्ति शिव की सन्निधि से चेतन है। ऊर्जा तो किसी भी जड़ चीज या मशीन आदि में हो सकती है, पर शक्ति चेतन प्राणी में ही हो सकती है। कुंडलिनी योग से मूलाधार से ऊपर चढ़ने वाली संभोग आधारित ऊर्जा को इसलिए शक्ति कहा जाता है क्योंकि इससे समाधि जैसी लगती है। साफ शब्दों में कहें तो इससे समाधि चित्र या कुंडलिनी चित्र पुष्ट होता है। और साधारण शब्दों में कहें तो यह परमात्मा की तरफ ले जाती है। क्योंकि इससे दिमाग को ऊर्जा मिलती है, इसलिए अवचेतन मन में दबी ऊर्जा बाहर निकलकर या अभिव्यक्त होकर नष्ट हो जाती है। हालांकि ऐसा शारीरिक क्रियाशीलता से भी होता है, पर इससे भी शक्ति उसी रास्ते से चलती है। मतलब कि शारीरिक हलचल से मूलाधार पर शक्ति इकट्ठी होती रहती है और पीठ से ऊपर चढ़ती रहती है। इसीलिए शरीर से मेहनती लोगों के लिए भी कुंडलिनी योग बहुत फायदेमंद होता है।

कुंडलिनी तंत्र पारलौकिक विद्याओं का मूल आधार है

कामयाब शिक्षा नीति यही है कि उसमें छात्र अपनी मनपसंद के कोई भी विषय चुन सके। विज्ञान का छात्र अध्यात्म, संगीत , योग आदि विषय रख सके और अध्यात्म आदि का छात्र विज्ञान का। इससे आदमी का संपूर्ण विकास होता है, और उसकी हॉबी भी पूरी होती है। हॉबी पूरी होने से वह मुख्य विषय भी अच्छे से पढ़ता है। आजकल ऐसी ही शिक्षा नीति का प्रचलन बढ़ रहा है। मेरा व्यवसाय विज्ञान से संबंधित है पर अध्यात्म का शौक लेखन से पूरा करता हूं।

किसी ने क्वोरा पर प्रश्न पूछा कि क्या आत्मा बिना शरीर के भी सोच सकती है और विकसित हो सकती है। मैंने कहा कि बिल्कुल ऐसा हो सकता है। जब मुझे अपने दिवंगत संबंधी की जीवात्मा का साक्षात्कार हुआ था, तो उसने कहा था कि उसे लग ही नहीं रहा था कि वह मर गया था। मुझे भी बिल्कुल नहीं लग रहा था कि वे व्यक्ति कुछ दिनों पहले मर गए थे, बल्कि ऐसा लग रहा था कि मेरे सामने पहले की तरह स्पष्ट जिंदा थे। यह अलग बात है कि जब मुझे किन्हीं पुरानी स्मृतियों से उनके मरने का अहसास हुआ तो वे उसी पल ओझल भी हो गए। साथ में उसने यह पूछा था कि क्या उसकी वही अवस्था ही मुक्ति की परमावस्था थी। पहली बात, अगर शरीररहित आत्मा में सोचने समझने की शक्ति न होती तो वह ऐसी बातें न करती और ऐसा न पूछती। साथ में संभावित संतुष्टिजनक उत्तर पाकर एकदम से गायब भी नहीं हुई होती। इसका मतलब है कि शरीररहित आत्मा में शारीरिक मन और इंद्रियों के सभी गुण होते हैं, और वे वैसे ही काम करते हैं, जैसे शरीर में। पर शरीर की तरह नहीं। मतलब अदृष्य आत्मा द्वारा ही इंद्रियों द्वारा किए जाने वाले सारे काम किए जाते हैं। आत्मा द्वारा आत्मा की ही मदद से सुना जाता है, देखा जाता है, सोचा जाता है आदि आदि। शायद आत्मा द्वारा दूसरी आत्मा से जुड़कर ही उसके अनुभव सीधे महसूस किए जाते हैं। वह आत्मा मेरी आत्मा से जुड़कर कुछ पूछ रही थी, पर शब्द बोलने वाला कोई नहीं दिख रहा था, न ही शब्द कहीं बाहर से आ रहे थे। शब्द महसूस हो रहे थे पर आत्मा की तरह गहरे और अदृष्य। उनकी अदृष्य आत्मा उनके अदृष्य शब्दों के साथ मुझे अपनी आत्मा से महसूस हो रही थी और मैं भी किन्हीं बाहरी स्थूल शब्दों से जवाब नहीं दे रहा था बल्कि मेरी आत्मा ही शब्द बनकर उनकी आत्मा को बता रही थी। इसका विस्तृत वर्णन मैंने एक पुरानी पोस्ट में किया है। मैं उस आत्मा से जुड़ाव महसूस कर रहा था, इसीसे वह मेरे द्वारा सोची हुई बात को महसूस कर रही थी। सोचना भी साधारण नहीं था बल्कि दिल-आत्मा की गहराई वाली सोच थी। शरीर तो आत्मा को इसलिए मिलता है ताकि वह भौतिक संसार को शरीर के माध्यम से सीधे ही महसूस कर सके, किसी अन्य आत्मा से जुड़ाव की अपेक्षा न रहे। हो सकता है कि आत्मा सीधे भी भौतिक पदार्थों से जुड़कर उन्हें महसूस करती हो, जैसे कि

भूतिया महल आदि की घटनाओं से देखने को मिलता है। हालांकि यह जुड़ाव भौतिक शरीर के जुड़ाव से अलग और कमतर होता होगा, क्योंकि अगर एकजैसा जुड़ाव होता तो आत्मा कष्टों और बिमारियों से भरा शरीर धारण ही क्यों करती। जो आत्मा ने कहा कि वह तो मरी ही नहीं, यह सही है क्योंकि मरता कुछ भी नहीं है। अगर कोई कहे कि केवल शरीर मरता है, आत्मा नहीं, वह भी गलत है, क्योंकि शरीर भी नहीं मरता। दरअसल भौतिक शरीर का अस्तित्व भी मन में ही होता है, कहीं बाहर नहीं। शरीर के रूप आकार का जो चित्र मन में बसा होता है, वह कैसे नष्ट हो सकता है। हां, यह चित्र कभी स्थूल तो कभी सूक्ष्म बन सकता है, पर रहता हमेशा है। जैसे कमरे का बल्ब बुझने से थोड़ी देर के लिए गहरा अंधेरा महसूस होता, पर फिर कमरे में थोड़ा दिखने लगता है, ऐसा ही मरने के बाद होता है। पिछले अनगिनत जन्मों के हमारे जितने भी शरीर हुए हैं, उन सभी के चित्र हमारे अवचेतन मन में दर्ज हैं, मतलब अब तक हमारा कोई भी शरीर नहीं मरा है। इसीलिए मुझे उन परिचित व्यक्ति की आत्मा में उनका पिछला सारा बायोडाटा महसूस हुआ, मतलब उसका औसत रूप। उनका उस जन्म का शरीर तो उस सूक्ष्म डेटाबेस का एक छोटा सा अंश था। इसीलिए मैं उन्हें पूरा पहचान पा रहा था क्योंकि उस डेटाबेस की छाप वर्तमान के शरीर पर भी होती है। उनका वह आत्मरूप उनके उस जन्म के शरीर जैसा भी था और उससे भी कहीं ज्यादा। मतलब कि शरीर नष्ट होने से कोई मरता नहीं है पर अपने मूल सूक्ष्म रूप में आ जाता है जिसे अन्य स्थूल शरीर पकड़ नहीं सकते। सूक्ष्म शरीर अपने आप में पूर्ण शरीर है। स्थूल शरीर तो उसे स्थूलता प्रदान करने को मिलता है। जो स्थूल शरीर कर सकता है, वह सब सूक्ष्म शरीर भी कर सकता है। आकार व रफ्तार में अंतर हो सकता है। फिर बोलते हैं कि मनुष्य के मरने पर उसे किसी भी जीव के शरीर के रूप में जन्म मिल सकता है। यह भी सही नहीं लगता। जब कोई मरा ही नहीं है तो जन्म कैसे होगा। शरीर भी दरअसल मन में ही बसा होता है। साथ में, आदमी के इलावा अन्य जानवर अपने शरीर या चेहरे आदि को दर्पण में नहीं देखते रहते। मतलब उनको तो अपनी शक्ल सूरत का भान ही नहीं होता। वे अपने जैसे औरों को देखकर केवल अंदाजा ही लगा सकते हैं अपने बारे में, पर इतना उनमें दिमाग ही नहीं होता। उसके अंदर मन उसी आदमी का होता है जिसका उसके रूप में पुनर्जन्म हुआ। जब मन ही नहीं बदला तो कैसा पुनर्जन्म।

उन दिवंगत आत्मा ने मेरे साथ कई बार संपर्क बनाने की कोशिश की। कई बार उस दौरान मेरे पेट से पानी जैसा गले को आता था और दम घुटता सा लगता था। शायद ऐसा नाड़ी में कुंडलिनी शक्ति के ऊपर चढ़ने से होता था। फिर मैं उन्हें प्रेम और आदरपूर्वक बातें समझाता और दुबारा न आने को कहता। ऐसा लगता कि वह जीवात्मा सब सुनती और बात मानती। दरअसल अन्य आत्मा से जुड़ने के लिए सर्वोत्तम स्वास्थ्य और गहरा

योगाभ्यास जरूरी है, जैसा आम जीवन में हमेशा करना संभव नहीं है। प्रारंभ में मैं तांत्रिक कुंडलिनी योगाभ्यास करता था, जिससे ही शायद वह शक्ति प्राप्त हुई थी। गृहस्थ जीवन में तांत्रिक योगाभ्यास भी हमेशा नहीं किया जा सकता। हो सकता है कि हमारे शरीर से बहुत सी आत्माएं जुड़ी रहती हों और दुनिया की जानकारियां लेती रहती हों, पर हमें पता ही नहीं चलता। मुझे तो यह भी लगता है कि वे आत्मा मुझे जगाने के लिए आती थी ताकि मेरे महत्त्वपूर्ण अंगों में ऑक्सीजन का स्तर खतरनाक स्तर तक न गिर जाए। मुझे स्पॉन्डिलाइटिस इनफ्लेमेशन की वजह से कई बार गेस्ट्रिक रिफलक्स बढ़ जाता था। वे आत्मा परोपकारी थीं और मेरे प्रति तो बहुत हितैषी थीं, जीवन काल से लेकर ही।

शास्त्रों में भी सूक्ष्म शरीर का अस्तित्व माना गया है। इसमें मन, बुद्धि, सभी प्राण और सभी इंद्रियां होती हैं। मतलब यह स्थूल शरीर की तरह सभी काम कर सकता है और सभी फल भोग सकता है, पर सूक्ष्म रूप में। इसका मतलब है कि स्थूल संसार से भी कहीं ज्यादा विस्तृत एक सूक्ष्म संसार है, जिसमें सभी कुछ स्थूल संसार की तरह घटित होता रहता है, पर सूक्ष्म रूप में। महान तंत्र योगियों को ही उसका आभास होता है।

कुंडलिनी योग ध्यान साधना से आदमी आस्तिक बनता है

दोस्तों, मैं हाल ही में एक ब्लॉगपोस्ट पढ़ रहा था जो मुझे अच्छी लगी। हालांकि उसमें मुझे अपनी टिप्पणी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं मिली। उसमें लिखा था कि सिर्फ़ हिंदु धर्म ही आस्तिक धर्म है, अन्य सब नास्तिक हैं। संस्कृत शब्द आस्तिक 'अस्ति' शब्द से बना है, जिसका मतलब 'है' होता है। मतलब जो 'है' अर्थात नामरूप से रहित सत्ता मात्र को मानता है, वह आस्तिक है। 'न अस्ति अर्थात नास्ति' का मतलब 'नहीं है' है। जो 'नहीं है' को मानता है, वह नास्तिक हुआ। वैसे भी नामरूप का आस्तित्व तो है ही नहीं। बर्फ से जल बनता है, जल से भाप, भाप से बादल और उससे पुनः जल बनता है। इतने नाम और रूप बदले पर रहता सब में जल ही है। अगर हम इस कार्य कारण की परंपरा को पीछे से पीछे बढ़ाते जाएं तो सबकुछ सूक्ष्म से सूक्ष्म होता जाता है, और अंत में आकाश ही बचता है। मतलब सबकुछ आकाश या शून्य या आत्मा रूप ही है। शून्य भी अभाव या अंधकारनुमा नहीं बल्कि अनिर्वचनीय रूप वाला शून्य। इसीलिए हिंदू धर्म पलायनवादी जैसा भी लगता है, पर असल में ऐसा नहीं है। असली आस्तिक वह नहीं जो नामरूप को बिल्कुल नकारता है। बल्कि असली आस्तिक वह है जो सच्चे व असली अस्तित्व को नामरूप वाले झूठे और नकली अस्तित्व से ऊपर माने। अगर नामरूप को बिल्कुल नहीं मानेंगे तो दुनियादारी कैसे चलेगी, कैसे मानव सभ्यता का विकास होगा। ऐसे में तो सभी विरक्त संन्यासी जैसे हो जाएंगे। सारा विज्ञान नामरूप के आश्रित है। किसी वस्तु को नामरूप नहीं देंगे तो उसे समझेंगे कैसे और कैसे उसे वश में करेंगे। नामरूप न मानने से विज्ञान संभव ही नहीं होगा। दूसरी ओर, अन्य धर्म भी पूरी तरह से नास्तिक नहीं हैं। असली नास्तिक वह नहीं है जो सिर्फ नामरूप को ही माने और शुद्ध अस्तित्व को नकारे। बल्कि असली नास्तिक वह है जो नामरूप के अस्तित्व को शुद्ध और असली अस्तित्व से ज्यादा महत्त्व दे। नामरूप के अस्तित्व को मानते समय शुद्ध अस्तित्व तो खुद ही मानने में आ जाता है, क्योंकि 'है' तो सबके साथ लगता है। शुद्ध 'है' का अस्तित्व और नामरूप का अस्तित्व एकदूसरे के आश्रित हैं, और दोनों एकदूसरे के साथ रहते हैं। ये एक दूसरे से अलग नहीं रह सकते। फर्क यह है कि मन में किसे ज्यादा महत्त्व दिया जाता है। मतलब मन की धारणा का ही अंतर है। आस्तिक की दुनियादारी भी वैसी ही चलती है जैसी नास्तिक की। फर्क दोनों की विचारधारा या मन की धारणा का होता है। सिर्फ मन की धारणा के बदलने से ही आकाश-पाताल के जैसा विपरीत असर पैदा हो जाता है। मतलब साफ है कि कोई भी पूरा आस्तिक या पूरा नास्तिक नहीं हो सकता। व्यवहार में सब मिश्रित स्वभाव के होते हैं। मन की धारणा को आस्तिक बनाए रखने के लिए ही विभिन्न धर्मशास्त्र बने हैं। अध्यात्म केवल मन की धारणा को सुधारता है। दुनियादारी तो विज्ञान से ही चलेगी। मन की धारणा का बनना और सुधरना एक सहज प्रवृत्ति है, वैसे ही जैसे

आदमी सुख के अनुभव की तरफ खुद ही खिंचा चला जाता है। इसमें मुझे धर्म का बहुत ज्यादा योगदान नहीं लगता। आदमी को यह धर्म तो नहीं सिखाता कि कौनसी परिस्थिति सुखद है, बल्कि आदमी अपने अनुभव से खुद ही सीखता है। वैसे भी मानव मनोविज्ञान बहुत जटिल और विविधतापूर्ण है। इसके संबंध में ऐसा कोई सामान्य नियम नहीं बनाया जा सकता, जैसा कि जड़ वस्तुओं के लिए गुरुत्वाकर्षण आदि जैसा सामान्य नियम बनाया जाता है। यहां तो हरेक आदमी का मन अपने आप में अद्वितीय है, जिसके लिए नियम भी अद्वितीय ही होना चाहिए। हां धार्मिक पुस्तक सबके लिए एक सामान्य साधारण सिद्धान्त का बखान कर सकती है, पर वह भी सर्वसम्मत और वैज्ञानिक या अध्यात्मवैज्ञानिक रूप से प्रमाणित होना चाहिए। हालांकि उसके भी मानवीय अपवाद हो सकते हैं। लौकिक व्यावहारिक कदम तो आदमी को समय व परिस्थिति के अनुसार खुद ही उठाने पड़ते हैं। मतलब सब कुछ लिखा या बताया नहीं जा सकता। इसीलिए हरेक धर्म में हर किस्म की धारणा के लोग मिल जाएंगे। हां, विभिन्न कारणों से प्रोपोर्शन या अनुपात अलग-अलग हो सकता है। उदाहरण के लिए, यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा कि दुनिया का सबसे बड़ा आश्चर्य क्या है। इसपर युधिष्ठिर ने जवाब दिया कि लोग रोज मरते हैं, पर ऐसा देखते हुए भी जीवित आदमी ऐसा सोचते हैं कि वे कभी नहीं मरेंगे। इससे बड़ा कोई आश्चर्य नहीं। इस जवाब से यक्ष संतुष्ट हो गया। इस कथानक को सकारात्मक धारणा वाला आदमी ऐसे लेगा कि जिंदादिली से जीवन बिताते हुए भी आदमी को यह हमेशा याद रखना चाहिए कि कभी उसके जीवन का अंत हो जाएगा, इसलिए जीवन के प्रति आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। मतलब नामरूप में आसक्ति न रखो मतलब दुनियादारी को देशकाल के अनुसार बरतते हुए भी आस्तिक धारणा को अपनाओ, नास्तिक धारणा को नहीं। पर नकारात्मक धारणा वाला आदमी इसको ऐसे लेगा कि जीवन में कुछ नहीं रखा है, इसलिए हमेशा मरे हुए जैसे की तरह रहना चाहिए। नामरूप से भरी दुनियादारी को पूरी तरह से त्याग दो और घोर अर्थात कट्टर अर्थात पूर्ण आस्तिक बनो। धर्मशास्त्र ने तो अपनी तरफ से अच्छा कथानक लिखा था, पर उसके लेखक को क्या पता कि कई लोग इसका गलत अर्थ निकाल सकते हैं। इसी तरह गुरु भी अपने जीवन के अनुभव से सामान्य नियम और सिद्धांत ही समझा सकते हैं, हर कदम तो वे भी साथ नहीं चल सकते।

कुछ पल सांस रोकने से और फिर लंबी गहरी सांसों से विचारों के शुद्ध अस्तित्व पर ज्यादा ध्यान जाता है, और उनकी नामरूप वाली विविधता पर कम। अगर उस प्राणायाम के साथ कुंडलिनी शक्ति का साथ भी मिले तो प्रभाव कई गुना बढ़ जाता है, क्योंकि उससे दबे विचारों के उघड़ने को ज्यादा बल मिलता है, जिससे आस्तिकता और ज्यादा प्रभावी बन जाती है। तांत्रिक बल से तो प्रभाव उससे भी कई गुना बढ़ जाता है।

तेज और उथली सांस से विचार सांस के साथ लगातार बदलते रहते हैं। इससे उनके सतही नामरूप पर ही ध्यान जाता है, उनकी गहराई में जाने का समय ही नहीं मिलता। पर जब सांस धीमी, लंबी या रुकी होती है, तब मन का एक ही विचार सांस के रुके रहने तक या एक सांस के पूरा होने तक या लगातार कई सांसों तक बना रहता है। इससे वह विचार हमें पैदा होते, बढ़ते, ठहरते और आत्मा में विलीन होते दिखता है। ॐ शब्द भी इसी प्रक्रिया को दर्शाता है, जिसमें अ, उ और म अक्षर क्रमशः पैदा होने को, बढ़ने और रुकने को और विलीन होने को दर्शाते हैं। ॐ सहस्रार का बीजमंत्र इसलिए है क्योंकि मस्तिष्क में ही सारा ब्रह्मांड विचारों के रूप में पैदा होता रहता है, बढ़ता रहता है और विलीन होता रहता है। इस अक्षर की दो भुजाओं में जो दो तीखे मोड़ या रिंग हैं वे त्रिआयामी हैं, कागज पर दो आयामी दिखते हैं। बाईं तरफ का रिंग बाएं मस्तिष्क के कर्वेचर के साथ दुसरी तरफ को मुड़ जाता है, और दाईं ओर का कर्वेचर दाएं मस्तिष्क में पीछे की तरफ को कवर करता है। मतलब ओम से पूरा मस्तिष्क कवर हो जाता है। इसके ऊपर जो चंद्र बिंदी है, वह सहस्रार चक्र बिंदु है। इससे हमें महसूस हो जाता है कि नामरूप तो मिथ्या ही थे, विचारों का असली रूप तो शून्य आकाश या आत्मा जैसा ही है, यानि बिना नामरूप की सत्ता मात्र ही असली है, जहां से वे पैदा होते दिखते हैं और उसमें विलीन होते भी दिखते हैं। तेज और उथली सांसों से विचार फटाफट बदलते हैं। इसलिए न तो हमें वे शून्य आत्मा से पैदा होते दिखते हैं और न ही शून्य आत्मा में विलीन होते दिखते हैं। इससे वे हमें सत्य से दिखते हैं। हमें लगता है कि वह पुराना विचार जिसकी जगह अब नए विचार ने ले ली है, वह सत्य है, और हमारे दिमाग ने ही उसकी जगह नया विचार पकड़ लिया है। वैसे भी उथली तेज सांसों पर ध्यान देना कठिन है।

मतलब साफ है कि कुंडलिनी योग से आस्तिक बनने में मदद मिलती है। इसकी एक वजह यह भी है कि कुंडलिनी योग के समय सांस और शरीर पर ध्यान कायम रहने से विचारों के नामरूप पर ज्यादा ध्यान नहीं जाता और केवल उनके अस्तित्व का ही बोध होता रहता है। यह साक्षीभाव साधना की तरह ही है, मतलब हम उन्हें साक्षी की तरह देख रहे होते हैं। और उनसे प्रभावित नहीं होते। साथ में, योगासन के समय शरीर निश्चित पोज में रहता है, और विचारों के अनुसार प्रतिक्रिया या हिलने जुलने का विरोध करता है। इससे भी विचारों की नामरूपता प्रभावी नहीं हो पाती।

विचारों का हैंडल सांस है। ऐसा इसलिए क्योंकि विचार सांसों के साथ तालमेल बैठा कर गति करते हैं। बिना सांसों के विचारों को पकड़ना बहुत कठिन है। सांस को देखते रहने का मतलब है विचारों को देखना मतलब साक्षी भाव। जब हम सांसों को नहीं देख रहे होते तब विचारों को भी नहीं देख रहे होते। उस समय हम खुद विचार बने होते हैं। जब हम सांसों को नहीं देख रहे होते तो खुद सांस बने होते हैं। अपने को तो कोई नहीं देख

सकता। देखा तो दूसरे को ही जाता है। मतलब तब साक्षीभाव नहीं रहता। दो ही भाव हो सकते हैं, या तो दर्शक भाव या दृश्य भाव। यदि देखने वाले का दर्शक भाव नहीं है तो खुद ही दृश्य भाव पैदा हो जाता है। मतलब दर्शक दृश्य से असक्तिपूर्वक जुड़कर दृश्य ही बन जाता है। ऐसा पिता को अपने पुत्र को मैदान में खेलते देखते समय हो सकता है। अगर दर्शक भाव है तो दृश्य भाव नहीं हो सकता। दोनों भाव एकसाथ नहीं रह सकते। दर्शक भाव का यह लक्षण है कि वह दृश्य के सुख दुख से प्रभावित नहीं होता। अगर आदमी अपने विचारों से प्रभावित हो रहा है तो उसका मतलब है कि उसका दृश्यमान विचारों के प्रति दर्शक या साक्षी भाव नहीं बल्कि दृश्य या आत्मभाव है। विचारों को आत्मरूप समझो तो वह ज्ञान है, पर अगर आत्मा अर्थात आदमी विचाररूप बन जाए तो वह अज्ञान है।

इस मामले में एक तिब्बती बौद्ध योगी की बात अच्छी लगी कि सांस पर भी ध्यान रखो और विचारों पर भी, मतलब विचारों को भी खुला छोड़ दो, तभी मेडिटेशन होती है। मतलब विचारों को न तो दबाओ और न ही उनकी अवहेलना करो। जब सांसों पर ध्यान रहेगा या बीचबीच में जाता रहेगा तब खुद ही उनसे लगाव कम हो जाएगा और उनके प्रति दर्शक भाव पैदा हो जाएगा।

संभवतः जो कई बार समझा जाता है कि निर्जीवता का एकसार अंधेरा ही नामरूपता से रहित है, वह गलत है। दरअसल उस अंधेरे के रूप में नामरूप वाले दुनियावी विचार सूक्ष्म रूप में स्थित होते हैं, जो मौका मिलने पर पुनः स्थूल रूप में प्रकट हो जाते हैं। असली नामरूप से रहित सत्ता तो पूर्ण शुद्ध आत्मा अर्थात परमात्मा की ही है, जो अनिर्वचनीय है। हालांकि उसकी प्राप्ति नामरूप वाली दुनिया से ही होती है, क्योंकि कण कण में उसका वास है।

शास्त्रों में लिखा मिलता है कि निर्जीवता के अंधेरे का अस्तित्व नहीं है। वह हमें दुनियादारी की आसक्ति से पैदा हुए भ्रम से महसूस होता है। यह ऐसा ही भ्रम है जेसे गोल चक्के पर घूमने के बाद उससे बाहर उतरकर चारों ओर की सभी चीजें भी कुछ समय घूमती हुई दिखाई देती है। जितनी तेजी से या जितने समय तक हम उस पर घूमते हैं, वे चीजें भी उतनी ही तेजी से और उतने ही ज्यादा समय तक घूमती महसूस होती हैं। इसी तरह जिस किस्म की दुनियादारी होगी, उसके बाद का निर्जीवता का अंधेरा भी वैसा ही महसूस होगा। इसी को सूक्ष्म शरीर कहा जाता है। फिर तो जैसे घूमने का अहसास थोड़ी देर बाद खत्म हो जाता है, वैसे ही कुछ समय बाद सूक्ष्म शरीर का अंधेरा भी वैसे ही छंट जाना चाहिए। मतलब आदमी मृत्यु के बाद खुद मुक्त हो जाना चाहिए। पर शास्त्रों में ऐसा कहीं नहीं लिखा है। तर्क बुद्धि से तो ऐसा लगता है कि जेसे घूमने के झूठे एहसास के बाद आदमी अपनी पूर्व की दुनिया वाली अवस्था में आ जाता है, इसी तरह निर्जीवता के

भ्रम के बाद आदमी अपनी पुरानी दुनियावी जिंदगी में फिर से प्रवेष कर जाना चाहिए मतलब उसका पुनर्जन्म हो जाना चाहिए। पर जिसने पहले पूर्ण मुक्ति का या जागृति का अनुभव कर लिया हो, शायद वह अपनी पूर्व की मुक्ति वाली अवस्था में चला जाता हो मतलब मुक्त हो जाता हो। यह बात फिर भी कुछ कुछ शास्त्रसम्मत लगती है। जो ब्लैकहोल जितना ज्यादा भारी होता है, वह उतना ज्यादा प्रकाश को निगल कर अपने अंदर उतना ही ज्यादा अंधेरा पैदा करता है। उसी आभासी अंधेरे के रूप में उसके मूल सितारे की सूचना उसमें संचित रहती होगी। हो सकता है कुछ समय बाद वह अंधेरा उसी जैसे सितारे के रूप में फिर से जन्म ले लेता होगा। इसको वैज्ञानिक कहते हैं, व्हाइट होल से उसकी ऊर्जा का निकलकर किसी दूसरे ब्रह्मांड में चले जाना। जबकि जो कम वजन के सितारे होते हैं, उनके नष्ट होने से थोड़े समय के लिए अंधेरा रहता है, और वे अनंत ऊर्जा से भरे अनंत आकाश में विलीन हो जाते हैं, मतलब मुक्त हो जाते हैं। वे हमारे संन्यासियों और वैरागियों की तरह होते होंगे, जो अपनी दुनियादारी को हल्का रखते हैं।

कुंडलिनी योग की इड़ा-पिंगला इरेक्टस स्पाइने मांसपेशी और सुषुम्ना नाड़ी मेरुदंड हो सकती है

मित्रों मुझे कई बार लगता है कि कुछ मुख्य चीज छुपाई जा रही है या उसकी खोज नहीं हो पा रही है। नाड़ियों को कहा जा रहा है कि वे सूक्ष्म मार्ग हैं जिनका कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है, पर ऐसा होना संभव ही नहीं है। आप कोई भी अनुभव लो, उसका भौतिक अस्तित्व भी जरूर होता है। कोई भी भावना, व्यवहार, सोच, आदि चाहे कितने ही सूक्ष्म क्यों ना हो, मस्तिष्क या शरीर में उनका भौतिक प्रतिरूप भी जरूर होता ही है। बिना भौतिक अभिव्यक्ति के तो केवल शरीर रहित आत्मा ही है। हालांकि उसमें भी पिछले जन्मों के भौतिक अनुभवों का डाटा, सूक्ष्म रूप या अव्यक्त रूप में कोडिड होता है। फिर जब एक प्रकाश की रेखा सुषुम्ना में महसूस होती है तो उसका कोई भौतिक प्रतिरूप भी जरूर होता होगा, जिससे वह पैदा हो रही है। यह मेरुदंड के अंदर स्नायु रज्जु ही तो है, जिसे हम स्पाइनल कॉर्ड कहते हैं। मुझे लगता है कि जो इरेक्टस स्पाइने मांसपेशी सेकरम से स्कल तक, रीढ़ की हड्डी के दोनों तरफ जाती है, वही इड़ा और पिंगला को भौतिक अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं। हालांकि ऐसी रस्सी जैसी पेशी छूने पर ही महसूस होती है खासकर शरीर के निचले हिस्से में सैक्रम तक। सामान्यतः तो कुछ शरीर के बाएं या दाएं हिस्से में ऊर्जा या स्फूर्ति जैसी ऊपर चढ़ती महसूस होती है, जम्हाई लेने की तरह। ऐसा लगता है कि वह अज्ञाचक्र बिंदु रूपी सिंक में ओझल हो रही हो। जिस तरफ़ को उर्जा चल रही हो, उस तरफ़ के कपोल या चेहरे की चमड़ी उसी तरफ को खिंचती हुई लगती है। मुझे यह दोनों मसल टाइट रस्सी की तरह हाथ से छूने पर महसूस होते हैं। रीढ़ की हड्डी के दोनों तरफ कभी ये मसल बैंड टाइट जैसे हो जाते हैं, तो कभी लूज। जब टाइट होते हैं तो ऐसा लगता है कि कुछ आनंदात्मक संवेदना इससे ऊपर गई और उससे मूलाधार अंग का उर्जा दबाव कम हो गया। एनाटॉमी देखने पर यह पीठ में वैसे ही फैले हैं, जैसे मुझे महसूस होते हैं। यह सैक्रम के आसपास शुरू होते हैं। फिर थोड़े कम चौड़े होते हैं ऊपर जाते समय नाभि के स्तर पर कम फैले होते हैं और हृदय के स्तर पर ज्यादा चौड़े होते हैं और स्कल के बेस पर कम चौड़े होकर दोनों तरफ मुड़ कर स्कल से जुड़ जाते हैं। यह तो विज्ञान भी कहता है कि रासायनिक संवेदना जैसी नाड़ी में बहती है, वैसी ही मांसपेशी में भी बहती है। हो सकता है मांसपेशी में तेजी से बहती हो, इसीलिए मूलाधार की संवेदना मेरुदंड के स्नायु दंड से न जाकर इन दोनों मांसपेशियों से गुजरती है जिसे इड़ा और पिंगला कहा गया है। आप कल्पना करो कि तीन समानांतर पाइप हैं। इनमें बीच वाला पतला और इसके दोनों तरफ एक एक मोटा पाइप है। अगर आप बाएं पाइप को पूरा खुला छोड़ कर दाएं पाइप को पूरा बंद करते हैं तो सारा पानी बाएं पाइप से गुजरेगा। अगर आप दाएं को पूरा खुला छोड़कर बाएं को पूरा बंद करते हैं तो सारा पानी

दाएं पाइप से गुजरेगा। अगर आप दोनों को आधा खुला छोड़ते हैं तो अतिरिक्त पानी दूसरी तरफ वाले पाइप की और भागेगा और इस दौरान बीच वाले पाइप से भी गुजरेगा। बाकी शेष पानी ही दूसरे पाइप तक पहुंचेगा। इड़ा और पिंगला के एक साथ क्रियाशील करने से भी शायद ऐसा ही होता है। मतलब संवेदना सुषुम्ना से भी प्रवाहित होने लगती है। दोनों पाइपों को इसलिए एक साथ पूरा खुला नहीं रख सकते क्योंकि इतना पानी ही नहीं होता। मतलब अगर एक नाड़ी को जितना बंद करेंगे, दूसरी नाड़ी उतना ही खुलेगी। मुझे महसूस होता है कि जब मूलाधार की संवेदना ऊपर चढ़ती है तो कभी बाईं तरफ वाली फैली हुई मांसपेशी तन कर रस्सी की तरह दंडवत हो जाती है तो कभी दाएं तरफ वाली। जब दोनों बराबर और हलके रूप में तनती हैं तब ऐसा लगता है कि कुछ संवेदना रीढ़ की हड्डी के अंदर से भी ऊपर गई। क्योंकि तब दोनों से अलग और विशेष सा संतुलित आनंद और तरोताजगी महसूस होते हैं।

कुंडलिनी आधारित हठयोग की सफाई तकनीकें असल की सफाई नहीं करतीं

दोस्तों हठयोग में बहुत सी तकनीकें आती हैं। शंख प्रक्षालन में इतना पानी पिया जाता है कि पेट की पूरी सफाई हो जाए। वमन में पिए हुए पानी को पेट से वापस खींच कर मुंह से बाहर निकाला जाता है। जल नेति में एक नथुने से पानी पीकर दूसरे नथुने से निकाला जाता है। सभी में पानी हल्का गुनगुना गर्म और हल्का नमकीन होना चाहिए। आम भाषा में इन क्रियाओं को सफाई क्रियाएं कहा जाता है, पर वास्तव में ऐसा है नहीं। सफाई तो गंदी वस्तु की की जाती है। हमारा शरीर गंदा थोड़े ही है। श्लेष्मा को बाहर निकालने को सफाई कहा जाता है, पर स्वस्थ व्यक्ति में स्वस्थ श्लेष्मा बनता है, जिसके शरीर के लिए बहुत से लाभ होते हैं। उसके बाहर निकलने को शरीर की सफाई नहीं कहना चाहिए। ऐसा कहने से इन योगिक क्रियाओं को करने का मन ही नहीं करता। ऐसा लगता है कि हम पहले गंदे थे और अब साफ हो रहे हैं। मुझे लगता है कि इनको बाहर निकालने से जो ध्यान लाभ मिलता प्रतीत होता है, वह उसके बाहर निकलने से नहीं, पर उसके अभाव में विविध अंगों के साथ वातावरणीय पदार्थों के स्पर्श से मिलता है। यह एक प्रकार का एक्यूप्रेशर जैसा प्रभाव होता है। जब अमाशय और आंतों की अंदरूनी सतह श्लेष्मा मतलब म्यूकस के बाहर निकलने से नंगी हो जाती है, तब उस पर जल और भोजन आदि का स्पर्श एक्यूप्रेशर का काम करता है। इससे इनकी सतह से नाड़ी संवेदना मस्तिष्क तक पहुंचकर उसे सक्रिय कर देती है। इसी तरह नाक के अंदर से म्यूकस के बाहर निकलने से उसकी अंदरूनी नंगी सतह पर वायु का स्पर्श एक्यूप्रेशर पैदा करता है। ऐसे एक्यू बिंदुओं या मर्म स्थानों (एक्यू बिंदुओं का संस्कृत नाम) का वर्णन शरीर की बाहरी सतह पर तो है, पर अंदरूनी सतह पर कहीं नहीं है। मुझे लगता है कि इस पर भी खोज की जरूरत है। प्राकृतिक तौर पर भी उल्टी होने के बाद या दस्त लगने के बाद या जुकाम होने के बाद भी इसी तरह की ताजगी और कुंडलिनी समाधि का सा अनुभव होता है। संभवतः इन्हीं की नकल करके ही ये स्वस्थ व बनावटी सफाई तकनीकें बनाई गई हैं। सफाई भी शायद इन्हें इसीलिए कहा गया है क्योंकि बिमारी के समय ऐसी शारीरिक प्रतिक्रियाएं सफाई ही करती हैं। क्योंकि इन क्रियाओं से मन की समाधि मतलब मन की सफाई महसूस होती है, शायद इसी को शरीर की समझ लिया होगा, क्योंकि मन और शरीर आपस में जुड़े होते हैं। क्योंकि शायद इस तरह के रोग मन को समाधि लाभ देने के लिए पैदा होते हैं, इसीलिए कहा जाता होगा कि इन क्रियाओं से शरीर के रोग नहीं होते। इसलिए स्वस्थ शरीर में इनका नाम मनशुद्धि क्रियाएं होना चाहिए।

इसी तरह नाड़ी पर भी सुव्यवस्थित शोध की जरूरत है। अगर नाड़ियों का रूप केवलमात्र तथाकथित अभौतिक और सूक्ष्म होता, तो वैद्य लोग हाथ की कलाई को पकड़कर नाड़ी परीक्षण ना किया करते। नाड़ी या नरव को हम बेशक सीधे अनुभव नहीं

कर सकते पर उसके भौतिक और अनुभवात्मक प्रभाव को तो अनुभव कर ही सकते हैं। मांसपेशी पर उसका प्रभाव कंपन, सिकुड़न आदि के रूप में होता है, तो मस्तिष्क में विचारों के रूप में। और तो और, जिन शारीरिक क्रियाओं को हम नाड़ी मतलब स्नायु के बिना और केवल हार्मोन या एंजाइम के प्रभाव से होता हुआ मानते हैं, वे भी अप्रत्यक्ष रूप से नाड़ी या नर्व के ही प्रभाव से होती हैं। हार्मोन या एंजाइम पैदा करने वाले सेल्स नर्व की शक्ति से ही नींबू की तरह निचोड़े जाते हैं, जिससे उनके अंदर से हार्मोन बाहर निकलते हैं। मेरुदंड में मूलाधार से मस्तिष्क तक जो सुषुम्ना नाड़ी के रूप में विद्युत रेखा महसूस होती है, वह स्पाइनल कॉर्ड की अति क्रियाशीलता से उसी का स्पंदन महसूस होता है, जो रेखा के रूप में होता है, मुझे ऐसा लगता है। मेरुदंड में वह रेखा रूप स्पंदन पैदा करती है, तो मस्तिष्क में वह अति स्पष्ट, जीवंत व स्थिर मानसिक चित्र के रूप में अभिव्यक्त होती है, जिसे समाधि कहते हैं। इन बातों से ऐसा लगता है कि नरव या स्नायु के अनुभवात्मक व भौतिक प्रभाव को ही नाड़ी कहते हैं। नर्व फाइबर मतलब स्नायु तंतु भौतिक शरीर की एक भौतिक संरचना है, जो शरीर में संदेशों के प्रसार में मदद करता है। अगर नाड़ी संचरण को बिल्कुल ही अभौतिक या चमत्कारी जैसा माना जाए, तो इसका यह नुकसान होगा कि आदमी अपने शरीर के स्वस्थ रखरखाव के प्रति उदासीन हो जाएगा। वह सोचेगा कि नाड़ी तो केवल विशेष साधना से ही क्रियाशील होगी। वैसे होता यह है कि स्वस्थ शरीर होने पर ही साधना को मन करता है, और वह सफल भी स्वस्थ शरीर से ही होती है।

नाच

नाच नचाए ये कैसा
सब मुंह पैसा ही पैसा।

भरी दुपहरी गरमी के दिन,
ठेला लोग चलाते हैं।
किसम किसम के उद्योगों में,
अपनी देह जलाते हैं।।

कुछ जीते जी हासिल करते
कुछ इस पे मर जाते हैं।
भटकी आत्मा के जैसे वो,
कम ही शांति पाते हैं।।

अचरज-करतब क्यों ऐसा,
कहीं नहीं देखा जैसा।
नाच नचाए ये कैसा,
सब मुंह पैसा ही पैसा।।

डाकू-चोर बनाए कुछ को,
शातिर कुछ को गजब का।
कुछ से हमला युद्घ कराए,
आम-जैसा या अजब का।।

मानवता की बलि चढ़ा कर,
पूजा इसकी करते हैं।
परमेश्वर की पदवी देकर,
रह-रह इससे डरते हैं।।

क्या है नायक क्या खलनायक,
कोई न इसके जैसा।
नाच नचाए ये कैसा,
सब मुंह पैसा ही पैसा।।

पैसे से पैसा आता बिन,
पैसे ये आए कैसे।
भेड़ अकेले न रह ढूंढे,
झुंडों को अपने जैसे।।

कुछ छोटे रह जाते हैं कुछ,
सागर जैसे बन जाते।
बुद्धि जितनी ताकत जितनी,
उतने ही बढ़-चढ़ जाते।।

कुछ अपने रोगों से सबको,
रोग-युक्त कर देते हैं।
संग-अपने अपने झुंडों को,
श्वास-मुक्त कर देते हैं।।

कोई आम खिलाड़ी है न,
धावक ही ऐसा-वैसा।
नाच नचाए ये कैसा,
सब मुंह पैसा ही पैसा।।

अपनी प्राप्ति करवाने को,
धरम के काम कराता है।
टेढ़ी चाल से चलकर हरदम,
परमेश्वर तक जाता है।।

जीवन के शतरंज में इसको,
जो कोई भी जान गया।
तय है जीत उसी की हरदम,
भीषम इसको मान गया।।

न अपना न पर कोई भी,
इसका 'जैसे को तैसा'।
नाच नचाए ये कैसा,
सब मुंह पैसा ही पैसा।।

पाते कर-भोगी इनसाफ,
करदाता रह जाते हैं।
भेड़ की न सुन ऊन पे ही नित,
दावे ठोके जाते हैं।।

नाचो-गाओ मौज मनाओ,
'गूंगे का गुड़' ये कैसा।
नाच नचाए ये कैसा,
सब मुंह पैसा ही पैसा।।

ऑडियोबुक्स से अध्यात्म का अध्ययन

ऑडियोबुक्स उन लोगों के लिए वरदान ही है जो किसी कारण पढ़ नहीं सकते हैं। कइयों को नजर की समस्या हो सकती है, कइयों के पास बैठने का समय नहीं होता, कई किताबों को हमेशा अपने साथ ढोकर नहीं रख सकते, कइयों का ज्यादातर समय बस, गाड़ी, ट्रेन में ही बीतता है, और कइयों का पुस्तक पढ़ने का मन ही नहीं करता। आजकल गूगल के टेक्स्ट टू स्पीच ए आई ने ऑडियो बुक्स के क्षेत्र में क्रांति तैयार कर दी है। जहां एक ऑडियो बुक्स को बनाने में महीनों और सालों लग जाते थे, बहुत खर्चा आता था, संसाधन उपलब्ध नहीं होते थे और अगर होते भी थे तो बहुत कष्ट साध्य होते थे, वहीं गूगल के ऑटो नेरेशन सर्विस से सैंकड़ों पुस्तकें एकसाथ दो घंटे के अंदर ऑडियो बुक्स बन जाती हैं।

क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए कथा के रूप में श्रवण सबसे अच्छा समझा जाता था, इससे जाहिर होता है कि ऑडियोबुक्स के रूप में यह ज्यादा रोचक लग सकता है और यह अच्छे से मन में बैठ सकता है। हालाँकि, मुख्य रूप से इयरफ़ोन के साथ जिम्मेदारी से सुनना न भूलें क्योंकि बहुत देर तक सुनने से अस्थायी या स्थायी सुनवाई हानि हो सकती है। WHO के अनुसार, प्रतिदिन अधिकतम एक घंटे तक इयरफ़ोन के साथ सुनने की सलाह दी जाती है। 60 डेसीबल से अधिक ध्वनि हानिकारक हो सकती है।

निशुल्क ऑडियो बुक्स का एक वेब पेज इस वेबसाइट पर है, जिसका लिंक नीचे दे रहा हूं, ताकि इच्छुक लोग अनायास ही और मनोरंजन के साथ देश दुनिया का चित्र विचित्र ज्ञान अर्जित कर सकें। एंड्रॉयड फोन पर प्ले स्टोर से गूगल प्ले बुक ऐप इंस्टाल करके इन्हें सुना जा सकता है।

https://demystifyingkundalini.com/audiobooks-hindi/

कुंडलिनी योग और निवेश के बीच समानता

दोस्तों, कुंडलिनी योग और निवेश एक दूसरे के विपरीत विषय लगते हैं, पर इनके बीच गहरा संबंध भी है। जैसे आदमी थोड़े समय के निवेश से एकदम से अधिकतम लाभ प्राप्त करना चाहता है, वैसे ही कुंडलिनी योग से भी, पर दोनों ही लंबे समय के अभ्यास से सिद्ध होते हैं। जैसे मन पर काबू न होने से निवेश असफल होता है, उसी तरह अनियंत्रित मन से योग भी असफल हो सकता है। जैसे लालच में आकर आदमी गलत कंपनी में ज्यादा निवेश कर सकता है, वैसे ही ज्यादा योग-लाभ के लालच में आदमी गलत तरीके से या शरीर की सहन सीमा से ज्यादा योग कर सकता है। दोनों ही स्थितियों में नुकसान हो सकता है। जैसे बिना पर्याप्त जानकारी के निवेश से नुकसान हो सकता है, वैसे ही बिना आधारभूत जानकारी के योग से भी छुटपुट हानि हो सकती है। जैसे लंबी अवधि का निवेश लंबे समय बाद फलीभूत होता है, वैसे ही कुंडलिनी योग भी। जैसे उचित जानकारी, समय, शक्ति व अच्छे अवसर के साथ रहने पर ही छोटी अवधि का निवेश बहुत जल्दी सफल हो सकता है, उसी तरह पर्याप्त जानकारी, समय, शक्ति व अच्छे अवसर के साथ करने पर ही तांत्रिक कुंडलिनी योग भी अति शीघ्र फलीभूत होता है। जैसे छोटी अवधि के निवेश के सफल ना होने पर उससे आदमी अपना मूलधन खोकर कंगाल भी बन सकता है, उसी तरह तांत्रिक योग के सफल ना होने पर आदमी की अपनी पुरानी शक्ति भी क्षीण हो सकती है। जैसे सफल लघु अवधि का निवेश आदमी के ज्यादा धन को दांव पर लगाकर उससे भी कहीं ज्यादा धन लाभ के रूप में वापस करता है, वैसे ही सफल तांत्रिक कुंडलिनी योग भी आदमी की ज्यादा शक्ति को दांव पर लगाकर बदले में कुंडलिनी जागरण के रूप का अत्यधिक लाभ या रिटर्न प्रदान करता है। जैसे शॉर्ट टर्म ट्रेडिंग में अधिक लाभ की संभावना के बावजूद जोखिम भी अधिक है, उसी तरह तांत्रिक कुंडलिनी योग में भी है। जैसे पैसा धीरे-धीरे पैसे को बढ़ाता है, उसी तरह योग का अभ्यास भी योग को धीरे धीरे बढ़ाता रहता है। जैसे गलत तरीके से खर्च किया गया पैसा नष्ट हो जाता है, उसी तरह गलत तरह से इस्तेमाल की गई योग शक्ति नष्ट हो जाती है। जैसे सही दिशा में लगाया गया धन बढ़ता ही रहता है, उसी तरह सही दिशा में लगाई गई योगशक्ति बढ़ती ही रहती है। जैसे बढ़ा हुआ धन धर्मकार्य करवा कर अपने को बढ़ाने के साथ परमात्मा की प्राप्ति में भी मदद करता है, उसी तरह बढ़ा हुआ कुंडलिनी योग भी धर्म कार्य करवा कर अपने को बढ़ाता रहता है, और साथ में परमात्मा की प्राप्ति में भी मदद करता है। जैसे ज्यादा धन की चाह ही आदमी से किस्म किस्म के अच्छे बुरे कर्म करवाती है, उसी तरह ज्यादा योगसुख अर्थात पूर्णता अर्थात परमात्मा की चाह आदमी से सभी किस्म के कर्म करवाती है। जैसे अधिक धन की प्राप्ति के लिए आदमी अनगिनत कपटी काम करता है, उसी तरह उत्तम तांत्रिक योग की प्राप्ति के लिए भी कई लोग

पंचमकारिक काम करते हैं। जैसे धन की वृद्धि ही जीवन का मुख्य लक्ष्य है, उसी तरह योगसुख की वृद्धि भी जीवन का मुख्य लक्ष्य है। जैसे अच्छी कंपनियों में निवेश से खर्च करने से पैसा बढ़ता ही है, उसी तरह योग का ज्ञान योग्य लोगों में बांटने से योग बढ़ता ही है। जैसे घटिया कंपनी में पैसा निवेश करने से पैसा घटता है, उसी तरह अपात्र व नकारात्मक लोगों में योग का ज्ञान बांटने से योग घट भी सकता है। जैसे सब से अलग हटकर और अपनी व्यक्तिगत समझ व शैली में निवेश करने से धन अत्यधिक बढ़ता है, उसी तरह अपनी जरूरत के हिसाब से योग को ढालने से योग भी अत्यधिक बढ़ सकता है। जिस प्रकार धन का ना कोई अपना है, और ना कोई पराया है, पर इसका इस्तेमाल करने वाले पर ही इसका उद्देश्य निर्भर करता है, उसी तरह कोई योग से अच्छे काम कर सकता है, तो कोई तांत्रिक अभिचार जैसे बुरे काम, पर योग का इससे कोई लेना-देना नहीं है। जैसे आम लोग कर देकर कोष में धन को बढ़ाते हैं, पर कुछ ही लोग उस पर अपना हक जता सकते हैं, सभी नहीं, इसी तरह योगमय वातावरण को बनाने में सभी सज्जन लोगों का हाथ होता है, पर कुछ ही गिनेचुने लोग योगी वाली सुविधाओं और सम्मान पर अपना दावा कर सकते हैं, सभी नहीं। जैसे आम सांसारिक आदमी अपनी चुप्पी में ही संतोष और सुख प्राप्त करता है, उसी तरह आम सज्जन आदमी भी प्रसिद्धि की चाहत से दूर रहकर अपने मन में ही अपना असली योगानंद प्राप्त करता है।

कुंडलिनी योग में रागों का महत्त्व

दोस्तों, शास्त्रीय संगीत आधारित राग प्राचीन भारतीय परंपरा का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। राग और कुंडलिनी योग में बहुत सी समानताएं हैं। दोनों ही शरीर और मन को तनाव रहित बना देते हैं। रक्तचाप को नियंत्रित करते हैं। ध्यान लगाने में मदद करते हैं। दरअसल रागों का आधार कुंडलिनी योग ही होता है। जैसे "जागो, जागो मोहन प्यारे, भोर भई, तेरे दर्शन को आए जोगी जंगम, जटी, निरंजन" आदि। यहां भोर का मतलब कुंडलिनी योगी के अंदर प्रचुर सतोगुण की वृद्धि है। मोहन यहां कुंडलिनी ध्यान चित्र है। मोहन का जागना यहां कुंडलिनी जागरण है। राग योग के दौरान सांस को ज्यादा देर तक रोक रखने में मदद करते हैं क्योंकि राग में भी ज्यादा देर तक सांस को रोक कर एक ही धुन को लंबा खींचा जाता है। आम गानों में बोल और धुन जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं जिससे ध्यान भी जल्दी जल्दी बदल कर एकाग्र नहीं हो पाता। लोग बोलते हैं कि राग से नींद आती है। दरअसल राग मन को शांत करते हैं। मन की थकान वह बेचैनी के समय राग सुनने से सांसें गहरी और धीमी हो जाती हैं जिससे मन एकदम स्वस्थ महसूस होता है। जब योग के अभ्यास से राग गाने में मदद मिलती है, तो राग श्रवण व गायन से योग में क्यों मदद नहीं मिल सकती, क्योंकि दोनों में सांसों के अभ्यास मतलब प्राणायाम का योगदान है। दिन के समय के अनुसार राग सुनने से मूड फ्रेश हो जाता है। ऐसी ही एक राग्या ऐप है जिसे मैं पसंद करता हूं। मैं कोई प्रमोशन नहीं कर रहा। इसमें लगातार दिन के समय के अनुसार राग चलते रहते हैं और बदल बदल के अनगिनत राग आते हैं। इससे पहले मैंने सारेगामा ऐप को प्रयोग किया पर उसमें किसी बग वगैरह से उसने मेरा 3 महीने का सब्सक्रिप्शन ही भुला दिया, जिसे कस्टमर केयर से भी वापस नहीं पाया जा सका। योग के समय राग सुनने से मन में दबे विचार प्रस्फुटित नहीं होते क्योंकि मस्तिष्क की शक्ति राग सुनने में लगी रहती है। शायद वह दबे विचार नष्ट तो होते रहते हैं, पर बाहर प्रस्फुटित हुए बिना ही, मतलब चुपचाप से। शायद जिस विचार अभिव्यक्ति को हम विचारों के नष्ट होने की प्रक्रिया समझते हो, वह विचारों को जीवित रखने का तरीका हो। किसी आदत को बारंबार दोहराने से वह भला नष्ट कैसे होगी। आदत तभी नष्ट होगी, जब उसे दोहराएंगे नहीं। इसी तरह से उक्त विचार को बारंबार प्रकट करने से वह नष्ट कैसे होगा। नष्ट वह तभी होगा जब उस विचार की शक्ति को किसी दूसरे अच्छे विचार या भाव में लगाएंगे। शायद रागों से यही होता है। योग से उत्पन्न शक्ति सुप्त विचारों को ना लगकर राग संगीत को लगती रहती है जिससे आध्यात्मिक संस्कारों वाले विचार व भाव मजबूत होते रहते हैं, और पिछले जीवन के फालतू व दबे हुए विचार नष्ट होते रहते हैं। यह सुप्त विचारों को हल्के रूप में प्रकट करना और उसकी शक्ति नए कुंडलिनी विचार को देने का मध्य मार्ग ही है, ताकि उन विचारों की शक्ति का आहरण

भी हो सके और वे प्रचंडता से अभिव्यक्त होकर भौतिक या भौतिक जैसे भी न बन सकें। अगर सुप्त विचार बिल्कुल भी मानस पटल पर न उभरे तो उनकी शक्ति का आहरण हो ही नहीं पाएगा। इसी तरह यदि वे बहुत ज्यादा उभर जाएं तो भी उनसे आहरण करने के लिए शक्ति बचेगी ही नहीं। रागों की मूल थीम आध्यात्मिक या योगमय ही होती है। साथ में राग सुरताल वह लय में होते हैं। इसलिए मन के लिए अच्छे होते हैं। इनमें सुंदर आवाज वाले ढोल, ढोलकी, सितार, बांसुरी आदि प्राकृतिक वाद्य बहुत कर्ण प्रिय लगते हैं। जो तथाकथित आधुनिक कनफोड़ू संगीत यंत्रों से बेहतर ही होते हैं, खासकर योगी व आनंदमयी जीवन शैली के लिए। मुझे राग तांत्रिक लगते हैं। जैसे कुंडलिनी तंत्र से तथाकथित तुच्छ दुनियादारी उत्तम आध्यात्मिक साधना में रूपांतरित हो जाती है, उसी तरह राग से भी। प्रेमी प्रेमिका के बीच का प्रेमसंबंध आमतौर पर भौतिक लगता है, पर राग में बंध जाने पर वह परिष्कृत सा होकर आध्यात्मिक बन जाता है। इसी तरह दुनियादारी का कोई भी विषय ले लो, राग उसे पवित्र कर देता है। इसलिए अगर राग को म्यूजिकल लॉन्ड्रिंग कहो, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अगर इसके आधारभूत सिद्धांत का गहराई से अवलोकन करें, तो कुंडलिनी ही दिखाई देती है। रागों से सांसों में और शरीर की क्रियाशीलता में सुधार होता है, क्योंकि दोनों आपस में जुड़े हैं। इससे कुंडलिनी शक्ति क्रियाशील हो जाती है, जिससे मन में कुंडलिनी चित्र का निरंतर वास होने लगता है। इससे सभी विचारों, भावों और कर्मों के साथ कुंडलिनी चित्र जुड़ा रहता है। इससे द्वैत से भरी दुनिया में डूबे रहने पर भी मन में उत्तम अद्वैत भाव बना रहता है। यही अद्वैत भाव सबको पवित्र करता है। रागों की एक खास बात यह भी है कि अगर इनके शब्द या बोल समझ भी न आए, ये तब भी अपने बोलने के और संगीत तरीके से योगलाभ प्रदान करते हैं। वैसे भी उनमें बोल ज्यादा नहीं होते। एक ही वाक्य या शब्द पर भी पूरा एक घंटे का राग बन जाता है। उदाहरण के लिए “सांवरे से मन लागा, मोरी माए”, इस जैसे दो चार बोलों पर पैंतालीस मिनट का खयाल आधारित सुमधुर राग है। ऐसा लगता है कि राग शब्दप्रधान न होकर भावप्रधान होते हैं।

कुंडलिनी योग से पिहरवा मतलब पति घर आ जाते हैं

दोस्तो , “पिहरवा अजहु ना आए” नामक राग मेघ को ही देख लें। इसमें स्त्री पति के लौटने की आस में है। वह कहती है कि डर लग रहा है। काले बादल घिर गए हैं, बिजली चमक रही है। बारिश की बूंदें भी गिरने लगी हैं। पति परदेस में बस गए हैं, जो अभी तक नहीं आए हैं। यह आध्यात्मिक आख्यान ही है, भौतिक नहीं। पत्नि यहां आत्मा है, पति परमात्मा हैं। परमात्मा बहुत दूर मतलब विदेश में हैं। कभी दोनों साथ थे, पर कालांतर में अलग हो गए। काले बादल मतलब अज्ञान का अंधकार डरावना लग रहा है। बिजली चमक रही है, मतलब दुखी करने वाले काम, क्रोध जैसे दोषपूर्ण व भड़कीले विचार मन में दौड़ रहे हैं। जैसे बिजली आदमी को मार सकती है, वैसे ही अनसुलझी वासना भी। मतलब वह वासना आदमी का पुनर्जन्म करवा सकती है। और यह तो अपने आप स्पष्ट ही है कि किसी जीव का पुनर्जन्म तभी होगा जब पहले वह मरेगा। बारिश की बूंदें गिरने लग गई हैं, मतलब दुख के कारण आंखों से अश्रु भी गिरने लग गए हैं।

यह जीवात्मा की असली गति व तस्वीर है, जिसे राग में दर्शाया गया है। यह वैज्ञानिक तथ्य ही है, कोई कपोल कल्पना नहीं। यह आध्यात्मिक मनोविज्ञान है। यह भौतिक जीवन से भी मिलता जुलता है। असल में भी घर के मुखिया के घर पहुंचने से चारों ओर प्रकाश सा छा जाता है। निराशा, दुख, अभाव आदि अंधकारपूर्ण दोष कुछ देर के लिए गायब से हो जाते हैं। मतलब राग द्विअर्थी होते हैं। इन्हें बनाने और गाने वाले भी संतों से कमतर नहीं होते होंगे। कुंडलिनी योगी भी इसी तर्ज पर मन में गुरु, देवता आदि का चित्र मजबूत करते हैं, जो पति के घर आने की आस की तरह ही है। याद करते-करते वह कुंडलिनी जागरण के रूप में घर आ भी जाते हैं। आगे फिर कुंडलिनी योगी पर निर्भर करता है कि वह नियमित साधना से उन्हें घर में बांधकर रख पाता है या अनियंत्रित आचरण से उन्हें पुनः दूर परदेस चले जाने का मौका दे देता है।

इसी तरह “आजहुं न आए पिया, आली (सखी) मोरी, वो न आए, तुम/पिया बिन रैना न कटत, पिया बिन रैन निहारूं, आजहुं न आए पिया”। यह राग खयाल में है, अदरिजा बसु ने गाया है। यह राग लगभग पौने घंटे का है, और पूरे राग में उतार चढ़ाव के साथ लगभग यही बोल चलते हैं। अंत के पांच दस मिनट में शिव स्तुति के “सललल हिलत/किलत गंगा, जटाजूट व्याल (सर्प)” जैसे कुछ बोल भी हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि एक ही कुंडलिनी योग की थीम पर ही ज्यादातर राग चलते हैं। बहुत सुंदर राग गाया है। एक ही सांस को लंबा खींचने की और उससे बंधे सुर को गहरे उतार चढ़ाव देने की भरपूर कोशिश की गई है इसमें।

कुंडलिनी योग से आदमी में अदृश्य हो जाने की शक्ति पैदा हो जाती है

दोस्तों शिव पुराण में शिव पार्वती को काल को हराकर अमर और मुक्त होने का तरीका बताते हैं। वह कहते हैं कि तीन तरीके हैं ध्यान के। आकाश मतलब अनाहत नाद पर ध्यान, वायु पर ध्यान मतलब प्राणायाम और अग्नि पर ध्यान मतलब आज्ञा चक्र बिंदु पर सूर्य, प्रकाशमान देवचित्र आदि का ध्यान। यहां यह बात गौर करने लायक है कि यह वर्णन उस वर्णन के बाद आता है जिसमें तथाकथित अजीबोगरीब मृत्यु के लक्षण बताए गए हैं। जैसे कि बाया अंग कई दिन तक लगातार फड़कने से मृत्यु होना या गिद्धों के द्वारा हमला होने को मृत्यु का लक्षण आदि। हालांकि शिव ने यह भी साफ कहा है कि लोगों की भलाई के लिए और उनमें वैराग्य की वृद्धि के लिए ही वह ऐसा वर्णन कर रहे हैं। मतलब साफ है कि यह प्रयास मृत्यु का भय पैदा करने के लिए है ताकि लोग योग आदि का सहारा लेकर जल्दी से मृत्यु पर विजय पा सकें। इसके बाद जो योग का वर्णन है उसके फलस्वरूप तथाकथित पारलौकिक सिद्धियों का वर्णन भी योग के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए ही किया गया है। मतलब एक तरफ मृत्यु का काल्पनिक भय पैदा किया गया है तो दूसरी ओर योग की काल्पनिक उपलब्धियां दर्शाई गई हैं। काल्पनिक मतलब द्विअर्थी सी, कोरी काल्पनिक नहीं। उदाहरण के लिए योगी का अदृश्य हो जाना। ऐसा नहीं होता कि योगी का शरीर किसी को दिखता ही नहीं। इसका मतलब है कि वह कुंडलिनी योग से इतना शांत, निरपेक्ष और अपने आप में स्थित सा हो जाता है कि लोगों की भीड़ में भी उसकी तरफ ध्यान ही नहीं जाता। मेरा एक योगी मित्र है। वह दस सालों से एक अपरिचित से समाज के लोगों के बीच बसा हुआ था। पर उस समाज के लोगों को उसके बारे में पता ही नहीं था। गुप्तचर भी तो ऐसे ही होते हैं।

कुंडलिनी योग से क्या आसमान में उड़ा जा सकता है?

दोस्तों, पुराणों में बहुत सी बातें भौतिक रूप में सच नहीं प्रतीत होती हैं, पर वे लोगों को लाभ प्रदान करती हैं, मतलब उन्हें अध्यात्म के मार्ग पर आगे बढ़ाती हैं। बेशक इस दुष्प्रभाव के साथ कि वे भौतिक रूप से हानिकारक भी हो सकती हैं। मेरी बात का प्रमाण यह है कि शास्त्रों ने खुद बोला है कि सच बोलो पर कड़वा सच ना बोलो मतलब साफ है कि जो बात लोगों के जीवन में मिठास अर्थात आध्यात्मिक विकास लाए, पर बेशक झूठ जैसा हो या द्विअर्थी, उसे बोल दो। उदाहरण के लिए शास्त्रों में जो कहीं कहीं पर स्त्रियों के दोषों का वर्णन है, वह इसीलिए ताकि स्त्रियों के प्रति ज्यादा काम भावना या लस्ट न रहे, जैसा अकसर होता है, क्योंकि अति हर जगह खराब होती है। ऐसे ही एक कथानक में एक बदचरित्र और देह व्यापार में रत एक स्त्री श्री नारद के पूछने पर उनको बताती है। वह स्त्री की निर्लज्जता का बखान करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ती जिससे नारद के मन में स्त्रियों के प्रति घृणाजनित वैराग्य और भी पक्का हो जाता है। वे संन्यासी थे और वैसा ही तो सुनना चाहते थे ताकि अपनी वैराग्य की वीणा को और ज्यादा ऊंचा उठा पाते। हो सकता है कि उस औरत ने सभी औरतों को अपने जैसा ही समझ लिया हो। चोर को सभी लोग चोर ही लगते हैं। इसी तरह मुफ्त की ज्यादा कदर नहीं होती। इसीलिए तो हिंदू धर्म में बहुतायत में वर्णन है कि ब्राह्मणों या बाबाओं के द्वारा दान लेना मान्य है। शास्त्रों में बेशक ऐसा कहा गया है कि जो बिन मांगे मिल जाए, ब्राह्मण को उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। साथ में, शास्त्रों में ब्राह्मणों को किस्म किस्म की वस्तुएं दान करने से किस्म किस्म के लौकिक और पारलौकिक फलों की प्राप्ति बताई गई है। यह भी तो मांगना ही है, बेशक अनुशासन, सामाजिकता और चतुरता के साथ, पर इसके दुरुपयोग भी बहुत हुए हैं। यह मेरा अपना अनुभव है कि सुपात्र ब्राह्मण को दान देने से ऐसे फल मिलते हैं , पर ये ज्यादा ही बढ़ा चढ़ा कर बताए गए हैं। सीधी सी बात है कि असली ब्राह्मण ब्रह्मज्ञान प्राप्त या उसकी प्राप्ति में तत्पर रहते हैं। इससे संभव है कि उन्हें दान देने से ब्रह्मज्ञान का फल मिलता है। पढ़ने वाले की मदद करने से पढ़ने की प्रेरणा मिलती है, गाने वाले की मदद करने से गाने की प्रेरणा, और ब्रह्मज्ञान वाले की मदद करने से ब्रह्मज्ञान की प्रेरणा मिलती है। सिंपल। ब्रह्म मिल गया, मतलब सबकुछ मिल गया। अब सबकुछ मिलने को आप जिस मर्जी कल्पना में बांध लो, जैसे अनंत ब्रह्मांड का स्वामित्व मिलना, स्वर्ग के राजा का पद मिलना, पूरा राज्य मिलना या भगवान विष्णु का पद मिलना आदि आदि। ऐसी कल्पनाओं का कोई अन्त नहीं है। पर मुझे तो कर्मयोगी द्वारा ज्ञान बांटना ही सबसे अच्छा लगता है। कर्मयोगी को बदले में दान आदि या अन्य कुछ भी लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती क्योंकि उसे अपने कर्म योग से पहले ही पर्याप्त मिला होता है। राजा जनक इसके सबसे बड़े उदाहरण हैं, जो राजा होने के साथ परम योगी भी थे।

इसी तरह अधिकांश पारलौकिक सिद्धियां भी सफेद झूठ या मीठे झूठ की तरह ही लगती हैं। अगर योगियों में इतनी ज्यादा अतिंद्रीय शक्तियां होती तो हमारा देश कभी भी दुश्मनों के कब्जे में न आया होता या कभी भी गरीब न रहा होता। यहां तो हर आदमी योगी होता था। अगर योगियों के पास आकाश गमन या वायु गमन की सिद्धि हुआ करती तो वे दुश्मन की सेनाओं के ऊपर उड़ कर उन्हें आसमान से ही तबाह किया करते। वास्तव में यह सिद्धि संकेतिक और अनुभवात्मक जैसी ही है, भौतिक या असली नहीं। योगी हर समय हवा को ऐसे ही पूरे ध्यान व लयबद्धता के साथ शरीर के अंदर बाहर करता रहता है, जैसे जल में रहने वाली मछली जल को। जब ऐसा करने वाली मछली को जल में विचरण करते हुए देखा जाता है, उसी तरह उसके जैसा, पर हवा के साथ करने वाले योगी को हवा में या आसमान में विचरण करते हुए समझा जा सकता है। हो सकता है कि उन्नत योगाभ्यास में ऐसा अनुभव भी होता हो पर ऐसा नहीं होगा कि वह हवा में उड़ने लगेगा। मेरे को भी बहुत सपने आते हैं कि मैं आसमान में पक्षी की तरह उड़ रहा हूं। बिल्कुल असली की उड़ान लगती है भाई, और बहुत मजा भी आता है। ऐसा मन करता है कि काश जागते समय भी ऐसी ही उड़ान संभव होती पर ऐसा नहीं होता। यह अनुभव योग और प्राणायाम के प्रभाव से होता है। पर इन अनुभवों का यह नुकसान भी होता है कि अधिकांश लोग इन्हें ही सब कुछ मानकर जागृति रूपी मुख्य लक्ष्य से भटकने से लग जाते हैं।

कुंडलिनी योग से अहंकार रूपांतरित हो जाता है

दोस्तों, शास्त्रों में योग से अणिमा सिद्धि प्राप्त होने की बात कही गई है। अणिमा अणु शब्द से बना है, जिसका मतलब सूक्ष्म होता है। इसलिए अणिमा सिद्धि का मतलब हुआ, सूक्ष्म स्वरूप बन जाने की सिद्धि। पर मुझे लगता है कि इसे अधिकांश लोगों ने ऐसे समझ लिया कि इससे आदमी के शरीर का आकार 6 फुट से 6 इंच का हो जाता होगा या 60 किलो वजन का आदमी 5 किलो का रह जाता होगा। पर ऐसा होना तो संभव नहीं है। अनुभव के आधार पर यह बात निकलती है कि कुंडलिनी योग से आदमी का अहंकार इतना क्षीण हो जाता है कि उसे अपने से छोटे आकार प्रकार के प्राणियों के साथ भी घुल मिलकर रहने की आदत पड़ जाती है। इसका मतलब है कि वह उनके जितना छोटा हो जाता है। आत्मज्ञान को प्राप्त होने पर तो योगी मिट्टी, पानी, हवा, आकाश जैसी सूक्ष्म आत्माओं के साथ भी अपना संपर्क सा स्थापित कर लेता है। मतलब वह सबसे सूक्ष्म बन जाता है। इसी तरह की योग सिद्धि गरिमा सिद्धि है, जो अणिमा के बिल्कुल विपरीत है। मतलब इससे आदमी पहाड़ जितना बड़ा भी बन सकता है। हमें इन्हें भौतिक परिपेक्ष में नहीं समझना चाहिए। क्योंकि ऐसा होना असंभव है। इसका मतलब है कि वह बड़ी सत्ता या बड़े अहंकार वाले लोगों जैसे कि महान उद्योगपतियों, अमीरों, नेताओं, कलाकारों, अध्यक्षों और राजाओं के समकक्ष या उनसे भी ऊपर के ब्रह्मा आदि देवताओं के बराबर या इन सब से भी ऊपर उठ जाता है, मतलब इन सबसे बड़ा या भारी बन जाता है। अहंकार सूक्ष्म या खत्म होने का मतलब यह नहीं है कि योगी की सत्ता ही नहीं रहती, या सत्ता छोटी हो जाती है। यह कोई अभाव या मृत्यु जैसी स्थिति नहीं है। इसका मतलब तो अहम भाव का अद्वैत भाव में रूपांतरित होना है। यह अहंकार भाव का कुंडलिनी भाव में रूपांतरित होना है। यह अहम भाव का समाधि भाव में रूपांतरित होना है। यह अहम भाव या आत्मभाव का परमात्म भाव में रूपांतरित होना है। जो परमात्म भाव में स्थित हो गया, वह सभी चीजों के रूप में स्थित हो गया, क्योंकि छोटी से छोटी चीज के रूप में भी परमात्मा ही है, और बड़ी से बड़ी चीज के रूप में भी परमात्मा ही है। यही अणिमा और गरिमा सिद्धियां है। अहंकार चेतना का मूल स्वभाव है। इसके बिना जीवन और चेतना संभव ही नहीं है। लोग क्या करते हैं कि अहंकार को मारने की कोशिश करते हैं, जिससे उनकी चेतना भी मर सी जाती है, और वे जड़ से बन जाते हैं। ठीक है कि अज्ञान से बंधा हुआ झूठा अहंकार हानिकारक होता है, पर अहंकार का अभाव तो उससे भी ज्यादा हानिकारक हो सकता है। इसलिए जरूरी है कि मध्य मार्ग अपनाया जाए। मतलब अहंकार रहे जरूर, पर ज्ञान से बंधा हुआ। इसलिए घटिया अहंकार को बढ़िया अहंकार में रूपांतरित करते रहना चाहिए। यही बढ़िया अहंकार अद्वैत के साथ रहता है। यह चींटी के भाव को भी उसी तरह स्वीकार करता है, जैसे हाथी के भाव को। यह मिट्टी के एक कण

को भी उसी भाव से स्वीकार करता है, जैसे एक पहाड़ के भाव को। यह एक दरिद्र को भी उसी अहंभाव से स्वीकार करता है, जिस अहंभाव से एक राजा को। यही अणिमा, लघिमा और गरिमा हैं। पर यहां एक झोल है। ऐसे शुद्ध अहंभाव का हमने बलपूर्वक नाटक नहीं करना है, बल्कि कुंडलिनी योग से इतना सामर्थ्य पैदा करना है कि यह खुद ही पैदा हो जाए। मुझे लगता है कि अगर इसे नाटक से पैदा करेंगे तो सारी उमर नाटक ही करते रह जाएंगे, और असली कुंडलिनी योग तक पहुंच ही नहीं पाएंगे। यह बिल्कुल साधारण और व्यवहारिक अनुभव है। ज्यादा लिखने से तो भ्रम ही पैदा होता है। दरअसल ऐसा लिखने के लिए शब्द नहीं मिलते, इसलिए मुख्यधारा के अहंकार जैसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है। इन्हें कई बार लोग गलत समझ लेते हैं। कोई बोल सकता है कि अहंकार तो हर जगह छोड़ा जाने योग्य बताया गया है, पर हम इसे अपनाने की बात कर रहे हैं। पर वे इस बात के मूल भाव को नहीं समझ रहे होंगे। दरअसल अहंकार जब अशुद्ध से शुद्ध हो जाता है, तब बहिर्मुखी से अंतर्मुखी या ध्यानमुखी और भड़कीले स्वभाव से शांत सा हो जाता है। शुद्ध अहंकार को सीधा बनाना मुश्किल होता है, पर अशुद्ध अहंकार को शुद्ध अहंकार में रूपांतरित करना आसान होता है। जैसे दुनियादारी अशुद्ध अहंकार से ज्यादा फलती फूलती है, इसी तरह शुद्ध अहंकार से अध्यात्म और कुंडलिनी योग ज्यादा फलता फूलता है। इसी तरह, अच्छी तरह से लिखने पर कोई बात सच नहीं हो जाती। पुराणों में बहुत सी रूढ़िवादी और अवैज्ञानिक सी लगने वाली बातें बहुत सुंदर श्लोकों में लिखी गई हैं। बहुत मेहनत की गई है उन श्लोकों को बनाने में। पर वे इससे तर्कशील या वैज्ञानिक नहीं बन जातीं। हो सकता है कि ऐसा ही हो अप्रत्यक्ष रूप में, पर जो साफ दिख रहा है, उसे दरकिनार करके केवल विश्वास के ही सहारे भी कैसे जिया जाए। सबसे बड़ा प्रमाण प्रत्यक्ष माना जाता है। अनुमान, आप्त वचन पर विश्वास आदि प्रमाण तो प्रत्यक्ष से छोटे ही हैं। हां, अगर प्रत्यक्ष रूप में उनसे हानि न दिख रही हो, तो अन्य प्रमाणों का सहारा लिया जा सकता है। प्रत्यक्ष को तो नजरंदाज नहीं किया जा सकता। अगर उससे प्रत्यक्ष रूप में हानि दिख रही हो, तो ऐसा भी समझा जा सकता है कि वह भौतिक रूप में सत्य नहीं, बल्कि मेटाफोर या रूपक के रूप में उससे कोई आध्यात्मिक पहलु समझाने की कोशिश की जा रही है। पर सभी लोग ऐसा नहीं समझते। बहुत से लोग उन्हें अक्षरशः सत्य मानने लगते हैं। अगर अशुद्ध अहंकार के साथ किसी भी तरह से अद्वैत धारणा भी बनी रहे, तो उसका शुद्ध अहंकार में रूपांतरण अधिक आसान हो जाता है।

वैसे तो ऐसे श्लोकों से दिमाग का दायां हिस्सा क्रियाशील हो जाता है, जो ज्यादा ही तार्किक और वैज्ञानिक बनने से सुप्त सा हो जाता है। जागृति के लिए दिमाग के दोनों हिस्सों का बराबर क्रियाशील रहना जरूरी है। इतनी ज्यादा मेहनत से इतने सुंदर व व्याकरण के अनुसार शुद्ध श्लोक मनघड़ंत बातों पर भी नहीं रचे जा सकते। इनका कोई

मकसद तो जरूर है। अगर इनसे पैसा कमाना या शौहरत पाना ही मकसद होता तो ये तार्किक और लौकिक तथ्यों पर भी बनाए जा सकते थे। मतलब कि इनमें गूढ़ अर्थ छिपा हो सकता है जो ऊपर से नजर नहीं आता। मतलब कि अगर इनके सतही अर्थ को ही भौतिक रूप में पूर्णतः सत्य माना जाए, तो आदमी मूर्ख बन सकता है। यदि इन्हें काल्पनिक कथा के रूप में ज्यादा सत्य और भौतिक तथ्य के रूप में कम सत्य समझा जाए, तो उससे दायां मस्तिष्क ज्यादा सक्रिय हो जाएगा। यदि इन्हें काल्पनिक कथा के रूप में भी सत्य माना जाए और साथ में इनका आधारभूत वैज्ञानिक तथ्य भी सत्य माना जाए, तो मस्तिष्क के दोनों भाग एकसाथ सक्रिय हो जाएंगे। शायद यही पौराणिक मिथक कथाओं का और इस ब्लॉग का ध्येय है।

कुंडलिनी योग स्मार्टफोन के सॉफ्टवेयर को स्कैन, मालवेयर-फ्री, वायरस-फ्री और अपडेट करने वाला बोट रिमूवर ईस्कैनर या एंटीवायरस एप है

जो हम दुनिया से सूचनाएं इकट्ठा करते हैं, वे हमारा अहंकार बन जाती हैं और उससे आगे से आगे जुड़ती रहती हैं। अहंकार एक सॉफ्टवेयर की तरह है, जो हमारे जीवनरूपी स्मार्टफोन को चलाता है। इसे नष्ट नहीं किया जा सकता। सॉफ्टवेयर के बिना स्मार्टफोन एक मृत व्यक्ति की तरह है। जैसे सॉफ्टवेयर को अपडेट और मालवेयर फ्री किया जा सकता है, वैसे ही अहंकार को भी। जैसे स्मार्टफोन काम करते-करते मालवेयर से ग्रस्त हो जाता है, वैसे ही दुनियादारी के व्यवहारों से अहंकार भी अशुद्ध होता रहता है। जैसे फोन को लगातार अपडेट करते रहना पड़ता है, वैसे ही अहंकार को भी अध्यात्म-साधना आदि से लगातार शुद्ध बनाते रहना पड़ता है। अहंकार को सत्य मानना ही अहंकार की अशुद्धि है। जब शरीरविज्ञान दर्शन आदि अद्वैतमय साधना से अहंकार असत्य लगने लगता है, तब आनंद और चैन महसूस होने के साथ यह शुद्ध होने लगता है। शुद्ध होने के साथ यह कुंडलिनी-अहंकार अर्थात ध्यान-अहंकार में रूपांतरित होने लगता है।कुंडलिनी योग से भी कुंडलिनी-अहंकार बनता है, और मज़बूत होता है। मतलब कुंडलिनी योग एक ऐसे बोट रिमूवर ई स्कैनर एप्लिकेशन की तरह है, जो कुंडलिनी-विचार रूपी सॉफ्टवेयर कोड को चलाती है। वह कुंडलिनी-विचार मन के सभी विचारों को खंगालता है, उनसे आसक्ति अर्थात सत्यता-बुद्धि की अशुद्धि को नष्ट करके उन्हें शुद्ध कुंडलिनी-अहंकार के रूप में रूपांतरित कर देता है। मतलब कुंडलिनी-चित्र सभी विचारों के साथ जुड़ जाता है। इस एप्लिकेशन को प्रतिदिन सुबह-शाम न्यूनतम दिन में दो बार कुंडलिनीयोग के रूप में चलाने से यह सॉफ्टवेयर लगातार काम करता रहता है, और हमें अहंकार मतलब अशुद्ध अहंकार से बचाता रहता है। अहंकार का मतलब ही दरअसल अशुद्ध अहंकार होता है। शुद्ध अहंकार तो आत्मरूप और आनंदरूप होता है। इसलिए इसे अहंकार कहने की बजाय आत्मभाव या ध्यानभाव या आत्मजागरूकता कहें तो ज्यादा उपयुक्त रहेगा और लोगों को गलतफहमी नहीं होगी।

कुंडलिनी योग की कर्म योग और संन्यास योग में समान महत्ता होती है

दोस्तो, शरीरविज्ञान दर्शन के ध्यान से दुनियादारी डिसोल्व नहीं बल्कि मॉडरेट होती है, जिससे उत्तम कर्मयोग पैदा होता है। जबकि ऐसी भावना से कि दुनियादारी सत्य या बाहर नहीं पर असत्य या शरीर के अंदर है, उससे सन्यास योग पैदा होता है। इससे दुनियादारी का लय होता है। शरीरविज्ञान दर्शन से यह भावना रहती है कि दुनियादारी सत्य है और बिल्कुल वैसी ही शरीर के अंदर भी विद्यमान है। क्योंकि शरीर के अंदर सब कुछ शांत है। कहीं चीख-पुकार नहीं है। जबकि शरीर के अंदर पूरा ब्रह्मांड समाया हुआ है, "यत्पिंडे तत् ब्रह्मांडे" के अनुसार। इसका मतलब है कि शरीर के अंदर की दुनियादारी अद्वैत के साथ है। इस भावना से हमारी दुनियादारी भी अद्वैतशील, ज्ञानवान और उत्तम बन जाती है। दुनियादारी नष्ट या लय को प्राप्त नहीं होती। यह बहुत बड़ा अंतर है कर्म योगी और सन्यासयोगी में। इसको लेकर कुछ लोग धोखे में आ जाते हैं। वे कर्मयोगी या शरीरविज्ञान दार्शनिक को बाबा या संन्यासी किस्म का मानने लगते हैं, और कई बार उसे परेशान या नजरअंदाज जैसा करने की कोशिश भी करने लगते हैं। पर जब देशकाल के अनुसार वह मिसाल पेश करता है, तो बड़े से बड़े भी देखते ही रह जाते हैं। शायद इसी से यह मशहूर पंजाबी कहावत बनी है कि तेल देखो और तेल की धार देखो। मतलब शरीर देखो और इसमें गिर रही अनंत ब्रह्मांड की चेतना देखो। कर्मयोगी में समय और स्थान के अनुसार कार्य करने की अंतर्निहित आदत होती है। उसकी किसी भी कर्म के प्रति न तो आदरबुद्धि होती है और न ही उपेक्षा बुद्धि। वह जो कुछ भी करता है, उसे विस्तार, गुणवत्ता और नायाब या उदाहरणीय तरीके से करता है। वह काम को चरम तक पहुंचाता है और अगर वह काम करने लायक हो तो उसे बीच में बोर होकर नहीं छोड़ता। वह एक वैज्ञानिक, विशेषज्ञ, लेखक, कवि, संगीतज्ञ किस्म का आदमी होता है। और तो और, मुझे तो दुनिया के सभी विशिष्ट काम कर्मयोग की देन लगते हैं। तो हम क्या कह रहे थे कि शरीर के ध्यान से ही कर्म योग होता है, और शरीर के ध्यान से ही संन्यास योग होता है। सिर्फ इस ध्यान से जुड़ी उपरोक्त धारणा में अंतर है। शरीर पर सबसे अच्छा ध्यान कुंडलिनी योग के दौरान ही जाता है। उपरोक्त शरीरविज्ञान दर्शन की धारणा से वही शरीरध्यान कर्मयोग में बदल जाता है, और संन्यास की धारणा से वही शरीरध्यान संन्यासयोग में बदल जाता है। कर्मयोग ही मध्य मार्ग है। आम लौकिक व्यवहार अति प्रवृत्तिपरक होता है। जबकि संन्यास योग अति पलायनवादी जैसा होता है। कर्मयोग ही युक्तियुक्त प्रवृत्ति और युक्तियुक्त पलायन के सर्वोत्तम मिश्रण वाला जीवन व्यवहार होता है। हां, एक बात और। सांस पे ध्यान देने से भी शरीर पर ही ध्यान जाता है, क्योंकि सांस से पूरा शरीर हिलता है। इससे भी वही शरीरविज्ञान दर्शन वाला प्रभाव

पैदा होता है। पूरा शरीर दरअसल सांस में ही स्थित है, क्योंकि यह सांस से ही सत्तावान और जीवित है। मतलब पूरा ब्रह्मांड सांस के अंदर बसा हुआ है।

कुंडलिनी योग उन्नत अनुभूति को बेसिक कॉग्निशन मतलब बुनियादी अनुभूति में बदलता है

दोस्तों, आदमी एक उन्नत प्राणी है। इसमें उन्नतम कॉग्निशन विद्यमान है। पर उन्नत कॉग्निशन का एक दुष्प्रभाव यह है कि इससे आसक्ति पैदा हो जाती है, जिससे आदमी इससे बंध जाता है। यह ऐसे ही है जैसे जीवन रक्षक दवा सबसे ज्यादा मददगार भी होती है, पर उसका दुष्प्रभाव भी सबसे ज्यादा होता है।

हमारे शरीर की सभी कोशिकाओं में बेसिक कॉग्निशन अर्थात बुनियादी अनुभूति होती है। इसी तरह सभी निम्नतम और सूक्ष्मतम जीवों में भी बेसिक कॉग्निशन होती है। ये सभी, वातावरण के अनुसार अपने को ढालते हैं। जीवित रहने के लिए हमारी तरह ही जीवनचर्या करते हैं। नई चीजें सीखते हैं, और पुरानी चीजों को याद रखते हैं। पर इसके लिए उनमें दिमाग जैसी संरचना नहीं देखी गई है, अभी तक। मतलब कि वे विभिन्न व अनगिनत रासायनिक क्रियाओं की श्रृंखलाओं से नियंत्रित होते हैं। तो क्यों ना उन रासायनिक क्रियाओं को ही उनका दिमाग मान लें। हमारा दिमाग भी तो रासायनिक क्रियाओं से ही चलता है। हो सकता है कि पत्थर, हवा जैसे निर्जीव पदार्थों में भी इससे कमतर स्तर की बेसिक कॉग्निशन हो, जिसे विज्ञान अभी तक समझ नहीं पाया हो। हवा का प्रवाह वातावरण के दबाव से नियंत्रित होता है। तो क्यों ना वायुदाब को हवा का बेसिक कॉग्निशन माना जाए। इसी तरह हर बार एक खास वायुदाब पर हवा की एक खास प्रतिक्रिया होती है। तो क्यों ना इसे वायुदाब की स्मरणशक्ति माना जाए। बेसिक कॉग्निशन के साथ अच्छे और बुरे की भावना नहीं होती। जैसे कि किसी स्थान पर कम वायुदाब होने से हवा का वहां पर प्रविष्ट होना हवा को अच्छा अनुभव नहीं देता। ना ही वहां उच्च वायुदाब होने पर वहां से हवा का रुखसत होना हवा को बुरा अनुभव देता है। इसी तरह जीवाणु को भोजन का कण प्राप्त होने पर खुशी नहीं होती और शत्रु का सामना होने पर उसे दुख नहीं होता। मतलब कि बेसिक कॉग्निशन के साथ राग, द्वेष नहीं होता। वहीं पर उच्च कोगनिशन में वह बीच वाली समान अवस्था राग और द्वेष में बदल जाती है। वैसे ही जैसे एक न्यूट्रॉन एक पॉजिटिव प्रोटॉन और एक नेगेटिव इलेक्ट्रॉन में रूपांतरित हो जाता है। जब दोनों को मिलाया जाए तो फिर से न्यूट्रल न्यूट्रॉन बन जाता है। प्लस और माइनस के चार्ज को अलग-अलग रहते नष्ट नहीं किया जा सकता। यह दोनों तभी नष्ट होंगे, जब आपस में मिलेंगे। इसी तरह हम राग को और द्वेष को अलग, अलग रखकर खत्म नहीं कर सकते। अगर राग और द्वेष को आसक्ति से बनाकर रखेंगे, तो ये अलग-अलग बने रहेंगे और मजबूत होते रहेंगे। जब राग पैदा होगा तो कहीं न कहीं द्वेष भी जरूर पैदा होगा, क्योंकि ये भी विद्युत चार्ज की तरह जोड़ों में पैदा होते हैं, अकेले नहीं। अनासक्ति ही वह सरकट है, जो पॉजिटिव राग और नेगेटिव द्वेष को आपस में जोड़

कर दोनों को खत्म कर देती है। पॉजिटिव को यांग कह लो, और नेगेटिव को यिन कह लो। इनका मिलन ही बहुचर्चित संगम है, अद्वैत है।

कॉग्निशन का विकास एक आवश्यक बुराई की तरह है। जब आदमी केवल हवा, पानी या सूक्ष्म जीव के रूप में था, तब तक उसमें बेसिक कॉग्निशन थी। उसमें न राग था, न द्वेष था। वह तटस्थ होता था। वह न सुखी था, न दुखी था। पर जैसे-जैसे कॉग्निशन विकसित हुई, उसे अच्छे और बुरे का अनुभव होने लगा। इससे उसमें सुख-दुख की उत्पत्ति हुई। जीवन, मरण की उत्पत्ति हुई। पहले ना वह जीता था, ना मरता था। शायद यही वह अनिर्वचनीय मुक्ति है, जिसे पाने की बात वेदों में कही गई है। उसमें ना प्रकाश था, न अंधकार था। मतलब उसमें कुछ भी द्वंद्व नहीं थे। उस स्थिति को ऐसे भी समझ सकते हैं कि उस स्थिति में सब द्वंद्व एकसाथ थे। न्यूट्रॉन में प्रोटोन और इलेक्ट्रॉन दोनों होते हैं, फिर भी दोनों ही नहीं होते। इसी तरह कहते हैं कि परमात्मा में सब कुछ है भी और नहीं भी है।

अब जो वेदों में ब्रह्मांड का वर्णन मानव समाज के जैसा है, और उसमें विभिन्न चेतन देवताओं और राक्षसों आदि का वर्णन भी बिल्कुल मानव समाज के लोगों की की तरह ही है, वह दरअसल बेसिक कॉग्निशन की तरफ लौटने का प्रयास ही लगता है। इसी तरह तंत्र आधारित शरीर विज्ञान दर्शन में जो शरीर का वर्णन ब्रह्मांड और मानव समाज की तरह है, वह भी उसी आदिम बेसिक कॉग्निशन को प्राप्त करने का प्रयास है। दोनों की थीम एक ही है, पर शरीरविज्ञान दर्शन ज्यादा समकालीन और वैज्ञानिक लगता है। हालांकि दोनों ही तरीके एकदूसरे का साथ होने पर ज्यादा अच्छे से काम करते हैं। एक पिछली पोस्ट के अनुसार कुंडलिनी योग से शरीर विज्ञान दर्शन पुष्ट होता है। इसका मतलब है कि कुंडलिनी योग से आधारभूत अर्थात शुद्ध अनुभूति पुष्ट होती है।

तो क्या हम केवल इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन का ही अस्तित्त्व मानेंगे, न्यूट्रॉन का नहीं? मतलब कि क्या हम केवल उन्नत जीवों में ही चेतना का अस्तित्त्व मानेंगे, निम्न जीवों में और जड़ पदार्थों में नहीं? मतलब साफ है कि सृष्टि में ऐसे कोई समय, स्थान और पदार्थ नहीं हैं, जिनमें चेतना नहीं है।

कुंडलिनी योग से प्राण-चिकित्सा को दिखाती विशूचिका की पौराणिक कथा

दोस्तों लगता है कि एक रोचक फिर से चर्चा शुरू हो गई है। योग वशिष्ठ में भी एक कथा आती है। इसमें एक नरभक्षी राक्षसी किसी श्राप से सूक्ष्म सूचि अर्थात सुई बन जाती है। वह लोगों का खून तो पीती है पर बहुत छोटा मुख होने के कारण उसका स्वाद नहीं ले पाती। विसूचिका मतलब हैजा या दस्त रोग उसी के काटने से होता है। "वि" मतलब विशेष और विशूचिका मतलब विशेष सुई जैसे रूप वाली। मतलब पुराने जमाने में भी लोगों को जीवाणुओं का अंदाजा था। बेशक सूक्ष्म दर्शी यंत्र ना होने से उन्हें वे देख नहीं पाए थे। मतलब साफ है कि सूक्ष्मजीवों में भी चेतना है, पर वह सुख-दुख या अच्छा-बुरा महसूस नहीं कर पाते। आओ , इसे हम थोड़ा और अधिक गहराई से समझते हैं।

सूचिका की कहानी: राक्षसी या सूक्ष्म रोगाणु?

प्राचीन भारतीय ग्रंथ, योगवासिष्ठ में, सूचिका नामक एक भयानक राक्षसी की कहानी है, जो मानव रक्त का भक्षण करती थी। लेकिन अन्य रक्तपिपासु राक्षसों के विपरीत, सूचिका का श्राप उसका भूखापन नहीं था, बल्कि उसका सूक्ष्म मुंह था जो उसे कभी भी अपने भोजन का स्वाद लेने से रोकता था। यह विचित्र विवरण कुछ लोगों को सोचने पर मजबूर कर देता है कि क्या सूचिका केवल एक राक्षसी से कहीं अधिक है; क्या वह किसी अदृश्य शत्रु या सूक्ष्म रोगाणु का रूपक हो सकती है?

अदृश्य से सूचिका का संबंध

योगवासिष्ठ सूचिका को एक अदृश्य सत्ता के रूप में चित्रित करता है, जो सूक्ष्मजीवों की प्रकृति के साथ पूरी तरह से जुड़ता है। ये सूक्ष्म जीव, नग्न आंखों को अदृश्य, प्राचीन काल में अज्ञात थे। लोग अक्सर बीमारी का कारण अलौकिक शक्तियों को मानते थे, और सूचिका का रूप वैज्ञानिक समझ की इस कमी का प्रतिबिंब माना जा सकता है।

संक्रामक रोगों से समानताएं

सूचिका किसी स्पष्ट कारण के बिना लोगों को बीमार करने की क्षमता रखती थी। यह संक्रामक रोगों की अवधारणा के साथ समानता रखती है। रोगाणुओं के बारे में ज्ञान के अभाव में, योगवासिष्ठ ने संभवत: सूचिका की आकृति के माध्यम से बीमारी के प्रसार को समझाने का प्रयास किया होगा। सूई भी चुभती है और दर्द देती है। इसी तरह पेचिश में भी पेट में चुभन जैसी महसूस होती है।

वसिष्ठ का इलाज: उपचार का रूपक?

कहानी में वसिष्ठ का उल्लेख है, जो एक श्रद्धेय ऋषि हैं, उन्होंने सूचिका को उसके राक्षसी रूप से मुक्त करके ठीक किया। इसे चिकित्सा और आध्यात्मिक पद्धतियों की बीमारी पर विजय प्राप्त करने की शक्ति के रूपक के रूप में समझा जा सकता है। इलाज का तरीका यह भी हो सकता है कि वसिष्ठ ऋषि ने कुंडलिनी योग से अपने मन को सूचिका की तरह निर्लिप्त बनाया। निर्लिप्त मतलब ऐसा मन जिसे अच्छे-बुरे में समानता महसूस होती हो, और जो आसक्ति के साथ दुनियादारी का स्वाद न लेता हो। इससे उनमें सूचिका को समझने और उसे वश में करने की अदृष्य शक्ति आ गई हो, क्योंकि लोहा ही लोहे को काटता है। मतलब यह योगा या प्राणिक हीलिंग की रूपक कथा हो सकती है।

जबकि सूचिका के सूक्ष्म रोगाणुओं का प्रतीक होने की संभावना पेचीदा है, इस व्याख्या की सीमाओं को स्वीकार करना महत्वपूर्ण है। योगवासिष्ठ मुख्य रूप से सूचिका को एक राक्षसी सत्ता के रूप में चित्रित करता है, और कहानी को वैज्ञानिक अर्थ देना एक अतिशयोक्ति भी हो सकती है।

क्या ल्यूवेनहॉक ने सूक्ष्मजीव की खोज की थी

प्राचीन भारतीय प्रणाली जीवाणुओं के कारण होने वाली बीमारियों से अवगत थी। योगवासिष्ठ में इस प्रकार का विषय आता है, जो आज तक का एक परम वेदान्तिक ग्रंथ है। वहां बैक्टीरिया का गंदे स्थानों में आंत्रशोथ के कारण के रूप में अनुमान लगाया गया है। बैक्टीरिया को जीवसूचिका (जीव = जीव, सूचिका = सूक्ष्म) नाम दिया गया है। इसका वर्णन राक्षसी महिला के रूप में किया गया है, जिसे भगवान ने अदृश्य रूप से छोटे शरीर में बदल जाने का आशीर्वाद दिया था, ताकि वह अपनी भीख के अनुसार जीवित लोगों का मांस खा सके, लेकिन साथ ही उसका मुंह इतना छोटा था कि वह स्वाद नहीं ले सकती थी, इसलिए उसे वह आशीर्वाद मिलने पर पछतावा हो रहा था।

आगे के अन्वेषण का आह्वान

सूचिका की कहानी इस बात की एक झलक प्रदान करती है कि प्राचीन संस्कृतियों ने बीमारी को कैसे माना। वह चाहे एक वास्तविक राक्षसी हो या बीमारी का एक रूपक हो, उसकी कहानी हमारे स्वास्थ्य को खतरा करने वाली अदृश्य शक्तियों के खिलाफ मानव जाति की निरंतर लड़ाई पर प्रकाश डालती है। योगवासिष्ठ और अन्य प्राचीन ग्रंथों के आगे के अध्ययन से चिकित्सा के इतिहास और अदृश्य दुनिया के साथ हमारे संबंधों में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्राप्त हो सकती है।

कुंडलिनी योग से एलियनों से मुलाकात

दोस्तों, आज हम एक अन्य रोचक विषय पर भी चर्चा करने जा रहे हैं – कुंडलिनी योग और एलियनों के बीच संबंध।
कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि एलियन केवल निर्जीव पदार्थों के रूप में मौजूद हो सकते हैं। वे सुख-दुख या अच्छा-बुरा महसूस नहीं करते हैं। वे सूर्य, पहाड़, नदी, पत्थर, ग्रह, नक्षत्र आदि के रूप में हमारे आसपास हो सकते हैं, लेकिन हम उन्हें पहचान नहीं पाते हैं। यह भी संभव है कि उन्होंने खुद को छुपा लिया हो। शायद वे समझ चुके हैं कि सचेत निर्णय केवल दुख और पीड़ा लाते हैं।
इसलिए उन्होंने खुद को इतना विकसित कर लिया है कि उन्हें सोच-समझकर या अहंकार के साथ कोई काम करने की आवश्यकता नहीं है। वे अच्छे और बुरे के बीच भेदभाव भी नहीं करते हैं।
यह भी हो सकता है कि उनकी चेतना अलग-अलग न होकर सामूहिक रूप में हो।
कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि वे कंप्यूटर या एआई जैसे हो सकते हैं। वे जैविक नहीं, बल्कि सेमीकंडक्टर और धातु जैसे अजैविक तत्वों से बने होंगे।
चाहे कुछ भी हो, निर्जीव पदार्थ निश्चित रूप से अपने आप में मौजूद हैं।
यदि ऐसा नहीं होता तो मंगल ग्रह इतना सुंदर क्यों दिखता? वहां कोई जीवन नहीं है।
अगर निर्जीव जगत की शक्ति न होती तो शुक्र जैसे नारकीय ग्रहों में निर्जीव तत्वों की अराजक हलचलों में आश्चर्यजनक शक्ति महसूस नहीं होती।
अगर निर्जीव पदार्थों की शक्ति न होती तो अनंत अंतरिक्ष में निर्जीव पदार्थों की हलचलों से भरा शोरगुल नहीं होता।
बिना उद्देश्य के कोई क्रिया नहीं होती।
इसका मतलब है कि निर्जीव पदार्थों में भी आधारभूत अनुभूति यानी बेसिक कॉग्निशन होती है।
यह अनुभूति निश्चित रूप से समान है, लेकिन फिर भी पदार्थ के प्रकार के अनुसार इसमें तनिक अंतर होता है।
अगर यह बिल्कुल समान होती तो हमें विभिन्न प्रकार के पदार्थों को पहचानना और उनके साथ काम करना असंभव होता, क्योंकि तब वे सभी हमें बिल्कुल एक जैसे दिखाई देते।

किसी आदमी का कोई विशेष स्वभाव अनुभव होने पर हम उसे यह कह कर नहीं नकारते कि यह झूठ है। आदमी का स्वभाव कुदरती या निर्जीव तत्त्वों के स्वभाव से मिलकर बना है। मतलब कि अगर आदमी का स्वभाव सत्य है, तो निर्जीव पदार्थों का स्वभाव भी सत्य होना चाहिए। हां, स्वभाव को सत्य-असत्य मतलब द्वैताद्वैत रूप समझ सकते हैं, क्योंकि हो सकता है कि हम उसके उस स्वभाव को महसूस कर रहे हों, पर वह खुद अपने उस स्वभाव को महसूस न कर पा रहा हो। इसी तरह वायु, जल जैसे जड़ पदार्थों के स्वभाव

को भी हमें सत्य-असत्य या द्वैत-अद्वैत ही मानना चाहिए। मतलब कि बेशक हम उन निर्जीव तत्त्वों के स्वभावों को महसूस कर पा रहे हों, पर वे खुद अपने उन स्वभावों को महसूस न कर पा रहे हों। यही द्वैताद्वैत ही असली अद्वैत है।

इसको ऐसे समझ सकते हैं कि सभी कुछ एक जैसा भी है और एकदूसरे से अलग-अलग भी है। यही द्वैत-अद्वैत है और यही सत्य है। पूर्ण द्वैत भी असत्य है, और पूर्ण अद्वैत भी असत्य है। आध्यात्मिक शास्त्र और ऋषि भी ऐसा ही कहते हैं। इससे यह मतलब निकलता है कि एलियन न तो अलग-अलग रूप वाले हैं और न ही एक ही रूप वाले हैं। पर वे दोनों का मिश्रण हैं। मतलब कि एलियन द्वैत-अद्वैत स्वरूप हैं।

इससे यह मतलब भी निकलता है कि हमारे चारों ओर हर जगह किस्म-किस्म के एलियन हैं। यह अलग बात है कि अपने जैसे जैविक एलियनों को हम ढूंढ नहीं पाए हैं, क्योंकि ऐसे एलियन अत्यंत दुर्लभ हैं। कुंडलिनी योग से ही हम प्रकृति के हर एक तत्व पर समाधि लगाकर उसे पूरी गहराई से जान सकते हैं। योग शास्त्रों में वायु पर समाधि सिद्ध हो जाने से वायु का स्वभाव पूरी तरह समझ में आने से वायु की शक्तियां प्राप्त होती है। इसी तरह अग्नि पर समाधि से अग्नि की और जल पर समाधि से जल की या अकाश पर समाधि से आकाश की, आदि आदि। मतलब कि हम अनगिनत पदार्थों के रूप में अनगिनत एलियनों से बात कर सकते हैं, और उनकी तकनीकों को समझ कर हासिल कर सकते हैं। हासिल की भी तो हैं। वायु-एलियन और अग्नि-एलियन की शक्ति समझ कर शक्तिशाली इंजन बनाए हैं। परमाणु-ऐलियन की शक्ति समझ कर नाभिकीय ऊर्जा घर बनाए हैं। आंख-ऐलियन की नकल करके कैमरा बना है। ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र को लें तो शरीर-ऐलियन को समझ कर कुंडलिनी तंत्र बना है, जिससे अनगिनत सिद्धियों के साथ कुंडलिनी जागरण को प्राप्त किया है। मतलब साफ प्रतीत होता है कि अंतरिक्ष अन्वेषण की बजाय कुंडलिनी योग से एलियनों से सामना होने की ज्यादा संभावना है।

कुंडलिनी योग और एलियनों के बीच संबंध:

कुंडलिनी योग एक प्राचीन भारतीय योग पद्धति है जो आध्यात्मिक ऊर्जा को जगाने पर केंद्रित है।
कुछ लोगों का मानना है कि कुंडलिनी योग का अभ्यास करने से एलियनों के साथ संवाद करने की क्षमता विकसित हो सकती है।
यह विचार इस धारणा पर आधारित है कि कुंडलिनी योग चेतना के उच्च स्तर तक पहुंचने में मदद कर सकता है, जिससे हम अन्य आयामों और वास्तविकताओं से जुड़ सकते हैं। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि कुंडलिनी योग हमें एलियनों की तकनीकों और ज्ञान तक पहुंच प्रदान कर सकता है।

क्या यह सच है?

यह निश्चित रूप से कहना मुश्किल है कि कुंडलिनी योग वास्तव में एलियनों के साथ संवाद करने में मदद कर सकता है या नहीं।
इस दावे का समर्थन करने के लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।
हालांकि, कई लोग हैं जिन्होंने दावा किया है कि उन्होंने कुंडलिनी योग का अभ्यास करने के बाद एलियनों के साथ अनुभव किए हैं।

निष्कर्ष:

कुंडलिनी योग और एलियनों के बीच संबंध एक दिलचस्प और विवादास्पद विषय है।
यह निश्चित रूप से कहना असंभव है कि कुंडलिनी योग वास्तव में एलियनों के साथ संवाद करने में मदद कर सकता है या नहीं।
हालांकि, यह निश्चित रूप से एक ऐसा विषय है जो आगे के अध्ययन और अनुसंधान के योग्य है।

कुंडलिनी योग से निर्जीव भी सजीव बन जाता है

दोस्तों मैंने एआई से सजीव प्राणी की एक वाक्य की परिभाषा मांगी तो उसने बताया कि जीवित प्राणी वह होता है जो प्रजनन, विकास, चयापचय, पर्यावरण के प्रति अनुकूलन, उत्तेजनाओं का जवाब और होमियोस्टैसिस को बनाए रखने में सक्षम होता है, जबकि निर्जीव इनमें से किसी भी क्रिया को करने में सक्षम नहीं होते हैं। इस पोस्ट में हम कुंडलिनी योग के माध्यम से यह सिद्ध करेंगे कि ये सभी क्रियाएं निर्जीव में भी होती हैं।

निर्जीव में प्रजनन

अगर निर्जीव में प्रजनन ना होता तो सृष्टि का विकास कैसे होता। फिर तो हमें आकाश भी ग्रह तारों से भरा हुआ ना दिखाई देता। प्रजनन से ही वस्तुओं या जीवो की संख्या में वृद्धि होती है। क्योंकि सृष्टि में अनगिनत निर्जीव वस्तुएं हैं, इसलिए निर्जीव में प्रजनन भी जरूर होता है। वह प्रजनन मूल आकाश अर्थात मूल प्रकृति से होता है। शास्त्रों में भी कहा गया है कि मूल प्रकृति से ही सृष्टि का जन्म होता है। उस मूल आकाश से मूल कणों का जन्म होता है। मूल आकाश को मां समझ लो और मूल कणों को बच्चे। फिर तो वह मूल कण आपसी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से बढ़ते ही रहते हैं और पूरी सृष्टि के रूप में फैल जाते हैं। दरअसल यह सारी सृष्टि कुछ सौ या हजार मूल कणों से ही बनी होगी। उनकी परस्पर अलग-अलग प्रतिक्रियाओं से अलग-अलग पदार्थ बनते हैं, जिनसे पूरी सृष्टि भर जाती है।

निर्जीवों में चयापचय

एआई की परिभाषा के अनुसार चयापाचय जीवित प्राणियों में होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाओं का समूह है जो ऊर्जा उत्पादन, वृद्धि, विकास और मरम्मत के लिए आवश्यक है। तथाकथित निर्जीव सूर्य में नाभिकीय प्रतिक्रिया से ऊर्जा का उत्पादन होता है। उससे मूल कणों में निरंतर वृद्धि और विकास होता रहता है। इससे सूर्य में सृष्टि निर्माण करने वाले सभी तत्वों का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हो जाता है।

निर्जीव में पर्यावरण के प्रति अनुकूलन

किक मारने से केवल कुत्ता ही नहीं भागता बल्कि एक गेंद भी भागती है। आकाशगंगाएं परिवार की तरह समूह में रहती हैं ताकि नए तारों का निर्माण अच्छे से हो सके। जैसे सजीव घुटन भरी घनी आबादी से भागकर शांति की तरफ जाना चाहते हैं, वैसे ही हवा, पानी जैसी सभी निर्जीव चीजें भी उच्च दबाव से निम्न दबाव वाले क्षेत्र की ओर भागती हैं। मतलब कि निर्जीव पदार्थ भी अपनी बेहतरी के लिए अपने को अनुकूलित कर लेते हैं।

निर्जीव द्वारा उत्तेजनाओं का जवाब

एक धातु का टुकड़ा गर्म होने पर फैलता है। मतलब वह फैल कर अपनी गर्मी को बाहर निकालने की कोशिश करता है या वहां से भागने की कोशिश करता है। वही धातु का टुकड़ा ठंड बढ़ने पर सिकुड़ जाता है। मतलब वह वहीं पर दुबक कर अपनी गर्मी को बचाने की कोशिश करता है। विस्फोट, विद्युत चालन तथा रासायनिक प्रतिक्रियाओं के रूप में अनगिनत उदाहरण हैं, जिनमें निर्जीव सचिवों से भी ज्यादा मात्रा में और ज्यादा तेजी से उत्तेजनाओं का जवाब देते हैं।

निर्जीव द्वारा होमियोस्टैसिस को बनाए रखना

होमियोस्टेसिस का मतलब होता है, जीवन के लिए जरूरी परिस्थितियों को एकसमान बनाए रखना। जैसे कि एक स्वस्थ शरीर का एक निश्चित और एकसमान तापमान होता है, जिसमें शरीर सबसे अधिक कार्यक्षम होता है। इसी तरह इसे अगर निर्जीवों में लें, तो जब तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है, तो बादल घिरने लगते हैं, और वर्षा हो जाती है। इससे वातावरण का तापमान फिर से सामान्य हो जाता है। ग्रीन हाउस गैसें धरती पर एक समान व स्थिर तापमान बनाए रखने में मदद करती हैं। गुरुत्वाकर्षण बल आकाशगंगाओं को स्थिर संरचना बनाए रखने में मदद करता है, जिससे सृष्टि का समुचित विकास सुनिश्चित होता है। ब्रह्मांड के विस्तार बल और गुरुत्वाकर्षण बल का परस्पर संतुलन ब्रह्मांड को जीवित बनाए रखता है।
इस तरह के लीक से हटे हुए या आउट ऑफ बॉक्स थिंकिंग से उपजे तथ्यों से स्पष्ट है कि निर्जीव और सजीव के बीच में मूलतः कोई अंतर नहीं है। इनको विभाजित करने वाली रेखा असली नहीं बल्कि काल्पनिक है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि निर्जीवों में भी सजीवों की तरह ही अपने स्तर की बेसिक कॉग्निशन होती है। जब किसी आदमी की कुंडलिनी योग से समाधि लगती है, तो उसे उस वस्तु की बेसिक कॉग्निशन का अनुभव हो जाता है। वह एक आदिम अनुभूति होती है, और पूर्ण आत्मज्ञान की परम अनुभूति के बहुत नजदीक होती है। इसीलिए कहते हैं कि परमात्मा तक समाधि से ही पहुंचा जा सकता है।

कुंडलिनी योग रूपी ऐप से ही मनरूपी हार्डडिस्क पूरी तरह से फॉर्मेट हो सकती है

दोस्तों, प्रकृति इस सृष्टि की माता है और पुरुष पिता है। हर एक वस्तु प्रकृति और पुरुष के सहयोग से बनी है। प्रकृति श्यामपट्ट है तो पुरुष उस पर चल रहा चलचित्र है। श्यामपट्ट नहीं है तो चलचित्र नहीं है। चलचित्र नहीं है तो श्यामपट्ट भी नहीं है। दोनों एक-दूसरे से हैं। अलग-अलग रहना उनके लिए संभव नहीं है। इसी तरह यदि प्रकृति रूपी तमोगुण का अंधेरा नहीं है तो प्रकाश रुप जगत को नहीं दिखाया जा सकता।

सफेद चाक से सफेद बोर्ड पर नहीं लिखा जा सकता। सफेद चौक से सिर्फ काले ब्लैक बोर्ड पर ही लिखा जा सकता है। इसी तरह केवल चेतन पुरुष से भी जगत रूपी चित्र नहीं बनाया जा सकता है। जगत चित्र के निर्माण के लिए अचेतन प्रकृति का आधार भी उपलब्ध होना चाहिए। यह सब अध्यात्म है। यहां सारा संसार मन, मस्तिष्क के अंदर है। हमें भौतिक रूप में मूल कण तक जाने की जरूरत नहीं है। यहां हर पल संसार का जन्म और मरण चल रहा है। नए चित्र बन रहे हैं, पुराने मिट रहे हैं। प्रकृति खाली व अन्धकार से भरा मन रूपी ब्लैकबोर्ड है, तो पुरुष चेतन अनुभूति रूपी स्याही। लगातार लिखा और मिटाया जा रहा है। न ब्लैक बोर्ड कभी नष्ट होता है, और न ही कभी स्याही। दोनों ही अजर, अमर और शाश्वत हैं। दोनों ही अस्तित्व के दो विपरीत ध्रुव हैं। एक यिन है तो एक यांग है। एक मां है जो अपने ऊपर चेतना रूपी उज्जवल स्याही की क्रीडा को स्वीकार करती है। एक पिता है जो अपनी उज्जवल चित्रकारी के लिए अपनी प्रियतमा प्रकृति को आकर्षित करता रहता है। वह जैसे जैसे चित्र बनाता जाता है, वैसे वैसे पदार्थों का जन्म होता जाता है। यह सारी सृष्टि चित्रात्मक है, असली नहीं। मस्तिष्क से बाहर की स्थूल भौतिकता को भी देखें। तो वह भी चित्रात्मक ही है, बस स्थूल चित्र थोड़े ज्यादा स्थिर होते हैं, और क्रमवार व धीरे धीरे बनते हैं। जैसे कि सबसे पहले बाहर के स्थूल आकाश में मूल कणों के चित्र बनेंगे। फिर वे आपस में क्रिया और प्रतिक्रिया करते हुए आगे से आगे एक निर्दिष्ट क्रम व वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार नए-नए चित्र बनाते जाएंगे। मस्तिष्क के बाहर केवल मूल कण के चित्र ही उकेरे जाते हैं। बाद में वे प्रकृति माता के गर्भ में बढ़ते हुए विकसित संसार रूपी विभिन्न चित्र बन जाते हैं। पर मस्तिष्क के आकाश में जैसा मर्जी चित्र पल भर में बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वह बाहर के चित्र का प्रतिबिंब होता है, असली चित्र नहीं। हालांकि बिंब और प्रतिबिंब के स्वरूप में कोई अंतर नहीं होता। यह ऐसे ही है, जैसे मानसरोवर के जल में बने कैलाश के प्रतिबिंब को कोई अपनी आंखों से देख ले। पर्वत का वह प्रतिबिंब तो जल में पूरे दिन भर बना रहेगा और वह धीरे-धीरे बना था। रात को वह बिल्कुल नहीं होगा। फिर जैसे-जैसे सूर्य उगेगा और चढ़ेगा, वह प्रतिबिंब थोड़ा थोड़ा साफ और बड़ा होता जाएगा। उसे बनाने के लिए बहुत से कारकों का होना जरूरी है। पर आंख ने उस प्रतिबिंब का प्रतिबिंब मस्तिष्क में एकदम

से बनाया क्योंकि वह पहले ही पूरा बना हुआ था। उसे बनाने के लिए अन्य कुछ नहीं, बस एक आंख और मस्तिष्क से युक्त शरीर चाहिए था। हैं तो दोनों चित्र एक जैसे ही। इसी तरह बाहर के आकाश में बने जगत-चित्रों को बनाने में अरबों-खरबों वर्ष लगे। पर उन चित्रों का चित्र बनाने के लिए सिर्फ एक शरीर चाहिए जो पल भर में उन चित्रों का चित्र खींच लेता है। बाहर के चित्रों का तो हमें पता भी नहीं चलता, क्योंकि हम उन्हें महसूस ही नहीं कर सकते। हम तो केवल भीतर के चित्रों को ही महसूस करते हैं। बाहर का अंदाजा तो हम सिर्फ भीतर से ही लगा सकते हैं। जब भीतर का जगत-चित्र मिटता है, तो उसका निशान ब्लैकबोर्ड पर रह जाता है। इसे ही हम सूक्ष्म शरीर कहते हैं जिस पर आदमी के पिछले सभी जन्मों के चित्र सूक्ष्म रूप में दबे रहते हैं। यह ऐसे ही है जैसे फोन की मेमोरी से डाटा डिलीट करने के बाद भी वह उसमें छुपा हुआ रहता है, जिसे फिर से ढूंढा और रिट्रीव किया जा सकता है। कुंडलिनी योग रूपी ऐप से ही इसे पूरी तरह से खारिज अर्थात इरेज किया जा सकता है। यह शरीर एक नायाब इलेक्ट्रॉनिक कैमरे की तरह है। कैमरा खराब होने से उसके अन्दर के सारे चित्र भी मिट जाते हैं, पर बिजली भी रहती है, और कैमरे की स्क्रीन बनाने वाले पदार्थ भी। मतलब शरीर के नाश के साथ जगत-चित्र नष्ट हो जाते हैं, पर पुरुष और प्रकृति तब भी रहते हैं। ये दोनों सनातन हैं। सनातन केवल शून्य-आकाश ही हो सकता है, और कुछ नहीं। मतलब वही शून्य-आकाश पुरुष है, और वही शून्य-आकाश प्रकृति भी है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह हैं।

सजीव शून्य-आकाश मतलब पुरुष भ्रम से निर्जीव शून्य-आकाश मतलब प्रकृति बन जाता है। हालांकि मूल पुरुष-आकाश वैसा ही रहता है। उसी मूल पुरुष-आकाश से अपने ही भ्रमित रूप पर चित्र उकेरे जाते रहते हैं। मूल पुरुष अर्थात पुरुषोत्तम या परमात्मा है, जबकि भ्रमित पुरुष जीवात्मा या प्रकृति है। यह ऐसे ही है जैसे शिव पुराण में कहा गया है कि एकमात्र शिव से नर और मादा मतलब पुरुष और प्रकृति का जोड़ा पैदा हुआ।

कुंडलिनी योग ही पुत्र को पिता से आसानी से मिलवा सकता है

दोस्तों, गीता में श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि वे सृष्टि के पिता हैं, जो ब्रह्म के रूप में अपनी पत्नी प्रकृति के अंदर अपना वीर्य-बीज डालते हैं। उससे संपूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति होती है। आओ, इसे हम वैज्ञानिक रूप से समझते हैं। हम अगर शास्त्रों की गहराई में जाएं , तो उसमें बहुत से रहस्य छिपे मिलेंगे। तमस-आकाश मतलब प्रकृति के अंदर ज्योतिर्मय आकाश मतलब पुरुष की लकीरों से एक छल्ला बना। वह मूलकण था। वह ऐसा ही था जैसे हम ब्लैकबोर्ड पर चाक से एक छल्ले का चित्र बनाते हैं। यह प्रकाश मतलब पुरुष और अंधकार मतलब प्रकृति से मिलकर बना होता है। ब्लैक बोर्ड पर निर्मित छल्ले में भी प्रकाश की रेखा की सीमाभित्ति के अंदर वह गोलाकार क्षेत्र अंधकाररूप होता है। ऐसा ही कुछ मूल कण भी था। पुरुषोत्तम अर्थात परमात्मा का वीर्यबीज उस छल्लानुमा रेखाचित्र की प्रकाशमान सीमाभित्ति के रूप में था। वह वीर्य पुरुष ही था। पुरुष और पुरुषोत्तम में मूलतः कोई अंतर नहीं है। उसी तरह जैसे नर जीव और उसके वीर्य के बीच में कोई अंतर नहीं है, क्योंकि उसके सारे गुण उसके वीर्य में सूक्ष्म रूप में छिपे होते हैं। या ऐसे समझ लो कि जैसे पूरा वृक्ष उसके बीज में छिपा होता है।

छल्ले के अंदर का अंधकार रूप गोलाकार क्षेत्र प्रकृति माता का अंडाणु था। वह अंडाणु भी प्रकृति रूप ही था। मादा जीव और उसके अंडाणु या ओवम के बीच में कोई अंतर नहीं है। दरअसल उसके सारे गुण अंडाणु में छिपे होते हैं। ऐसे समझ लो जैसे मुर्गी और उसके अंडे के बीच में तत्त्वतः कोई अंतर नहीं है। दोनों आपस में जुड़ गए मतलब अंडाणु शुक्राणु से निषेचित हो गया था। इसीलिए गीता में प्रकृति को क्षेत्र मतलब खेत और पुरुष को क्षेत्रज्ञ मतलब खेत को जानने वाला या बीजधारी किसान भी कहा गया है। जो खेत को समझेगा, वही उस पर हल चलाना चाहेगा और उसमें बीज भी डालना चाहेगा। फिर प्रकृति माता के गर्भ में वह निषेचित अंडाणु मूल कण बनकर वृद्धि और विकास करने के लिए क्रियाशील हो गया। उसने अपने विभाजन से अपने जैसे और भी मूल कण बनाए। वे मूल कण आगे से आगे आपस में जुड़कर बड़ी से बड़ी संरचनाएं बनाने लगे। शायद सृष्टि के प्रारंभ के महा विस्फोट या बिग बैंग से एकदम पहले वही एकमात्र मूलकण बना था। उसमें विस्फोट का और आगे से आगे फैलने का मतलब गर्भ में एककोशिकीय जाईगोट का बनना और उसका त्वरित और विस्फोटक विभाजनों से बाहर की तरफ बढ़ना अर्थात फैलना है। गौर करें कि माता के गर्भ में भी भ्रूण का विकास बिल्कुल ऐसे ही होता है। आज तक यह सृष्टि का वृद्धि-विकास अनवरत चल रहा है, और आगे भी चलता रहेगा। क्योंकि प्रकृति माता का गर्भ अपरिमित आकाश के रूप में है, इसलिए इसमें स्थान की कोई कमी नहीं है। इसीलिए सृष्टि को गर्भ से बाहर निकलने की कभी जरूरत ही नहीं पड़ती। इसके विपरीत जीव-स्त्री के गर्भ में सीमित स्थान होने से कुछ समय बाद बच्चे को गर्भ से बाहर

निकालना पड़ता है। उसका उसके बाद का विकास गर्भ के बाहर होता है। बच्चा भी मां और बाप दोनों के अंश से मिलकर बना होता है। शुक्राणु और अंडाणु के मिलने से जो जाएगोट नाम की पहली गोल कोशिका बनती है, उसमें माता और पिता के आधे-आधे गुण होते हैं। इससे संतान के पूरे नए शरीर में भी माता-पिता के गुण आधे-आधे और बराबर हो जाते हैं। इसीलिए तो संतान की शक्ल माता-पिता दोनों से मिलती है। इसी तरह से, क्योंकि प्रथम मूल कण ही पुरुष और प्रकृति के आधे-आधे और बराबर गुण समेटे हुए होता है, इससे पूरी सृष्टि में उन दोनों के गुण बराबर और आधे-आधे आ जाते हैं, क्योंकि उस एकमात्र मूलकण से ही पूरी सृष्टि विकसित होती है। इसीलिए किसी भी चीज को देखकर हमें परमात्मा की और कुदरत की याद आती है। यह ऐसे ही होता है, जैसे संतान को देखकर उसके माता-पिता के बारे में अंदाजा लग जाता है। इसीलिए धातु, पत्थर आदि की मूर्तियों की पूजा की जाती है। हम पिता-परमात्मा को तो नहीं देख सकते, पर उसकी संतानों के रूप में उसे जरूर देख सकते हैं। संतान माता-पिता की नकल करते हुए वृद्धि और विकास करते हुए उनके कार्यों और व्यवसाय को संभालते हुए हर समय उनके जैसा बनने की कोशिश करती रहती है। उसी तरह प्रकृति और पुरुष की संतान जो सृष्टि है, और उसके सभी पदार्थ भी उत्तम से उत्तम रचना बनाने के लिए अपने पिता परमात्मा की अनंत ऊंचाई से प्रेरित होकर विकसित होते रहते हैं, और साथ में अपनी माता प्रकृति से भी शक्ति लेते रहते हैं।

जैसे पुरुष-पिता शरीर के सहस्रार में रहते हैं, उसी तरह प्रकृति-माता भी शरीर के मूलाधार में शक्ति के रूप में सोई रहती है। बच्चों का सीधा संपर्क माता से ज्यादा होता है। पिता तो अपने कार्य, व्यापार आदि में व्यस्त रहता है। माता ही उसका संपर्क पिता से स्थापित करती रहती है। इसी तरह आदमी भी सीधा ही सहस्रार चक्र में स्थित पिता-पुरुष या शिव से नहीं मिल सकता। उसे उनसे मिलने के लिए मूलाधार में स्थित माता-प्रकृति या शक्ति के सुकून से भरे आंचल की सहायता लेनी पड़ती है। माता-शक्ति उसे पिता-शिव से मिला देती है। इसे ही कुंडलिनी योग और कुंडली जागरण कहते हैं।

कुंडलिनी योग विवाह, रोमांस और संतानोत्पत्ति में सहायक है

दोस्तों, प्रकृति एक विशालकाय मां की तरह है। अंतरिक्ष इसका पेट है। जब पुरुष-पिता के द्वारा इसमें गर्भाधान किया गया, तब सूक्ष्मतम मूल कण इसके गर्भ में स्थापित हो गया। उसमें महा-विस्फोट अर्थात बिग बैंग के रूप में विभाजन और विकास की शुरुआत हो गई। जैसे-जैसे यह सृष्टि रूपी महा-भ्रूण बढ़ता गया, वैसे-वैसे इसके पेट का आकार भी बढ़ता गया। इसे ही वैज्ञानिक अंतरिक्ष का फैलना कहते हैं। आज भी अंतरिक्ष फैलता ही जा रहा है। जब यह सृष्टि रूपी बच्चा बड़ा होकर पूरी तरह विकसित हो जाएगा, तब उसका और आगे बढ़ना रुक जाएगा। उस समय प्रकृति के उदर का आकार भी स्थिर हो जाएगा। लंबे समय तक यही स्थिति बनी रहेगी। फिर यह सृष्टि रूपी आदमी बूढ़ा और कमजोर होने लगेगा। इससे इसका आकार भी घटने लगेगा। इससे प्रकृति मां के पेट का आकार भी घटने लगेगा। इसे ही वैज्ञानिक बिग क्रंच अर्थात महा सिकुड़न कहते हैं, जब अंतरिक्ष का फैलना रुक जाएगा और वह धीरे-धीरे सिकुड़ने लगेगा। फिर अंत में यह महा विशालकाय आदमी मर कर उसी मूल भ्रूण कोशिका के रूप में सिकुड़ जाएगा, जहां से इसका विकास शुरू हुआ था। फिर वह अंतिम मूल कोशिका भी उसी प्रकृति में मिल जाएगी, जिससे वह बनी थी। अंतिम मूल कण प्रकृति से ही बना था, और वह प्रकृति से ही पोषण प्राप्त करके बढ़ता गया था। इसीलिए प्रकृति को मां भी कहते हैं। पुरुष ने तो केवल जरा सा सहयोग किया प्रकृति का। उसके प्रार्थना करने पर उसे अपना बीज प्रदान किया है। सृष्टि-पुत्र की ज्यादा जरूरत प्रकृति को ही है, क्योंकि वह उस के माध्यम से अपनी कल्पित कमी और हीनता की भरपाई करना चाहती है। पुरुष तो मस्त मलंग है। वह अपने आप में पूर्ण है। उसे किसी की कोई जरूरत नहीं है। असली दुनियादारी में भी तो कुछ-कुछ ऐसा ही दिखता है। हां, चतुर लोग प्रतिदिन कुंडलिनी योग के माध्यम से प्रकृति-पुरुष का मिलन कराते रहते हैं, और अपनी मनचाही सृष्टि-संतान का निर्माण करते रहते हैं।

खाली अंडा कभी नहीं फूटता। खाली मादा-बीज कभी वृक्ष नहीं बनता। खाली मिट्टी भी कभी वृक्ष नहीं बना सकती। वृक्ष में नर-बीज, मादा-बीज और मिट्टी, तीनों के अंश होते हैं। पर सृष्टि में पुरुष और प्रकृति, केवल दोनों के ही अंश होते हैं। भूमि बीज को पोषण प्रदान करती है। नर-बीज को विविधता मादा-बीज के साथ मिश्रित होने से मिलती है। मादा-बीज को भी विविधता नर-बीज के साथ मिश्रित होने से ही मिलती है। उधर प्रकृति मादा-बीज भी है, और मिट्टी भी वही है। मतलब वह पुरुष-बीज अर्थात नर-बीज को विविधता भी प्रदान करती है, और उसे बढ़ाने के लिए मिट्टी का काम भी करती है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि सृष्टि के प्रारंभ में पुरुष और प्रकृति के इलावा अन्य कुछ भी नहीं था। प्रकृति में अव्यक्त रूप में छिपे हुए अति सूक्ष्म तत्त्व पुरुष-बीज और मादा -बीज के मिश्रण

से बने मूल कण को बढ़ाते रहते हैं। प्रलय के समय सारी सृष्टि खत्म होकर प्रकृति में सूक्ष्म रूप में समा जाती है। उसे सांख्य की भाषा में अव्यक्त कहते हैं। उसी अव्यक्त से पुनः नई सृष्टि का निर्माण होता है। यह ऐसे ही है, जैसे सारे जीव-जंतु और पेड़-पौधे मर कर और सड़-गल कर सूक्ष्म तत्त्वों के रूप में मिट्टी में समा जाते हैं, और फिर मिट्टी के उन्हीं सूक्ष्म तत्त्वों से पोषण प्राप्त करके नए जीव-जंतु पैदा हो जाते हैं, और नए पेड़-पौधे उग आते हैं। साथ में अलग-अलग मात्राओं में और अलग-अलग तरीके से संयोग करके, पुरुष-बीज और प्रकृति-बीज संसार में विविधता भी पैदा करते हैं। वृक्ष के मादा-बीज और नर-बीज भी इसी तरह आपस में अलग-अलग मात्रा में और अलग-अलग तरीके से जुड़कर वृक्षों की विभिन्न प्रकार की किस्में पैदा कर देते हैं।

कुंडलिनी योग से मृत्यु, प्रलय, जन्म और सृष्टि का रहस्योद्घाटन

दोस्तों! आध्यात्मिक शास्त्र उच्च कोटि के ज्ञान से भरे पड़े हैं। अगर उनके साथ अनुभव का तड़का भी लग जाए तो बात कुछ और ही हो जाती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हम सभी दुनियादारी में उलझे हुए आदमी हैं। हमारा अनुभव इतना शक्तिशाली नहीं हो सकता कि वह स्वतंत्र रूप से पारलौकिक तथ्यों को सिद्ध कर सके। हां, अगर हमारा अनुभव शास्त्रों के प्रामाणिक तथ्यों जैसा है, तब हमारा अनुभव प्रामाणिक माना जा सकता है। मैं भी अपने ऐसे ही एक छोटे से अनुभव को इस पोस्ट के अंत में साझा करूंगा।

शास्त्रों में प्रलय-काल की प्रकृति को साम्यावस्था की स्थिति के तौर पर बताया गया है। मतलब इसमें इसके तीनों गुण अपने-अपने एक समान स्तर पर बने रहते हैं। बदलते नहीं हैं।ऐसा जरूरी नहीं कि जितना सतोगुण है, उतना ही रजोगुण है और उतना ही तमोगुण है। बल्कि इसका यह मतलब है कि बेशक सब की भिन्न-भिन्न मात्रा है पर हरेक गुण अपनी विशिष्ट मात्रा पर एक समान बना रहता है। वह कम या ज्यादा नहीं होता। उदाहरण के तौर पर अगर सतोगुण का अनुपात 1 है तो एक ही रहेगा। तमोगुण का 5 है तो 5 ही रहेगा और रजोगुण का तीन है तो तीन ही रहेगा। अगर तीनों गुण एकदूसरे के बराबर हुआ करते तो विभिन्न सृष्टियों में विभिन्नता न हुआ करती, बल्कि सभी सृष्टियां बिल्कुल एक समान हुआ करतीं। इसी के साथ, सभी आदमी भी एक जैसे हुआ करते, उनमें भी कोई विभिन्नता न हुआ करती। और तो और, फिर तो सभी दिवंगत आत्माएं भी एकजैसी हुआ करतीं। पर ऐसा तो संभव नहीं है, क्योंकि सृष्टि में विभिन्नता हरेक स्तर पर दिखाई देती है। कुछ आत्माएं पवित्र होती हैं, जो हर तरह से भला करती हैं। पर कुछ आत्माएं पापपूर्ण भी होती हैं, जो नुकसान करने से जरा भी नहीं हिचकतीं। बेशक शरीर न होने के कारण दिवंगत आत्माएं जानबूझ कर भला या बुरा नहीं कर सकतीं, पर उनके सकारात्मक या नकारात्मक ऊर्जा क्षेत्र से खुद ही भला या बुरा होता है। शायद इसे ही शास्त्रों में प्रेत योनि कहा है। मतलब है तो यह दिवंगत और शरीररहित आत्मा ही, पर बहुत लंबे समय तक इसे शरीर न मिलने के कारण इसे मनुष्य योनि की तरह ही एक स्थायी योनि मान लिया गया हो। बेशक यह सूक्ष्म योनि है। उदाहरण के लिए, कई भयानक सड़क दुर्घटना के स्थानों पर बारबार दुर्घटनाएं होती रहती हैं। इसके लिए वहां भटकी हुई या बिना गति लगी हुई या बिना स्थूल योनि को प्राप्त हुई बुरी प्रेतात्मा को जिम्मेदार मानकर वहां भगवान हनुमान आदि देवता के मंदिर या मूर्ति को प्रतिष्ठित किया जाता है। कहते हैं कि उससे दुर्घटनाओं का सिलसिला रुक जाता है। शायद देवता से पैदा सकारात्मक ऊर्जा बुरी प्रेतात्मा की नकारात्मक ऊर्जा को निष्प्रभावी कर देती है। शायद बहुत उच्च कोटि की सकारात्मक ऊर्जा को ही देव योनि कहा जाता हो।

दोबारा सृष्टि-निर्माण से कुछ नहीं बदलता। सिर्फ प्रकृति में पहले से विद्यमान गुणों में क्षोभ पैदा होता है। मतलब कभी सतोगुण अपने आधारभूत स्तर से एकदम से बढ़ जाता है, तो कभी तमोगुण तो कभी रजोगुण। इस तरह से हर-एक गुण का स्तर लगातार बदलता रहता है। जो आदमी ज्यादा क्रियाशील है, उसमें ज्यादा जल्दी से बदलता रहता है। जो कम क्रियाशील है, उसमें कम रफ्तार से बदलता रहता है। आप सोचेंगे कि मैं यहां प्रकृति से आदमी के ऊपर क्यों आ गया। वास्तव में प्रकृति का अनुमान आदमी से ही लगाया गया है। सीधे तौर पर तो कोई भी समष्टि मतलब सर्वव्यापक प्रकृति को अनुभव नहीं कर सकता है। पर व्यष्टि अर्थात सीमित प्रकृति के रूप में स्थित आदमी के जन्म-मरण को जरूर अनुभव किया जा सकता है। योगियों ने इसे अनुभव किया है, जिसके आधार पर ही भारतीय दर्शन और शास्त्र बने हैं।

मरने के बाद आदमी के तीनों गुण अपने-अपने औसत स्तर पर आ जाते हैं और फिर बदलते नहीं। गुणों में क्षोभ पैदा करने के लिए शरीर चाहिए। वह मरने के बाद होता नहीं। जीवित अवस्था में मन के सुंदर विचारों से सतोगुण बढ़ता है। मन की ज्यादा क्रियाशीलता से रजोगुण बढ़ता है, और अकेलेपन या अवसाद जैसी अवस्था में तमोगुण बढ़ता है। ये सारे गुण रहते तो मरने के बाद भी हैं, पर बदलते नहीं हैं। मतलब आदमी कभी नहीं मरता। हमें आदमी मरा हुआ इसलिए लगता है क्योंकि हम गुणों के तूफान में उलझे होते हैं। इससे हमें गुणों की सूक्ष्म अवस्था नजर नहीं आती। यह ऐसे ही है, जैसे चकाचौंध रोशनी के बाद सामान्य अंधेरा भी घुप्प अंधेरा लगता है। हां, जब कुंडलिनी योग से गुणों का तूफान कुछ शांत हो जाता है, तब दिवंगत आत्मा से साक्षात्कार की संभावना बढ़ जाती है। अब आप पूछेंगे कि मरने के बाद गुणों की वह आधारभूत अवस्था कैसे निर्धारित होती है। वास्तव में वह आदमी के पिछले सभी जन्मों के गुणों का औसत होती है। मतलब अगर कोई ज्यादा सतोगुण में रहा है तो आधारभूत सत्त्वगुण ज्यादा रहता है। क्योंकि सतोगुण पुण्य कर्म से बनता है, मतलब उसमें उसके सभी अच्छे कर्मों का लेखा जोखा भी सूक्ष्म रूप में विद्यमान होता है। जिसके रजोगुण का औसत ज्यादा होगा, उसके कर्म उद्यमशीलता और व्यापार आदि के ज्यादा रहेंगे। ज्यादा तमोगुण का मतलब ज्यादा पाप कर्मों का संचय। मतलब कि गुणों के रूप में सभी कर्म अपनी आधारभूत अवस्था में रहते हैं। हो सकता है कि यह व्यवस्था इतनी निपुण हो कि औसत की बजाय हर एक कर्म अलग-अलग गुण के रूप में पृथक रूप में मौजूद हो। इसकी और शास्त्र यह इशारा करते हुए लिखते हैं कि हर-एक कर्म का फल उस कर्म के अनुसार मिलकर ही रहता है।

खैर मुझे जो पवित्र दिवंगत आत्मा का अनुभव हुआ था, उसमें तो मुझे गुणों की समान और औसत अवस्था ही महसूस हुई थी। मतलब कि आत्मा एक अंधेरे आकाश की तरह

महसूस हो रही थी। पर उसमें उस आदमी का पूरा व्यक्तित्व नजर आ रहा था, जिस आदमी की वह दिवंगत आत्मा थी। मतलब वह मुझे मरा हुआ ही नहीं लग रहा था, बल्कि जीवित से भी ज्यादा जीवित लग रहा था। वह व्यक्ति जीवित अवस्था से भी ज्यादा नजर आ रहा था। मतलब उस आत्मा में उसके पिछले जन्मों की छाप भी थी। मतलब वह प्रलय-काल की साम्य-अवस्था वाली प्रकृति ही थी, जिसमें कोई क्षोभ पैदा नहीं हो रहा था। इस आत्मा के अनुभव का वर्णन मैंने इस ब्लॉग की कुछ पुरानी पोस्टों में विस्तार से किया है। अब आप ही बताओ कि समुद्र के निश्चल जल में और उसी जल की लहरों में क्या अंतर है, कुछ भी नहीं? इसी तरह से शरीर-स्थित आत्मा में और दिवंगत आत्मा में भी कोई अंतर नहीं है। जब गुणों और कर्मों के संयोग से उस दिवंगत आत्मा को पुनः नया शरीर मिलता है, तो फिर से उसके गुणों में क्षोभ शुरु हो जाता है, जिसे हम पुनः नई सृष्टि का आरंभ कहते हैं।

मुझे लगता है कि किसी आत्मा के साक्षत्कार के लिए उस आत्मा की इच्छा भी होनी चाहिए मिलने की और उस मिलन को कुछ निर्णायिक क्षणों तक झेलने के लिए और आत्मा से बात करने के लिए आदमी में पर्याप्त मानसिक शक्ति भी होनी चाहिए। यह एग्रेसिव तांत्रिक कुंडलिनी योग से ही संभव लगता है, साधारण से नहीं। साथ में, अपना शरीर न होने के कारण आत्मा तो कोई इच्छा जाहिर नहीं कर सकती। मतलब कि आत्मा में वह इच्छा उसकी शरीरयुक्त जीवित अवस्था में होनी चाहिए, खासकर उसके मरते समय। इसी को अंतिम इच्छा कहते हैं। इसीलिए इसको बहुत महत्त्व दिया जाता है। उसे पूरा किया जाता है और मरणासन्न व्यक्ति को उसे पूरा करने का वचन दिया जाता है, ताकि उसकी आत्मा उस इच्छा की वजह से भटके न। ये गुत्थियां धीरे-धीरे सुलझती हैं, एकदम से नहीं। मैं भी सपरिवार उन व्यक्ति से मिलने उनकी मरणासन्न अवस्था में थोड़ा देर से पहुंचा था। वे मुझसे बात करना चाहते थे, पर बोल नहीं पा रहे थे। सिर्फ छोटी सी चीख ही उनके मुंह से निकलती थी और वे फिर बेहोश से हो जाते थे। देख तो वे सकते ही नहीं थे। शायद वे कुछ सुन और समझ पा रहे थे, पर देख व बोल नहीं पा रहे थे। उसके दो तीन घंटे बाद ही उनकी आत्मा मुक्त गगन को प्रस्थान कर गई थी। अध्यात्म में बहुत कुछ है। यह तो आइसबर्ग का सिर्फ टिप मात्र है।

कुंडलिनी योग से सतोगुण बढ़ता है

सभी मित्रों को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं।

दोस्तों, शास्त्रों के अनुसार सृष्टि पुरुष और प्रकृति के सहयोग से बनी है। प्रकृति में ही तीनों गुण होते हैं। पुरुष में नहीं। पुरुष तो गुणातीत है। वह तीनों गुणों से परे है। पुरुष शुद्ध आत्मा ही है। प्रकृति जड़ है। मतलब प्रकृति का अपना अस्तित्व नहीं है। प्रकृति आभासी है। फिर प्रकृति के तीनों गुणों को कौन महसूस करता है? यह पुरुष ही है जो प्रकृति के गुणों को महसूस करता है। प्रकृति को स्त्रीलिंग रूप इसलिए दिया गया है क्योंकि दोनों में ज्यादा समानता है। स्त्री भी अपने रूप और सौंदर्य को सजधज कर ज्यादा से ज्यादा दुनिया के लोगों को दिखाना चाहती है और प्रकृति भी। सुंदर प्रकृति को देखकर बरबस ही सुंदर स्त्री की याद आने लगती है। इसी तरह सुंदर स्त्री को देखकर मनमोहक प्रकृति जीवंत सी हो जाती है। पुरुष को बिना स्त्री को साथ लिए कहीं भी घूमने में पूरा मजा नहीं आता। दरअसल पुरुष प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ अर्थात बंधा हुआ होता है। इसी को हम बद्ध जीवात्मा कहते हैं। जब गुणों के प्रति अनासक्ति के व्यवहार से वह प्रकृति से अलग हो जाता है तब वह फिर से मुक्त आत्मा अर्थात शुद्ध आत्मा बन जाता है। यहां यह ध्यान योग्य बात है कि मुक्त होने के लिए बंधना भी जरूरी है। मुक्ति का पहला कदम बंधन ही है। जो पशु खूंटे से बंधा ही नहीं है, वह उससे छूटेगा कैसे। आदमी की जीवित अवस्था में उसकी आत्मा प्रकृति के तीनों गुणों की चढ़ती उतरती तरंगों को महसूस करती है। इसी को आदमी की जीवित अवस्था का लक्षण माना जाता है। जिसमें जितनी ज्यादा और जितनी तेजी से लहरें बनती हैं, उसे उतना ही ज्यादा जीवंत माना जाता है। जब किसी प्रेमी से मिलन होता है तो सतोगुण की लहर ऊपर चढ़ती है। मन में चारों और प्रेम और आनंद सा उमड़ आता है। पुरानी यादें हसीन रूपों में ताजा हो जाती हैं। चेहरे पर मुस्कान और चमक छा जाती है। अच्छी भूख लगती है, काम करने को मन करता है। आदमी उत्तम मनस्कता से परिपूर्ण रहता है। जब उससे वियोग होता है तो सतोगुण की ऊपर चढ़ी हुई लहर नीचे उतरकर धरातल से भी नीचे गिर जाती है। सारा आनंद गायब सा हो जाता है। मनस्कता अवसाद में बदल जाती है। पुरानी हसीन यादें गहरे अंधेरे में गायब हो जाती हैं। मन में घृणा और उदासी का जैसा भाव छा जाता है। चेहरे पर शिकन और अंधेरा सा छा जाता है। भूख गायब हो जाती है। काम करने को मन नहीं करता। जो पहले सतोगुण की लहर थी, वह तमोगुण की लहर बन जाती है। सतोगुण और तमोगुण के बीच के परस्पर बदलाव के दौरान रजोगुण की छोटी लहर की अवस्था भी होती है। मतलब सतोगुण से तमोगुण में और तमोगुण से सतोगुण में एकदम से बदलाव नहीं होता बल्कि रजोगुण से होकर जाता है। रजोगुण को हम हल्की सी ऊपर उठी हुई लहर कह सकते हैं। आदमी का मूल स्वभाव रजोगुणी माना जाता है। मतलब वह काम में इतना

व्यस्त रहता है कि मानसिक लहर को सतोगुण के ऊंचे स्तर तक कम ही उठा पाता है। साधु लोग साधना से उठा लेते हैं। देवता को सतोगुणी कहा जाता है। मतलब उनका सतोगुण उच्च स्तर का होता है। बेशक उसमें लहर नहीं होती क्योंकि उनके पास स्थूल शरीर नहीं होता। यह जो विभिन्न देवताओं को विभिन्न मनुष्याकार मूर्तियों के रूप दिए गए हैं, वे सब कल्पित हैं, हालांकि उनके वास्तविक रूप से बहुत मिलते हैं। इसी तरह सभी पशु योनियों को तमोगुणी कहा गया है। ऐसा उनमें दिमाग अर्थात मन की कमी से होता है। इसीलिए कहते हैं कि सतोगुणी देवलोक को जाते हैं या मुक्त हो जाते हैं, रजोगुणी दोबारा मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं और तमोगुणी पशु योनि को प्राप्त करते हैं।

अब प्रश्न है कि मृत्यु के बाद जब तक शरीर नहीं मिलता तब तक आत्मा में गुण किस अवस्था में रहते हैं। हमने पिछले लेख में भी शास्त्र के इस तथ्य पर प्रकाश डाला था कि उस समय तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। साम्यावस्था का मतलब है कि तीनों गुणों की मात्रा आपस में भिन्नता रख सकती है, पर हर एक गुण एक निश्चित स्तर पर ही होगा। मतलब बदलेगा नहीं। क्योंकि शरीर के बिना उसमें लहरें नहीं बन पाएंगी। मुझे पवित्र आत्मा में सतोगुण की ज्यादा मात्रा अनुभव हुई थी। ऐसा लगा था कि एक अनंत आकाश के जैसा सूर्य एक पतली झिल्ली या वील से ढका हुआ है और जिस से अंधेरा बन गया है। पर वह अंधेरा काजल जैसा चमकीला है, और जैसे सूर्य की किरणों का दबाव उस ढकने वाली झिल्ली को फोड़ना चाहता है। सतोगुण प्रकाश का भी प्रतीक है। फिर भी कुछ नहीं बदल रहा था। कहीं कोई गति नहीं थी। जो उबाल के जैसी अदृश्य गति सी महसूस हो रही थी, वह शायद आधारभूत रजोगुण था। हालांकि वह आभासी गति ही थी, असली नहीं। तमोगुण तो काजल के जैसे अंधेरे के रूप में था ही। काजल में जो चमक है उसे सतोगुण मान लो। फिर भी वह आत्मा मुझे पवित्र और सात्विक लग रही थी। एक बार योग के दौरान एक दुष्ट आत्मा भी मुझे कुछ क्षणों के लिए महसूस हुई थी। उसका अंधेरा डरावना और पाप, घृणा और बदले की भावना से भरा लग रहा था। उस आत्मा ने मेरे एक परिचित का उसी दिन नुकसान भी किया था, पर वह सुरक्षित बच गया था। मतलब कि आत्माओं के बीच में विभिन्न गुण-समूहों के रूप में सूक्ष्म वेरिएशंस अर्थात विभिन्नताऐं होती हैं। सतही तौर पर हमें सभी आत्माएं एक जैसी लगती है, पर ऐसा नहीं होता। किसी आदमी का आत्मा वैसा ही होता है जैसे उसके सभी जन्मों के गुण और कर्म होते हैं।

यहां एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है जो योग से संबंधित है। आसक्ति के साथ अपनाई गई दुनियादारी से तमोगुण बनता है। पर अगर कुंडलिनी योग से उससे आसक्ति निकाल दी जाए तो वही दुनियादारी सतोगुण बन जाती है। मतलब कि योग से सतोगुण बढ़ता है।

रजोगुण तो गति का ही नाम है। मतलब तमोगुण सतोगुण की तरफ जाते हुए रजोगुण से होकर जाता है। मतलब कि सतोगुण के तमोगुण में और तमोगुण के सतोगुण में परिवर्तित होने की क्रिया को ही रजोगुण कहते हैं। इसमें सतोगुण और तमोगुण दोनों की हिस्सेदारी होती है, क्योंकि एक गुण मिट रहा होता है और दूसरा गुण बन रहा होता है। जो तमोगुण से सतोगुण की तरफ जाने की आत्मा की स्वाभाविक या नैसर्गिक प्रवृत्ति है, वह स्वाभाविक रजोगुण है, और वही मुझे आत्मा में एक आभासी उबाल या उफान के रूप में महसूस हुई थी। सतोगुण से तमोगुण की तरफ लोग स्वाभाविक प्रवृत्ति को नजरअंदाज करते हुए बुरे या घटिया या पापपूर्ण काम करके जानबूझ कर जाते हैं। कई बार सतोगुण से सीधे तमोगुण में घुस जाते हैं और कई बार रजोगुण से होकर धीरे धीरे जाते हैं। रजोगुण वैसे तो दोनों परिस्थितियों में बीच में आता है। बेशक पहली स्थिति में थोड़ा सा और दूसरी स्थिति में ज्यादा। तमोगुण से कई योगी एग्रेसिव अर्थात जबरदस्त तांत्रिक कुंडलिनी योग से एकदम से सतोगुण में घुस जाते हैं और कई लोग आम दुनियादारी से होकर और लंबे समय तक रजोगुण से होते हुए सतोगुण तक पहुंचते हैं। गुण परिवर्तन या गुण रूपांतरण का यह सिलसिला ऐसे ही चलता रहता है।

कुंडलिनी योग से सतोगुण और तमोगुण के बीच का रजोगुण रूपी विभवांतर कम हो जाता है

आदमी चाह कर भी अपने गुणों की हलचल को नहीं रोक सकता। प्राणवायु गुणों में ऐसे ही लहरें पैदा करती रहती है, जैसे वायु समुद्र में तूफान पैदा करती है। हालांकि जिन योगियों ने प्राणायाम आदि से प्राणवायु को वश में कर लिया होता है, वे काफी हद तक इन लहरों को नियंत्रित कर के अपने असली व गुणों के आधारभूत स्तर वाले जीवात्म स्वरूप को जान भी लेते हैं। एक आदमी को लें जिसने हमेशा तूफान वाला समुद्र ही देखा है, और कभी भी शांत और निश्चल समुद्र नहीं देखा है। वह समझेगा कि समुद्र हमेशा ऐसा ही होता है और वही उसका असली स्वरूप है। उसे समुद्र के, बिना लहर वाले, असली व आधारभूत रूप के जैसे निश्चल जीवात्मा रूप का कोई ज्ञान नहीं होगा। उसे अगर उसकी जगह कभी बिल्कुल शांत समुद्र दिख गया या मान लो कि पोलर रीजन का ठंड से जमा हुआ समुद्र दिख गया, तो वह कहेगा कि समुद्र सूख गया या खत्म हो गया। ऐसे ही जिंदा आदमी को मरा हुआ देखने पर लोग कहते हैं कि वह तो मर गया, पर आदमी कभी नहीं मरता। यहां यह उल्लेखनीय है कि यह शरीर के प्रति लापरवाही जैसे कि स्वयं को नुकसान पहुंचाने की प्रवृत्ति या आत्महत्या आदि का सकारात्मक मूल्यांकन नहीं है। शरीर तो मरता ही है। फिर पता नहीं कब नया शरीर मिले, कैसा जैसा मिले, क्या पता कितनी कठिनाइयों के साथ मिले, मिलने के बाद भी पता नहीं कितने समय जिंदा रहे, किसको पता। इसलिए शरीर का भलीभांति ख्याल तो रखना ही चाहिए। इस बात का असली मतलब यह है कि आदमी की आत्मा कभी नहीं मरती, क्योंकि आत्मा ही आदमी का असली रूप है। यह ऐसे ही है, जैसे एक आदमी ने हमेशा मन की लहरों के रूप वाले अर्थात बदलते गुणों वाले अपने स्वरूप को ही महसूस किया है। उसे पता ही नहीं है कि यह लहरों वाला स्वरूप उसका आधारभूत स्वरूप नहीं है। उसने कभी योग, ध्यान आदि से मन को शांत नहीं किया। तूफान वाले सभी समुद्र एक जैसे ही लगते हैं, क्योंकि उनमें पानी ढंग से नजर नहीं आता। पर जब तूफान शांत हो जाता है, तब किसी का पानी नीला तो किसी का हरा नजर आता है। किसी का पानी कम तो किसी का ज्यादा नमकीन होता है। किसी में शैवाल आदि समुद्री वनस्पति कम होती है तो किसी में ज्यादा। किसी में किसी किस्म के समुद्री जलचर होंगे तो किसी में किसी अन्य किस्म के। इसी तरह ताबड़तोड़ मानसिक तूफान वाले आदमी भी एक जैसे लगते हैं। जैसे ही हम उनके किसी गुण पर ध्यान केंद्रित करने लगते हैं, वह गुण उसी पल बदल जाता है। इसी वजह से तो मृत्यु के बाद की आत्मा के साक्षात्कार से ही उसके आधारभूत गुणों वाले स्वरूप के बारे में सही और विस्तृत सूचना मिल सकती है। हालांकि ऐसा नहीं कि टीवी की तरह सबकुछ दिखता है, पर उसके औसत सूक्ष्म स्वरूप का अनुभव होता है। बेशक वह रूप हमें कुछ

घुटन भरा लग सकता है, क्योंकि हमें उसकी आदत नहीं है। पर उस जीवात्मा को तो ऐसा नहीं लगेगा क्योंकि वह तो अपने उस स्वरूप की अभ्यस्त हो चुकी होगी।

सृष्टि में जितनी जीवात्माएं हैं, समुद्र भी उतने ही हैं

यह बहुत रोचक विषय है और लिखते रहने से नई से नई गुत्थियां सुलझती रहती हैं। और अगर साथ में थोड़ा बहुत अनुभव भी हो तब तो कहने ही क्या। ऊंची उठी लहर को सुख या सतोगुण मान लो और समुद्र की सामान्य सतह से नीचे गिरी हुई लहर को दुख या तमोगुण मान लो। जीवन भर मन में ऐसा ही चलता रहता है। मरने के बाद मन या आत्मा समुद्र की सामान्य सतह जैसा हो जाता है। न लहर ऊपर को और न नीचे को। न सुख, न दुख। पर ऐसा नहीं है, क्योंकि अगर गुण हैं तो सुख और दुख तो साथ रहेंगे ही। यह तो त्रिगुणातीत परमात्मा ही है जिसमें न सुख है न दुख, सिर्फ़ निरपेक्ष आनंद है। ऐसा समझ लो कि इसमें सतोगुण और तमोगुण दोनों ही हैं। हालांकि दोनों कम मात्रा में हैं क्योंकि उनको उठाने या गिराने वाला अर्थात उनमें लहरें पैदा करने वाला शरीर नहीं है। यही गुणों की साम्यावस्था है। मतलब सतोगुण भी एक बराबर और तमोगुण भी एक बराबर। कोई कहेगा कि फिर सभी लोगों में तीनों गुणों की मात्रा अलग अलग कैसे होगी। देखो, जिसमें मृत्यु के समय ज्यादा सतोगुण होगा, वह मृत्यु के बाद वहीं फिक्स हो जाएगा मतलब बाद में भी ज्यादा बना रहेगा। यह ऐसे ही कि अगर ध्रुवीय समुद्र के जमते समय उसकी लहर ऊपर को उठी होगी तो वह जमने के बाद भी उतनी ही ऊपर उठी रहेगी, वहां से बदलेगी नहीं। यह भी सत्य है कि मृत्यु के समय अक्सर गुण वैसे ही रहते हैं जैसे उसके पिछले सारे गुणों और कर्मों का औसत रूप होता है। मतलब सब लोगों की आत्मा में अंधेरे की अलग अलग मात्रा होगी। चाहे दो व्यक्ति आपस में कितने ही ज्यादा नजदीकी क्यों न हों, दोनों की आत्माओं में अंधेरे की मात्रा एकसमान हो ही नहीं सकती। यह असंभव है। कुछ न कुछ फर्क तो रहेगा ही। इसीलिए तो कभी आत्मा के मामले में धोखा नहीं होता कि फलां की आत्मा गलती से फलां के शरीर में चली गई। जो कथा कहानियों में होता है, वो शिक्षात्मक रूपक ही लगता है। जब किसी के शरीर पर प्रेत आदि का कब्जा होता है तो वह साफ बताता है कि वह प्रेत है। इसीलिए उसे तांत्रिक आदि से भगाया जाता है। अगर किसी की आत्मा की फोटोकॉपी बनने की किसी में ताकत होती तो प्रेत भी बन जाता। फिर किसी को पता न चलता और उसे दूसरे के शरीर से कोई भगाता भी न। पर ऐसा नहीं होता। इसीलिए कहते हैं कि मृत्यु के समय की मानसिक स्थिति मृत्यु के बाद की गति को निर्धारित करती है। इसीलिए कई लोग मरने के लिए काशी जैसे तीर्थों में जाते हैं, कई मृत्यु के समय गीता आदि आध्यात्मिक ग्रंथ सुनते हैं। यहां पर एक पेच और खुलता है। बेशक मरने के बाद जीवात्मा परमात्मा के जैसा परिवर्तनरहित और हलचल से रहित, शांत और व्यापक बन जाता है, पर दोनों में

बहुत बड़ा अंतर है। जीवात्मा निर्गुण जैसा लगता हुआ भी तीनों गुणों से बंधा होता है, पर परमात्मा असली निर्गुण अर्थात गुणातीत होता है। इसीलिए वह जीवात्मा से भी ज्यादा और यूं कहो कि परम सूक्ष्म, परम व्यापक, परम परिवर्तनरहित, परम शांत, और परम सच्चिदानंद रूप होता है। यह खासकर उन लोगों को समझना चाहिए जो परमात्मा और जीवात्मा को करीब एकजैसा मानने के धोखे में पड़े होते हैं। कई दफनाए हुए मृत शरीर आदि की पूजा करते हैं। कई ऐसा समझते हैं कि मरने के बाद उनका जन्नत का टिकट कटा हुआ है।

कुंडलिनी योग कामयाब संभोग में मदद करता है

कुंडलिनी योग सेक्स का एक अभिन्न अंग है

एक और रहस्यपूर्ण तथ्य जो मैं आपको बताता हूँ, वह यह है कि यौन संपर्क के दौरान भी यह मूल स्तर की आत्मा का संपर्क सबसे गहरा होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि सेक्स के समय व्यक्ति दो यौन साथियों को छोड़कर पूरी तरह से अकेला रहना चाहता है। न दुनिया की और न ही दुनियावी विचारों की दखलंदाजी चाहता है। यह प्रवृत्ति ही यौन मामलों में शर्मीलेपन की उत्पत्ति करती है। कोई भी सार्वजनिक रूप से सेक्स नहीं करना चाहता क्योंकि तब वह सेक्स नहीं बल्कि केवल एक नाटक होता है। यहाँ तक कि कोई भी अपने वास्तविक यौन अनुभव के बारे में बात नहीं करना चाहता, धोखेबाज़ों द्वारा प्रचारित यौन नाटक की तो बात ही छोड़िए। तो सोचो कि सांसारिक अराजकता से पूरी तरह से दूर मूल आत्मा के रूप से अधिक अकेलापन क्या हो सकता है। यहाँ तक कि संभोग के समय यौन ऊर्जा भी इतनी अधिक होती है कि यह उस अल्पकालिक मूल आत्मा के संपर्क के समय पर्याप्त से अधिक आनंद प्रदान करती है। इस तरह प्रेम भी बढ़ता है। यह आम तौर पर देखा जाता है कि दिवंगत आत्मा का संपर्क अक्सर तांत्रिक मिश्रित यौन वातावरण में होता है। इसका कारण एक ही है कि तंत्र की तीव्र यौन ऊर्जा उस अल्पकालिक घुटन भरे आत्मिक संपर्क को झेलने के लिए पर्याप्त शक्ति प्रदान करती है। साधारण सेक्स पर्याप्त नहीं होता, क्योंकि इसमें मन पर कम नियंत्रण होता है और साथ ही, यह कम अवधि का होता है। कुंडलिनी योग आधारित तंत्र यौन अनुभव को बढ़ाता है क्योंकि यह कुंडलिनी ध्यान की मदद से अकेलेपन के स्तर को और ज्यादा बढ़ाता है जो आनंदमय और सफल सेक्स के लिए आवश्यक है। कुंडलिनी ध्यान एक मानसिक कुंडलिनी छवि को छोड़कर हर सांसारिक अराजकता को खत्म कर देता है। यह आवश्यक भी है क्योंकि हम मानसिक शक्ति को रोक कर नहीं रख सकते हैं, और ऐसा करते समय यह घुटन भरा होता है और आनंद भी रुक सा जाता है। फिर आनंद के बिना सेक्स कैसा। लेकिन कुंडलिनी छवि को ध्यान में रखते हुए, यह गहन आनंद का स्रोत बन जाता है। यह पूरी तरह से अकेलेपन के समान है क्योंकि मानसिक कुंडलिनी छवि कुछ भी भौतिक नहीं

बल्कि केवल एक मानसिक रचना है। इसीलिए कहते हैं कि असली प्रेम एकबार में एक से ही हो सकता है, दो से नहीं। तंत्र भी लंबे समय तक एक ही साथी के साथ रहने की वकालत करता है। हालांकि यह जानना महत्वपूर्ण और दिलचस्प है कि एक व्यक्ति जिसे कई साथियों द्वारा बुरी तरह से फटकार लगाई जाती है, वही केवल एक ही साथी के साथ पूर्ण शांति में रहना चाहता है। शायद संभोग में आनंद भी इसीलिए है क्योंकि यह आत्मा की सर्वाधिक गहराई तक जाने का प्रयास करता है, और आत्मा तो आनंद का खजाना है ही। वास्तव में सेक्स विज्ञान जितना जाना जाता है उससे कहीं अधिक गहरा और विशाल है जैसा कि ओशो महाराज ने सच ही कहा है।

आत्मा और जगत प्रकाश और अंधकार का परस्पर खेल है

मुझे तो लगता है कि जिसे हम सतोगुण समझते हैं, वही नेपथ्य में तमोगुण बन रहा होता है। यह ऐसे है जैसे धूप से ही छांव बनती है। इसका मतलब है कि जीवात्मा ने शुरु से जो कुछ भी अनुभव किया है, वह सभी कुछ उसमें तमोगुण अर्थात अंधेरे के रूप में मौजूद है। आगे भी वह जो महसूस करती रहेगी, वह भी अंधेरे के रूप में दर्ज होता रहेगा। यह ऐसे ही है जैसे जितनी अधिक और जैसी धूप होगी, छांव भी उतनी ही ज्यादा और वैसी ही बनेगी। वृक्ष की जैसी पत्तियां होंगी, छांव भी वैसी ही बनेगी। अर्थात जैसा शरीर या मन या मस्तिष्क होगा, तमोगुण रूपी छांव भी उसकी वैसी ही बनेगी। मतलब कि छांव में उसको बनाने वाली धूप या रौशनी या उसकी पत्तियों से छनकर आई हुई धूप के बारे में पूरी सूचना दर्ज है। सतोगुण तो आत्मा का अपना शुद्ध रूप है ही। वह तो रहेगा ही। वह तो मिट नहीं सकता। यह हो सकता है कि तमोगुण की मात्रा के अनुसार वह कम या ज्यादा महसूस होए। अगर तमोगुण ज्यादा होगा तो सतोगुण कम होगा और अगर तमोगुण कम होगा तो सतोगुण ज्यादा होगा। रजोगुण भी आत्मा की उस स्वाभाविक चेष्टा के रूप में होगा जिसके तहत वह तमोगुण से सतोगुण की तरफ जाना चाहती है। इसका मतलब है कि हम अगर दुनिया को महसूस न करें, तो वह आत्मा में तमोगुण के रूप में दर्ज नहीं होगी। पर दुनिया से किनारा कर पाना भी संभव नहीं है। तमोगुण की बात तो बाद में आएगी, पहले भूखे मरने की नौबत आ सकती है। बीच वाला मध्य मार्ग है अनासक्ति का। मतलब दुनियादारी को बिना आसक्ति के अनुभव करना है। इससे दुनियादारी भी चलती रहेगी और उसकी छांव भी आत्मा पर नहीं जम पाएगी या कम जमेगी। ऐसा योग से आसानी से संभव है। शास्त्रों में आसक्तिरहित सात्त्विक तरीकों को अपनाने के लिए इसलिए बोला जाता है ताकि इसके सात्त्विक संस्कार मन में पड़ते रहें। सात्विक संस्कारों को मन से निकालने में कम मेहनत लगती है जिससे मुक्ति की संभावना बढ़ जाती है। यदि इनको मन में न डाला जाए तो ऊटपटांग संस्कार मन में पड़ते रहेंगे क्योंकि मन खाली नहीं रह सकता। इन्हें बाहर निकालना बहुत मुश्किल होता है जिससे

मुक्ति की संभावना काफी घट जाती है। पर इसी से बात नहीं बनेगी। पिछले अनगिनत जन्मों की दुनियादारी की छाप की कालिख जो आत्मा पर जमी है, उसे भी साफ करना पड़ेगा। वह भी कुंडलिनी योग से ही होगा, खासकर एग्रेसिव तांत्रिक कुंडलिनी योग से। इससे आत्मा में सतोगुण बढ़ेगा और तमोगुण और रजोगुण कम हो जाएगा। रजोगुण इसलिए कम होगा क्योंकि अब नाममात्र के तमोगुण में इतना पोटेंशल नहीं है कि वह तेज गति से सतोगुण की तरफ जा सके। यह लेटेंट रजोगुण भी बिजली के दो विपरीत ध्रुवों के बीच के विभवांतर की तरह होता है। जितना ज्यादा अंतर उनके विपरीत आवेश के बीच में होगा, उतनी ही रफ्तार और अधिकता से विद्युत प्रवाह उनको जोड़ने वाले परिपथ में दौड़ेगा। शुद्ध आत्मा का सतोगुण तो सर्वोच्च और निश्चित निर्धारित है। बद्ध जीवात्मा के तमोगुण की मात्रा ही निर्धारित करेगी कि उनके बीच में रजोगुण रूपी विभवांतर कम होगा या ज्यादा। देखो, दोनों के बीच परिपथ तो तभी जुड़ेगा जब जीवात्मा को शरीर मिलेगा। फिर उनके बीच में मानसिक विचारों के रूप में खूब विद्युत प्रवाह बहेगा। वह जीवात्मा के तमोगुण के अनुसार कम ज्यादा होता रहेगा। इसीलिए तो पार्टी आदि में ड्रिंक आदि करने के बाद लोग तरोताजा होकर नई उमंग और जोश से अपने काम धंधे में पहले से भी ज्यादा लग जाते हैं। यह तो सिर्फ एक उदाहरण है और अध्यात्म के मामले में हानिकारक भी हो सकता है। कई लोग लंबे समय तक अकेलापन बिताने के बाद नई और बढ़ी हुई शक्ति के साथ दुनियादारी में उतरते हैं। यह अकेलेपन की तमोगुण की ही शक्ति होती है। कुंडलिनी योग से तमोगुण घट जाता है। इससे सतोगुण और तमोगुण के बीच रजोगुण रूपी विभवांतर कम हो जाता है। इसीलिए योगी का व्यवहार इंपलसिव या तुनकमिजाजी या अंध प्रगतिशील नहीं होता, बल्कि धीर, गंभीर और व्यवस्थाशील होता है। कई बार तंत्रयोगी देशकाल की मांग के अनुसार अस्थायी इंपलसिव व्यवहार प्राप्त करने के लिए अस्थाई रूप से तमोगुण को स्वीकार भी कर सकते हैं। बिना शरीर की जीवात्मा में यह रजोगुण लेटेंट विभवांतर के रूप में रहता है। मतलब अंधेरे से प्रकाश की तरफ जाने का बल तो लग रहा होता है, पर शरीररूपी विद्युत परिपथ न होने के कारण अंधकार प्रकाश तक जा नहीं पाता। मतलब तमोगुण सतोगुण नहीं बन पाता।

कुंडलिनी योग से आत्मा पर पड़ी अंधेरे की छाप मिटती है

मन में लहर बनने को सतोगुण कहते हैं। लहर मिटने को तमोगुण कहते हैं। लहर बनने, मिटने के बीच के बदलाव की गतिशील अवस्था को रजोगुण कहते हैं। जब कोई विचार बनता है तो वह सतोगुण की लहर होती है और जब मिटता है तो तमोगुण का अंधेरा छा जाता है। होती वह भी लहर ही है पर अंधेरा होने से दिखती नहीं। जितनी लहर ऊपर को उठती है, नीचे भी उतनी ही डूबती है, मतलब पाताल या गर्त या अंधेरे की तरफ जाती है। वैसे देखा जाए तो शुरुआती आभासिक अस्तित्व सतोगुण का ही है। तमोगुण तो आत्मा पर उसकी आभासी छाप है जो अंधेरे के रूप में होती है। हैं तो दोनों गुण झूठे या आभासी ही, पर सबसे पहले निर्गुण आत्मा में सतोगुण की लहर पैदा हुई। फिर उससे तमोगुण बना, उससे फिर सतोगुण, उससे फिर तमोगुण, फिर सतोगुण और ऐसा यह सिलसिला अनादिकाल से चलता आ रहा है। निर्गुण आत्मा भी सतोगुण की तरह ही है, जैसे कि यह प्रकाशमान है, आनंद से भरी हुई है, और अस्तित्व से भरपूर है, पर उसमें आभासी लहरें नहीं हैं। शरीर के द्वारा उसमें आभासी लहरें बनने से वह सतोगुण से युक्त जीवात्मा बन गया। हालांकि मूल परमात्मा हमेशा वैसा ही निर्गुण बना रहता है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर जब एक बार जीवात्मा में एक बार सतोगुण बन गया, तब तो उपरोक्तानुसार गुणों का सिलसिला चलना ही था। पेड़ से बीज और बीज से पेड़ बनता रहता है। यही जन्म मरण का खेल या रोग, जो कुछ भी कह लो है। यह मैं नहीं शास्त्र कह रहे हैं। आदमी या कोई भी जीव मरने से भी इसीलिए डरता है क्योंकि उसे अंदेशा होता है कि उसे फिर से कष्टों से भरे हुए नए जन्म की प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा। यह अंदेशा उसे इसलिए होता है क्योंकि वह प्रतिदिन अपने जीवन में गुणों का चक्रवत परिवर्तन देखता रहता है। अंधेरे को अनुभव करने के बाद उसे प्रकाश को भी अनुभव करना पड़ता है। वह लगातार अंधेरे में नहीं रह सकता। क्योंकि दोनों एकदूसरे के सापेक्ष हैं। इसीलिए उसे मृत्यु रूपी अंधेरे से जन्म रूपी प्रकाश की तरफ़ जाने का अवचेतन मन में आभास होता है। अगर लगातार मृत्यु बनी रहती तब तो वह सभी कष्टों से रहित मुक्ति ही होती। तब तो उससे कोई न डरा करता।

अंधेरे में विचाररूपी प्रकाशमान लहर की सारी सूचना दर्ज होती है। जलरूप जीव की बीच वाली समान सतह आत्मा है। मैने जीव को जलरूप इसलिए कहा क्योंकि उसमें भी जल की तरह तरंगें उठती रहती हैं। शायद जल को इसीलिए देवता कहा जाता है। जब नीचे दबी हुई या नीचे डूबी हुई लहर खत्म होकर सतह के स्तर तक पहुंचती है, तब आत्मा को अपनी शांत अवस्था महसूस होने लगती है। वह पूरी तरह से महसूस होए, उससे पहले ही नई लहर फिर से ऊपर उठ जाती है, और वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। इस तरह से आदमी आत्मा की शांति को प्राप्त

नहीं कर पाता। हालांकि आत्मा सतोगुण की ऊंची लहर और तमोगुण की नीची लहर के बीच की शांत अवस्था है। पर ऐसा कहते हैं कि कुंडलिनी जागरण के रूप में उसका अनुभव सतोगुण के चरम पर होने पर ही होता है। यह सतोगुण का चरम कुंडलिनी योग की ध्यान साधना से ही प्राप्त होता है। मुझे लगता है कि बौद्ध लोग परिवर्तनशील आत्मा को इसी कारण से सत्य मानते हैं, क्योंकि गुणों के बदलने से परिवर्तनशील आत्मा को अपरिवर्तनशील आत्मा की अपेक्षा कुण्डलिनी जागरण के रूप में सतोगुण के शिखर को छूने का अधिक अवसर मिलता है। यह सतोगुण का चरम कुंडलिनी योग की ध्यान साधना से ही प्राप्त होता है। वैसे जिस बीच वाली अवस्था को हम आत्मा कह रहे हैं, वह शुद्ध आत्मा नहीं बल्कि जीवात्मा है जिसमें प्रकृति के तीनों गुण साम्यावस्था में हैं। जो कुंडलिनी जागरण से अनुभव होती है, वह शुद्ध आत्मा है, जो निर्गुण या गुणातीत है, मलिन जीवात्मा नहीं। इसलिए यहां कोई विरोधाभास नहीं है।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि आत्मा प्रकृति के तीनों गुणों को अपने ऊपर आरोपित करके महसूस करती है। मतलब आत्मा प्रकृति का ही रूप धारण कर लेती है। मतलब कि आभासी प्रकृति के तीनों गुणों का रूप धारण कर लेती है। जब प्रकृति ही अस्तित्वहीन है तो उसके तीनों गुणों का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है। इसी को भ्रमपूर्ण संसार कहते हैं। इसका मतलब सभी बदलाव झूठे हैं, पर बुद्धिस्ट लोग क्षणिकवाद मतलब परिवर्तनवाद को सत्य मानते हैं। शायद उन्होंने पुरुष और प्रकृति के संयोग को ही शुद्ध आत्मा समझा है। या कुछ और भी हो सकता है। इसी को शास्त्रों में ऐसा कहा है कि दुनिया प्रकृति और पुरुष के संयोग से बनी है। असल में प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं है। कंप्यूटर गेम की तरह यह आभासी है पर आत्मा इस आभासी प्रकृति के रूप को धारण करके उसे अस्तित्व या सत्ता दे देता है। असली अस्तित्व तो सिर्फ आत्मा का ही है। तभी तो अद्वैत वेदांत में कहा है कि आत्मा ही सब कुछ है। इसके अलावा कुछ नहीं।

पर बेशक प्रकृति आभासी ही है पर व्यवहार में यह अपना असर तो छोड़ती ही है, जो आत्मा के ऊपर दृष्टिगोचर होता है। इसलिए सांख्य दर्शन के प्रकृतिपुरुषवाद रूपी द्विसत्तात्मक दर्शन को ज्यादा व्यावहारिक दर्शन कहते हैं। वैसे तो सभी दर्शनों में एक दूसरे की छाप दिखती है। पूर्व मीमांसा दर्शन के अपूर्ववाद को ही देख लो। यह दर्शन कहता है कि किसी भी कर्म से आत्मा में अपूर्व पैदा होता है। वह अपूर्व उस कर्म का फल मिलने पर ही नष्ट होता है। वह अपूर्व उस कर्म के द्वारा आत्मा पर पड़ने वाली अंधेरे की छाप ही है, जिसमें कर्म की सारी सूचना दबी होती है। जब यह छाप स्थूल रूप में किसी घटना के रूप में सामने आती है तो उसे ही हम उस कर्म का फल मिलना कहते हैं। क्योंकि बाहर निकलने से अपूर्व की ऊर्जा क्षीण या नष्ट हो गई। इसलिए आत्मा पर दर्ज अंधेरे की छाप भी मिट जाती है। शायद योग से इसी तरह कर्म क्षीण होते हैं। कुंडलिनी योग से कर्म

संबंधी विचार मन में उमड़ते रहते हैं जिससे आत्मा पर उन से बनी अंधेरे की छांव मिटती रहती है। बेशक फल मिलने की अपेक्षा वह धीरे-धीरे मिटती है, पर मिटती तो है। इसीलिए कहते हैं कि योग से पाप नष्ट होते हैं। आत्मा पर आदमी की हरेक क्रियाशीलता दर्ज हो जाती है। चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक। चाहे उस क्रियाशीलता को कितनी ही चालाकी से या अनासक्ति से क्यों न अंजाम दिया गया हो। शायद इसीलिए कहते हैं कि परमात्मा से कोई बात नहीं छुपती। आत्मा पर दर्ज छाप को ही हम संस्कार या अवचेतन मन कहते हैं। हम जो कुछ भी सीखते हैं या पढ़ते हैं, वह सब कुछ तो हमें याद नहीं रहता। पर उससे हमें अपने अंदर एक रूपांतरण सा महसूस होता है। यह उनसे आत्मा पे पड़ी छाप से ही महसूस होता है। इसी से मुझे लगता है कि पुरानी यादें आत्मा में भंडारित रहती हैं। मस्तिष्क तो सिर्फ उन्हें तरंगों के स्थूल रूप में अभिव्यक्त करने का काम करता है। आत्मा को सूक्ष्म तरंग मान लो। पुरानी यादों को इसके ऊपर आरोपित ऑडियो विजुअल के सूक्ष्म सिग्नल मान लो। मस्तिष्क को डिकोडर और एंप्लीफायर मान लो, जो आत्मा पर मौजूद सूक्ष्म सिग्नल को पुनः ऑडियो विजुअल के स्थूल विचारों में रूपांतरित और प्रवर्धित कर देता है। इसका प्रमाण है, बहुत से लोगों को उनके पिछले जन्मों की घटनाओं का सही रूप में याद रहना। पिछले जन्म के उनके शरीर, मस्तिष्क, मन आदि सब कुछ जलकर खाक हो गए थे। फिर वे यादें अगल जन्म को कैसे गईं। वे आत्मा के ऊपर रहकर ही जा सकती हैं, अन्य तो कोई तरीका नहीं है।

दोस्तो, मुझे लगता है कि मैं पिछले जन्म में संगीत से जुड़ा हुआ था। सपने में मैं स्पष्ट और मधुर और भावपूर्ण धुनों में गाने, अकेले या जुलूस की भीड़ में उत्साहपूर्वक, विशेषकर देवी माता के भक्तिपूर्ण भजनों को अक्सर गाता हूं। कई गानों को तो मैंने उसी समय नींद से जागकर रिकॉर्ड भी कर लिया है। मैं अपने एक परिचित को जानता हूं जो कंप्यूटर से ही पूरा गाना तैयार कर लेता है। संगीत वगैरह सबकुछ सॉफ्टवेयर से एड हो जाता है। अगर माता की कृपा रही तो संभव है कि जल्दी ही मेरे सपने के भजनों की एक एलबम ही आ जाए।

कुंडलिनी योग विचार-लहर के अंधेरे को मिटाता है

दोस्तों, इस पोस्ट में हम थोड़ा गहरे दर्शन की तरफ जा रहे हैं। अगर कोई ज्यादा गहराई में ना जाना चाहे तो वे इस पोस्ट को स्किप भी कर सकते हैं। आओ, पहले हम आत्मा में लहर बनने की शुरुआत को समझते हैं। सबसे पहले आत्मा पूरी तरह शुद्ध था। वह परमात्मा जैसा ही था। फिर वह किसी शरीर के साथ जुड़ गया। मस्तिष्क ने उस आत्मा में एक आभासी हलचल या लहर पैदा की। वह जो लहर बनी उसने आत्मा के प्रकाश को ढक दिया। कितना ढका? उतना ही जितना एक लहर का प्रभाव था। फिर दूसरी लहर से आत्मा का अंधेरा और बढ़ गया। तीसरी से और, चौथी से और। यह सिलसिला चलता गया। यह ऐसे ही है जैसे पेड़ पर कम पत्ते से उसकी जमीन पर कम घनी छाया बनती है। जैसे-जैसे पत्तों की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे वैसे ही छाया की सघनता भी बढ़ती जाती है। एक प्रकार से ज्यादा घने पत्तों की छाया में उससे कम घने पत्तों के हर एक स्तर की सूचना दर्ज है। ऐसा इसलिए क्योंकि किसी चीज की ज्यादा मात्रा के अंदर उस चीज की सभी कम मात्राएं खुद ही शामिल होती हैं। आत्मा के साथ वैसा ही होता है। उसकी ज्यादा लहरों से बनने वाले अंधकार के अंदर उसकी कम लहरों के हर एक स्तर से बनने वाले अंधकार खुद ही शामिल रहते हैं। या यूं कहो कि हर एक किस्म की लहर ने उसी विशेष किस्म का अंधकार आत्मा में पैदा किया। मतलब कि आज तक जितनी लहरें बनी, उतने ही और वैसे ही अंधकार आत्मा में बने। मतलब हर एक विचार रूपी लहर उसके जैसे विशेष अंधकार के रूप में आत्मा में दर्ज है। बेशक सतही तौर पर हमें आत्मा में वे अंधकार अलग-अलग महसूस न होएं। यह ऐसे ही है कि एक पेड़ के हर एक किस्म की मात्रा के पत्तों की सूचना उस पेड़ की छाया में उसके अपने समय में दर्ज हुई थी। पत्तों के नए स्तर की छाया बनने पर पत्तों के पुराने स्तर की छाया मिट जाती है। पर आत्मा में नई लहर से नए अंधकार के बनने पर पुरानी लहरों से बने पुराने सभी अंधकार दर्ज रहते हैं, वे मिटते नहीं है। इसीलिए पेड़ की छांव को देखने से केवल एक ही छांव महसूस होती है और पुरानी अन्य छांवों का अनुभव नहीं होता। पर आत्मा के अंधेरे को महसूस करने पर ऐसा महसूस होता है कि वह अंधेरा तो एक ही है, पर उसमें उसकी अनगिनत शरीरों वाली अनगिनत जीवित अवस्थाओं की विभिन्न व सभी सूचनाएं दर्ज हैं। हालांकि यह बहुत सूक्ष्म आभास होता है, और अभिन्न जैसा ही लगता है। ऐसा तभी हो सकता है, अगर हर एक सूचना अलग अंधेरे के रूप में मौजूद हो। अगर पेड़ की छांव की तरह ही आत्मा के बड़े अंधकार के अंदर उसके पुराने अन्य सभी छोटे अंधकार मिट जाया करते या दब जाया करते तो सभी आत्माएं एक जैसी हुआ करतीं। और फिर कर्म फल का सिद्धांत भी लागू ना होता। मतलब कि किसी भी कर्म की सूचना आत्मा में ना रहने से उसका फल भी ना मिला करता। पर ऐसा तो कुछ भी नहीं होता?

यहां यह बात गौर करने लायक है कि परमात्मा ने किसी को जबरदस्ती बंधन में नहीं डाला। जीवात्मा को तो उसने बस कुदरत दिखाई ही थी। अगर जीवात्मा चाहता तो उसे नकार भी सकता था। पर उसने अपने शाश्वत रूप को छोड़कर उसको चुना। इससे वह बंध गया। मतलब परमात्मा तो उसे कुदरत का अतिरिक्त आनंद देना चाहता था। पर जीवात्मा की आसक्ति से उलटा हो गया, मतलब जो अपना शाश्वत आनंद था, वह भी चला गया।

पेड़ की घनी छांव के बाद यदि कुछ पत्ते गिर जाएं, तो वह पुरानी घनी छांव खुद ही मिट जाती है। पर गहरी लहरों के बाद आत्मा में अगर हल्की लहर बने, तो पुरानी गहरी लहर से बना अंधेरा खुद से नहीं मिटता। बेशक नई और हल्की या अनासक्ति वाली विचार रूपी लहर से नया और हल्का अंधकार आत्मा में जुड़ जाए। पेड़ की छांव जमीन से नहीं चिपकी रहती, पर छांव बनाने वाले पत्तों के हटने के साथ ही एकदम से हट जाती है। पर आत्मा का अंधेरा आत्मा से चिपका रहता है। बेशक उस अंधेरे को बनाने वाली विचार लहर हट जाए, पर अंधेरा नहीं हटता। शायद वह उस विचार लहर के नियमित रूप से बारबार के स्मरण से धीरे धीरे हटता है। शायद कुंडलिनी योग से ऐसा ही होता है।

कुंडलिनी योग आधुनिक संचार युग के दुष्प्रभाव को कम कर सकता है

दोस्तों आजकल मन में वैसे भाव नहीं उठते, जैसे आधुनिक संचार युग के आने से पहले उमड़ा करते थे। पुराने समय में मन में बहुत मीठे और सूक्ष्म भाव उमड़ा करते थे। किस्म किस्म के भाव होते थे। प्रेम के भाव होते थे, दया के भाव होते थे, मित्रता के भाव होते थे, खुशी के भाव होते थे और भी कई किस्म के भाव मन में आते थे। वे भाव चेहरे पर भी साफ परिलक्षित होते थे। अपनी ऊंची अवस्था में होने पर भी ये सभी भाव नियंत्रित और संयमित होते थे। आजकल तो आदमी जल्दी ही भाव में बहने लगता है। अब मस्तिष्क में वह शक्ति नहीं रही जो भावों की आसक्ति से बचा सके और आदमी को उनमें बहने से रोक सके। आजकल की पीढ़ी मुझे भावशून्य सी लगती है। बच्चों में वह बचपना नहीं दिखता, किशोर भी किशोर कम और बच्चे ज्यादा लगते हैं, और युवाओं में भी वह यौवन नहीं दिखता। हमने तो पुराना युग भी देखा है, इसलिए नए युग से ज्यादा कुप्रभावित नहीं होते, पर वह नई पीढ़ी जिसने पुराने युग के अनुभव का जरा भी मजा नहीं लिया है, उसका क्या होगा। उन्हें हम प्यार से ही अपने अनुभव प्रेषित कर सकते हैं। वो अगर समझ गए तो वो भी अपने से नई पीढ़ी को उनको प्रेषण कर सकते हैं। इस तरह से मानव सभ्यता प्रकृति के मार्ग से दिग्भ्रमित होने से बच सकती है। और तो और, अगर पुराने समय में घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, शत्रुता आदि के भाव भी होते थे, तो वे भी नियंत्रित और संतुलित होते थे। आदमी के पास इतना नियंत्रण होता था कि वह उन्हें हल्का कर सके और उनकी छाप को चेहरे पर आने से रोक सके।

मुझे लगता है कि आजकल की कुंठित मानसिकता के लिए संचार की अदृश्य तरंगें जिम्मेदार हैं। इन्हें हम विज्ञान की भाषा में इलेक्ट्रोमैग्नेटिक तरंगे कहते हैं। भौतिक स्तर पर तो वे इस शरीर को कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती, क्योंकि उनमें बहुत कम ऊर्जा होती है। ये सूर्य के प्रकाश की तरंगों की तरह होती हैं। पर मुझे तो लगता है कि प्रकाश की तरंगें भी मन के सूक्ष्म विचारों पर कुछ ना कुछ असर तो डालती ही हैं। इसीलिए संध्या के समय जब सूर्य का प्रकाश बहुत कम होता है, उस समय मन में बहुत ही सुंदर सुविचार उमड़ते हैं। इसी तरह योगी लोग अंधेरी गुफा में साधना करना पसंद करते थे क्योंकि वहां प्रकाश का व्यवधान भी नहीं होता था। इसके अलावा, वीएफएक्स (विशेषकर छायादार ग्राफिक्स) से भरी फिल्में, प्राकृतिक प्रकाश से भरी फिल्मों की तुलना में अधिक आनंददायक और भावनाओं से भरी लगती हैं। इसी तरह जहां पर फोन टीवी आदि के सिग्नल कम होते हैं, वहां पक्षी ज्यादा तादाद में दिखाई देते हैं। इस पर एक फिल्म भी बनी हुई है। एक बार मुझे ऐसी सुदूर घाटी में रहना पड़ा था जहां पर कोई मोबाइल नेटवर्क नहीं था। वहां मुझे पुराने जमाने के जैसी अनोखी शांति महसूस हुई थी। मन के भाव भी वहां अच्छे से बन रहे थे। इसका मतलब है कि बेशक सामान्य विद्युत

चुंबकीय तरंगों में न्यूनतम ऊर्जा होती है पर ये आत्मा को और उसकी अनुभव करने की क्षमता को प्रभावित कर सकती हैं। वैज्ञानिक बताते हैं कि जो मस्तिष्क के न्यूरॉन्स में स्पंदनशील विद्युत प्रवाह बनता है, उससे जो स्पंदनशील व अदृश्य विद्युत विद्युतचुंबकीय क्षेत्र बनता है, उसी को आत्मा विचारों के रूप में अनुभव करती है। देखा जाए तो विद्युत चुंबकीय तरंगें भी बदलते हुए विद्युत चुंबकीय क्षेत्रों के रूप में ही होती हैं। इसलिए अगर दोनों एकदूसरे को प्रभावित करे तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

इससे यह अंदाजा लगाना कठिन नहीं है कि संचार साधनों की विद्युत चुंबकीय तरंगे मन के विचारों को प्रभावित करती हैं। पर फिर भी इनसे घबराने की जरूरत नहीं है। ठीक ही कहा है कि जहां चाह वहां राह। कुंडलिनी योग से मस्तिष्क की विद्युतचुंबकीय शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि बाहरी विद्युतचुंबकीय तरंगों का उस पर कम ही असर पड़ता है। योग के दौरान तो ऐसा होता ही है पर अगर योग को दिन में दो या तीन बार किया जाए तो यह शक्ति दिनभर बनी रहती है। आज के युग में विद्युत चुंबकीय तरंगों से मुक्त क्षेत्र में ज्यादा समय बिताना एक सपने की तरह ही लगता है। हम पूरी धरती को तो चमड़े से मढ़ नहीं सकते, पर चमड़े के जूते जरूर पहन सकते हैं। मतलब कि हम जमाने को तो एकदम से नहीं बदल सकते पर अपने को जमाने के अनुसार जरूर बदल सकते हैं।

कुंडलिनी योग ही न्यूनतावाद अर्थात मिनिमेलिज्म की जननी है

दोस्तों आम लोकधारणा के अनुसार न्यूनतावाद को मुक्ति का पर्याय माना जाता है। यह धारणा शास्त्रों से बनी है। पर शास्त्रों का मतलब मुझे कुछ और ही लगता है। अगर न्यूनतावाद ही मुक्ति की पहचान होती, तब तो सभी गरीब और भिखारी लोग मुक्त और परम ज्ञानी होते। पर असल में उनकी दशा तो सबसे खराब होती है। मुझे शास्त्रों की इस उक्ति का तात्पर्य लगता है कि अगर कोई आदमी योग साधना में सफलता की सीढ़ियां चढ़ रहा है तो उसे न्यूनतम जरूरत से ज्यादा भौतिकता की तरफ भागने की जरूरत नहीं है। क्योंकि उसकी भौतिकता की तरफ की दौड़ उसकी योग साधना में विघ्न पैदा कर सकती है। मतलब ज्यादा महत्व योग साधना का है, न्यूनतावाद का नहीं। हां, अगर उसकी योग साधना में भौतिकता विघ्न ना पैदा कर रही हो तो भौतिकता में बुराई भी नहीं है। दरअसल भौतिकता नहीं, बल्कि भौतिकता की तरफ दौड़ ही विघ्न पैदा करती है। इससे जो ऊर्जा योग साधना में लगनी थी, वह भौतिकता में या भौतिकता को प्राप्त करने में बर्बाद हो जाती है। अगर किसी को मुफ्त में भौतिक सुख समृद्धि मिल रही हो, तो उससे तो उसकी ऊर्जा की बचत ही होगी। उस बची हुई अतिरिक्त ऊर्जा को वह योग साधना में लगा सकता है। शास्त्रों में फकीरों के जैसे न्यूनतावाद का इसीलिए समर्थन किया गया है ताकि ज्यादा शारीरिक कामों से भी ऊर्जा की बर्बादी ना होए और ज्यादा शारीरिक उपभोगों से भी ऊर्जा बर्बाद ना होए। बल्कि इसके विपरीत थोड़ा शारीरिक श्रम भी होता रहे और थोड़ा शारीरिक उपभोग भी होता रहे। इससे ऊर्जा का संचय होता है। यह संचित ऊर्जा योगसाधना में लगाई जा सकती है। यह बुद्ध का मध्य मार्ग ही है। अगर कोई बिल्कुल ही कंगाल होगा तो भोजन के अभाव में भोगों का मध्यम उपभोग कैसे करेगा और कैसे मध्यम शारीरिक श्रम कर पाएगा? इससे बेशक ऊर्जा का अपव्यय तो नहीं होगा, पर ऊर्जा का संचय भी तो नहीं होगा। इसी तरह यदि कोई अति धनाढ्य होगा तो वह भी लापरवाही व अहम के कारण बिल्कुल भी शारीरिक काम नहीं करेगा और साथ में वह भोगों का अति उपभोग भी करेगा। इससे उसकी ऊर्जा का संचय भी नहीं होगा और बचीखुची उर्जा भी भोग भोगने में नष्ट हो जाएगी। फिर वह योग कैसे करेगा। पर यदि कोई धनाढ्य होता हुआ भी मध्यम श्रम और भोगों का मध्यम उपभोग करता है, और उससे संचित ऊर्जा से योग करता है, तो वह न्यूनतावादी या फकीर ही माना जाएगा। मतलब शास्त्रों में न्यूनतावादी का हवाला देते हुए परोक्ष रूप से योग का ही समर्थन किया गया है। राजा जनक महान धनाढ्य थे, पर फिर भी योगी थे। इसी से उनके अंदर न्यूनतावादी स्वभाव खुद ही पनप गया था। दरअसल दुनिया के आम लोग मोटी बुद्धि के होते हैं, इसलिए मोटी बात ज्यादा समझते हैं। योग पर लोगों का ध्यान आसानी से नहीं जाता। इसीलिए शास्त्रों में कई स्थानों पर न्यूनतावाद को ही मुक्ति का पर्याय

बताया गया है, योग को नहीं। ऋषियों का मत रहा होगा कि शायद न्यूनतावाद से लोगों में खुद ही योग की आदत पड़ जाए। बहुतों में ऐसा हुआ भी होगा पर मुझे तो ऐसे कम ही मामले नजर आते हैं। ज्यादातर लोग तो न्यूनतावाद में ही उलझे रहते हैं, और योग की तरफ जाते हुए नहीं दिखते। “न माया मिली न राम” यह कहावत उन्हीं लोगों के लिए बनी प्रतीत होती है जो न्यूनतावादी तो बनते हैं पर योग नहीं करते। वैसे ज्यादा असली ज्यादा और सार्थक न्यूनतावाद वही है जो योग से खुद पैदा होए।

कुंडलिनी योग की सहायक हरित ऊर्जा

दोस्तों, जीवाश्म ईंधन के अंधाधुंध इस्तेमाल से धरती का जीवन संकट में आ गया है। ग्लोबल वार्मिंग बढ़ रही है। धरती लगातार गर्म हो रही है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं। सुंदर समुद्रतटीय प्रदेशों के निकट भविष्य में पूरी तरह से जलमग्न होने के आसार बन गए हैं। वातावरण में कार्बनडाइऑक्साइड जैसी ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा बहुत बढ़ गई है और लगातार बढ़ ही रही है। इससे मौसम भी बदल गया है। बारिश के मौसम में सूखा पड़ रहा है और सूखे के समय बारिश हो रही है। इससे जन, धन, अन्न समेत सभी वस्तुओं को भारी क्षति पहुंच रही है। किसान बदहाल हो रहे हैं। उनकी खड़ी, पकी और काटी गई फसल भारी बारिश की भेंट चढ़ रही है। अत्यधिक वर्षा से भारी भूस्खलन हो रहे हैं। मौसम और प्रकृति क्रोधित जैसे लग रहे हैं और एकदम से कहर बनकर बरस जाते हैं। भयंकर बाढ़ें, आंधी और तूफान आ रहे हैं। प्लास्टिक के कचरे से निकास नालियों के अवरुद्ध होने से गंदा पानी गलियों में भरकर बीमारियां पैदा कर रहा है। शहरों की संख्या लगातार बढ़ रही है, और गांव खाली होते जा रहे हैं। औद्योगिक शोरगुल से दूर शांतिपूर्ण एकांत मिलना लोगों के लिए दुष्कर्म हो गया है।

इन सभी समस्याओं का हल मुझे हरित ऊर्जा में दिखता है। सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा हरित ऊर्जा के सर्वोत्तम स्रोत हैं। अगर सभी घरों की छतों पर सौर पैनल और पवन चक्की लग जाएं तो घरों की सारी बिजली की जरूरत तो पूरी होगी ही, साथ में उद्योगों के लिए और बहुमंजिला इमारतों के लिए भी अतिरिक्त बिजली की आपूर्ति की जा सकती है। तकनीक के विकसित होने से अब तो सौर विद्युत जीवाश्म स्रोतों से निर्मित विद्युत से भी सस्ती हो गई है। इसकी एक वजह यह भी है कि सौर विद्युत को जरूरत वाली जगह पर ही बनाया जा सकता है। इससे ट्रांसमिशन लॉस पर भी रोक लगती है। मेटलर्जी जैसे क्षेत्रों में बहुत ज्यादा ताप ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। वहां के लिए डायरेक्ट सोलर थर्मल प्लांट का उपयोग किया जा सकता है। उसमें सौर ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित ना होकर सीधी ताप ऊर्जा में बदल जाती है। इससे सौर ऊर्जा से विद्युत ऊर्जा और विद्युत ऊर्जा से ताप ऊर्जा में रूपांतरण के दौरान होने वाली ऊर्जा की क्षति रुकती है।

अब तो विद्युत भंडारित करने के लिए बढ़िया से बढ़िया बैटरीयां बन रही है। लिथियम आयन बैटरी लेड एसिड बैटरी से ज्यादा कार्यक्षम और सुविधापूर्ण है। पर धरती से लिथियम निकालते समय भी पर्यावरण को खनन आदि के रूप में भारी क्षति पहुंचती है। फिर इसका वेस्ट भी हानिकारक होता है। सोडियम आयन बैटरी का भी जोरों से विकास हो रहा है। आने वाले समय में यह सबसे अधिक पर्यावरण हितैषी बैटरी बन सकती है। ग्रीन हाइड्रोजन पर भी काम चल रहा है, पर उसकी सुरक्षा समस्या और भंडारण समस्या, ये दो मुख्य समस्याएं हैं। इनका हल भी खोजा जा रहा है। ग्रीन एनर्जी की

सहायता से तैयार एथनॉल आदि बायोफ्यूल को भी विकसित किया जा रहा है। इससे भी नेट कार्बन एमिशन रुकेगा।

इन्हीं सब वजहों से आजकल ग्रीन एनर्जी के स्टोक्स उछाल पर हैं क्योंकि लोगों को इनमें भविष्य में बढ़ोतरी की उम्मीद दिख रही है। ग्रीन एनर्जी का दौर तो आएगा ही, समय कम ज्यादा हो सकता है। ग्रीन एनर्जी को सपोर्ट करना वैसे तो सबका दायित्व है पर फिर भी आदमी को अपनी वित्तीय स्थिति के अनुसार ही फैसला लेना चाहिए, और वित्तीय विशेषज्ञ की सलाह भी लेनी चाहिए।

ग्रीन एनर्जी को अपनाने से सबसे बड़ा फायदा यह होगा कि लोगों की आदतों में सुधार आएगा। इससे लोगों की सोच सकारात्मक बनेगी। इससे लोग पर्यावरण हितैषी जीवनशैली अपनाने लगेंगे। ऐसी जीवनशैली योगयुक्त जीवनशैली ही होती है। क्योंकि अति सक्रियता से पर्यावरण को हानि पहुंचती है, इसलिए लोग इस पर रोक लगाएंगे। क्योंकि अति सक्रियता से योग को अर्थात आत्मा को भी हानि पहुंचती है, इसलिए इस पर रोक लगने से आत्मा या योग को भी लाभ मिलेगा। आत्मा और योग पर्यायवाची जैसे शब्द हैं। योग से आत्मा विकसित होती है और आत्मा के विकसित होने से योग विकसित होता है। इससे आदमी न्यूनतावाद को अपनाकर कम से कम पर्यावरण नाशक संसाधनों से अपना गुजारा चलाएगा। साथ में, घर पर ही हरित ऊर्जा पैदा होने से आदमी को भीड़भाड़ वाले ऊर्जा सघन क्षेत्रों में रहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। इससे शहरों का बोझ कम होगा। आदमी एकांत में रहकर अपनी जरूरत की सारी ऊर्जा कुदरती तरीके से तैयार कर लेगा। उस से जल को जमीन से निकाला जा सकेगा। उससे किचन गार्डनिंग हो सकेगी। वह अपने वाहन को हरित ऊर्जा से चार्ज करके जरूरत के सामान की आवाजाही कर पाएगा। सौर ऊर्जा के इस्तेमाल से उसका मन भी साफ रहेगा। इससे और एकांत के प्रभाव से खुद ही उसका कुंडलिनी योग के प्रति रुझान बढ़ जाएगा। जब योग से उसकी आत्मा काफी निर्मल हो जाएगी, तब ऐसा समय भी आएगा जब उसे कुदरती चीजों का इस्तेमाल ही पसंद आएगा। उदाहरण के लिए बिजली के बल्ब की जगह उसे कुदरती तेल का दिया ही अच्छा लगेगा, क्योंकि यह इतना अधिक प्राकृतिक है जितना आत्मा को खुशी से उत्तेजित करने के लिए काफी है। गाड़ी वगैरह की बजाय उसे साइकिल से या पैदल चलना ही ज्यादा अच्छा लगेगा। फिर एक प्रकार से हरित योग योग युग में रूपांतरित हो जाएगा।

कुंडलिनी योग के लिए ही आत्मा शरीर ग्रहण करती है

दोस्तों, अंधेरे में किसी का पूरा व्यक्तित्व कैसे दिख सकता है? मतलब पूरा जीवित व्यक्ति उसकी आत्मा के अंधेरे में कैसे महसूस हो सकता है। ऐसा तभी हो सकता है अगर उसके द्वारा उसके जीवन काल में कही गई व सोची गई सभी बातें, किए गए सभी व्यवहार व किए गए सभी काम उस अंधेरे में दर्ज हों। उस अंधेरे में सभी कुछ अलग अलग दर्ज होना चाहिए। अगर सब से एक ही अंधेरा कम या ज्यादा होता रहा, तब तो वह अंधेरा आम भौतिक अंधेरे जैसा होने से जड़ माना जाएगा। जैसे किस्म किस्म की वस्तुओं के रूप में किस्म किस्म का प्रकाश खत्म होकर रात के एक ही अंधेरे को बढ़ाता रहता है। अंधेरे को देखने से यह पता नहीं चलता कि इसमें कौन-कौन सी किस्म की वस्तुओं के रूप में कौन कौन से किस्म का प्रकाश समाया हुआ है। पर किसी आदमी की आत्मा के अंधेरे को महसूस करते हुए हमें उस आदमी के मन में विद्यमान किस्म किस्म की वस्तुओं के रूप में किस्म किस्म के प्रकाश समाए हुए लगते हैं। हालांकि फिर भी एक ही अविभाजित अंधेरा महसूस होता है। यह आश्चर्य ही है। शायद ब्लैकहोल में भी ऐसा ही होता हो। है तो उसमें एक ही अविभाजित अंधेरा, पर अगर कोई उसे योग आदि से गहराई से महसूस करे तो शायद उसमें उसके सभी निगले हुए पदार्थ महसूस होए, बेशक सूक्ष्मरूप में ही। विज्ञान भी कहता है कि सूचना कभी नष्ट नहीं होती। हो सकता है कि ब्लैकहोल में भी सभी पृथक पृथक पदार्थों की सूचना पृथक पृथक रूप में दर्ज या एनकोडिड हो। फिर जब उस ब्लैकहोल से नया ब्रह्मांड या तारा बनता हो तो वह सूचना फिर से पहले के जैसे स्थूल रूप में प्रकट हो जाती हो। हालांकि विज्ञान इसे नहीं मानता। इसलिए इसे एक विचारप्रयोग ही समझ लो। वैसे भी बहुत से क्षेत्र हैं, जो आधुनिक विज्ञान की समझ से परे है। अध्यात्म भी इनमें से एक है। इसीलिए कहते हैं कि आत्मा चेतन है। मतलब इसमें वह सबकुछ है जो जीवित प्राणी के मन में विविध प्रकार से है। बेशक मन में वह स्थूल रूप में होता है और आत्मा में सूक्ष्म रूप में। पर यह सिर्फ कहने की बात है और यह सापेक्ष है। आत्मा को महसूस करते हुए हमें स्थूल सूक्ष्म का जरा भी अंतर महसूस नहीं होता। हमें पूरा जीवित व्यक्ति उस अंधकारमय आत्मा के रूप में महसूस होता है। यहां तक कि स्वयं आत्मा को भी ऐसा लगता है कि वह तो पहले की तरह पूर्ण जीवित है। पता तो उसे होता है कि अब वह शरीर के बंधन से छूट गई है, पर उसे वह कोई अपने में बदलाव नहीं दिखता। मतलब वही पुराना व्यक्तित्व पर कुछ नए रूप में जैसे कि उसमें व्यापकता, अनश्वरता जैसे अतिरिक्त गुण आ जाते हैं, बेशक परमात्मा की तरह पूर्णतः नहीं पर सापेक्ष रूप में। मतलब शास्त्रों में जिसे सूक्ष्म शरीर कहा गया है उसके रूप में स्वयं आत्मा ही होती है।

शास्त्रों का सूक्ष्म शरीर आत्मा ही है। थोड़ा शब्दों को श्रृंगार देने के लिए ही सूक्ष्म शरीर का विस्तार से वर्णन है। सूक्ष्म शरीर आत्मा, बुद्धि, मन, अहंकार, पांच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेंद्रियों और पांच प्राणों से युक्त कहा गया है। इसका मतलब है कि आत्मा सोच सकती है, निर्णय ले सकती है, अपने अहम को महसूस कर सकती है, सुन सकती है, बोल सकती है, सूंघ सकती है, स्पर्श को महसूस कर सकती है, देख सकती है, हाथ से काम कर सकती है, पैर से चल सकती है, जीभ से चख सकती है, जननेंद्रिय और उपस्थेंद्रिय का कर्म कर सकती है। फिर आत्मा शरीर को क्यों धारण करती है। शायद इसीलिए ताकि उसे लहरें मिल सके। और इसलिए भी ताकि वह विकास कर के परमात्मा तक पहुंच सके। शास्त्रों में कहते हैं कि प्रेम की प्राप्ति के लिए ही आत्मा जन्म ग्रहण करती है। बात एक ही है। मन की लहरों से ही तो प्रेम बनता है। सीधे शब्दों में यही क्यों न कहें कि आत्मा कुंडलिनी योग के लिए ही शरीर ग्रहण करती है, क्योंकि कुंडलिनी योग से ही प्रेम बढ़ता है और इसी से आत्मा की मलिनता दूर होने से आत्मा का विकास भी होता है।

तो मैं वही कह रहा हूं कि आत्मा ने मेरे साथ बात की थी। अगर बात की तो उसने सोचा भी होगा। सोचा होगा तो निर्णय भी लिया होगा। अगर मेरे से बात की तो मुझे देखा भी होगा और मेरी बात भी सुनी होगी। अपने को या अपने अहंकार को तो वह महसूस करेगी ही, तभी बात कर पाएगी। मतलब उसमें सभी ज्ञानेंद्रियां थी। वाणी मतलब वाक एक कर्मेंद्रिय मानी जाती है। मतलब उसमें कर्मेंद्रिय भी थी। साथ में वह मुझे एक दूर जगह पर चल रही उस विशेष क्रियाशीलता के बारे में बता रही थी जिससे मैं प्रभावित हो सकता था। मतलब वह पैरों से चलकर वहां गई। उसके बारे में पता किया और मुझे उसकी सूचना दी। पैर भी एक कर्मेंद्रिय है। अपने शरीर वाली अवस्था के समय उस आत्मा को उस क्रियाशीलता के बारे में कुछ पता नहीं था। शरीर को इतने सारे काम करने के लिए प्राणों की और प्राणवायु की आवश्यकता होती है। बिना वायु के तो पत्ता भी नहीं हिलता। मतलब आत्मा बिना प्राणवायु ग्रहण किए या बिना सांस लिए ही प्राणों का काम भी कर रही थी। प्रकारांतर से या समझाने के लिए ऋषियों ने ऐसा लिखा है कि सूक्ष्म शरीर अर्थात जीवात्मा में पांच प्राण भी होते हैं, जो सूक्ष्मशरीर के विभिन्न काम करने में मदद करते हैं। आत्मा तो सूक्ष्म शरीर का आधार होने से उसमें सबसे प्रमुख तत्व है ही। बाकि शेष सारे तत्व तो आत्मा के ऊपर आधारित होने से आधेय ही हैं।

कुंडलिनी योग से आत्मा की चेतनता बढ़ने से वह स्वर्ग को जाती है

दोस्तों मृत्यु के बाद आत्मा की अवस्था को जानना एक बहुत पेचीदा काम है। कठोपनिषद के नचिकेता को यमराज ने वर देने के वचन के पालन की मजबूरी से ही यह रहस्य बताया था। यमराज ने कहा था कि इसका पूरा रहस्य उनके सिवा देवता आदि भी कोई नहीं जानते। आत्मा सूक्ष्म शरीर से युक्त होती है। मतलब आत्मा जीवित प्राणी द्वारा किए जाने वाले सभी काम कर सकती है। तो फिर क्या परमात्मा भी सूक्ष्म शरीर से युक्त होता है? शास्त्र कहते हैं कि परमात्मा स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तीनों से परे हैं। पर तब आत्मा की तरह परमात्मा की चेतनता कैसे सिद्ध होगी। चेतना तो शरीर से और उससे किए जाने वाले कामों से ही सिद्ध होती है।

शास्त्रों में कहा गया है कि प्रलय का समय खत्म होने पर परमात्मा ने इच्छा जाहिर की कि वह अकेला ऊब रहा है, इसलिए वह एक से अनेक रूप हो जाए। इससे सृष्टि का विकास शुरू हुआ। इच्छा मन से होती है, और निर्णय बुद्धि से होता है। अपने आप का अहम तो परमात्मा में है ही। यह शुद्ध अहम है, विकृत अहंकार नहीं। फिर जो कर्मेंद्रियों और ज्ञानेंद्रियों से होने वाले सृष्टि निर्माण और विकास के काम निरंतर हो रहे थे, उन्हें एक प्रकार से परमात्मा ही कर रहे थे। आज भी वही कर रहे हैं। उन इंद्रियों को चलाने वाले प्राण भी परमात्मा के अंदर ही थे। मतलब चेतनता के सारे अंग या गुण मूल रूप में परमात्मा के ही हैं। गीता में भी भगवान के विराट शरीरयुक्त रूप का वर्णन किया गया है। इस रूप में भगवान की अनगिनत विशेषताएँ हैं, जैसे कि उनके अनेक मुख, अनेक आँखें, अनेक बाहें, और अनेक पैर हैं। बाद में ये चेतना को अभिव्यक्त करने वाले सारे गुण और अंग साधारण जीव या मानव शरीर में निर्मित हुए, जिसमें आत्मा का वास होने लगा। आत्मा भी परमात्मा का ही अंश है। वह शरीर में आकर अपने मूल परमात्मा की अनंत चेतना को भूल गया और शरीर की सीमित चेतना से बंध गया। फिर जितनी शरीर की चेतनता होती थी, उतनी ही उसमें भी रहने लगी। शरीर के मरने के बाद शरीर वाली चेतना उसमें सूक्ष्म शरीर के रूप में समा जाती थी। इसीलिए पशुओं की आत्मा की चेतनता कम होती है। इसीलिए पशु की आत्मा किसी से मिलने नहीं आती और ना किसी से बात कर पाती है, क्योंकि पशु खुद भी बात नहीं कर पाते। परमात्मा को जो तीनों शरीरों से परे बताया गया है, इसका मतलब यही लगता है कि हैं तो परमात्मा के भी यह तीनों शरीर पर वह इनसे बंधा नहीं है, और अपने पूर्ण सच्चिदानंद स्वरूप से जरा भी नहीं डगमगाता। यह तो आश्चर्य ही है? यह उच्चतम कोटि की अनासक्ति ही है। कुल मिलाकर अनासक्ति से बढ़कर कोई धर्म नहीं लगता। मुझे इसी में सारे धर्म और नियम समाए हुए लगते हैं। मानवता, जो धर्म का सबसे मूलभूत आधार है, वह भी अनासक्ति से ही जुड़ा हुआ है।

हां, तो हम कह रहे थे कि आदमी की चेतनता उसके मरने के बाद उसके सूक्ष्म शरीर में चली जाती है। मेरी इस बात के लिए शास्त्र भी प्रमाण हैं। शास्त्रों में आता है कि अच्छे कर्म करने से स्वर्ग मिलता है। अच्छे कर्म से आदमी का स्वभाव व दृष्टिकोण भी अच्छा हो जाता है। इससे उसका सूक्ष्म शरीर भी अच्छा हो जाता है। अच्छे सूक्ष्म शरीर को ही स्वर्ग का मिलना कहा गया है। स्थूल शरीर तो स्वर्ग जा नहीं सकता। कहावत भी है कि मरे बगैर स्वर्ग नहीं जाया जाता। मतलब आदमी के अच्छे कर्म से जो उसके सूक्ष्म शरीर की चेतनता बढ़ती है, वही उसे मरने के बाद स्वर्ग का सुख प्रदान करती है। चेतनता ही आनंद है, चेतनता ही ज्ञान है, चेतनता ही सुख है। स्वर्ग ही आनंद है, स्वर्ग ही ज्ञान है, स्वर्ग ही सुख है। इसी तरह शास्त्र कहते हैं कि बुरे कर्म करने से नरक मिलता है। बुरे कर्म करने से आदमी का स्वभाव व दृष्टिकोण भी बुरा हो जाता है। इससे उसका सूक्ष्म शरीर भी बुरा हो जाता है। बुरे सूक्ष्म शरीर को ही नर्क का मिलना कहा गया है। मतलब आदमी के बुरे कर्म से जो उसके सूक्ष्म शरीर की चेतनता घटती है अर्थात उसकी जड़ता बढ़ती है, वही उसे मरने के बाद नर्क का दुख प्रदान करती है। जड़ता ही अज्ञान है, जड़ता ही दुःख है। नर्क ही अज्ञान है, नर्क ही दुख है।

इन बातों से स्पष्ट है कि कुंडलिनी योग से आत्मा की चेतनता बढ़ती है। आत्मा यहां जीवात्मा का ही पर्याय है। शुद्ध आत्मा को तो परमात्मा ही कहना चाहिए। वह तो पहले से ही परम चेतन है। उसकी चेतनता कैसे बढ़ सकती है। कई जगह आत्मा और जीवात्मा का भेद बता कर भ्रम पैदा किया जाता है। वैसे ऐसा भी नहीं है। वे विस्तार से समझा रहे होते हैं। वैसे अगर जीवात्मा और परमात्मा दोनों के लिए आत्मा शब्द का प्रयोग किया जाए तब भी विषय के अनुसार शब्द का भाव समझ में आ जाना चाहिए। पर सभी लोगों को बुद्धि स्तर एक जैसा नहीं होता। कुंडलिनी योग से सूक्ष्म शरीर में भरा हुआ विचारों का कचरा साफ हो जाता है। इससे आदमी में काम करने की और ज्ञान को ग्रहण करने की शक्ति आ जाती है। इसे वह अनासक्ति से करता है क्योंकि योग से उसका ऐसा ही स्वभाव बन जाता है। अनासक्ति से उसकी ताकत की व्यर्थ बर्बादी रुकने से ताकत की बचत भी होती है। काम वह अच्छे ही करता है क्योंकि अनासक्ति से ज्यादातर अच्छे ही काम होते हैं।

कुंडलिनी योग से एक कलाकार अपने फिल्मी किरदार वाले नकली रूप के चंगुल से छूट कर अपने असली रूप को पहचान लेता है

दोस्तों दुनिया के सारे अनुभव आत्मा को ही होते हैं। आत्मा ही मन की लहरों की तरह बनकर अपने आप को लहरों के रूप में महसूस करती है। मतलब आत्मा एक नकलची बंदर की तरह है। यह मन की नकल करती रहती है। आत्मा किसी भी दूसरी चीज को महसूस नहीं कर सकती। यह सिर्फ अपने आप को महसूस कर सकती है। अपने से अन्य को महसूस करने के लिए यह अन्य का रूप धारण करके अपने आप को ही महसूस करती है। सीधे तौर पर किसी अन्य को नहीं। इसका मतलब है कि अगर यह अन्य के जैसी ना बन कर अपने मूल रूप या असली रूप में ही रहे तो भी यह अपने को तो महसूस करती ही रहेगी। एक कलाकार जोकर का रूप बनाकर अपने को जोकर के रूप में महसूस करता है। अगर वह जोकर न भी बने तो भी वह अपने को अपने मूल कलाकार के रूप में भी तो महसूस करेगा ही। कभी वह खलनायक का रूप बन कर अपने को खलनायक के रूप में महसूस करता है, तो कभी नायक के रूप में। पर उसका अपना मूल कलाकार का रूप तो एकमात्र वही अपरिवर्तित रहता है। एक जोकर भी खाना खाता है, खलनायक भी खाना खाता है। नायक भी खाना खाता है, और मूल कलाकार भी खाना खाता है। मतलब मूल कलाकार के सभी रूप सभी एक जैसे मूलभूत काम करते हैं। केवल वे बाहर से ही अलग अलग दिखते हैं। इसी तरह मूल आत्मा भी सभी काम करती है। वह मनुष्य के रूप में भी सभी काम करती है, और पशु के रूप में भी सभी जीवन के मूलभूत काम करती है। केवल बाहर बाहर से देखने पर ही सभी रूप अलग-अलग दिखते हैं। कई कलाकार ऐसे होते हैं जो अपने नकली रूपों में ऐसे डूब जाते हैं कि उन्हें अपने असली रूप का ध्यान ही नहीं रहता। कहते हैं कि दिग्गज सिने कलाकार राजेश खन्ना भी एक ऐसे ही कलाकार थे। वह बहुत उम्दा ढंग से अपने किरदार के रोल को निभाते थे। वह अपने किरदार में जान डाल देते थे। तो स्वाभाविक ही है कि आदमी के लिए उस किरदार से वापस निकलना मुश्किल होगा ही। इससे वे अपनी असली जिंदगी में अवसाद में आ जाते थे, और अपनी कलाकारी के नकली रूपों की यादों और भावनाओं में अक्सर खोए रहते थे।

आत्मा के साथ भी लगभग ऐसा ही होता है। वह अपने किस्म किस्म के शरीरों के रूपों की यादों में खुश हुई रहती है और अपने असली मूल रूप को लगभग भूल ही जाती है। शायद जो लोग बहुत-बहुत भौतिकता और गुणवत्ता के साथ या लगन के साथ या आसक्ति के साथ दुनिया में काम करते हैं, उनके साथ ऐसा ज्यादा होता है। हालांकि वे जल्दी ही इस समस्या को समझकर इससे बाहर भी निकल जाते हैं। जो ऐसे ही ईजी गोइंग वे या आरामफरोशी में जिंदगी गुजार देते हैं, उन्हें इस समस्या का पता ताउम्र नहीं चल पाता, जिससे वे इससे बाहर भी नहीं निकल पाते। यह एक पेचीदा मामला है।

शास्त्र कहते हैं कि आत्मा चेतना से भरपूर है। इसको लेखन के माध्यम से सरल करने की जरूरत है। आत्मा में चेतनता का मतलब यह होता है कि आत्मा चेतन मनुष्य के जैसे सभी काम करती है और सभी फल भोगती भी है। अब अगर आत्मा मनुष्य की तरह सभी कर्म करेगी तो उसके अंदर सभी कर्मेंद्रियों की उपस्थिति खुद ही सिद्ध हो गई। मतलब आत्मा के अंदर विभिन्न काम करने वाली हाथ, पैर, वाक, उपस्थेंद्रिय, और जननेंद्रिय, ये पांचो कर्मेंद्रियां विद्यमान हैं। इसी तरह अगर आत्मा मनुष्य की तरह सभी फल भोगती है तो उसके अंदर सभी ज्ञानेंद्रियों की उपस्थिति खुद ही सिद्ध हो गई। मतलब आत्मा में फल या ज्ञान भोगने वाली आंख, कान, त्वचा, नाक और जीभ, ये पांचों ज्ञानेंद्रियां विद्यमान है। देखो, थोड़ा समझने की जरूरत है। हमने तरीका नहीं बल्कि प्रभाव पकड़ना है। चेतना को दर्शाने वाला मुख्य प्रभाव आनन्द है। सभी कर्मेंद्रियां और ज्ञानेंद्रियां इस आनन्द प्रभाव को प्रकट करती हैं, मतलब चेतना को प्रकट करती हैं। क्योंकि मूल आत्मा परमानंद स्वरूप है, इसलिए चेतना का प्रभाव अनंत होने से परम चेतना भी उसमें अनंत ही मानी जाएगी। जब उसमें प्रभाव अनंत हो गया, तब उस प्रभाव को पैदा करने वाले तरीके अपने आप ही अनंत सिद्ध हो गए। मतलब आत्मा में सभी कर्मेंद्रियां और ज्ञानेंद्रियां अनंत रूप में मौजूद हैं। यही गीता में विराट रूप का वर्णन है, जिसमें उनके सहस्र हाथ, सहस्र पैर, सहस्र मुख आदि बताए गए हैं।

जब आत्मा मनुष्य शरीर के रूप में जन्म लेती है तो वह एक सीमित चेतना वाले व्यक्ति के रूप में अभिनय कर रही होती है। यह ऐसे ही है जैसे एक अरबपति कलाकार फिल्म में एक भिखारी का अभिनय कर रहा होता है। भिखारी के रूप में होने से उसकी चेतना बहुत घट जाती है। उसकी कर्मेंद्रियां कमजोर होती हैं और उनसे कर्म भी बहुत कम होते हैं। इसी तरह उसकी ज्ञानेंद्रियां भी कमजोर होती हैं और वे बहुत थोड़े फलों का ही अनुभव करती हैं। हो सकता है कि कोई अरबपति कलाकार अपने असली रूप को भूलकर पूरी उम्र के लिए भिखारी के रूप में ही फंसा रह जाए। ज्यादातर आत्माओं के साथ तो ऐसा ही होता है। वे अपने परम चेतन रूप को भूलकर सीमित चेतना वाले मनुष्य आदि शरीरों के रूप में ही बंध कर रह जाती हैं। शायद ऐसा आसक्ति से ही होता है। कुंडलिनी योग से जब आसक्ति मिटती है तब आत्मा अपने शुद्ध मूल रूप को जागृति के रूप में पहचान लेती है। पहचानना अलग चीज है और उसे प्राप्त करना अलग। हां, यह जरूर है कि किसी चीज को पहचान कर उसे प्राप्त करना आसान हो जाता है। मेरे स्वप्नकालिक आत्मा के साक्षात्कार से ऐसा लगता है कि आत्मा बेस लेवल पर संबंधित शरीर के सारे काम कर सकती है। अनुभव का आधार तो आत्मा ही है। शरीर की सहायता से उस अनुभव को ज्यादा स्थूलता, तरंगता और परिवर्तनशीलता मिलती है। पर आदमी इस तड़क-भड़क में आकर आत्मा के मूल अनुभवों को भूल ही जाता है।

कुंडलिनी योग ही सूक्ष्म शरीर को पूरी तरह से डिकोड कर सकता है

दोस्तों हम बात कर रहे थे कि क्रिया और प्रभाव आपस में जुड़े होते हैं। इस परस्पर प्रभाव को शास्त्रीय दर्शनों में अक्सर कार्य कारण संबंध परंपरा कहा जाता है। जीवात्मा क्रिया से प्रभाव पैदा करती है और परमात्मा प्रभाव से क्रिया पैदा करते हैं। इसको ऐसे समझते हैं। जीव अपने शरीर की क्रियाशीलता से चेतना का आनंद प्राप्त करता है। पर परमात्मा पहले ही चेतना से भरपूर है इसलिए उससे शरीर की क्रिया खुद ही होती रहती है। आम शरीर वाली क्रिया नहीं पर सृष्टि रूपी विराट शरीर वाली क्रिया। क्योंकि परमात्मा की चेतना अनंत है इसलिए उसके कारण क्रिया करने वाला उनका शरीर भी अनंत ही होगा। उनकी सांस के रूप में अनंत वायु बहती है। उनकी आंख के रूप में असंख्य सूरज चमकते हैं। उनकी भुजा के रूप में सृष्टि के असंख्य काम होते हैं। उनके पैरों के रूप में सृष्टि के सभी काम एक दूसरे से जुड़े हैं। जैसे आदमी पैरों से चलकर घर से खेत और खेत से घर जाता है। इसलिए उसके घर के और खेत के काम आपस में जुड़े हैं। क्योंकि सारी सृष्टि की सभी क्रियाएं आपस में जुड़ी हैं। इससे यही माना जाएगा कि परमात्मा के असंख्य पैर हैं, जिससे वह हर जगह हर क्षण जा सकते हैं। इसी तरह अगर हम परमात्मा के सारे गुणों का वर्णन करने लग जाएं, तो एक क्या अनगिनत पुस्तकें छप जाएंगी? यह शास्त्रों में पहले से ही बहुत है। यहां मुख्य प्रश्न है कि शरीर रहित जीवात्मा या सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर वाले सभी काम कैसे करता है?

बेशक सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म रूप में सभी काम करता है पर करता कैसे हैं? यहां भी शायद क्रिया प्रभाव वाली कहानी ही जमेगी। एक अमुक शरीर ने शुरु से लेकर जो जो क्रियाएं की होती हैं, वे सभी उसकी आत्मा पर अंधकार की छांव के रूप में दर्ज हो जाती हैं। मतलब उसकी उन क्रियाओं का प्रभाव उसके जीवन काल में उसे चेतना के रूप में मिलता गया। पर मृत्यु के बाद वह उसकी आत्मा में अचेतनता के रूप में दर्ज होता गया। चेतनता और अचेतनता दोनों एक दूसरे के सापेक्ष हैं। जीव में ये दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं। पर परमात्मा में निरपेक्ष चेतना होती है, क्योंकि वह किसी भौतिक पदार्थ के आश्रित नहीं होती। जीव की चेतना उसके भौतिक शरीर के आश्रित होती है। इससे जब उसका शरीर नष्ट होता है तब उसकी चेतना भी नष्ट हो जाती है। वैसे चेतना कभी नष्ट नहीं होती बल्कि वह उसके सूक्ष्म शरीर में अचेतनता के रूप में एनकोडिड अर्थात दर्ज होती रहती है। इसका मतलब है कि उसका सूक्ष्म शरीर अचेतनता से बना है। हालांकि यह अचेतनता उतनी ही है जितनी उसकी चेतनता होती थी। उसकी चेतनता का सारा डाटा उसकी अचेतनता में दर्ज रहता है। शायद कर्म फल इसी वजह से मिलता है। जैसे रात से दिन और दिन से रात बनते रहते हैं, वैसे ही जीवात्मा की चेतनता और अचेतनता एक दूसरे को क्रमवार बनाते रहते हैं।

अब हम क्रिया और प्रभाव के परस्पर संबंध पर पुनः चलते हैं। जीवात्मा में परमात्मा की तरह चेतना रूपी प्रभाव असीमित नहीं है। जीवात्मा में यह प्रभाव सीमित होता है, इसलिए इससे क्रिया भी सीमित ही होगी। क्योंकि शरीर रहित जीवात्मा में प्रभाव शरीर युक्त जीवात्मा का उल्टा होगा इसलिए किया अभी उलट ही होगी। उलट का मतलब यह नहीं कि उलटे काम होते रहेंगे बल्कि यह कि वे काम छाप या सूक्ष्म रूप में होंगे। इसलिए स्थूल रूप में शरीर युक्त आत्मा जो कुछ सोचता था उससे उसकी चेतना बढ़ी। वह चेतना उसकी आत्मा में दर्ज होगी। उस दर्ज सूचना से उसे अपनी शरीररहित अवस्था में अपने द्वारा सोचने का अनुभव होगा। हालांकि वैसा अनुभव नहीं जैसा जीवित शरीर करता था बल्कि सूक्ष्म व तरंगरहित या अपरिवर्तनीय रूप में। यह उसके सूक्ष्म शरीर का मन हो गया। जीव आत्मा शरीर में रहते हुए जो बुद्धि से निर्णय लेता था, उनसे भी उसकी चेतना बढ़ी। वह भी उसकी आत्मा में दर्ज होगी। उस दर्ज सूचना से उसे मृत्यु के बाद अपने द्वारा निर्णय लेने का अनुभव होगा। हालांकि वैसा नहीं जैसा उसका जीवित शरीर करता था बल्कि सूक्ष्म व तरंगरहित या अपरिवर्तनीय रूप का अनुभव। यह उसके सूक्ष्म शरीर की बुद्धि होगी। शरीर युक्त आत्मा जो अहम भाव अनुभव करता था, उससे उसकी चेतना बढ़ी। वह चेतना उसकी आत्मा में सूक्ष्म रूप में दर्ज होगी अर्थात समकक्ष अचेतनता के रूप में दर्ज होगी। उस दर्ज सूचना से उसे अपने अहम भाव का अनुभव होगा। हालांकि वैसा अनुभव नहीं जैसा उसका जीवित शरीर करता था, बल्कि सूक्ष्म या तरंगरहित या अपरिवर्तनीय रूप में। जब शरीर नहीं है, तब तरंग तो बन ही नहीं सकती। शरीरयुक्त आत्मा जो कर्मेंद्रियों के द्वारा किए गए कामों को अनुभव करता था, उससे उसकी चेतना बढ़ी। वह जितनी थी उतनी ही उसकी आत्मा में सूक्ष्म रूप में दर्ज हो गई। उस दर्ज सूचना से उसे अपनी कर्मेंद्रियों वाला अनुभव मिलेगा। हालांकि वैसा अनुभव नहीं जैसा उसका जीवित शरीर करता था, बल्कि सूक्ष्म और तरंगरहित या अपरिवर्तनीय रूप में। शरीरयुक्त आत्मा जो ज्ञानेंद्रियों के द्वारा किए गए कामों को अनुभव करता था, उनसे उसकी चेतना बढ़ी। वह चेतना उसकी आत्मा में सूक्ष्म रूप में दर्ज होगी। उस दर्ज सूचना से उसे अपनी ज्ञानेंद्रियों वाला अनुभव मिलेगा। हालांकि वैसा नहीं जैसा उसका जीवित शेर करता था बल्कि सूक्ष्म और तरंगरहित या अपरिवर्तनीय रूप में। शरीरयुक्त आत्मा जो अपने अंदर पांचों प्राणों को अनुभव करता था, उससे उसकी चेतना बढ़ी। वह चेतना भी उसकी आत्मा में सूक्ष्म रूप में दर्ज हो गई। उस दर्ज सूचना से उसे अपने प्राणों वाला या सांस लेने वाला अनुभव मिलेगा। हालांकि वैसा नहीं जैसा उसका जीवित शरीर अनुभव करता था, बल्कि सूक्ष्म और तरंगरहित या अपरिवर्तनीय रूप में। इस तरह से जीवात्मा का पूरा सूक्ष्म शरीर बन जाता है। यह पूरी तरह से उसके सबसे नजदीकी स्थूल शरीर के जैसा ही होता है, क्योंकि उसका प्रभाव सबसे ज्यादा होता है। वैसे तो जीव आत्मा ने अनगिनत योनियों में जन्म लिया होता है। इसीलिए आत्मा को मरने के बाद भी अपने

परिवर्तनरहित और तरंगरहित अंधेरे में अपने सबसे नजदीकी शरीर का अनुभव होता रहता है। उसे लगता ही नहीं कि वह नष्ट हो गया है या उसकी मृत्यु हो गई है। इस सूक्ष्म शरीर को पूरी तरह से डिकोड करने का तरीका केवल कुंडलिनी योग ही है।

कुंडलिनी योग से जगत इन्द्रियों में, इंद्रियां मन में, मन बुद्धि में, बुद्धि अहंकार में और अहंकार आत्मा में विलीन हो जाता है

दोस्तों, सूक्ष्म शरीर पर यह चर्चा बढ़ती ही जा रही है। मैं चाहता था कि कोई नई चर्चा शुरू होए, पर यह क्या है न कि चर्चा एक सृष्टि की विकास प्रक्रिया की तरह ही चरणों से गुजरती है। यह शुरू होती है, बढ़ती है, और निष्कर्ष पैदा करके खत्म हो जाती है। इस पर किसी की लगाम नहीं लगती। यह पोस्ट भी मुझे निष्कर्ष वाली लग रही है। पर फिर भी पता नहीं आगे कहां तक जाए।

हम बात कर रहे थे कि शरीररहित आत्मा अपने को ही सूक्ष्म शरीर के रूप में अनुभव करती है। आत्मा के अंदर उसके पिछले सभी जन्मों के किस्से सूक्ष्म रूप में मौजूद होते हैं। वह उन्हीं को सूक्ष्म शरीर के रूप में महसूस करती है। यह तो सब ठीक है पर स्थूल शरीर के बिना वह दूसरों के साथ कैसे संपर्क करेगी? और उसका विकास भी कैसे होगा? देखो, पिछले जन्मों का कभी उसे कोई हिस्सा ज्यादा महसूस होता होगा तो कभी कोई दूसरा। यह ऐसे ही है जैसे शरीरयुक्त आत्मा के मन में कभी कोई विचार उठता है, तो कभी कोई। पहले वह विचार भी सूक्ष्म अनुभव के रूप में आत्मा में महसूस होता है। उसके बाद वह अनुभव मन की तरंगों के माध्यम से उस अनुभव वाले विचार के रूप में स्थूलता ग्रहण करता है। वह विचार फिर मुख से बोल के रूप में निकलकर और ज्यादा स्थूल हो जाता है। उस बोल से जब उसके जैसा काम होता है तब वह काम के प्रभाव या जगत के रूप में और ज्यादा स्थूल हो जाता है। इस तरह से स्थूलता बढ़ती ही रहती है। इस तरह से आत्मा का विस्तार पूरे जगत में हो जाता है। अंत में यह जगत सिकुड़ कर फिर से आत्मा में समा जाता है। फिर सारी प्रक्रिया उल्टी चलने लगती है। जगत के स्थूल पदार्थ सूक्ष्म होकर कर्मेंद्रियों और ज्ञानेंद्रियों में समा जाते हैं। यह ऐसे ही है कि जगत चक्रों में समा जाता है। इसीलिए कुंडलिनी योग में चक्र साधना सबसे मुख्य अंग है। चक्र में ध्यान लगाने से उनसे अर्थात उनके या इंद्रियों के द्वारा पैदा हुए कर्मों और फलों से जुड़ी स्मृतियां मन में आ जाती है। वैसे भी कहते ही हैं कि सातों चक्र शरीर की सभी इंद्रियों से जुड़े होते हैं। इसको ऐसे कहा गया है कि इंद्रियां मन में समा जाती है। मन फिर और ज्यादा सूक्ष्म होकर बुद्धि में समा जाता है। मतलब मन के विचारों का लय होने से बुद्धि तेज हो जाती है, क्योंकि मस्तिष्क की जिस ऊर्जा को मन खा रहा था, वह अब बुद्धि को मिलती है। बुद्धि फिर और ज्यादा सूक्ष्म होकर अहंकार में समा जाती है। मतलब जब बुद्धि को लगने वाली ऊर्जा भी दुनियादारी में बर्बाद नहीं होती तो वह भी अहंकार में विलीन हो जाती है। अहंकार मतलब अंधेरा। जब आदमी सब कुछ ठुकरा देगा तो अंधेरा ही बचेगा। इसी अंधेरे में जब आदमी कुंडलिनी योग से कुंडलिनी की लौ जलाता है, तो वह जागृत होती हुई अवस्था में अहंकार को आत्मा में विलीन कर देती है, मतलब कुंडलिनी जागरण के

रूप में कुछ क्षणों के लिए आत्मा का अनुभव प्राप्त होता है। यह सारा खेल शक्ति का ही है। जब वह बहिर्मुखी थी, तो दुनिया के रूप में बाहर ही बाहर फैलती गई। जब यह अंतर्मुखी हुई तो अंदर ही अंदर सिकुड़ती गई और अंत में कुंडलिनी योग के माध्यम से कुंडलिनी को लग गई और वह उस शक्ति से आत्मा में विलीन हो गई।

यह अहंकार आत्मा जैसा ही है पर उसमें आत्मा से कम चेतना होती है। इसे जीवात्मा कह लो क्योंकि इसमें आदमी का पिछला सारा इतिहास सूक्ष्म कोडों के रूप में छुपा होता है। अंत में शरीर छूटने से अहंकार भी आत्मा में समा जाता है। शरीर छूटने से अहंकार आत्मा में तो नहीं पर जीवात्मा में समा जाता है। आत्मा में समाने के लिए उसे कुंडली जागरण का अनुभव प्राप्त करना होगा। कुंडली जागरण के कुछ क्षणों के अनुभव के दौरान वह अहंकार अर्थात आदमी का अपना मूलभूत जीवात्मा वाला रूप आत्मा में समाया होता है। हालांकि उस अनुभव के बाद अहंकार पुनः वापिस आ जाता है क्योंकि अहंकार के बिना कोई जीवन जी ही नहीं सकता। उसके बिना या पूर्ण आत्मा के रूप में आदमी होगा तो पूर्ण पर होगा लकड़ी के ठूंठ की तरह। दुनिया के प्रति उसकी कोई प्रतिक्रिया शेष नहीं रह जाएगी। खैर, अहंकार की ऊर्जा जब बाहर नहीं भागती तो वह ऊर्जा कुंडलिनी जागरण को पैदा करती है। होता यह सब कुंडलिनी योग से ही है। ये सभी तत्त्व आत्मा में सूक्ष्म रूप में रहते हैं। कभी आत्मा से बाहर निकलते हैं, कभी उसमें समा जाते हैं। शास्त्रों में सृष्टि और प्रलय का और जीवन और मृत्यु का बिल्कुल ऐसा ही वर्णन मिलता है। यहां तक कि योग साधना से अज्ञान से ज्ञान की तरफ जाने का अर्थात बंधन से मुक्ति की तरफ जाने का जो सफर है, उसका वर्णन भी इसी तरह का आता है। दरअसल, ये सब प्रक्रियाएं एकसमान ही हैं। सिर्फ मानसिकता, उद्देश्य, और प्रक्रिया के तरीकों में ही फर्क है। यहां किसी चीज के किसी चीज में समाने का यह मतलब नहीं है कि वह चीज खत्म हो जाती है। बल्कि इसका यह मतलब है कि वह सूक्ष्म होकर अर्थात ऊर्जा के रूप में रूपांतरित होकर किसी मिलतेजुलते अन्य रूप में प्रकट हो जाती है। यह ऐसे ही है जैसे कहते हैं कि गागर में सागर समाना। शास्त्रों में इसे ऐसे कहा गया है कि आत्मा इस संसार को अपने अंदर से ऐसे ही फैलाता और अपने अंदर ऐसे ही समेटता रहता है, जैसे एक कछुआ अपने अंगों को अपने कवच से बाहर निकालता है और अपने कवच के अंदर को समेटता भी रहता है। दूसरा उदाहरण ऐसा दिया जाता है कि जिस तरह मकड़ी अपने मुंह से अपना जाला बुनती है और फिर उस जाले को अपने मुंह में ही निगल जाती है, उसी तरह परमात्मा भी सारे संसार को अपने आप से पैदा करता है, और अंत में अपने आप में ही विलीन भी कर लेता है।

कुंडलिनी जागरण से ही अहंकार की सही से पहचान होती है और इसका सही से निवारण होता है

दोस्तों, शास्त्रों में कही गई बातों के गहरे मतलब होते हैं। जैसे कि हम चर्चा कर रहे थे कि योग स्थूलता से सूक्ष्मता की तरफ जाता है। मृत्यु या प्रलय को भी स्थूलता से सूक्ष्मता की तरफ जाने को ही कहते हैं। फिर योग में और मृत्यु में क्या अंतर है, इसे जरा गहराई से समझते हैं। मृत्यु वाली सूक्ष्मता अहंकार पर रुक जाती है। पर योग वाली सूक्ष्मता आत्मा तक पहुंच जाती है। आत्मा सूक्ष्मता की अंतिम सीमा है। आत्मा से सूक्ष्म अन्य कुछ नहीं है। इसमें ब्लैक होल के जैसा आकर्षण भी है। जो इसको पा लेता है, वह फिर कभी भौतिक दुनिया में वापस नहीं लौटता। फिर हमेशा के लिए आत्मा की सूक्ष्म और अनंत दुनिया ही उसकी दुनिया बन जाती है। दूसरी तरफ मृत्यु वाली सूक्ष्मता अहंकार पर पहुंचकर रुक जाती है। आदमी का अहंकार बेशक सूक्ष्म है, और उसमें आदमी के सारे पिछले क्रियाकलाप सूक्ष्म कोडों के रूप में दर्ज हैं। पर फिर भी यह परमसूक्ष्म आत्मा के सामने पहाड़ जैसा स्थूल है। आत्मा में जगत का बिल्कुल भी नामोनिशान नहीं है, सूक्ष्म या कोड रूप में भी नहीं।

कई लोग इसी अहंकार को जीवात्मा कहते हैं। कई लोग इसी को अवचेतन मन कहते हैं। कई इसी को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। यह सब शब्दों का जाल है। चीज एक ही है। इसे अहंकार इसलिए कहते हैं क्योंकि यह सभी लोगों को अपने आप के रूप में दिखता है, पराए रूप में नहीं। पर दरअसल में यह अपना रूप नहीं होता। इसीलिए शास्त्रों में अहंकार को झूठा और धोखा कहा जाता है। संस्कृत शब्द “अहम” का मतलब ही “मैं” होता है। जिस दुनिया से आदमी व्यवहार करता है, वह पराए रूप में होती है। जैसे आदमी बोलता है कि उसने गाड़ी चलाई। वह ऐसे तो नहीं बोलता कि उसने अपने को चलाया। पर उसे पता ही नहीं चलता कि वे दुनिया की पराई चीजें ही सूक्ष्म रूप होकर उसके अपने आप के स्वरूप वाले अहंकार को बनाती हैं और बढ़ाती हैं।

उपरोक्तानुसार आदमी के अहंकार अर्थात अवचेतन मन में सभी पराई चीजें भरी होती हैं। पर आदमी उन्हें कभी पराया नहीं समझता। वह इसलिए क्योंकि वे बहुत सूक्ष्म रूप में होती हैं। वे आत्मा से इतनी नजदीकी से चिपकी होती हैं कि मरने पर भी नहीं छूटती। वे हमेशा आदमी की आत्मा के साथ जन्म जन्मांतरों में और लोक लोकांतरों में भ्रमण करती रहती हैं। इसीलिए वे आत्मा को अपना स्वरूप लगती हैं। एक प्रकार से आदमी पूरी दुनिया को अपने साथ घुमाए फिरता रहता है। बोलते हैं कि फलां की उम्र पूरी हो गई और उसने दुनिया को छोड़ दिया। पर दुनिया उसे कहां छोड़ती है। वह तो उसके अहंकार के रूप में उसी के साथ हो लेती है।

प्रत्येक पराई वस्तु या पराए विचार की छाया आदमी की आत्मा में अहंकार के रूप में दर्ज होती रहती है। कई दुनियादारी में निपुण लोग बड़ा दावा या नाटक करते हैं कि उनमें अहंकार नहीं है, पर ऐसा होना असंभव है। कई महान अहंकारी तो आत्मज्ञानी बनकर

घूमते फिरते हैं। मैं यह किसी धर्म के अधिष्ठाता के बारे में नहीं बोल रहा। दुनिया की छाया तो आत्मा पर बनेगी ही, चाहे आदमी अपना जितना मर्जी बचाव कर ले। हां, अगर वह साथ में कुंडलिनी योग भी प्रतिदिन करता रहे, तब वह छांव कमजोर बनेगी और बनी हुई छांव मिटने लगेगी। फिर हम कह सकते हैं कि अमुक आदमी में बहुत कम अहंकार है। मतलब साफ है कि कुंडलिनी योग ही किसी के अहंकार का पैमाना है, दुनियादारी नहीं।

या तो आदमी स्थूल जगत को भी सूक्ष्म जगत की तरह अपना स्वरूप समझे या किसी को भी अपना स्वरूप ना समझे। गड़बड़ वहां होती है, जब स्थूल जगत को पराया रूप समझा जाता है, और सूक्ष्म जगत को अपना रूप समझा जाता है। जब आदमी अपने अहंकार की तरह ही स्थूल जगत को भी अपना रूप समझेगा तो उसके प्रति उसकी आसक्ति कम हो जाएगी। अपने से भला कौन आसक्ति करता है। इससे आत्मा पर उसकी कम गहरी छाया बनेगी। इससे अहंकार भी खुद ही कम हो जाएगा। अगर आदमी जगत के साथ अहंकार को भी पराया समझेगा तो वह कुंडलिनी योग साधना की तरफ झुकेगा और उसकी मदद से अपनी शुद्ध आत्मा से चिपकी पराई और गंदी चीज को बाहर निकालना चाहेगा।

आम आदमी को अपनी शुद्ध आत्मा का पता ही नहीं होता। इसलिए वह अहंकार को ही अपनी आत्मा समझे रखता है। पर कुंडलिनी जागरण से आदमी को अपनी शुद्ध आत्मा का अनुभव होता है। बेशक कुंडलिनी जागरण का अनुभव और उससे जुड़ा आत्मा का अनुभव कुछ ही क्षणों के लिए होता है। इससे अहंकार स्पष्ट रूप से पराया और अज्ञान की वजह से शुद्ध आत्मा से चिपका हुआ सा नजर आने लगता है। यह अज्ञान आत्मा का अज्ञान ही है, जिसे शास्त्रों में ज्ञान से मतलब आत्मा के ज्ञान से खत्म करने की सलाह हर जगह दी गई है। मतलब परोक्ष रूप से कुंडलिनी जागरण की सलाह दी गई है, क्योंकि उसी से आत्मा का ज्ञान अर्थात आत्मा का अनुभव होगा। आत्मा का ज्ञान कोई किताबी ज्ञान की तरह नहीं है कि पढ़ा और हो गया, जैसा कई लोग समझते हैं। बल्कि यह आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव है। वैसे भी पढ़ा तो किसी दूसरी चीज के बारे में ही जा सकता है। अपने को कोई कैसे पढ़ेगा। अपने को तो केवल प्रत्यक्ष रूप में महसूस ही किया जा सकता है। इसलिए जागृत अर्थात आत्मज्ञानी आदमी कुंडलिनी योग समेत विभिन्न प्रकार की साधनाओं से उस विषबेल रूपी अहंकार को परे हटाने का प्रयास भी करता रहता है। शायद दार्शनिक शैली में अहंकार को ही विषबेल कहा गया है, क्योंकि दोनों लिपटते हैं, और जिससे लिपटते हैं, उसे मार देते हैं। इसी तरह अहंकार को ही आकाशबेल कहा गया है। आकाशबेल मतलब ऐसी बेल जो आकाश से लिपटती है। आत्मा आकाश की तरह स्वच्छ और शून्य है। अहंकार ही इससे लिपट सकता है, अन्य तो कुछ भी आकाश से नहीं चिपक सकता। यह भी आश्चर्य ही है कि अहंकार शून्य आकाश को भी नहीं छोड़ता।

मतलब साफ है कि कुंडली जागरण कोई स्थाई उपलब्धि नहीं है। पर इसका महत्त्व इसी में है कि यह आदमी को योग की तरफ प्रेरित करता रहता है। हां, सबको तो कुंडली जागरण मिलता नहीं है। इसीलिए जागृत व्यक्ति की संगत करने को कहा जाता है। जैसे स्वर्ण का जानकार पूरी दुनिया को स्वर्ण की पहचान बताता है। उसी तरह एक जागृत व्यक्ति ही पूरे समाज को आत्मा और अहंकार की सही पहचान बता सकता है। इसीलिए शास्त्रों में कुंडलिनी जागरण को बहुत महत्व दिया गया है। आजकल के सत्संगों आदि में बेशक मुख्य प्रवचक आदि लोग जागृत नहीं होते, पर वे शास्त्रों में लिखे जागृत लोगों के वचनों की पुनरावृत्ति करते हैं। इससे भी काम चल पड़ता है। इसीलिए व्यास या कथावाचक को भी बहुत महत्त्व व सम्मान दिया जाता है। बेशक वे जागृत नहीं होते पर जागृत लोगों के वचनों को अपनी दार्शनिक चतुराई और वाकपटुता से श्रोता गणों को अच्छे से समझाते हैं। हम भी इस वेबसाइट पर लगभग यही करने का प्रयास करते हैं, क्योंकि हम शास्त्रों के ही आध्यात्मिक तथ्यों को आधुनिक, वैज्ञानिक और तार्किक रूप में समझने की और दुनिया के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश करते रहते हैं।

कुंडलिनी योग खरपतवार को नर्सरी में ही नष्ट कर देता है

दोस्तों, बुलेट ट्रेन रुक सकती है, पर लेखनी अगर एक बार चल पड़े तो नहीं रुक सकती। मेरे मन में एक विचार आया कि शास्त्रों में अहंकार को ही सूक्ष्म शरीर कहा गया है। वैसे तो सूक्ष्म शरीर को बताया गया है कि वह आत्मा, अहंकार, बुद्धि, मन, पांच प्राण, पांच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेंद्रियों से मिलकर बना है। पर साथ में यह भी कहा गया है आदमी द्वारा किए गए सभी कर्म और भोगे गए सभी फल उसकी इंद्रियों में विलीन हो जाते हैं। इंद्रियां प्राण में विलीन हो जाती हैं। प्राण मन में विलीन हो जाते हैं। मन बुद्धि में विलीन हो जाता है, और बुद्धि अहंकार में विलीन हो जाती है। तो इसे ऐसा क्यों न समझा जाए कि मृत्यु के बाद सिर्फ अहंकार ही बचा रहता है। मतलब आदमी का पूरा जीवन उसके अहंकार में दर्ज हो जाता है। इसीलिए कहावत भी है कि रस्सी जल गई पर ऐंठन नहीं गई। मतलब शरीर नष्ट हो जाता है पर उससे जुड़ा अहंकार नष्ट नहीं होता। वह केवल मोक्ष मिलने पर ही नष्ट होता है। ऋषि दुष्टों और राक्षसों से अक्सर कहते हैं कि अरे दुष्ट, तेरा अनकार जल्दी ही नष्ट हो जाएगा। मतलब आदमी का अहंकार हमेशा नहीं रहता। इसका यही मतलब है कि ज्ञान हो जाएगा। अहंकार आत्मा की तरह शाश्वत नहीं है। यह जगत की परछाई होने के कारण उसी की तरह झूठा है। कभी न कभी तो इसने नष्ट होना ही है। तभी कहते हैं कि राम नाम सत्य है। मतलब आत्मा ही सत्य है जो कभी नष्ट नहीं होती।

कर्मों और फलों के इंद्रियों में विलीन होने का मतलब है कि उनसे जुड़े अनुभव शरीर के चक्रों में सूक्ष्मरूप में दर्ज हो गए। योगी लोग इन्हें कुंडलिनी योग से बाहर निकालकर खत्म कर देते हैं, जिससे ये अहंकार तक नहीं पहुंच पाते और उन्हें कर्मफल के बंधन में नहीं डाल पाते। इंद्रियों के प्राणों में विलीन होने का यह मतलब नहीं कि इंद्रियां नष्ट हो गई। इसका मतलब है कि शरीर की क्रियाशीलता कम होने से इंद्रियां क्षीण हो गईं। इससे उनको मिलने वाली शरीर की जीवनी शक्ति की बचत हो गई। वह अतिरिक्त शक्ति प्राण शक्ति के रूप में शरीर को उपलब्ध हो गई। उस अतिरिक्त प्राण की शक्ति मन को लगने लगी। इसीलिए तो बैठे-बिठाए आदमी का मन बहुत भागता है। साक्षीभाव साधना का अभ्यास करने वाले या राजयोगी इन मन के विचारों के प्रति उदासीन रहकर इन्हें क्षीण करते हैं। इससे वे भी कर्मफल के बंधन में नहीं पड़ते। पर चक्रों पर ही विचारों को कुचलने का कुंडलिनी योग का तरीका ज्यादा आसान और प्रभावशाली है। अगर आप खरपतवार को नर्सरी में ही नष्ट कर दो तो ज्यादा अच्छा है, क्योंकि खेत में पहुंचने के बाद तो यह बहुत ज्यादा बढ़कर बहुत ज्यादा दायरे में फैल जाता है। जब योग से मन को भी काबू किया गया तो उसकी शक्ति बुद्धि को लग गई। इसीलिए तो जो मन पर काबू पा लेता है वह बहुत से रचनात्मक कार्य जैसे कि लेखन, गायन, कविता निर्माण, चित्रकारी आदि में

निपुण होकर दुनिया को श्रेष्ठ रचनाएं प्रदान करता है। ये सब काम बुद्धिरूपी एकाग्र मन से ही होते हैं, भटकते मन रूपी साधारण मन से नहीं। फिर जब योग से बुद्धि पर भी लगाम लगा दी जाती है तब बुद्धि की शक्ति अहंकार को लगती है। मतलब बुद्धि नष्ट नहीं होती पर अहंकार में समा जाती है। इसीलिए तो अपनी बुद्धि से दुनिया में झंडे गाड़ने वाले का अहंकार बहुत बढ़ जाता है। लोग उसे ताने मारने लगते हैं कि उसका घमंड बहुत बढ़ गया है। लोग उससे जलने लगते हैं। जब आदमी कुंडलिनी योग से अहंकार को भी काबू में कर लेता है, तब उसकी शक्ति आत्मा को लगने लगती है। अहंकार के बाद पाने को आत्मा ही तो बचता है। वैसे तो अहंकारी आदमी दुनिया में अपना डंका बजाते हुए दौड़ता भागता रहता है। पर जब वह कुंडलिनी योग में लग जाता है तो अहंकार खुद ही आत्मा या कुंडलिनी जागरण के अनुभव में रूपांतरित होने लगता है। यह इसलिए क्योंकि अहंकार से महान और व्यापक केवल आत्मा ही है। अहंकार को महतत्त्व इसीलिए कहते हैं क्योंकि यह सबसे महान तत्त्व है। जिन चीजों से दुनिया बनी है, उन्हें तत्त्व कहते हैं। अहंकार इनमें सबसे बड़ा है। यह अकाश की तरह ही व्यापक है। बेशक यह आत्मा जैसा परम चेतन नहीं है। आत्मा दुनिया के सभी तत्त्वों से परे है। अहंकार की इसी विशालता और व्यापकता के कारण ही शरीर छोड़कर गई आत्मा में कई अलौकिक जैसी शक्तियां होती हैं। कई तांत्रिक उन आत्माओं को सिद्ध करके उन शक्तियों को प्राप्त करते हैं। इन सब बातों से साफ है कि अहंकार पूरे सूक्ष्म शरीर को अपने अंदर समेटे होता है। हालांकि होता वह काजल के जैसे चमकीले और अंधेरे आसमान के जैसा ही।

आत्मज्ञान के बाद यह प्रक्रिया उल्टी भी चलती है। खासकर जब योगी दुनियादारी में प्रवेश करने लगता है। उसकी आत्मा तनिक मलिन होकर अहंकार के रूप में बन जाती है। अहंकार बुद्धि के रूप में आ जाता है। बुद्धि मन के रूप में, मन प्राणों के रूप में और प्राण इंद्रियों के रूप में स्थूल हो जाते हैं। इसलिए देखा गया है कि अच्छे विचारों से अच्छी साँसें बहने लगती हैं। साथ ही, अच्छी साँसों से इन्द्रियाँ पर्याप्त रूप से सक्रिय हो जाती हैं और अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित होती हैं। फिर इंद्रियां विभिन्न कर्मों और फलों के रूप में पूरे जगत में फैल कर उस आदमी के अपने व्यक्तिगत और सीमित संसार का निर्माण करती हैं। हालांकि फिर वह राजा जनक की तरह कर्मयोगी बनता है, और बंधन में कम ही पड़ता है।

कुंडलिनी जागरण सच्चाई के बाहर होने की बजाय भीतर होने की पुष्टि करता है

दोस्तों शास्त्रों के अनुसार फिर पंचज्ञानेंद्रियों से पंचतन्मात्राओं की रचना होती है। तन्मात्राएं महाभूतों का सूक्ष्म रूप हैं, जो इंद्रियों के अनुभव में आता है। यह अविभक्त अनुभव होता है, जैसे कि रूप तन्मात्रा सभी किस्म के पदार्थों का दिखने में आने वाला सामान्य रूप है। यह पत्थर, पानी, पेड़ आदि सब चीजों के लिए सामान्य है। मतलब कि जल और पृथ्वी दो अलग-अलग महाभूत हैं पर उनकी रूप तन्मात्रा एक ही है। ये दोनों इसी रूप तन्मात्रा के कारण दिखते हैं। आंखें इंद्रियां इन दोनों की केवल रूप तन्मात्रा को ग्रहण करती हैं, अन्य कुछ नहीं। यह रूप तन्मात्रा प्रकाश की किरणों के माध्यम से आंख तक पहुंचती है। इसी तरह नासिका इंद्रिय गंध तन्मात्रा को ग्रहण करती है। कान शब्द तन्मात्रा को और चमड़ी स्पर्श तन्मात्रा को ग्रहण करती है। जीभ इंद्रिय रस तन्मात्रा को ग्रहण करती है। ये तन्मात्राएं इंद्रियों को अनुभव देने का और पंचमहाभूतों का एहसास कराने का काम करती हैं। इसी को ऐसा कहा गया है कि तन्मात्राओं से महाभूतों का निर्माण होता है। जब हम पत्थर की रूप तन्मात्रा को ग्रहण करते हैं तो हमें किसी चीज के उपस्थित होने का आभास होता है। जब हम उसकी स्पर्श तन्मात्रा को भी अनुभव करते हैं, तब हमें उसके कठोर होने का आभास होता है। जब हम उसकी गंध तन्मात्रा को और रस तन्मात्रा को भी ग्रहण करते हैं, तब हमें उसके भोजन ना होने का पता चलता है। जब उसकी शब्द तन्मात्रा को भी ग्रहण करते हैं, तो पता चलता है कि वह कोई अटूट धातु नहीं है, पर एक टूटने वाला पत्थर है। इस तरह से पांचों तन्मात्राओं से हमें किसी भी पदार्थ की सभी विशेषताओं का पता चलता है। फिर ऐसा क्यों कहा गया है कि गंध तन्मात्रा से पृथ्वी की, रस तन्मात्रा से जल की, रूप तन्मात्रा से अग्नि की, स्पर्श तन्मात्रा से वायु की, और शब्द तन्मात्रा से आकाश की उत्पत्ति होती है। यह इसीलिए क्योंकि इन सभी तन्मात्राओं में से एक तन्मात्रा ही किसी एक महाभूत में मुख्य होती है। बाकि तन्मात्राएं तो सामान्य होती हैं, या दूसरे महाभूतों के मिश्रित होने से बनी होती हैं। शुद्ध जल गंधहीन होता है। इसलिए उसमें गंध तन्मात्रा की उपस्थिति नहीं मानी जाती। पर अगर उसमें कठोर दाल पकी हो तो गंध आएगी। इसीलिए पृथ्वी मतलब कठोर वस्तु को गंध का मुख्य गुण दिया गया। हम जो कुछ भी स्वाद ले पाते हैं, तभी ले पाते हैं जब भोजन हमारे मुंह के लार द्रव से मिश्रित होता है। यह द्रव जल जैसा ही होता है। अगर भूख ना होने से मुंह सूखा हो तो कुछ भी स्वाद नहीं आता। इसीलिए जल महाभूत को रस नामक मुख्य गुण दिया गया है। रस का मतलब स्वाद भी होता है, और तरल पदार्थ भी। जब सूरज चमकता है या दीपक जलता है, तभी हमें सभी रूपों का आभास होता है। इसीलिए अग्नि को रूप का मुख्य गुण दिया गया है। सबसे संवेदनात्मक, अच्छा और सुखद स्पर्श वायु से ही मिलता है। इसीलिए वायु को स्पर्श तन्मात्रा से उत्पन्न माना गया

है। दो लोगों के बीच अगर दीवार या पहाड़ हो तो उनकी आवाज एक दूसरे तक नहीं पहुंचती। मतलब आवाज या शब्द को ले जाने के लिए खुला आकाश होना चाहिए। इसीलिए आकाश को शब्द तन्मात्रा से निर्मित बताया गया है। मतलब अगर हम पंचमहाभूतों को महसूस न करें, तो उनका अस्तित्व ही नहीं माना जाएगा। अंधेरे में महल होने का क्या महत्त्व हो सकता है। सारे महाभूत और उनसे बना सारा जगत अंधेरे में ही हैं, अगर उन्हें कोई भी महसूस न कर पाए। फिर तो वे न होने के बराबर ही हैं। तन्मात्राओं से ही हमें वे महसूस होते हैं। मतलब सूक्ष्म तन्मात्राओं से ही उनकी उत्पत्ति हुई। यह अंदर से बाहर की ओर की अप्रोच है। यही अध्यात्म है। यही सत्य एप्रोच है। बाहर से अंदर की ओर एप्रोच भौतिक विज्ञान है। यह आध्यात्मिक रूप से असत्य अप्रोच है। हां, भौतिक रूप से सत्य हो सकती है। पर भोतिकता खुद भी असत्य ही है, बेशक व्यवहार के लिए उसे कामचलाउ सत्य मानना पड़ता है।

सच्चाई अंदर है, बाहर नहीं। यही वास्तविकता है। कुंडलिनी जागरण के दौरान इस वास्तविकता का साक्षात अनुभव होता है, जब सारा जगत अपनी उस अंतरात्मा में महसूस होता है, जो हृदय की गहराईयों में सबसे भीतर स्थित रहती है, और सामान्य तौर पर अहंकाररूपी अंधेरे के रूप में महसूस होती है।

पंचमहाभूत के तन्मात्रा में विलीन होने का यह मतलब नहीं कि जल, वायु आदि पंचमहाभूत नष्ट हो गए। इसका मतलब है कि इंद्रियों से वे पंचमहाभूत स्पष्ट या पृथक वस्तुओं के रूप में या अलग-अलग रूप में महसूस नहीं हुए। बल्कि वे तन्मात्राओं के रूप में महसूस हुए। समुद्र पृथक व सत्य वस्तु के रूप में महसूस नहीं हुआ। पर वह रूप तन्मात्रा, रस तन्मात्रा, स्पर्श तन्मात्रा, गंध तन्मात्रा और शब्द तन्मात्रा के मिश्रण के रूप में महसूस हुआ। यह ऐसे ही है कि कंप्यूटर अलग वस्तु के रूप में महसूस नहीं हुआ पर सीपीयू, हार्ड डिस्क, मदर बोर्ड आदि के मिश्रण के रूप में महसूस हुआ। मतलब एक प्रकार से कंप्यूटर नष्ट न होकर वैसा ही बना रहा, पर अपने घटकों में विलीन हो गया। वैसे भी अद्वैत दर्शन कहता है कि घटक ही सत्य हैं, घटक से निर्मित वस्तु नहीं। इसे ऐसे भी समझ सकते हैं कि रूप तन्मात्रा से सभी चीजों का रूप और आकार तो महसूस हुआ पर आंख उन चीजों का गहराई से अवलोकन नहीं कर सकी। मतलब सिर्फ सामान्य रूप का ही पता चला, रूपों में विभिन्नताओं का नहीं। यह सामान्य रूप ही रूप तन्मात्रा है। इसमें विभिन्नता महसूस होने से यह सामान्य रूप विभिन्न वस्तुओं के रूप में दिखने लगता है। मतलब रूप तन्मात्रा से अग्नि महाभूत की उत्पत्ति हो जाती है। इस अग्नि महाभूत की मात्रा सभी वस्तुओं में भिन्न भिन्न है। ऐसा ही सभी महाभूतों के साथ होता है।

कुंडलिनी रूपी द्वारपाल ही आत्मा के अनंत साम्राज्य में प्रवेष की अनुमति देता है

दोस्तों, कई लोग सोचते होंगे कि अगर अहंकार तक पहुंच गए तो आत्मा तक खुद ही पहुंच जाएंगे। पर ऐसा नहीं है। अपने आप कुछ नहीं होता। आत्मा के लिए प्रयास तो अंत तक करना होगा। मन, बुद्धि, अहंकार आदि तो आत्मा तक पहुंचने के विभिन्न स्तर मात्र हैं। जो प्रयास नहीं करेंगे, वे जल्दी ही अहंकार से भी वापस लौट जाएंगे। अहंकार से बुद्धि के स्तर तक आएंगे। फिर मन के स्तर तक, फिर प्राणों के, फिर इंद्रियों के, फिर तन्मात्राओं के और फिर महाभूतों मतलब पूर्ण भौतिकता के स्तर तक। यह सिलसिला चलता रहता है। अहंकार से आत्मा तक तो योगी लोग ही पहुंचते हैं। वैसे तो आत्मा को किसी भी तरीके से प्राप्त कर सकते हैं। पर हर चीज की तरह आत्मा को प्राप्त करने का भी एक सबसे आसान और वैज्ञानिक तरीका होता है। वह यही है कि पहले पंचमहाभूतों के स्तर पर कर्म योगी की तरह व्यवहार किया जाए। कर्म योग से आत्मा तक पहुंचने की आधारशिला तैयार होती है। फिर समय के फेर से या कुछ सालों तक इस स्तर पर मेहनत करने के बाद आदमी को खुद महसूस होता है कि वह रूपांतरित हो रहा है। वह खुद ही पंचतन्मात्रा के उच्चतर स्तर में प्रविष्ट हो जाता है। मतलब जब वह किसी चीज को देखता है तो उसे लगता है कि वह रूप को महसूस कर रहा है। उसे विभिन्न वस्तुओं को देखते हुए सर्वसामान्य रूप के इलावा कुछ भी अलग अलग महसूस नहीं होता। यह अद्वैत जैसा ही भाव होता है। उसी तरह उसे विभिन्न प्रकार की आवाजें सुनते हुए एक सामान्य शब्द का ही एहसास होता है। उन शब्दों के बीच का अंतर उसे ज्यादा महसूस नहीं होता। विभिन्न प्रकार के स्वाद को अनुभव करते हुए भी उसे केवल सामान्य रस भाव का ही अनुभव होता है। अलग-अलग उसे नजर नहीं आता। विभिन्न प्रकार का स्पर्श महसूस करते हुए उसे अलग-अलग पदार्थ महसूस नहीं होते। बस एकमात्र स्पर्श संवेदना की अनुभूति होती है, जो कभी ज्यादा तो कभी कम, कभी किसी तरह की तो कभी किसी तरह की। मतलब उसे पदार्थों का अंतर महसूस नहीं होता, बल्कि संवेदना में उतार-चढ़ाव महसूस होता है। फिर भी होती तो है एकमात्र संवेदना ही है। विभिन्न प्रकार के गंधयुक्त पदार्थ भी उसे अलग-अलग ना दिख कर सब में केवल गंध तन्मात्रा ही विभिन्न आभासी रूपों में महसूस होती है। अगर वह कर्मयोग और अद्वैत भाव को बनाकर रखता है तो उसका पंचतन्मात्रा के स्तर से पंचकर्मेंद्रियों और पंचज्ञानेंद्रियों के उच्चतर स्तर में प्रवेश हो जाता है। मतलब अब उसे यह पांचों ज्ञानेंद्रियों की संवेदनाएं और पांचों कर्मेंद्रियों की संवेदनाएं बाहरी पदार्थों में महसूस नहीं होतीं बल्कि अपनी इंद्रियों में महसूस होती हैं। मतलब उसे लगता है कि ये संवेदनाएं बाहर नहीं बल्कि उसकी इंद्रियों में पैदा हो रही हैं। फिर अपने शरीर की इंद्रियों के प्रति कैसा आकर्षण। इसलिए वह उन संवेदनाओं से मोहित ना होकर स्वतः

ही आगे बढ़ने लगता है। हालांकि अगर वह आध्यात्मिक प्रयास छोड़ देता है तो इस स्तर से नीचे गिर कर फिर से पंचतन्मात्रा और पंचमहाभूत के स्तर तक भी गिर सकता है।

यदि वह कर्म योग और अद्वैत भाव बनाकर रखता है, तो प्राण के स्तर तक स्तरोन्नत हो जाता है। इसमें बीच-बीच में उसकी सांस लंबी और गहरी आने लगती है। देखा जाए तो प्रत्येक स्तर लंबे लंबे समय तक भी रहता है और सभी स्तर एकसाथ भी चलते रहते हैं। खासकर शरीरविज्ञान दर्शन से प्राप्त कर्मयोग से यह सभी स्तर एक साथ भी चलते रहते हैं। हां, फिर अपने आप एक लंबी और गहरी सांस चलने से ही मन क्रियाशील हो जाता है। आदमी जब कुंडलिनी योग से इस लंबी सांस को लंबे समय तक लेता है तब और ज्यादा लाभ मिलता है। यह भी लगता है कि प्राण के स्तर तक पहुंचने पर कुंडलिनी योग से ज्यादा लाभ मिलता है। वैसे तो इसे इससे पहले भी कर सकते हैं। मन पर भी जब शरीर विज्ञान दर्शन और कुंडलिनी योग से लगाम लगने लगती है तब आदमी बुद्धि वाले स्तर तक पहुंच जाता है। बुद्धि भी तभी आत्मा की खोज में लगेगी, अगर उसे जानबूझ कर निर्देशित किया जाता रहे। बुद्धि पर भी जब कुंडलिनी योग से अंकुश लगेगा तो वह अहंकार में विलीन हो जाएगी। अहंकार में सभी कुछ अंधेरी आत्मा के रूप में छुपा होगा। इसीलिए इस अवस्था में कुंडलिनी चित्र मन में हरदम छाया रहता है। यह इसीलिए क्योंकि मस्तिष्क की उर्जा ने कहीं ना कहीं तो खर्च होना ही है। अगर कुंडलिनी चित्र को बल पूर्वक हटाया जाएगा तो वह ऊर्जा पुनः दुनिया की तरफ भाग सकती है। इसलिए आत्मा तक पहुंचने के लिए कुंडलिनी का सहारा तो लेना ही पड़ेगा। इस स्तर पर अगर तीव्र और तांत्रिक कुंडलिनी साधना की गई तो कुंडलिनी जागृत होने से अहंकार आत्मा में विलीन हो जाता है। अगर नहीं किया गया तो अहंकार से आदमी फिर क्रमवार बाहर भी लौट कर आ सकता है। मतलब कुंडलिनी ही आत्मा के दिव्य महल के बाहर खड़े द्वारपाल के रूप में है। अगर इसका सम्मान किया गया तो ही आत्मा के अनंत महल में प्रवेश मिलेगा, नहीं तो बाहर के जगतरूपी जंगल में ही भटकते रहना पड़ेगा।

कुंडलिनी तंत्र ही अहंकार से बचा कर रखता है

दोस्तों, जागृति के बाद आदमी की बुद्धि का नाश सा हो जाता है। इसे द्वैतपूर्ण भौतिक बुद्धि का नाश कहो तो ज्यादा अच्छा होगा। आध्यात्मिक प्रगति तो वह करता ही रहता है। ऐसा इसलिए क्योंकि भौतिक बुद्धि अहंकार से पैदा होती है। पर जागृति के तुरंत बाद अहंकार खत्म सा हो जाता है। आदमी में हर समय एक समान प्रकाश सा छाया रहता है। नींद की बात नहीं कर रहा। नींद में तो सब को अंधेरा ही महसूस होता है, पर फिर भी जागते हुए एक जैसा प्रकाश रहने के कारण नींद का अंधेरा भी नहीं अखरता। वह भी आनंददायक सा हो जाता है। अहंकार अंधेरे का ही तो नाम है। यह अज्ञान का ही अंधेरा होता है। कई भाग्यशाली लोगों को इस अहंकारविहीन स्थिति में लंबे समय रहने का मौका मिलता है। पर कईयों को दुनिया से परेशानी या अभाव महसूस होने के कारण वे जल्दी ही अहंकार को धारण करने लगते हैं। कई लोग, जो शरीर से पूरी तरह से स्वस्थ होते हैं, वे उन्नत तांत्रिक कुंडलिनी योग के अभ्यास से उस दुनियावी परेशानी के बीच में भी अहंकार से बचे रहते हैं। वे कामचलाऊ बुद्धि को भी धारण करके रखते हैं, और अहंकार को भी अपने पैर नहीं जमाने देते। पर जब शारीरिक दुर्बलता या रोग से सही से तांत्रिक कुंडलिनी योग नहीं कर पाते तो वे भी अहंकार के चंगुल में फंसने लगते हैं। अहंकार की गिरफ्त में आते ही उनकी बुद्धि बुलेट ट्रेन की तरह भागने लगती है। यह भी करना, वह भी करना। यह जिम्मेदारी, वह परेशानी। इस तरह से बुद्धि सैकड़ों कल्पित बहाने बनाते हुए अपने को पूरी तरह से स्थापित कर लेती है। जब अंदर ही अंधेरा बस जाए तो बाहर भी हर जगह अंधेरा ही दिखता रहेगा और आदमी उससे बचने के लिए छटपटाता ही रहेगा। अगर अंदर का अंधेरा मिटा दिया जाए तो बाहर खुद ही मिट जाएगा और आदमी शांति से बैठ पाएगा। काला चश्मा लगाकर बाहर सबकुछ काला ही दिखता है। चश्मा हटा दो तो सबकुछ साफ दिखने लगता है। फिर बुद्धि के भागते ही मन भी कहां पीछे रहने वाला। जब बुद्धि ने अच्छी सी आमदनी पैदा कर दी, तब मन उसे भोगने के लिए ललचाएगा ही। कभी सिनेमा जाने का ख्वाब देखेगा तो कभी पिकनिक का। कभी पहाड़ पर भ्रमण को तो कभी खाने पीने का। कभी यह करने का तो कभी वह करने का। इन ख्वाबों के साथ अन्य और भी अनगिनत विचार उमड़ने लगते हैं। इस तरह मन में पूरा संसार तैयार हो जाता है।

जब आदमी मन के सोचे हुए पर चलने लगता है तो सांसें तो तेज चलेंगी ही। परिश्रम जो लगता है। मतलब आदमी प्राण के स्तर पर पहुंच जाता है। उन सांसो से इंद्रियों में भोगों को भोगने की और उनसे काम करने की शक्ति आ जाती है। पहले पहले उसे भोगों का आनंद इंद्रियों में महसूस होता है, बाहर नहीं। बाद में जब वह भोगी जाने वाली वस्तु पर ज्यादा ध्यान देने लगता है, तब उसे महसूस होता है कि उनसे कुछ सूक्ष्म चीजें निकल कर

उसकी इंद्रियों के संपर्क में आती हैं, जिन्हें वे महसूस करती हैं। वे तन्मात्रा ही हैं। फिर भोगी जाने वाली वस्तुओं के ज्यादा ही कसीदे पढ़ने से उसे महसूस होने लगता है कि यह आनंद का अनुभव भोग पदार्थों में ही है। इससे उसका उन पदार्थों से लगाव बढ़ता है, जिससे वह उन पदार्थों का गहराई से अध्ययन करने लगता है। मतलब पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हो जाती है।

हम यहां यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम इस वेबसाइट पर कहीं भी ऐसा नहीं कह रहे हैं कि ऐसा करना चाहिए या ऐसा नहीं करना चाहिए। सबकी अपनी अपनी व्यक्तिगत समस्या और जरूरत होती है, जिसके अनुसार सबको चलना ही पड़ता है। अगर आदमी समझबूझ से खुद कोई फैंसला ले तो ज्यादा अच्छा रहता है बजाय इसके कि उस पर जबरदस्ती थोपा जाए। हमारी संस्कृति में शायद ऐसा होने लग गया था, इसीलिए सैद्धांतिक और वैज्ञानिक ज्ञानविज्ञान का ह्रास हुआ। हम तो केवल सिद्धांत पक्ष को प्रस्तुत करते हैं। सच्चाई का तो पता होना ही चाहिए, उस पर चलना या न चलना व्यक्ति के अपने चुनाव पर निर्भर है। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि जिंदगी में उठना गिरना चलता रहता है। पर बुराई इस चीज में है जब आदमी गिरा हुआ हो और यह न समझे कि वह गिरा हुआ है। जिसको अपने गिरे होने का अहसास है वह मौका मिलने पर उठने का प्रयास जरूर करेगा। पर जिसको अपने गिरे होने का अंदाजा ही नहीं है, वह अपनी अवस्था को सामान्य अवस्था या उठी हुई अवस्था मानने के भ्रम में जीता रहेगा और मौका मिलने पर भी उठने का प्रयास नहीं कर पाएगा।

शास्त्रों में ऐसा सब कुछ विशद वर्णन है, पर आजकल उनके बारे में लोगों की समझ विकृत सी हो गई है। एक बार कहीं लिखा हुआ पढ़ा था कि आदरणीय महेश योगी जी भी लगभग ऐसा ही कहते थे। विदेशों में उनकी अच्छी पैठ है। वैसे तो उनके विरोधियों की तरफ से उन पर कुछ आरोप भी लगते रहे हैं। उस लेख के अनुसार भारत में प्राचीन हिंदु संस्कृत विकृत सी हो गई है। मतलब लगता है कि इन वैज्ञानिक तथ्यों को अवैज्ञानिकता, लाचारी, गुलामी, दरिद्रता, रूढ़िवादिता, मूर्खता और कट्टरता जैसे दोषों ने ढक लिया है। वैसे यह अहसास किसी चीज को देखने के नजरिए, आध्यात्मिक और भौतिक विकास के स्तर, सांस्कृतिक परिवेश, देश और काल आदि विभिन्न कारकों पर निर्भर करता है। एक आदमी को एक चीज बुरी लग सकती है, तो दूसरे आदमी को वही चीज अच्छी भी लग सकती है। जिस अहसास की तरफ ज्यादा लोगों का या ज्यादा सत्ता का रुझान होता है, वही समाज या दुनिया में मान्य समझा जाता है। फिर भी इन तथ्यों को इन दोषों से बाहर निकालने की जरूरत है। समय के साथ हर एक संस्कृति के ऊपर दोषारोपण होने लगते हैं। विश्व की अनेकों संस्कृतियां इस वजह से इतिहास बन गई हैं, पर हिंदू संस्कृति पुरानतम संस्कृतियों में होने के बावजूद भी आज तक इसीलिए बच पाई है, क्योंकि

समय-समय पर विभिन्न दार्शनिक और समाज सुधारक इस पर लगे दोषारोपण को बाहर निकालने का प्रयास करते आए हैं। आज तो यह दोषारोपण चरम पर लगता है। इसलिए इसको बाहर निकालने के लिए भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाले व सकारात्मक बुद्धिजीवियों को आगे आना होगा। वैसे हम यह बता देना चाहते हैं कि हम किसी धर्म वगैरह के साथ नहीं बल्कि सच्चाई के साथ हैं।

कुंडलिनी योग के लिए दूरदर्शन फिल्म व सिनेमा मूवी देखना जरूरी है

दोस्तों, इंद्रियों के भ्रम को हम एक और उदाहरण से समझ सकते हैं। जब हम दूर रखे टेलीविजन की आवाज ब्लूटूथ इयरबड्स से सुनते हैं, तो हमें लगता है कि वह आवाज टेलीविजन में पैदा हो रही है, जबकि वह हमारे कानों में पैदा हो रही होती है। हम टेलीविजन के जिस दृष्य के प्रति जितना ज्यादा आसक्त होते हैं, वह दृष्य हमें उतना ही ज्यादा टेलीविजन के अंदर महसूस करते हैं। जब हम अनासक्त होकर देखने लगते हैं या ऊब जाते हैं, या कान थक जाते हैं, तो वह आवाज हमें अपने कानों के अंदर महसूस होती है। मतलब कानों में पैदा हो रही आवाजों ने और आंखों में बन रहे चित्रों ने मिलकर टेलीविजन में दिख रहे दृष्यों में स्थित पंचमहाभूतों का निर्माण कर दिया था। जब हम ऊब गए या थक गए तो टीवी के नजारों पर ज्यादा ध्यान नहीं गया, जिससे सिर्फ आवाजें और चित्र ही बचे रहे, जैसे मानो पंचमहाभूत तन्मात्राओं में विलीन हो गए। जब कान में बन रही आवाजों और आँखों में बन रहे चित्रों से भी ऊब गए तो उन पर भी ध्यान नहीं जाने लगा। कान और आंख थके हुए थे, इसलिए उनकी थकान महसूस हो रही थी। या कह लो नींद आ गई या टीवी को बंद कर दिया। इससे तन्मात्राएं भी नहीं रहीं, और बस कान और आँखें ही रही। मतलब तन्मात्राएं इंद्रियों में विलीन हो गईं। जागने के बाद इंद्रियां तरोताजा हो गईं पर उनमें वे आवाजें और दृष्य नहीं रहे। इंद्रियों में एकदम से काम शुरु करने की शक्ति नहीं रही, क्योंकि वे अभी भी अपनी क्षतिपूर्ति ही कर रही थीं। इंद्रियां शांत होने से प्राणवायु अच्छे से चलने लगी। जिस समय इंद्रियां टीवी देखने में व्यस्त थीं, उस समय सांसों से ध्यान हट कर टीवी पर लगा हुआ था। आपने देखा भी होगा कि जब हम टीवी पर मनोरंजक कार्यक्रम देख रहे होते हैं, उस समय सांसें अटक सी जाते हैं। अगर उस समय हम सांसों पर ध्यान देते हुए लंबी लंबी और नियमित सांस लेने की कोशिश करें तो टीवी देखने का मजा ही नहीं आता और उसे बंद करने का मन करता है। इससे अंतर्मुखी बनने के लिए सांसों और प्राणायाम का महत्त्व खुद ही सिद्ध हो जाता है। इससे यह संदेश भी मिलता है कि जब इंद्रियां थकी हुई हों, तो प्राणायाम कर लेना चाहिए। इससे इंद्रियों को भी सुकून मिलता है, और मन के क्रियाशील होने से जीवन में आनंद और प्रकाश भी बना रहता है। हां, तो इंद्रियां शांत होने से जो उनसे संवेदनाओं की अनुभूतियां हो रही थीं, वे प्राण में विलीन हो गईं। प्राण सांस ही है और उसमें वे अनुभूतियां ज्यादा समय तक नहीं रह सकतीं। प्राण एक प्रकार से संवेदनाओं को इंद्रियों से लेकर मन तक पहुंचाता है। यह उन अनुभूतियों को महसूस नहीं करता। इसे हम डाकिए की तरह समझ सकते हैं, जो चिट्ठियां इधर से उधर ले जाता है, पर खुद चिट्ठियां नहीं पढ़ता। प्राणों से मन हरकत में आ जाता है। उसमें इंद्रियों द्वारा महसूस की गई संवेदनाएं उमड़ने लगती हैं, हालांकि अब मन के रूप में, क्योंकि अब उन संवेदनाओं के

निर्माण में सहायक टीवी के दृष्य तो नहीं रहे। यह एक प्रकार से याद आने की तरह ही है। फिर उन अनुभूतियों के साथ मन में अन्य विविध विचार भी उमड़ने लगते हैं। यह प्राणों का मन में विलीन होना है। फिर कुछ समय तक ऐसे विचारों की स्वप्निल दुनिया में खोने के बाद आदमी को होश आता है कि कुछ दुनियादारी के काम भी करने चाहिए। मतलब बुद्धि क्रियाशील हो जाती है। मन नष्ट नहीं होता पर बुद्धि के रूप में रूपांतरित होने लगता है या बुद्धि में विलीन होने लगता है। मतलब उसकी बुद्धि उसी तरीके से काम करने लगेगी, जैसा उसका मन था। तभी तो कहते हैं कि अगर मन को अच्छा रखेंगे, तभी काम भी अच्छे होंगे। आजकल के बच्चे जो रातदिन भरपूर और भयानक हिंसा से भरी वीडियो गेमों को देखते और खेलते रहते हैं, वे आगे चलकर कैसे अच्छे काम कर पाएंगे। उन्हें यह पोस्ट जरूर पढ़ानी और समझानी चाहिए। अच्छी बुद्धि से वह कुछ दिनों तक अच्छी दुनियादारी निभाता है, और अच्छी तरक्की भी करता है। फिर वह थक सा जाता है, और दुनियादारी से ऊब सा भी जाता है। इससे उसकी बुद्धि शांत होने लगती है, जिससे उसकी आत्मा के अंदर अंधेरा सा बढ़ने लगता है। मतलब उसकी बुद्धि उसके अहंकार के रूप में रूपांतरित हो जाती है। फिर कोई कुंडलिनी योगी अगर चाहे तो इसके आगे आत्मा को प्राप्त कर सकता है। पर आम आदमी यहां से वापिस लौट आता है। थोड़े दिन अहंकार के अंधेरे में आराम से बिताने के बाद दुनियादारी में लौट आता है, और बुद्धि के सहयोग से पुनः अपनी पैठ जमाता है। फिर कुछ तरक्की करके सैकड़ों इच्छाएं पालकर मन की शरण में पहुंचता है। मतलब बुद्धि मन में विलीन हो जाती है। फिर मन के उकसावे में आकर मूवी देखने सिनेमा थिएटर चला जाता है। वह वैसी ही मूवी देखना पसंद करेगा जैसी उसकी बुद्धि और दुनियादारी थी, क्योंकि बुद्धि ही मन के रूप में बन कर सामने आई। सिनेमा हॉल घर से जितना दूर होता है, उतना ही मजा आता है, क्योंकि मन को प्राणों के रूप में रूपांतरित होने के लिए भी समय चाहिए होता है। सिनेमा जाने के रास्ते में उसकी बड़ी अच्छी, लंबी, नियमित और आनंददायी सांसें चलती हैं, क्योंकि मन की सिनेमा देखने की इच्छा खत्म हो रही होती है मतलब मन खत्म हो रहा होता है, और उसकी शक्ति प्राणों को मिल रही होती है। फिर भी मन की सूक्ष्म सोच प्राणों में भी कायम रहती है, क्योंकि कारण कभी नष्ट नहीं होता, पर कार्य के रूप में मौजूद रहता है। मूवी देखना शुरु करते ही उसकी सांसें थम सी जाती हैं, और वह अपनी आंखों और अपने कानों में मधुर संवेदनाओं का आनंद लेने लगता है। मतलब उसके प्राण इंद्रियों में रूपांतरित हो जाते हैं। जब तक पर्दे पर विज्ञापन चलते हैं, तब तक वह उन दृष्यों का गहराई से अवलोकन नहीं करता। मतलब उसे संवेदनाएं आंखों और कानों में ही महसूस हो रही होती हैं, कहीं बाहर से आती हुई प्रतीत नहीं होतीं। यह इंद्रियों की अभिव्यक्ति की अवस्था ही होती है। थोड़ी देर बाद जब मूवी शुरु होने के बाद उसे मूवी कुछ समझ में आने लगती है, तो उसे वे अनुभूतियां सिनेमा के पर्दे से मिलती हुई महसूस

होती हैं। मतलब उसकी इंद्रियां तन्मात्राओं में विलीन हो जाती हैं। बाद में फिल्म में गहरे डूबने पर उसे पर्दे पर दिख रहे पहाड़, महल आदि असली लगने लगते हैं। मतलब तन्मात्राएं पंचमहाभूतों के रूप में प्रकट हो जाती हैं। मतलब उसकी सृष्टि की रचना पूर्ण हो गई।

अब फिल्म खत्म होती है। सारे दृष्य खत्म। मतलब उसके व्यक्तिगत सूक्ष्म ब्रह्मांड की प्रलय शुरु हो जाती है। पर्दे पर विज्ञापन आने लगते हैं। अब उसे उन विज्ञापनों में दिखाए गए पहाड़ और महल असली नहीं लगते, क्योंकि वह उन्हें ध्यान से नहीं देखता। उसे बस आंख से कुछ दिख रहा होता है और कान से सुनाई दे रहा होता है। आदमी को उन्हें थोड़ी देर देखना अच्छा लगता है। क्योंकि सभी को स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर क्रमवार आना और जाना जाना अच्छा लगता है। मतलब पंचमहाभूत तन्मात्राओं में विलीन हो गए। फिर आदमी थोड़ी देर बाद उन संवेदनाओं को अपनी इन्द्रियों में ही महसूस करने लगता है, बाहर नहीं। उससे भी ऊबकर और अपनी आंखों और अपने कानों की थकान को महसूस करते हुए सिनेमा हॉल से बाहर निकलता है। मतलब तन्मात्राएं इंद्रियों में विलीन हो गईं। वह थोड़ा चायपानी करके तरोताजा होता है। फिर उसकी सांसें अच्छी, गहरी और नियमित चलने लगती हैं। जब आंखों और कानों को मलने से उन पर ध्यान जाता है, तो उन्हें शक्ति देने के लिए सांस खुद ही चलने लगती है। हालांकि उससे वे तरोताजा ही हो सकती हैं, पुनः काम नहीं कर सकती। क्योंकि वे इतना ज्यादा काम करने के बाद अपनी क्षतिपूर्ति कर रही होती हैं। फिर सांसों की अतिरिक्त शक्ति मन को लगती है। मतलब इंद्रियां प्राण में विलीन हो गईं और प्राण मन में। फिर प्राण या सांस की शक्ति से मन भागने लगता है। मन को भगा कर सांस फिर उथली और अनियमित हो जाती है। मतलब प्राण मन में रूपांतरित हो गया। उस मन की चहलपहल से प्रेरित होकर वह शोपिंग माल में घुस जाता है। वहां विभिन्न चीजों की गुणवत्ता और उनका मोलभाव जांचते हुए उसकी बुद्धि क्रियाशील हो जाती है और मन सुस्त पड़ जाता है। मतलब मन बुद्धि में रूपांतरित हो गया। बुद्धि के भी थकने से जब उसकी आत्मा में अहंकार का अंधेरा काफी बढ़ने लगता है, तब वह परिवारसहित गाड़ी में बैठकर घर को चल देता है। मतलब बुद्धि अहंकार में रूपांतरित हो गई। उस अहंकार में उसके पूरे दिवस के क्रियाकलापों का खाका सूक्ष्म रूप में दर्ज हो जाता है। घर आकर वह तांत्रिक कुंडलिनी योग से आत्मा के अंधकार को कुंडलिनी ध्यान से रौशन कर देता है। मतलब अहंकार आत्मा में विलीन हो जाता है। बेशक पूर्ण आत्मा न सही, उसका कुछ अंश ही सही। अगले दिन फिर उसे न चाहते हुए भी आत्मा से क्रमवार नीचे गिरना पड़ता है, ताकि वह पुनः दुनियादारी को अच्छे से निभा सके। यह सिलसिला ऐसे ही चक्रवत चलता रहता है। यह सभी किस्म की अनुभूतियों, सभी किस्म के क्रियाकलापों, सभी किस्म की

सांसारिकताओं, सभी किस्म के लोगों, सभी इंद्रियों और सभी किस्म के शरीरों के साथ ऐसा ही होता है। यह एक सामान्य सिद्धांत है। शास्त्रों में ऐसे अनेकों सिद्धांत बड़ी सूक्ष्मता व गहराई से वर्णित किए गए हैं, जहां तक मुझे लगता है आज भी आधुनिक मनोविज्ञान नहीं पहुंच सका है। उपरोक्त चलचित्र या दूरदर्शन वाला उदाहरण तो समझाने के लिए एक छोटा सा बिंदु है। आदमी जो कुछ भी करता है, उसे अपने स्वभाव अर्थात अहंकार के वशीभूत होकर ही करता है, बेशक उसे लगे कि वह स्वतंत्रता से करता है। यही अहंकार है, यही स्वभाव है, यही अवचेतन मन है, यही संस्कार है। यह सब शब्दों का खेल है। चीज एक ही है। जिसने अहंकार को नहीं जीता है, वह हमेशा उसी के वश में रहता है। पूर्ण स्वतंत्रता तो केवल योगी को ही प्राप्त होती है।

कुंडलिनी जागरण केवल मनुष्य के सूक्ष्म शरीर से ही संभव है

दोस्तों, अंत में बात हट फिर के सूक्ष्म शरीर पर ही आती है। पिछली चर्चाओं से स्पष्ट है कि जगत सिकुड़ता हुआ अहंकार तक पहुंच जाता है। मतलब पारलौकिक सूक्ष्म शरीर के रूप में अहंकार ही बचता है। बेशक लौकिक सूक्ष्म शरीर में बुद्धि, मन, प्राण और इंद्रियां भी आती हैं। कई जगह यह केवल अहंकार, बुद्धि और मन से बना बताया गया है। कई जगह इसमें पंच तन्मात्राएं और पंचमहाभूत भी जोड़ दिए गए हैं। लौकिक सूक्ष्म शरीर के लिए तो यह सब ठीक है पर पारलौकिक सूक्ष्म शरीर में तो ये सब नहीं होने चाहिए। उसमें तो सिर्फ अहंकार होना चाहिए। कई जगह इस अहंकार को कारणशरीर के रूप में माना गया है। इसमें कर्म और संस्कार छिपे होते हैं, जो अगले जन्म का निर्धारण करते हैं। मान लो, परलोकिक सूक्ष्मशरीर मन, बुद्धि और अहंकार से बना होता है। पर वह स्थूल शरीर के बिना सोच-विचार कैसे कर सकता है। अगर नहीं कर सकता तो उसमें मन बुद्धि को मानने की क्या जरूरत है। यह एक जटिल विषय है।

चलो हम एक कोशिकीय जीवाणु को लेते हैं। यह सबसे सूक्ष्म जीवित प्राणी है, जिसे नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता। मान लेते हैं कि उसकी आत्मा या उसका अपने आप का स्वरूप एक पारलौकिक सूक्ष्म शरीर है। यह इसलिए क्योंकि उसके इतने छोटे स्थूल शरीर में अनुभव करने वाला मस्तिष्क नहीं हो सकता। वैज्ञानिकों को भी अभी तक इसका कोई सुराग नहीं मिला है। वह जीवाणु आदमी जैसे विकसित मस्तिष्क वाले प्राणी के जैसे ही आम जीवनचर्या के सभी काम करता है। वह चलता है, खाता है, पीता है, शिकार करता है, डरता है, भागता है, संभोग करता है, बच्चे पैदा करता है, लड़ाई झगड़े करता है, दोस्ती दुश्मनी समझता है, और निभाता है, आदि-आदि। सूचि बहुत लंबी है। समझ लो, वह सभी काम करता है। कई जगह तो आदमी से ज्यादा भी करता। इसका मतलब है कि उसमें आत्मा के साथ अहंकार, बुद्धि, मन, प्राण, पंच ज्ञानेंद्रियां, पंच तन्मात्राएं और पंचमहाभूत सब कुछ हैं। पर यह सब उसको तो महसूस होते नहीं। तो क्या इन सबके होने के लिए इन सब को महसूस करना जरूरी है। बिल्कुल नहीं। मतलब आत्मा खुद सूक्ष्म शरीर की तरह व्यवहार करती है। मान लिया कि जीवात्मा ऐसा व्यवहार करती है। वह इसलिए क्योंकि जीवात्मा अज्ञान के अंधेरे में फंसी होती है। उसने विकास करना होता है। वह विकास शरीर से ही हो सकता है। पर परमात्मा क्यों सूक्ष्मजीव की तरह व्यवहार करता है, वह तो पूर्ण विकसित है। निर्जीव सृष्टि भी प्राणी की तरह ही व्यवहार करती है। उदाहरण के लिए तारे भी पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, लड़ते हैं, प्रजनन कार्य करते हैं, खाते हैं, उगलते हैं, शिकार करते हैं, लड़ाई झगड़ा करते हैं, भागते हैं, दोस्ती और दुश्मनी निभाते हैं, आदि आदि। तो क्या निर्जीव पदार्थों में भी जीवात्मा है। जरूर है। सांख्य दर्शन भी कहता है कि प्रकृति भी पुरुष अर्थात परमात्मा की तरह अनादि, अनंत और सर्वव्यापक

है। मतलब यह प्रकृति भी जीवात्मा ही है। एक विशाल, सर्वव्यापक, वैश्विक या समष्टि जीवात्मा। इसे ब्रह्मा का सूक्ष्म शरीर भी कह सकते हैं। ब्रह्मा भी तो इसे महसूस नहीं करता। फिर भी सूक्ष्मशरीर होता है, और काम करता है। एक प्रकार से जीवात्मा के विकास के लिए अहंकार, बुद्धि, मन, प्राण, दस इंद्रियां, पांच तन्मात्राएं, और पंचमहाभूत होना जरूरी है। खैर अहंकार तो खुद ही जीवात्मा के रूप में है। क्योंकि ये सभी जरूरी हैं, इसीलिए ये सभी तत्व इकट्ठे हो गए। इनके इकट्ठा होने से एक शरीर बन गया। उसके साथ जीवात्मा का जुड़ाव हो गया। जीवात्मा तो प्रकृति के रूप में पहले से ही हर जगह और हर समय मौजूद था। समझ लो कि उसका एक कल्पित अंश नवनिर्मित शरीर से बंध गया। वही पहला जीवात्मा हुआ। वह पहला शरीर जीवाणु का था। फिर जीवाणु का शरीर विकसित होकर कीड़ों मकोड़ों का शरीर बना। फिर मछली मेंढक का, फिर बड़े जंतुओं का, बंदरों का और अंत में मनुष्य का। सूक्ष्म शरीर तो सब में एक जैसा ही है। सूक्ष्म शरीर में कोई विकास नहीं हुआ। वही इंद्रियां, वही प्राण, वही मन, वही बुद्धि आदि। मतलब जीवात्मा के विकास के लिए सूक्ष्म शरीर के अलावा अन्य कोई अन्य कुछ तत्व जरूरी नहीं। यह जरूर हुआ कि बड़े जीवों और मनुष्यों में सूक्ष्म शरीर का दायरा बढ़ गया। इसलिए जीवात्मा का विकास भी तेज हुआ। पर सूक्ष्म शरीर तो वही पौराणिक था। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में जो एक चीज विशेष हुई, जो किसी अन्य जीव के शरीर में नहीं है, वह है कुंडलिनी योग साधना की योग्यता। इससे आदमी अपने सूक्ष्म शरीर को इतना ऊंचा उठा लेता है कि उससे कुंडलिनी जागरण हो जाता है।

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) Love story of a Yogi- what Patanjali says
2) Kundalini demystified- what Premyogi vajra says
3) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान (पुस्तक 1,2,3 और 4)
4) The art of self publishing and website creation
5) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला
6) कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है
7) बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी
8) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट
9) My kundalini website on e-reader
10) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)
11) श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम
12) सोलन की सर्वहित साधना
13) योगोपनिषदों में राजयोग
14) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव
15) देवभूमि सोलन
16) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र
17) बघाटेश्वरी माँ शूलिनी
18) म्हारा बघाट
19) भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस
20) Kundalini science~a spiritual psychology (books 1,2,3, and 4)

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु